श्रीवैष्णव ग्रन्थमाला का

श्रियैनमः

श्रीमतेरामानुजायनमः

श्रीसम्प्रदायके प्रथमाचार्य प्रपन्नजनकूटस्थ श्रीशठकोपमुनिकृता-



श्रीसहस्रगीतिः



विद्वन्मोदतरंगिणी भाषाटीकासहिता

[श्रीभगवद्विषय का संक्षिप्तभाषानुवाद]







जिसको

मथुरा निवासी वेद वेदाङ्गादिसकल शास्त्रनिष्णात

पण्डितस्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्यशास्त्रीजीने

श्रीवैष्णवों को सम्प्रदाय-रहस्यज्ञानकराने के लिये

अपने द्रव्य व्ययसे छपाकर—

प्रकाशित किया ।

पौष शुक्ला पूर्णिमा गुरुवार सं० १९९५ वि०

मूल्य ५) डाक व्यय १)

श्रीरामानुजवत्सरः ९२३ सन् १९३९ ई०

* श्रियेनमः *

श्रीमते रामानुजाय नमः

अथ पूर्व वक्तव्यम्

शठकोपमुनीन्द्रनिर्मिता शुभसूक्तावलिरत्नमालिका ।
हरिभक्तजनेषु भाषया सहसंवर्ध्य समर्प्यते मया ॥१॥

इस संसार में प्राणीमात्रकी प्रवृत्ति सरल सुलभ वस्तुकी ओर ही होती हुई देखी जाती है । यही कारण है कि जिस समाजका अथवा संप्रदायका ग्रन्थसाहित्य सुलभ सरल होता है, उसका विस्तार बड़ी शीघ्रतासे होता चला जाता है। इसी कारण प्रत्येक समाजके धर्माचार्यको समयका रुख देखकर धर्मप्रचारके लिये अपना ग्रन्थ साहित्य सरल और सुलभ बनाना पड़ता है।

श्रीरामानुजसम्प्रदायका ग्रन्थसाहित्य पुष्कलरूपमें रहता हुआ भी विद्वानोंके पुस्तकालयोंमें ही सीमाबद्ध है। साधारण शिक्षित श्रीवैष्णवोंको उसका दर्शनभी दुर्लभ है। क्योंकि प्रथम तो वे ग्रन्थ संस्कृतमें हैं, दूसरे अमुद्रित हैं। यही कारण है कि श्रीवैष्णव नामधारी बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान्भी अपने घरके ज्ञानमहानिधिके उपभोगसे वञ्चित रहजाते हैं। इसी कारण उत्तरदेशमें श्रीसम्प्रदायके रहस्यज्ञ विद्वानोंका अभाव सा हो गया है और होता ही जारहा है।

इस अभावको मिटानेके लियेही हमने श्रीवैष्णवग्रन्थ मालाका प्रकाशन कार्य प्रारम्भ किया है। इस ग्रन्थमालामें अभीतक कुछ कर्मकाण्डके ग्रन्थ छप चुके हैं। अब इसके द्वारा रहस्यग्रन्थोंका प्रकाशित होना भी प्रारम्भ हुआ है। इसीका यह ग्रन्थ छठें मणिके रूप में है। यह ग्रन्थ श्रीसंप्रदायके आद्याचार्य श्रीशठकोपमुनिने अबसे पाँच हजार वर्ष पहले प्राणियोंके कल्याणके लिए अतिमधुरपद्योंमें बनाया था। जिसका अध्ययन करके असंख्य नर नारी भवसागर तरकर नित्य परमानन्दके भागी बन गये और भविष्यमें बनते जायँगे।

यह ग्रन्थ श्रीवैष्णव समाजमें पूर्णरूपसे प्रसिद्ध और प्रचलितहै। इसलिये इसके ऐतिहासिक विषयमें कुछ लिखना पिष्टपेषणही होगा, अतएव इसके कुछ सारांशको बता देनाही हम पर्याप्त समझते हैं। इसीसे इस ग्रन्थकी महिमा और उपादेयता पाठकोंकी समझमें सहज से ही आजायगी।

इस ग्रन्थमें १० शतक हैं और प्रत्येक शतकमें १० दशक हैं। प्रत्येक दशक में ११ गाथा हैं (द्वितीयशतकके ७ वें दशकमें १३ और पंचमशतकके छठें दशकमें २२ गाथायें हैं) इस प्रकार दशशतक और सौ दशक तथा ११११ गाथामें यह ग्रन्थ पूरा हुआ है। दशकोंका अर्थ तो हमने प्रत्येक दशककी आदिमें ही लिख दिया है। और शतकोंका अर्थ गुरुपरम्परासे प्राप्त इस प्रकारसे पाठक महानुभावोंको समझना चाहिये--

(१) प्रथम शतकमें-भगवत्कैङ्कर्य ही परम पुरुषार्थ है ।
(२) द्वितीयशतकमें-ईश्वरको ही सर्व भोग्यरूप जानना पुरुषार्थ है ।
(३) तृतीय शतकमें-अर्चावतारकी वाचिक (स्तुति) सेवा ही कल्याण कारक है ।
(४) चतुर्थ शतकमें-भगवच्चरण युगल ही प्राणियोंके सर्वविध रक्षक है ।
(५) पंचम शतकमें-नारायण ही जीवोंके लिये सिद्धोपाय (मोक्ष देने वाले) हैं ।
(६) षष्ठशतकमें-लक्ष्मीजीकी शरण लेकरही भगत् शरण होना चाहिये ।
(७) सप्तम शतकमें-संसारके विषयजन्यसुख ईश्वर प्राप्तिके विरोधी हैं ।
(८) अष्टम शतकमें-संसारके विषय और अहंकार ममकारके त्यागका उपाय ।
(९) नवम शतकमें-भगवद्गुणोंको भले प्रकारसे अनुभव करनेका उपाय ।
(१०) दशम शतकमें-अर्चिरादि मार्गसे मोक्षमें जाकर नित्यानन्द भोगना ।

इस प्रकार इन दशशतकोंमें वेद वेदान्त पुराणादिके सारार्थका वर्णन, अनेक प्रकारकी पूर्वकालके इतिहासकी घटनाओं और प्रबलयुक्तियों द्वारा अतिमधुर ललित मनोहर नानाभांतिके पद्यों द्वारा वर्णन करके सागरको गागरमें भरनेकी कहावतको प्रत्यक्ष करके आलवारने प्राणी मात्रका वह उपकार किया है कि जिसका भक्तसमाज सदा के लिये ऋणी रहेगा ।

परमादरणीय हरिभक्त गण ! आपका तो यह स्वभावही है कि संसारकी असार वस्तुओंको छोड़कर अत्यन्तसार रूप भक्तिके साधनोंका सर्व प्रकारके शास्त्रोंमें से पानी में मिले हुये दूधको हंसके समान ग्रहण कर लेना ।

इस मनुष्य जन्मकी सार्थकता बताते हुए महात्मा श्रीतुलसीदासजीने भी कहा है कि-

देह धरे कर यह फल भाई । भजहु राम सब काम बिहाई ॥

बड़े-बड़े तत्त्वदर्शीमहर्षि भी इसी सारका पता लगाकर मुक्त कंठसे यही कहतेहैंकिः-

वेदे रामायणे चैव भारते भरतर्षभ ! इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥

कलियुगकी दूषित वायुसे उत्पन्न हुए अनेक पाप तापोंको नष्ट करनेके लिए भगवन्नामही परमौषध है । यही वेद पुराण रामायण महाभारतादि सद्ग्रन्थों का सारहै । इसी सारकीप्राप्तिसे आनन्दमग्न होकर श्रीशठकोपमुनिभी यही कहते हैं:—

"वाष्पावलिर्मम किल प्रवहत्यहो श्रीनारायणेति वचनं तु निशम्य नेत्रात् ।
चित्रं कथंन्विदमसौ मयि सादरोऽस्ति श्रीमान्दिवानिशमतो न निजं त्यजेन्माम् ॥",

जब मैं नारायणनामको सुनता हूँ तो मेरे नेत्रोंसे सहसा आँसुओंकीधारा बहने लग जाती है । अहह यह नामश्रवण ही हमारे हृदयको द्रवीभूत कर रहा है ।

भगवन्नाम कीर्तन महायज्ञकी विधि बतानेके लिए ही दिव्यसूरिने इस सहस्रगीतिकी रचनाकी है। इसीके सुधासने सुहावने कमनीय पद्यकुसुमोंको विद्वन्मोदतरङ्गिणी भाषाटीकासे सुगन्धित करके आपकी सेवामें हम समर्पण कर रहे हैं। और आशा करते हैं कि इस ग्रन्थरत्नका नित्य प्रति पाठ करके आप अपने नर जन्मको सफल बनानेमें न चूकेंगे ।

इस प्रकार इस ग्रन्थमें भक्ति प्रपत्तिके महत्वशाली साधनोंको बताते हुए भूमण्डलके प्रधान प्रधान १०८ दिव्य देशोंका वर्णन भी आलवारने किया है ।

दिव्यदेश नाम	श०	द०	श्लो०
चोलदेशमें ५			
श्रीरङ्गम्	७×	२	—
तिरुप्पेर (श्रीनामपुरी)	१०×	८	—
तिरुक्कुडन्दै (श्रीकुंभपुरी)	५×	८	—
तिरुविण्णकर (श्रीदिव्यपुरी)	६×	३	—
तिरुकण्णपुरम् (श्रीकृष्णपुरम्)	९×	१०	—
पाण्ड्य देशमें १२			—
तिरुमालिरुंशोलै (श्रीवनगिरि)	१०×	२	—
तिरुमोहृ (श्रीमोहपुरी)	१०×	१	१
तिरुक्करकुर (कुरुकापुरी)	४×	१०	—
तोलैविल्लिमङ्गलम् (वरधन्विमङ्गलपुर)	६×	५	—
वरमङ्गलपुरम् (तोताद्रि)	५×	७	—
श्रीपुल्लिङ्गुडि	९×	२	—
तिरुपेरै (श्रीवेरपुरी)	९×	२	—
श्रीवैकुंठपुरम्	९×	२	४
वरगुणश्रीपुरी	९×	२	४
तिरुकुलन्दै	८×	२	४
तिरुकुरुङ्गुडि (कुरङ्गनगरी)	१×	१०	९
तिरुक्कोलूर	८×	३	५

मलयवाडदेशमें १२	श०	द०	श्लो.
अनन्तशयनम्	१०×	२	—
तिरुवण्परिसारम्	८×	३	७
तिरुकालक्करै	९×	६	—
तिरुमूलीकलम्	९×	७	—
श्रीव्याघ्रपुरम्	९×	९	—
श्रीरम्यद्वीशपुरी (तिरुचित्तार)	८×	४	—
श्रीनावायूपुरम्	९×	८	—
श्रीसंवृद्धपुरम्	५×	९	—
श्रीमधुरत्पुरम्	६×	१	—
तिरुयाट्टारूपुरम्	१०×	६	—
श्रीकटिस्थानम्	८×	६	—
श्रीनदीमातृकपुरम्	७×	१०	—
उत्तर देशमें ९			
श्रीवेंकटाद्रिः	३×	३	—
श्रीअयोध्या	७×	५	—
श्रीद्वारका	५×	३	६
श्रीक्षीराब्धिः—अनेक स्थलोंमें			
श्रीवैकुण्ठ में एक देश	१०+	९	—
श्रीयादवाद्रि (मेलुकोटे)	४×	१	—
श्रीमथुरा	९×	१	—
श्रीवृन्दावनम्	१०×	३	३
श्रीगोवर्द्धनम्	९×	४	—

इस सहस्रगीतिकी प्राचीन संस्कृतटीकाएँ अनेक हैं,उनमें भगवद्विषयही सर्वश्रेष्ठ परमादरणीय मानी जाती है। जिसको हमने अलग छुपाया है। उसीके आधारपर यह भाषा टीका लिखी गई है। इस टीकाको संक्षिप्त रूपमें भगवद्विषयका अनुवादभी कह सकते हैं।

पं० श्रीरघुनन्दनाचार्यशास्त्रीजीने इसग्रन्थकेप्रचारमें अनेकसहायता प्रदान की हैं। तथा इस ग्रन्थके लिखनेमें गीताचार्य पं० श्रीशत्रुघ्नजीने बड़ी सहायता की है इसकेलिए हम कृतज्ञता प्रगटकरते हुए दोनों महानुभावोंको सहस्र धन्यवाद देते हैं।

इसके छुपाते समय सावधानी तो बहुत कुछ रक्खी गई है, तथापि मनकी असावधानता नेत्रोंकी चंचलता अक्षर जोड़ने वालोंकी भूल आदि कितने ही कारण ऐसे हैं जिनसे अशुद्धियोंका रहजाना अनिवार्य्य है। अतएव विज्ञपाठकोंसे सादर प्रार्थना है कि वे इसकी अशुद्धियोंको तथा अन्य प्रकारकी त्रुटियोंको संशोधन करके हमको अनुग्रहीत करेंगे।

विनीतप्रार्थी—**श्रीपराङ्कुशाचार्यशास्त्री गलताकुंज प्रयागघाट मथुरा।**

अथ श्रीसहस्रगीति माहात्म्यम्

तस्मिन्मतिर्मेस्तु दृढा शठारौ गायन्त उच्चैरिह यस्य गाथा ।
प्रहाय देहं पृथयन्ति दिव्ये पदेऽहमन्नाद इति पृगीते ॥ १ ॥

जिनकी सहस्रगीतिका भक्ति भावसे गान (पाठ) करके सज्जनगण पञ्चभूत मय शरीरको त्यागने के अनन्तर परमपद वैकुंठमें जाकर नित्यानन्द भोगते हैं, उन श्रीशठकोपमुनिके चरणोंमें हमारी बुद्धि दृढ़तासे लगी रहे ॥ १ ॥

कृतदुरितनिरोधानां कलितश्रुतिमौलिभावबोधानाम् ।
वशितरमानाथानां न सुधाऽपि समा शठारिगाथानाम् ॥ २ ॥

उपनिषदोंके रहस्यार्थको स्पष्ट और सरल रीतिसे बताकर प्राणियोंके समस्त पापतापोंको धोने वाली, और पाठमात्रसे लक्ष्मीपतिको वशमें करने वाली, शठकोपमुनिकी सहस्रगीतिकी तुलना अमृतभी नहीं करसकता। क्योंकि अमृत जीवको केवल अमर ही बनाता है, दुःख दूर नहीं करता किन्तु सहस्रगीति तो अजर अमर बनाकर सर्व दुःखोंसे छुड़ाकर परमपदमें नित्यानन्द प्राप्त करा देती है ॥ २ ॥

हरिमिव कृतावतरणं बकुलाभरणं वृणीमहे शरणम् ।
ध्येयं यं विदुरार्या मुमुक्षुभिर्यत्प्रबन्धमध्येयम् ॥ ३ ॥

संसारका उद्धार करने के लिये जिन्होंने श्रीहरिके समान ही अपनी इच्छासे अवतार धारण किया है। जिनके चरणोंके ध्यानको सर्व दुःख नाशक श्रेष्ठपुरुष बताते हैं। जिनकी बताई सहस्रगीतिको पढ़ कर ही भक्तगण मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। उन श्रीशठकोपमुनिकी शरण लेना ही हमारा कल्याणकारक है ॥ ३ ॥

परिदृष्टवते सहस्रशाखां परमां द्राविडसंहितां हितां नः ।
गुरवे करवाम नित्यमस्मै शठकोपाय पुनः पुनः प्रणामान् ॥ ४ ॥

जिन्होंने सामवेदकी सहस्रशाखाओंको भले प्रकारसे विचार करके उनके सारांशको द्रविड़भाषामय सहस्र गाथाओंमें हमारे कल्याणके लिए वर्णन किया है। सच्चेगुरुरूप उन शठकोपमुनिके लिये हम वार वार प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

भक्तामृतं विश्वजनानुमोदनं सर्वार्थदं श्रीशठकोपवाङ्मयम् ।
सहस्रशाखोपनिषत्समागमं नमाम्यहं द्राविडवेदसागरम् ॥ ५ ॥

जो श्रीशठकोपमुनिकी वाणीसे उत्पन्न हुआ है, जो समस्त संसारके भक्त प्राणियोंको परमानन्द देनेके लिए अमृतकेसमान मधुर स्वादिष्ट है, जिसमें सामवेदकी हज़ारशाखारूपनदी सम्मिलित होती है उस द्राविड़वेद (सहस्रगीति) रूप महासागरको मैं निरन्तर (वार वार) प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

शठारिमुनिवर्यसद्द्रविडसूक्तिसाहस्रकं
तनोति जगतां हितं परममेव सत्यं शुभम् ॥
शृणोति पठतीह यः सपदि भक्तियुक्तो जनो
भजेत भुवि मुक्तिमित्यपि च सत्यमेतद्वचः ॥६॥

यह बात ध्रुव सत्य है कि श्रीशठकोपमुनिकी द्रविड़भाषामयी सूक्तिसाहस्री (सहस्र गीति) ही समस्त जगत्का परमकल्याणकरनेकी शक्ति रखती है। जो सज्जन जन इस संसारमें इसका भक्ति पूर्वक पाठ अथवा श्रवण करेंगे वे अवश्य ही इस भूतल पर,बहुत ही शीघ्र मुक्तिके भागी बन जायेंगे ॥ ६ ॥

गाथासहस्रपठनादखिलात्मनां हि
श्रेयोऽभिवृद्धिरतुलाऽप्यमिता ध्रुवं स्यात् ॥
अत्राप्यमुत्र परमार्थहरिः प्रसादात्
सिद्धिः करे भवति भक्तिजुषां सुखायः ॥७॥

जो भक्तवर श्रीसहस्रगीतिका प्रेमसे पाठ करते हैं। उनको परमात्माकी कृपासे इस लोक तथा परलोकमें सर्व श्रेष्ठ सर्वप्रकारके कल्याणकी वृद्धि निश्चित रूपसे हो जाती है। और उनको वह सिद्धि हस्तगत हो जाती है, कि जिसके प्रभाव से उनके सर्व प्रकारके मनोरथ सहजमें ही पूरे हो जाते हैं ॥ ७ ॥

स्यादेव सामे भणितिः शठारे र्ययोदितोर्ध्वैः शरणिर्जनानाम् ।
आरोहिणी नाप्यवरोहिणी हि वेदोदिता तु द्वयमभ्युपैति ॥८॥

सामवेदकी सहस्रशाखाओंका परमार्थ बतानेवाली श्रीशठकोपमुनिकी सहस्रगीतिने जन साधारणको संसारमें मुक्तिका यह उच्चमार्ग प्रकाशित किया है, जिसमें जाकर मुक्तिको प्राप्त करके मुमुक्षु गण पीछे नहीं लौटते हैं। जिस प्रकार वेदोंमें स्वर्गमें जाना और वहांसे पंचाग्निविद्योक्त प्रकारसे लौटना लिखा है। इस प्रकार सहस्रगीतिने मोक्षमें जानाही सिद्ध किया है वहांसे लौटना नहीं बताया है।

अर्थात् वेद और वैदिक कर्मोंका अनुष्ठाता ऊपरजाकरभी(क्षीणेपुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति) फिर नीचे गिर जाते हैं। परन्तु श्रीसहस्रगीति प्रतिपादित प्रपत्तिमार्गका अनुष्ठाता प्राणी (तद्यातीत्य भवं ममाभिलषितं संपूर्य संश्लेषभाक् (स०गी० १०-१०-१०) फिर कभी जन्म मरणके चक्रमें नहीं पड़ता, अर्थात् संसारसे पार होकर श्रीहरिके चरणों में सदाके लिये विलीन होकर परमानन्दका भागी बन जाता है।

जब हम श्रेयःप्राप्तिकी इच्छासे वेद और श्रीसहस्रगीतिकी परीक्षा बुद्धि से तुलना करते हैं तो श्रेयप्राप्तिकी गुरुतासे श्रीसहस्रगीति वेदोंसे बहुत कुछ उच्च कोटकी हमें प्रतीत होती है ॥ ८ ॥



श्रीसहस्रगीतिकी विषय सूची।



श्रीसहस्रगीति का पाठ नीचे लिखे श्लोकोंको पढ़कर करना चाहिये।

श्रीशैलेशदयापात्रं धीभक्त्यादि गुणार्णवम्। यतीन्द्रप्रवणं वन्दे रम्यजामातरं मुनिम्।
लक्ष्मीनाथसमारंभां नाथयामुनमध्यमाम्। अस्मदाचार्यपर्यंतां वन्दे गुरुपरंपराम्।
यो नित्यमच्युत पदाम्बुज युग्मरुक्म व्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने।
अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिन्धो रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये॥
माता पिता युवतयस्तनया विभूतिः सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम्।
आद्यस्य नः कुलपतेर्वकुलाभिरामं श्रीमत्तदङ्घ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना॥
भूतं सरश्च महदा ह्वय भट्टनाथ श्री भक्तिसार-कुलशेखर योगी वाहान्।
भक्ताङ्घ्रिरेणु परकालयतीन्द्रमिश्रान् श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥
श्रीरङ्गेश रमाचमूपशठजिन्नाथाब्जपत्रे क्षणान्।
रामं यामुनपूर्णलक्ष्मणमुद्रे गोविन्दकूराधिपौ॥
भट्टार्यं निगमान्तिनं कलिजिनं कृष्णौ जगद्देशिकं।
श्रीशैलेशमहं भजामि सततं श्रीसौम्य जामातृकान्॥६॥

श्री वैष्णवग्रन्थमाला के सम्पादक, श्री संप्रदायके अनेक ग्रन्थों के
लेखक तथा प्रकाशक श्री सहस्रगीति व्याख्यात वेदवेदाङ्गादि
सकल शास्त्रनिष्णात मथुरागलता मठाधीश्वरसत्संप्रदायाचार्य
पंडित स्वामी श्री पराङ्कुशाचार्य शास्त्रीजी मथुरा निवासी



यःपाराशरगोत्रवारिधिविधुर्नारायणस्यात्मजः
श्रीमन्माधवदेशिकेन्द्रचरणद्वन्द्वैकसंजीवनः ॥
कर्मब्रह्मविचारचारुपदवीसंदेशिको देशिकः
सोऽयं भाति पराङ्कुशः कविवरो ग्रन्थप्रकाशोद्यतः ॥

* श्रीयैनमः *

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीशठकोपमुनि विरचिता

श्रीसहस्रगीतिः

श्रीपराङ्कुशमुनिकृत विद्वन्मोदतरङ्गिणीभाषाटीका सहिता ।

आदौ कलेर्हि कुरुकापुरि पाण्ड्यदेशे, वैशाखमासि मघवानलभेंशजातम् ।
सेनापतिं हि नृपकारिगृहेऽवतीर्णं, श्रीशास्पदं शठरिपुं शरणं प्रपद्ये ॥१॥

कलियुग का प्रारम्भ होने वाला था भगवान् श्रीकृष्ण इस धरातल को त्याग चुके थे इसी कारण कलियुग देवजी भी अपनी समस्त शक्ति लगा कर समयानुसार वैदिक धर्म को ध्वंस करने की आयोजना कर रहे थे । इसके विरोध में धार्मिक संसार चारों तरफ़ से हाहा कार के नारों से गगन मण्डल को प्रतिध्वनित कर रहा था दूसरी ओर भक्त समाज (महत्यापदि संप्राप्तौ स्मर्तव्यो भगवान् हरिः) इस प्रमाण के अनुसार अपने संकट को दूर करने के लिए भक्त वत्सल परमात्मा से प्रार्थना कर रहे थे ॥

इसी समय भगवान् ने जनता का करुण क्रन्दन और भक्तों की प्रार्थना सुन कर कलियुग के प्रभाव को नष्ट करके भगवद्भक्ति के प्रचार द्वारा धर्म की रक्षा करने के लिये अपने प्रिय सखा गरुड़जी और विष्वकसेनजी इन दोनों को आज्ञा दी कि तुम भूतल में अवतार लेकर कलियुग के प्रभाव को नष्ट करके हमारी भक्ति भागीरथी की पवित्र धारा को जन साधारण के हृदयों में बहाकर कलियुग जनित पाप तापों को धोकर प्राणियों को मोक्ष के अधिकारी बनाओ ।

भगवान् की इस आज्ञा का पालन करने के लिए ही दोनों व्यक्ति पाण्ड्य देश में ताम्रपर्णीनदी के तट पर कुरुका पुरी नगर में भिन्न भिन्न द्विजवरों के घर में कलियुग के १३ वर्ष बीतने पर उत्पन्न हुए ।

गरुड़जी नें चैत्र मास की पूर्णिमा को मेष की संक्रान्ति में चित्रा नक्षत्र में जन्म लिया। ये बाल्यावस्था में ही सर्व शास्त्रों का पूर्ण रूप से अभ्यास करके मधुर काव्य के रचियता थे इसलिए इनका नाम मधुर कवि हुआ। ये संसार को त्याग कर बाल्यावस्था में ही योग सिद्ध हो गये थे। इसी आशय को यह प्राचीन श्लोक भी स्पष्ट रूप से बतलाता है।

अष्टांग योगाससमस्त सिद्धिं शठारिवाक्ष्या स मुदारकीर्तिम्।
माधुर्यसंश्लिष्टकवित्वयुक्तं महत्वसंभावितबुद्धितत्त्वम्॥

एक दिन उनके चित्त में यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि (आचार्या द्धैव विद्या विदिता साधिष्टं प्रापत्) आचार्य के द्वारा ही प्राप्त हुई विद्या मोक्ष देती है। अतएव अध्यात्म विद्या की प्राप्ति करने के लिए (तद्विज्ञानार्थं स गुरु मेवाभिगच्छेत्) किसी सदाचार्य की खोज करनी चाहिए। इसी विचार से आप तीर्थाटन करने को निकल पड़े।

विष्वक्सेनजी ने भी स्वामी की आज्ञा पालन करने के लि वृष की संक्रान्ति में विशाखानक्षत्रको कर्क लग्न में जन्म लिया। य बात तो सर्व शास्त्र प्रसिद्ध है कि जब यह प्राणी गर्भ में आता है तब इसको सौ जन्म के पुण्य पाप स्मरण होते हैं। उस समय यह अपने पापों को देखकर घबड़ा कर उनसे छूटने के लिए ईश्वर की भक्ती करने को गर्भ से छूटने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है। ईश्वर भी इसकी प्रार्थना को सुन कर इसे गर्भ से बाहर निकाल देने के लिए प्रसूति वायु को आज्ञा देते हैं।

यह प्राणी गर्भ से बाहर निकल कर जब भूमि में पड़ता है। तभी इसको माया लपट जाती है। इसी कारण गर्भस्थज्ञान को भूलकर यह रोने लगता है। और ईश्वर की भक्ति को भूल कर खाने पीने लड़ने झगड़ने आदि कार्यों में लग जाता है।

यही समस्या हमारे विष्वक्सेन जी के साथ भी हुई। जब ये गर्भ से बाहर भूतल पर आये तब इन के दिव्य ज्ञान को भुलाने के

लिए भी माया लिपटने आई। किन्तु दिव्य तेज सम्पन्न इन्होंने उस माया को क्रोध करके ललकारा सो डर के मारे वह दूर रही। इस कारण इनके ऊपर ईश्वर की माया का प्रभाव नहीं पड़ सका और उस दिन से विद्वज्जन इन्हें शठकोप इस यथार्थ नाम से पुकारने लगे अर्थात् शठ (संसारीमाया) के ऊपर कोप करने से ही इनका नाम शठकोप हुआ क्योंकि इन्होंने अपने क्रोध से संसारी माया को भगा दिया था।

और फिर ईश्वर को ही अपना सर्व भोग्य और स० १३-७ गाथा के अनुसार अपना प्राण धारक समझने से इन्हीं का नाम परम भक्त (आलवर) ऐसा प्रसिद्ध हुआ हम इस ग्रन्थ में आपको आलवार नाम से ही निर्देश करेंगे।

श्री शठ कोप मुनि ने जन्म काल से दिव्य ज्ञान रहने के कारण साँसारिकता से सम्बन्ध तोड़कर स्तन्य (माता का दूध) पान को छोड़कर अखण्ड समाधि लगाली थी। इस प्रकार कई दिन बीतजाने पर उन के पिता माता ने उनको मृतप्राय: जानकर एक इमली के वृक्ष के नीचे छोड़ दिया। यह इमली बहुत दिनों की थी इसी कारण इसमें भीतर पोल हो गई थी। इसी इमली के कोटर में जाकर शठ कोप मुनि ने अखण्ड समाधि द्वारा ईश्वर का दर्शन किया था॥

हम पूर्व में जिन मधुर कवि की चर्चा कर आये हैं वे ही एक दिन अयोध्या में दर्शन यात्रा के लिये आये हुए थे वे रात्रि के समय आवश्यक कार्य के लिये घर से बाहर निकले तो एकाएक दक्षिण की तरफ दिव्य तेज दीखने लगा। इसके विषय में अनेक संकल्प विकल्प करने के अनन्तर यह निश्चय किया कि इस तेज का पता लगाना चाहिये। क्यों कि यह तेज किसी दिव्य शक्ति वाली आत्मा का है। अतएव वे उस तेज की ओर चलने लगे इस प्रकार कुछ दिनों में वे उसी इमली के पास पहुँच गये जिसमें कि श्रीशठकोपमुनि अखण्ड समाधि लगाकर बैठे थे।

उनका दिव्य तेज पुंज दिशाओं के अन्धकार को नष्ट कर रहा था। इस पाषाण सदृश दिव्य तेजो मूर्ति को देख कर इन्हों ने

कुछ प्रश्न किये इनकी प्रश्नोत्कण्ठा को समाधि द्वारा जानकर आपने समाधि खोली और उनके प्रश्नों का उचित उत्तर दिया।

मधुर कवि ने देखा कि अब मुनिजी सचेत है तब सष्टाङ्ग प्रणाम करके अध्यात्म ज्ञान (अर्थ पंचक) के पाँच प्रश्न और पूछे ईश्वर कौन है १ मैं कौन हूँ २ ईश्वर से मिलने का क्या उपाय है ३ ईश्वर से मिलने में विरोधी कौन है ४ ईश्वर से मिलकर हमको क्या फल मिलता है ५ इन्हीं अर्थ पंचक सम्बन्धी पाँच प्रश्नों का उत्तर देने के लिये शठकोप मुनि ने एक सहस्र श्लोक वाली सहस्र गीति का उपदेश दिया जो उन्होने छन्दों में लिपिबद्ध कर लिया था।

इस सहस्र गीति में प्रथम दो शतकों में प्रथम प्रश्न का। तृतीय चतुर्थ शतकों में दूसरे प्रश्न का। और पंचम षष्ठ शतकों में तीसरे प्रश्न का। तथा सप्तम अष्टम शतकों में चतुर्थ प्रश्न का। नवम दशम शतकों में पंचम प्रश्न का। उत्तर रूपकालंकार द्वारा भले प्रकार से दिया है। इस प्रकार इस ग्रन्थमें सम्पूर्ण वेद शास्त्रों का सारार्थ यथार्थ वर्णन किया गया है।

यह बात वृद्धहारीतादि महर्षियों ने भी स्वीकार की है कि—

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्तिविरोधि च ॥१॥
वदन्तिः सकलावेदाः सेतिहासपुराणकाः।
मुनयश्च महात्मानो वेदवेदान्तपारगाः ॥२॥

अर्थात् ईश्वर कौन है १ जीव कौन है २ ईश्वर प्राप्ति का उपाय क्या है ३ ईश्वर प्राप्तिका विरोधि कौन है ईश्वर की प्राप्ति से क्या फल मिलना है। इसो अर्थ पंचक को संक्षेप विस्तार रूप से संपूर्ण वेद शास्त्र पुराण इतिहास बतलाते हैं। ऐसा निश्चय वेदार्थ के यथार्थ ज्ञाता महात्मा ऋषि मुनियों ने किया है। इसी अर्थ को विस्तार रूप से समझाने के लिये ही सहस्र गीति का प्रादुर्भाव हुआ है।

पाठगण इस असार संसार में जन्म लेकर अपने कल्याण के लिये प्रत्येक प्राणि को उक्त पांचवात अवश्य जान लेनी चाहिये। लोक में एक आख्यायि का है कि (आम के आम और गुठलीन के दाम–अथवा एक पन्थ दो काज) ये दोनों कहावत इस ग्रन्थ में चरितार्थ हो जाती है। कि मनो विनोद के साथ काव्यरस का पान और अध्यात्मज्ञान निधिका साक्षात् अपने हाथ में आजाना।

॥ श्रीमते शठकोपायनमः । ॥

अथ सहस्त्रगीतौ प्रथमशतके प्रथमदशकारम्भः

इस दशक में श्री शठकोप मुनि श्रीमन्नारायण के अनन्त कल्याण गुणों का प्रति पादन करके यह सिद्ध करते हैं कि नारायण ही सर्व देव श्रेष्ठ हैं उन्हीं की शरण जाने से जीवों का कल्याण होगा अन्यथा नही।

अ ह ह संसार चक्र की कैसी विलक्षण गति है। और काल प्रवाह उसे कैसे कैसे अद्भुत नाच नचाता है। कहाँ २ से खींचकर कहाँ २ पहुँचा देता है। जो जल किसी समय मुक्तास्फाटिक सदृश स्वच्छ निर्मल सर्वोपरि गगन मण्डल में शोभा को विस्तृत करता हुआ कवि समुदाय से उत्प्रेक्षित होता है। वही जल किसी दिन काला कृष्ट होकर मृत्यु लोक के अति मलिन गली कूंचों में गिर कर स्वयं मलिनता धारण करके मनुष्य पशु पक्षी कीटादि के पदाघात को सहता हुआ सज्जन जनों के स्पर्श करने के अयोग्य होजाता है।

बस इसी प्रकार इस संसार में जीवों के उर्ध्वगति तथा अधोगति के प्रमाण बहुधा इतिहास ग्रन्थों में पाये जाते हैं। अनादि काल से जन्म मरण के चक्र में फसे हुए इस प्राणी को भगवत् चरण शरण के विना और कोई अच्छा सहारा नहीं है। उसकी शरणागति ही सर्वदुःखोंसे इसे छुड़ा सकती है इसी बातको अवतार कहते हैं।

* प्रथम गाथा *

श्रीमानस्त्यप्रमेयो निरतिशयमहानन्दमूर्तिप्रभावा
दज्ञानध्वान्तभानुर्मतिविनति करो नित्यसूरीन्द्रसेव्यः ॥
ज्योतिस्सत्वं परं तत्सकलजनिनुषां सर्वसन्तापहारी ।
श्रीशस्यास्यैव पादाम्बुजयुगल महो मानस त्वं भजेथाः ॥१॥

हमारा इष्टदेव श्रीमन्नारायण सर्व देव श्रेष्ठ है। उसके समान दूसरा कोई देव नहीं है, वह सीमारहित आनन्दवाली अपनी दिव्य मूर्ति के प्रभाव से हमारे हृदय के अज्ञानान्धकारको सूर्य के समान नाश करके उसमें ज्ञानरूपी आनन्द की अखण्ड धारा के प्रवाह को बहा रहा है। उस आनन्द मन्दाकिनी के दिव्य स्रोतों की लहर लेने के लिए ही नित्य सूरि जन उसके चरणों की सेवा सदा सर्व प्रकार से किया करते हैं।

संसार में प्रकाश करने वाली समस्त वस्तुओं का प्रकाश उसी के प्रकाश की सत्ता से है, वह जन्म लेने वाले सभी चराचर प्राणियों के सर्व प्रकार के सन्तापों को समूल नष्ट कर देता है। अहह मेरे मन तू अब अपनी चञ्चलता को छोड़कर इस मेरे हृदयाङ्गण में सदा विहार करने वाले उस लक्ष्मी पति के युगल चरणों की निरन्तर शरण होकर उसी का भजन करके समस्त दुःखों से छूटकर सदा सर्वदा के लिए सुख मय जीवन की उन्नति में लग जा।

* द्वितीय गाथा *

मालिन्यं मनसः प्रहृत्य सकलं नित्यप्रबुद्धोज्वलाद्,
योगध्यानबलात्प्रमातुमपि यः शक्यो न चान्येन्द्रियैः ॥
एवं यश्चिदचिद्विलक्षणतया भाति त्रिकालेष्वपि,
ज्ञानानन्दनिधिःसमाधिकदरिद्रोऽयं किलात्मा मम ॥२॥

इस प्रकार प्रभु के चरण कमल के भजन के बल से मन के सम्पूर्ण मलों को नाश होने पर उस शुद्ध मन में यह मेरा आत्मा (श्रीमन्नारायण) जिसके समान तथा जिससे बड़ा देव संसार में कोई

नहीं है वह स्वयं प्रकाशित होकर ज्ञान और आनन्द के अटूट भण्डार को भर देगा।

अर्थात् (मनसा तु विशुद्धेन) इस श्रुति के अनुसार उस परमात्मा को हम विशुद्ध मन से ही देख सकते हैं। इसके अतिरिक्त हम निरन्तराभ्यास से बढ़े हुए योगाभ्यास द्वारा अत्यन्त शक्ति बढ़ी हुई भी अन्य इन्द्रियों से उसके रूपादि विषयक ज्ञानका अनुमान नहीं कर सकते। वह यह मेरा आत्मा तीनों कालों में भी चित् (जीवात्मा) अचित् (प्रकृति) इन दोनों से विलक्षण (दूसरा) है।

प्रत्येक साधक को जो दूर करने पड़ते हैं वे मन के मल ये हैं "काम क्रोधश्चलोभश्च: हर्षमानमदागुणाः। विषादश्चाष्टमः प्रोक्त इत्येते मनसो मला"

ः तृतीय गाथा ः

तस्यायं प्रभुरस्ति नास्य तु किले त्येवं न वक्तुं स्वयं
शक्यो यः पृथिवीतले च गगने यद्रूपरूप्यस्ति च
तत्सर्वं च जडाजडं वहति यस्संयुक्त एवाखिलै
स्सत्यं भाति पृथक् च विष्णु ममितानन्दं तमेकं नुमः॥३॥

वह हमारा प्रभु इस भूतल के सशरीर और अशरीर चराचर समस्त जीवों को जीवन सत्ता प्रदान करता है। और वह सर्व के भीतर बाहर वायु के समान व्याप्त हो रहा है। उस हमारे चराचर के स्वामी विष्णु को ऐसा कोई नहीं कह सकता कि इस पदार्थ का वह स्वामी है और इस पदार्थ का स्वामी नहीं है। वह ही देव मनुष्य पशु पक्षी आदि रूपधारण करके संसार में नाना प्रकार का जान पड़ता है।

और वह चराचर से भिन्न भी है वह सत्य स्वरूप है उसके आनन्द का पार शिवसनकादिक ही क्या वेद भी नहीं पाता (यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन-तैत्तरीय) जो सर्वका एक ईश्वर है हम उसी परमात्माको

प्रणाम करते हैं। उसका आश्रय छोड कर इस प्राणीका संसार में दूसरा रक्षक कोई नहीं हो सकता ॥३॥

ः चतुर्थ गाथा ः

सर्वं भाति स एव यद्वयमसावेषोऽप्ययं सा स्वयं
चैवेऽयं किल कापि च स्वयममी तेऽपीति चेमे तथा
तच्चेदं यददश्च किञ्च सकलं यन्नश्वराण्यप्यहो ।
तानीमानि तथाप्यमूनि सद सद्वस्तूनि भान्त्यागतम् ॥४॥

सृष्टिकी आदि में ईश्वर प्रकृति पुरुष में प्रविष्ट हो (घुस) कर उसने अनेक रूप धारण किए हैं। अत एव मैं मेरा यह वह स्त्री ये हमारे भाई बान्धव हाथी, घोड़ा। यह हमारा माल खजाना सोना चांदी इत्यादि। इस लोक और परलोक का सर्व ऐश्वर्य इस संसार में जन्म लेकर नाश होने वाली वस्तु। और जितने भी पदार्थ हैं उन सब पदार्थों को उत्पन्न करके बढ़ाने वाला वह हमारा अन्तर्यामी परमात्मा नित्य अनित्य समस्त वस्तुओं का पालन करने के लिए अनेक रूपधारण करके आता है।

इसी बात को गीता में भी कहा है कि—यच्चाऽपिसर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन। नतदस्तिविनायत्स्यान्मयाभूतं चराचरम्-गी०१०-३९

अर्थात् समस्त प्राणियों का बीज मैं हूँ संसार में ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो मेरे सहारे बिना जीवित रह सकै ॥३॥

ः पञ्चम गाथा ः

ते ते स्वस्वमतिस्वभावमनुसृत्यैवेष्टदेवाऽनुगा
नानासाधनसंयुता किल तथा देवाश्च तेऽपीश्वराः ॥
तेषामीश्वर एव सर्वजगता मन्तर्नियन्ता स्वयं
विष्णुर्भाति फलप्रदोऽत्र सततं कर्मानुसारेण च ॥५॥

इस संसार में प्राणिवर्ग तीन प्रकार का है। रजोगुणी, तमोगुणी, सत्वगुणी जो प्राणी जिस गुणवाला है उसका प्रेम उसी गुणवाले देवता में होता है। अर्थात् रजोगुणी ब्रह्मा रस्वती इन्द्रादि को पूजते हैं

तमोगुणी दुर्गा रुद्र भैरवादि को पूजते है। सत्वगुणी श्री सन्नारामण को पूजतेहैं । अब विचार इसबात का है कि क्या ब्रह्मरुद्रादिदेव अपने भक्त को अभिलषित फल स्वेच्छा से देते हैं। अथवा ईश्वरेच्छा से तब इसमें कहना पड़ेगा कि जीव कभी स्वतंत्र नहीं है। वह सदा ईश्वरेच्छा के संकेत पर ही नाचा करता है। सर्व का सर्वस्वन्त्रतो एक विष्णु ही है जो (अंतः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्) इस श्रुति के अनुसार सबके हृदय घरवर में बैठकर सबकी बागडोर को अपने हाथ में लेकर स्वेच्छानुसार चलाता है। और उसी के दिये हुए फलों को ब्रह्मादि देवता भी अपने भक्तों को दिया करते हैं। वह मेरा प्रभु इस मेरे मन मन्दिर में बैठ कर प्रकाश कर रहा है। अर्थात् अपनी मन-मोहनीमन्दस्मितश्यामछटासे मेरे चंचलमनको अपनी ओर खींच रहा है ॥५॥

~ पद्मगाथा ~

तिष्ठन्तोऽप्युपवेशिनोऽपि शयिताः सञ्चारशीलाश्च ते
नोत्तिष्ठन्ति च नोपवेशिन इमे सुप्ता न सञ्चारिणः ।
एवं नैकविधस्वभावसहिताः सर्वेश्वरो भात्यहो
नित्यं चैकविधस्वभाव इति यत्सत्यं प्रमाणैःस्थिरैः ॥६॥

अहह यही मेरा प्रभु है। इसी ने नाना प्रकार की सृष्टि रचना करी है। जिससे एक से दूसरे का किसी प्रकार का जोड़ा नहीं मिलता। इस सृष्टि में कोई पदार्थ सदा चलने ही वाले हैं जैसे वायु जलप्रवाह। और कोई सदा बैठने ही वाले हैं जैसे पर्वत वृक्ष। कोई सोने ही वाले हैं जैसे अजगर। कोई घूमने वाले ही हैं जैसे मृग आदिक। ईश्वर की सृष्टिमें एक प्राणी के गुण और आकृति दूसरे से नहीं मिलते हैं।

परन्तु हमारा प्रभु सदा एक स्वभाव वाला ही रहता है अर्थात् चलना फिरना सोना बैठना आदि सर्व चेष्टाओं से रहित है। वह सदा सर्व देश काल में एकसा ही प्रकाशित होकर अन्य वस्तुओं को प्रकाशित कर रहा है (तस्य भासा सर्वमिदं विभाति) इत्यादि सर्व प्रबल प्रमाण वेदों ने यह बात भले प्रकार से बताई है ॥६॥

सप्तमगाथा :

आकाशाग्न्यनिलोदकावनितलेष्वेतेषु विस्तारिणां,
वस्तूनां च दृढस्वरूपमखिलं प्राप्यापि चान्तः स्थितः ॥
आत्मा तेषु च वस्तुषु स्वयमयं गुप्तोऽभितः सर्वगः,
सर्वाण्यत्ति च देव एव हि परं ज्योतिः श्रुतिश्लाघितः ॥७॥

यह मेरा प्रभु आकाश अग्नि वायु जल पृथिवी इत्यादि पंचभूतों के समुदायसे बनकर विस्तारपाने वाली सम्पूर्ण वस्तुओं को दृढ़ (कामकरनेकी शक्ती वाली) बनाकर उसके भीतरभी व्याप्त होकर रहने वाला है ॥

यह सर्वव्यापी परमात्मा जिसकी रक्षामें जगत्पल रहाहै । और वह अपनी आत्माका रक्षक स्वयंहै । यह देव सर्व वस्तुओंको खाने वालाहै । और श्रुति उसको (न तस्येशेकश्चन-यस्य नाम महद्यशः) और (यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनम् । मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः कठ । यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यभ्द्भयात् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युर्धावति पंचम.) सर्वप्रकाशमान पदर्थों से श्रेष्ठबतार्ता है । वह सर्व वस्तुओं को बाहरसे और भीतरसे प्रकाशित करताहुआ स्वयं प्रकाश है ॥७॥

अष्टमगाथा

ब्रह्माद्यैरपि नैव वेद्यमितियन्मूलं परं सर्वत,
रक्षाकाशादिपदार्थजातमखिलं चाश्नन्पराणां परः ।
दग्ध्वा चापि पुरत्रयं सुरगणानुद्बोधयन्यश्शिवो
ब्रह्मा वेति विभाति विश्वमयमेवाश्नन्नि हो त्पादयन् ॥८॥

यह परमात्मा संसार में जन्म लेनेवाली समस्त वस्तुओंका परम कारण है । उसे ब्रह्मा शिवादिक यथार्थरूपसे नहीं जानपाते हैं । वह सर्व श्रेष्ठों का भी श्रेष्ठहै । वह प्रलय के समय आकाशादि सर्वपदार्थों को अपने उदर में सावकाश पूर्वक रखलेताहै । उसने रुद्रको शक्ति प्रदानकरके उसके द्वारा त्रिपुरको जलवाया था । फिर देवताओं को ज्ञानदेने के लिए उसी नें शिवरूप धारण किया है ।

यह नारायण चराचर संसार को उत्पन्न करने के लिए श्री ब्रह्म देव के रूपमें और नाश करने के लिए श्रीकालाग्निरुद्रके रूप में प्रकाशित हो रहा है। इसमें श्रुति प्रमाण है जैसे (नारायणात् ब्रह्मा जायते नारायणाद्रुद्रो जायते नारायणात् प्रजापतयः प्रजायन्ते–नारायणोपनिषत् ॥८॥

नवमगाथा

अस्तीत्येव वदेद्यदि स्वयमयं नास्तीति चेदप्यहो
भाति श्रीपतिरम्यरूपमखिलं विश्वात्मकं रूपधृत् ॥
यच्चारूपमिदं च तस्य हि हरेश्चारूपमंशात्मकं,
सत्वासत्वयुतं स्वयं द्विविधमप्याविश्य भात्यव्ययः ॥९॥

यह मेरा प्रभु आस्तिक और नास्तिक इन दोनों के विवादका स्थान हो जाता है। जैसे ईश्वर है इस पक्ष में नानारूप और नाना नाम वाला ईश्वर है। यह सिद्ध होता है। ईश्वर नहीं है इसपक्ष में ईश्वर प्राकृतनाम रूप वाला नहीं है। यहसिद्ध होता है।

यहां यह शंका होती है कि एक अधिकरण में विरुद्धधर्मद्वयका होना शास्त्र और युक्तिके विरुद्ध है। जैसे जो पदार्थ नामरूपवालाहै वह उसके विरुद्ध नामरूपहीन नहीं हो सकता। इसका उत्तर यह है कि लोक में ही देखलीजिए कि जिसवस्तु को एक देश में जिस नामसे पुकारते हैं इसीवस्तुको दूसरे देशमें उसनाम से नहीं पुकारते। जैसे घृत इसको मध्य प्रान्त में इस नाम से किन्तु अन्य देशों में तृप वा चोप नामसे। जब लोकमेंही प्रत्येकवस्तु नाम रूपवाली और उससे रहित देखी जाती हैं। तो अलौकिक शास्त्रगम्य सर्वशक्तिमान् ईश्वरमें सब कुछ सम्भव हो सकता है ॥९॥

दशमगाथा

सर्वत्रायतशीतवारिधिकणेष्वाविश्यचाणुत्वतः
सर्वं चापि महाण्डमण्डलमयं त्वाक्रम्य भूम्ना स्वयम् ।
एवं भूमितले च भाति नभसि व्याप्य स्थितः सर्वतो
भास्वद्वस्तुषु गुप्त एवहि हरिः संहारकर्ताप्यसौ ॥१०॥

इस प्रकार आस्तिक नास्तिक दोनों वादों से सिद्ध होता हुआ यह

मेरा प्रभु अति सूक्ष्म शीतलजलकण परमाणु और अत्यन्त विशाल चतुर्दशभुवनात्मक निखिल ब्रह्माण्डमण्डलोंकोंभी भीतर बाहरसे अपनी अपार असंख्य शक्तियों द्वारा आक्रमण करके रहने वाला है।

एवं भूमितल और गगनमण्डलमेंभी व्याप्तहोकर प्रकाशमान समस्त वस्तुओंके भीतर गुप्तरूपसे रहने वाला। और इस प्रकार इस संसृति रंगभूमिमें अनेक प्रकारके नाट्यकौशलको दिखाकर संहार समयमें निजउदररूपी पर्दामें सबको छिपाकर शान्तरूपमें विहारकरने वाला यह मेरा इष्टदेव सर्वदेव श्रेष्ठ है इसीके चरणसेवनसे संसारका कल्याण होगा।

(न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्
जन्म मृत्युजराव्याधि भयं नैवोपजायते-भारते ॥१०॥

दशकपाठफलम्

सूक्ष्माकाशतलानलानिलजलाद्यन्यात्मकास्तद्गुणाः
श्लाघ्याः शब्द सुतापशक्तिधरता शैत्यानि चाधारता।
एवं सर्वविधात्मकस्य परमस्यास्यैव पादाम्बुजे,
साहस्रे दशकं शठारिग्रथिते चैतत्स्वभक्त्यार्पितम् ॥१७॥

आकाश अग्नि वायु जल भूमि ये पंच तत्व और उनके भीतर रहनेवाले शब्द उष्णस्पर्श शीतलता बल धारणशक्ति इसप्रकारके संसार के सम्पूर्णपदार्थही शरीर है जिनके। और जो स्वयं सर्वान्तर्यामी होकर सर्व पदार्थों के भीतर बाहर व्याप्त है। इसी सर्वेश्वर श्रीमन्नारायण के दिव्यचरणकमलों में कुरुकापुरीवासी शठकोपमुनिके बनाये सहस्र गीति ग्रन्थमें यह प्रथम शतक का प्रथम दशक अर्पण किया जाता है।

इससे यह बात सूचित होती है कि संसार मेंप्राणिवर्ग जो कुछ करें उनको चाहिए कि उसे वे परम प्रभु के चरणमें अर्पण करदिया करें। यह बात हमारे शठकोपमुनिने भगवान्की उस आज्ञाके पालन करने के लिए कही है जो उन्होंने गीता में दी है।

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

इति श्री सहस्र गीती प्रथमशतके प्रथमदशकं समाप्तम्।

अथ सहस्रगीतौ प्रथमशतके द्वितीयदशकारंभः

इस नारायण की प्रपत्ति करने से पूर्व अन्य सांरिक सम्बन्ध छोड़ देने चाहिए इस अर्थ को आल्वार इसदशक में बताते हैं

प्रथमगाथा

अन्यत्सर्वं परित्यज्य श्रीशे मोक्षप्रदेहरौ ।
समर्पयत चात्मानं यूयं सर्वे मुमुक्षवः ॥१॥

हे मुमुक्षुगणों आप यदि अनेक दुःखपूर्ण इस असार संसार से निकलकर मोक्ष में नित्यानन्द भोगना चाहते हो । तो ईश्वर से भिन्न संसार में रहने वाले धन दारा कुटुम्बको छोड़कर श्रीलक्ष्मीपति मोक्षको देनेवाले सम्पूर्ण पापतापोंको हरण करने वाले श्रीहरिके चरणों में अपने आत्मा को समर्पण करदो ।

ईश्वर को आत्मसमर्पणकरने की आज्ञा वेदोंनेभी दी है

(प्रणवो धनुःशरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् + रुद्ररहस्योपनिषत् ॥

अर्थ प्रणवार्थरूपी धनुष के ऊपर अपने आत्मा रूपी बाणको चढ़ाकर तन्मय होकर ब्रह्मरूपी निशाने में लगादो । इसी बातको श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी स्पष्ट किया है कि

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥

अर्थात् आकाश को चमड़े के समान लपेटने की अघटित घटना भले हो जाय परन्तु ईश्वरोपासना के बिना जीवों का दुःख कदापि दूर नहीं हो सकता इत्यादि० ॥

॥ द्वितीयगाथा ॥

नित्यस्याप्यात्मनो देहास्तडितोप्यति नश्वराः ।
अत एव स्वयं यूयं नित्यं स्मरत माधवम् ॥२॥

अये भक्तवर्ग देह और आत्मके संयोगसे जो आपको चैतन्य शक्ति मिली है, इसमें यद्यपि आत्मा (अजो नित्यः शाश्वतोऽयं

पुराणो) इत्यादिवेद प्रमाणानुसार वह नित्यहै परन्तु उसका यह स्थूल मनुष्य पशु पत्ती नामवाला देह तौ विजलीके समान थोडीही देर चमक कर सदाके लिये नष्टहोने वाला है। इस शरीरका विश्वास करना कि अभी नही वृद्धावस्थामें भजन करेंगे। यह नितान्त मूर्खता है। इस शरीका क्षणभरका विश्वास करनाभी भूलहै। इसी लिये आप स्वयं 'अन्यके द्वारा नही, ही लक्ष्मी पतिका स्मरण करो इसीको लक्ष्यकरके कहाहै कि—

"अशनं मे वसनं मे जाया मे बन्धुवर्गो मे
इति मे मे कुवाणं कालवृको हन्ति पुरुषाजम् ॥१॥
नारायण हरिभजनमें तू जनि देर लगाय।
क्या जाने या देरमें श्वास रहै कि जाय ॥२॥
दो बातनको भूल मत जो चाहत कल्याण।
नारायण एक मौतको दूजे श्रीभगवान ॥३॥
इसी बातको लेकर एक संस्कृतके कविने कहा है।
"यदा मेरुःश्रीमान्निपतति युगान्तग्निनिहितः
धरागच्छत्यन्तं धरणिधरपादै रवि धृता. ॥
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरमकरग्राहनिलयाः
शरीरे का वार्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥

अर्थ—प्रलय के आने पर सुमेरु पर्वत यह पृथिवी और समुद्र तक नष्ट हो जाते हैं। तौ हाथी के बच्चे के कान के अग्रभाग के समान अति चंचल शरीर में कैसे विश्वास होसक्ता है ॥ २ ॥

तृतीयगाथा

अहं ममेति सर्वं च प्रहत्येव समूलकम्
भजध्वं स्वामिनं विष्णुं नात्मनः पूर्तिरीदृशी ॥३॥

प्रिय प्राणिवर्ग इस संसारमें अविद्या रूपी वृक्षके दो फल हैं एकतौ अनात्मा, शरीरादिको आत्मा समझना। दूसरा अस्व जो अपने साथी नही हैं (स्त्री पुत्र धन हाथी घोडा आदि) उनको अपना मानना यह बड़ी भूल है (अविद्या तरुसंभूतं बीजमेतद्द्विधा स्थितम्।

अनात्मन्यात्म बुद्धिर्या अस्वे स्व इति या मतिः) अतएव इस अहंकार और ममकारको समूलनष्ट करके अपने स्वामी विष्णु का भजनकरो इसके समान आत्माको श्रेष्ठबनानेका दूसरा कोई उपाय नहीं है ।

"स्वत्वमात्मनि संजातं स्वामित्वं ब्रह्मणि स्थितम् ।
उभयोरेष सम्बन्धो नान्यथेति मतिर्मम ॥

आत्मा स्व, माल,है मालिकको मालदेनाही उसकी स्वरूपरक्षा है । जो जिसका मालहै उसे उसको न देकर अन्यको देना अन्यायहै पाप है। इसलिये यह आत्मा विष्णुका माल है उसी मालिकको इसे समर्पण करदो तभी इसके स्वरूपकी रक्षाहोगी अन्यथा नहीं ।

चतुर्थगाथा

यस्य रूपं न सन्नासदप्रमेय सुखात्मकम् ।
तस्माद्विषयसम्बन्धं परित्यज्य भजाद्य तम् ॥ ४ ॥

जिसपरमात्माका रूप कभी नष्टनहींहोता जो समस्त सत् (नित्यपदार्थ) और असत् (अनित्यपदार्थ) से भिन्नहै जिसके आनन्दका पता वेदभी—

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह,
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन तैत्तरीय,,

नहीं लगासके वह अनन्तसुखका भण्डार है । अतएव संसारी विषयों (फूलमाला चन्दन नयी स्त्री) के सम्बन्धको छोड़कर उस-परमात्मा का भजनकरो ।

इसकी पुष्टि अष्टावक्रगीतामें भी इस प्रकार की है ।

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज ।
क्षमार्जवदयातोष सत्यं पीयूषवद्भज ॥२॥
न पृथ्वी न जलं नाग्निर्न वायुर्द्यौर्नवा भवान् ।
एषां साक्षिणमात्मानं चिद्रूपं विद्धि मुक्तये ॥३॥

अर्थात् यदि तुम मुक्ति चाहतेहोतो विषयोंको छोड़कर क्षमादिक गुणोंका सेवनकरो पृथ्वी आदि पदार्थोंको रचकर रक्षाकरने वाले परमात्माके आश्रयबिना मुक्ति नहीं मिलसकती ॥४॥

* पंचमगाथा *

त्यक्ते विषयसम्बन्धे मुक्तिः स्वात्मानुभूतये ॥
भुक्तिं तां च परित्यज्य कैंकर्यार्थं भजाच्युतम् ॥५॥

जब तुम सांसरिक विषयोंसे सम्बन्ध छोड़दोगे तभी स्वात्मानु भवद्वारा अनेकसिद्धियाँ प्राप्तहोजायंगी। ये सब ईश्वर प्राप्तिकी विरोधीहैं। अत एवं भगवद्विमुखकराने वाली भोगसिद्धियोंको छोड़ कर उसपरमप्रभुकी सेवा उनके चरणोंकी सेवाकरनेके लियेही अविचलभावसेकरो। इसी भावको स्पष्टरूपसे एक संस्कृतके कविनेकहाहै।

"अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया,
वियोगे को भेदस्त्यजति न नरो यत्स्वयममून् ॥
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥

इसी श्लोकके अर्थकोबताते हुए महात्मा तुलसी दासजी कहतेहैं। "मनपछितैहै अवसरबीते। दुर्लभदेह पाइ हरिपद भजु करमबचन और हीते। सहसबाहु दशवदन आदि नृप बचेन कालबलीते। हम हम करि धन धामसंवारे अन्त चले उठि रीते। सुतवनितादि जानि स्वारथरत करौ नेह सबहीते। अन्तहुँ तोहि तजैगें पामर तू न तजै अबहीते। अब नाथहि अनु रागु जागु जड़ त्याग दुराशा जीते। बुझै न कामअग्नि तुलसी कहुँ विषयभोग बहुघीते ॥५॥

* षष्ठगाथा *

नाथोऽपि सर्वलोकानां निसङ्गो भाति माधवः ॥
एकरूपोऽस्ति सर्वत्र निस्सङ्गस्तं भजानिशम् ॥६॥

यह लक्ष्मीपति समस्तलोकोंका स्वामी होकरभी सम्पूर्णविकारोंसे रहित है। यह सर्वत्र एक से ही रूप से विराजमान है। यह आश्रितों के लिये सदाही सुलभ है। अतएव संसार के नाशवान पदार्थों का संग छोड़कर निरन्तर उसीका भजन करो ॥ ६ ॥

सप्तमगाथा

ऐश्वर्यं सर्वमालोच्य रम्यं तस्य विभूतिगम् ।
ईशस्येत्येव मत्वा तं तत्र चैकी भवानिशम् ॥ ७ ॥

इस लीलाविभूतिमें उस परमात्माके ही अति सुन्दर ऐश्वर्यको देखकर और उसीका मान कर अपने अहंकारको छोड़कर उसीमें मिलजाओ ।

इसमें एक दृष्टान्तहै कि एक पुरुष अपनीस्त्रीको गर्भवती छोड़कर धनकमानेके लिये विदेशमें चला गया । पीछेसे उसकीस्त्रीके लड़का हुआ वहभी बड़ा होने पर धनकमाने विदेशमें चला गया। दोनोंने इच्छानुसार धनकमाया उसे लेकर अपने घरको लौटते समय वे किसी सरायमें एक कोठेमें ठहरे· वहछोटाथा इसी समय उनमेंसे एक दूसरेको निकलजानेके लिये कहने लगे । इसीबातमें दोनोंकी लड़ाई होनेलगी फिर किसी वृद्धने जो दोनोंको जानताथा· दोनोंको पिता पुत्र बताकर उनका मेल करादिया तबपिताने अपना पुत्रजान कर अपना सबधन उसे देदिया औरवे दोनों मिलकर एकहोगये ।

इसी प्रकार जबतक यहप्राणी ईश्वरके स्वरूपको नहीं जानता तबतक उससे विमुख अलग रहताहै । इसी कारण ईश्वरभी इससे विमुखअलग होजाताहै पश्चात् सदाचार्यद्वारा दोनों का सम्बन्ध ज्ञानहोने पर ईश्वर इसका और यह ईश्वरका होजाताहै गीतामेंभी कहाहै कि (मयितेतेषुचाप्यहम् ॥ ७ ॥

❀ अष्टमगाथा ❀

मनोवाक्कायरूपं च सार्थकं करणत्रयम् ।
मत्वा त्वं भव निस्सङ्गः सक्तःसर्वेश्वरे भव ॥ ८ ॥

उस प्रभुने तुमको मन वचन काया तथा इनसे होने वाले अन्यकार्य येसब अपनी सेवा करनेके लिये ही दियेहैं ऐसा मानकरही तुम संसारकी वस्तुओंका संगछोड़कर उस सर्वेश्वरमें अपनी आसक्ति (भावना) को लगादो ।

इसीबातको एक भक्तने अपने स्वर में यों कहाहै कि—

चेत कर नर चेत कर गफलतमें सोना छोड़दे।
जाग उठ तत्काल हरिचरणोंमें चित्तको जोड़दे॥
नर जन्म संसारमें मिलता नहींहै बारबार।
हो सजग ले लाभ इसका नाम प्रभुका मत विसार॥
त्यागदे विषयोंकी आशा काट ममता पाशको॥ १॥
ध्यान कर हरिका सदा कर सफल हर एक श्वासको॥ २॥

❀ नवमगाथा ❀

आश्रिते च त्वया तस्मिन्नश्यन्ति प्रतिबन्धकाः।
शरीरत्यागकालं तु प्रतीक्षस्व ततः परम्॥ ६॥

जब तुम संसारका सहारा छोड़कर इस परम दयालुका आश्रय-लेवोंगे तो तुमारे कल्याणके मार्गमें विघ्न करने वाले विघ्नसमूह स्वयं नष्ट होजायेगे। जिन पापोंके कारण तुम अनादि कालसे जन्म-मरणोंके चक्रमें पड़कर अनन्तदुःख भोगरहेहो। वे पाप तुमारे समूल नष्टहोजाने पर तुम इस चक्रसे सदाके लिये शरीर पात होने के अनन्तर मुक्त होजाओगे। जो प्राणी भगवत्शरण होजाताहै उसके सब पापोंको परमात्मा धो डालते हैं इसमें पूर्वाचार्यों का कथनहै।

"प्रारब्धेतरपूर्वपापमखिलं प्रामादिकं चोत्तरं।
न्यासेनक्षपयन्ननभ्युपगतप्रारब्धखण्डं च नः॥
धीपूर्वोत्तरपाप्मनामजननाज्ञातेऽपि तन्निष्कृतेः
कौटिल्ये सति शिक्षयाप्यनघयन्क्रोडी करोति प्रभुः

अर्थ जिससमय यह चेतन भगवत् शरण होताहै उसी समय संचित तथा क्रियमाणपाप कर्मोंका नाश होजाता है। फिर यह ज्ञानसे पापकरताहीनहीं यदि करताहै तो धर्मशास्त्रनुसार उसका प्रायश्चित्त कर लेताहै यदि मूर्खतावश प्रायश्चित्तनहीं करता तो ईश्वर उसकोयहां दण्डदेकर भुगाकर शुद्धकरलेताहै तात्पर्य यह है कि छोटे बच्चेको माकेसमान प्रपन्नको ईश्वर कभी नहीं त्यागता सर्व प्रकार शुद्धकरके गोदीमें बैठालेताहै।

❀ दशमगाथा ❀

अमितानन्द सद्वस्तु कल्याणगुणवारिधेः।
श्रीमन्नारायणस्यैव पादाब्जं द्दमाश्रय॥ १०॥

इस प्रकार ईश्वरके शरणहोनातो वतलाये परन्तु शंका यह है कि वह ईश्वर कौन है जिसकी शरणजाना आप बतारहे हैं। इसका उत्तर यहहै कि श्रीमन्नारायण जिसको वेदोंने भी (आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यं न किंच नासः ऋग्वेदअष्ट ८।७।१७) लक्ष्मीपति और सर्वदेव श्रेष्ठ बतायाहै।

जो सीमारहित आनन्दका अखण्ड भण्डारहै जो अनन्त कल्याणगुणोंका अपार अथाह सुमद्रहै। उसी श्रीमन्नारायणके चरणोंकी शरण भले प्रकारसे लेवो। इस से यह सिद्ध हुआ कि शरणागत भक्तोंको अपने कल्याणके लिये नारायण मन्त्रही सदा जपना चाहिये। अन्यमंत्र नही इसी वातको महाभारत भीष्मस्तवराजमें भी कहाहै।

"कि तस्य बहुभिर्मंत्रैः किं तस्प बहुभिर्जपैः।
नमो नारायणायेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः॥
तथान्यत्र-ऊर्ध्ववाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
न वेदाच्च परं शास्त्रं न मन्त्रोऽष्टाक्षरात्परः॥

इसी नारायण मन्त्रके प्रभावको किसी चारोंवेदोंके भले प्रकार जानकार विद्वानने अपनी मधुर कवितामें यों कहा है।

हे मर्त्या परमं हितं शृणुत वो वक्ष्यामि संक्षेपतः।
संसारार्णवमापदूर्मिबहुलं सम्यक् प्रविश्य स्थिताः॥
नानाज्ञानमपास्य चेतसि नमो नारायणायेत्यमुं।
मन्त्रं सप्रणवं प्रणामसहितं प्रावर्तयध्वं मुहुः॥ ३॥
चतुर्णां वेदानां हृदयमिदमाकृष्य विधिना।
चतुर्भिर्यद्वर्णैः समघटित नारायण इति॥
तदेतद्गायन्तो वयमनिश मात्मान मधुना।
पुनीमो जानीमो न हरिपरितोषाय किमपि॥ ४॥

* कवित्त *

हेमको सुमेरुदान रतनअनेकदान, गजदान भूमिदान अन्नदान करहीं ।
मोतिनके तुलादान मकर प्रयागन्हान, ग्रहनमें काशीन्हान चित्तशुद्धकरहीं॥
सेजदान कन्यादान कुरुक्षेत्रमें गऊदान, इनमें तौ पापनको नेकहू न हरहीं ।
नारायण हरीको नाम एकवारलेत नर, पापी तीनलोकके छिनकमाहिं तरहीं

दशकपाठफलम् ।

रम्ये तटाकभूयिष्ठे कुरुकानगरे शुभे ।
शठकोपस्य दिव्योक्तिसाहस्रे दशकं त्विदम् ॥ ११ ॥

स्वच्छ शीतल जलपूर्ण अनेक जातिवाले कमलोंसे सुशोभित अनेकसरोवरोंसे अतिशोभायमान कुरुकापुरीमें रहनेवाले श्रीशठकोप मुनि कृत सहस्रगाथामें यह दशक पूरा हुआ। इस दशकमें मुनिने दशगाथाओं से दश शिक्षादी हैं। यथा-

१-अन्य विषयोंको छोड़कर ईश्वरको आत्मसमर्पणकरो ।

२-अन्य विषय तभी छूटसकेंगे जब उनमें तुम दुःख और दोषदेखोगे ।

३-क्या क्या वस्तुत्यागनी चाहिये यह बतलाया है ।

४-जिसकी शरणजानाहै उस ईश्वरका अतिसुन्दर महत्व कहाहै ।

५-शरणागतिमें बाधक विघ्नोंसे बचनेके उपाय कहे हैं ।

६-ईश्वरके स्वरूप और स्वभावका वर्णन किया है ।

७-मेल बिना सम्बन्धज्ञानके नहीं होता इसलिये सम्बन्ध ज्ञान का होना अत्यन्त आवश्यक है ।

८-उसकी दी हुई वस्तुओंसेही उसकी सेवाकरो अन्यसे नहीं ।

९-ऐसा करने पर भजनबाधायें स्वयं नष्ट होजावेंगी ।

१०-भजन करनेके मंत्रके स्वरूपका वर्णन कियाहै ।

इस प्रकार ये दश शिक्षा दशगाथाओंद्वारा भक्तसमाजको प्रदानकी है ।

इति श्री सहस्र गीती प्रथमशतके द्वितीयदशकंसमाप्तम् ।

अथ सहस्रगीतौ प्रथमशतके तृतीयदशकारंभः

इस दशकमें (अतिनीच चेतन सर्वेश्वर भगवान्‌की शरण, किसप्रकार जासका है) ऐसी स्वयं शङ्का करके भगवान् अपने भक्तोंको बड़े सुलभहैं। अतएव उनके सौलभ्य गुणको बड़े आदर और बहुमानके साथ करुणार्द्र होकर बताते हैं।

* प्रथमगाथा *

भक्तानां सुलभोऽस्ति दुर्लभतम स्त्वन्यात्मनामद्भुतः ।
श्रीकान्तः परमः प्रभुश्च किल नः प्राप्यो न चान्यैरसौ ॥
मन्थोद्यन्नवनीतचौर्यविधया चोलूखले बन्धभाग् ।
वक्षः पार्श्वतले भयाद्विलपतः सौलभ्यकाष्ठाऽस्यका ॥ १ ॥

प्रथमदशकमें श्रीमन्नारायणको सर्वश्रेष्ठ बताया। द्वितीयदशकमें उसीका सर्व प्रकारसे भजन करना चाहिये यह बताया, परन्तु बिना हाथ और पगवाला बालक जैसे ऊँचे हाथीपै नहीं चढ़ सक्ता इसी प्रकार अति क्षुद्र और साधन हीन हम संसारी परात्पर उस परमात्मा को कैसे भज सकतेहैं। ऐसी शङ्का कोई करै तो उसका उत्तरहै कि हाथ पगरहित बालकको यदि हाथी स्वयं नीचा होकर अपनी सूंडमें लपेटकर पीठ में बैठाले तो इसमें किसी की क्या हानीहै और बालकको कष्टही क्या होगा, इसी प्रकार निखिल ब्रह्माण्डनायक स्वयं अवतार धारण करके हम संसारियोंको सुलभ होजायँतौ उसका भजन सहज में ही बनसक्ताहै। इसी बातको इसगाथामें कहतेहैं कि हमारे प्रभु भक्तिवाले दासोंको सुलभहै और अभक्तों को दुर्लभहैं। वहलक्ष्मी पति अनन्यभक्तिवाले हमको प्राप्तहोंगे अन्योंको नहीं।

वह प्रभु इतना सुलभहै कि उसकी सुलभताका वर्णन करनाभी हमारी शक्तीके बाहरकी बातहै। उसने कृष्णावतारमें बाल्यचापल्यसे माखन चोरकर खायाथा, इसी कारण उनकी माता यशोदाने उन्हें ओखलीसे पेटमें रस्सीबाँधकर बाँध दियाथा। वे उस प्रेमबन्धनको

छोड़ भी न सके और बारम्बार रोने लगे। यह सुलभताका आनंद ब्रह्मा शिव लक्ष्मीको भी मिलना कठिनहै जो कि व्रजकी गोपी विशेष कर यशोदाको मिलाथा।

यहाँ यह किंवदन्तीहै कि इस गाथा द्वारा जब प्रभुकी सुलभताका अनुभव कियातौ शठकोपमुनि की छैमास की मूर्छा (अखण्डसमाधि) हो गईथी फिर बड़ीकठितासे वह समाधी खुली।

प्रेमका बन्धन सब बन्धनोंसे कठिनहै ऐसा लिखाभी है।

"बन्धनानि किल सन्ति बहूनि प्रेमबन्धकृतबन्धनमन्यत्।
दारुभेद निपुणोपि षडङ्घ्रि निष्क्रियो भवति पङ्कजबद्धः॥"

अर्थ-यों तौ संसारमें इसप्राणीको बाँधने वाले बंधन अनेकहैं किंतु प्रेमका बंधन बड़ाही कठिनहै, क्योकि लकड़ी में छेदकरने की शक्ति वाला भौंरा प्रेम के वशीभूत होकर कमल पुष्पमें बँध जाता है। और वहाँपर वह प्रेमवश अपनी लकडी में छेदकरने वाली शक्ती के उपयोग को भूल जाता है।

द्वितीयगाथा

नानाजन्मसु च स्वयं किल विशन्नैयत्यहीनोऽस्थिरः।
कल्याणाम्बुधिरप्यनादि निधनः प्रत्यक्षतेजो निधिः॥
मोक्षज्ञानफलप्रदश्च सततं साकल्यतश्चेश्वरो।
लोकानामुपकारकोऽस्ति दयया स्वीयोऽपि बाह्योस्त्यसौ॥२॥

सुलभ स्वभाववाला हमारा स्वामी नियमरहित (अजाय मानो बहुधाऽभिजायते यजु० ३१-३१) इत्यादि प्रमाणानुसार अनेक जन्मों को अपनी इच्छासे धारण करताहै। उसके कल्याणगुण अपार और अनंत हैं। वह स्वयं जन्ममरणशून्य है, वह प्रत्यक्षमें तेजका खजाना है। ज्ञानके फल मोक्षको देने वाला सदा सर्वप्रकारसे सम्पूर्ण प्राण धारियोंका ईश्वरहै, उसने घण्टाकर्णको मोक्ष दियाथा।

यह अपनी निर्हेतुक अलौकिक दयासे ऊँच नीच सब प्राणियोंमें अवतार धारण करके सर्वसाधारण लोकका उपकार करने वालाहै।

वह हमारे बाहर और भीतर रहकर सदा सर्वप्रकारसे रक्षाकरने के लिये कटिबद्ध रहताहै। उसने अर्जुनका सारथ्य रूप नीच कर्म करते समयभी उसकी प्रार्थनानुसार अपने दिव्य ऐश्वर्यसूचक विराटरूपको दिखाकर यह सिद्ध कर दिया कि अनेक योनियो में अवतारलेने परभी वह ऐश्वर्यसूचक गुणोंसे परिपूर्ण रहता है।

तृतीयगाथा

पूर्णं धर्ममवाप्तुमुत्तमगतिं प्राप्ताश्च सर्गं लयं।
कर्तुं च प्रभवोऽमरास्तदितरे ये चेतनाचेतनाः॥
ते सर्वेऽपि स एव भाति भगवान्नारायणः श्रीधरः।
पूर्णः सिद्ध इहास्य जन्मचरिते मायान्तु को वेत्तिवा॥३॥

उस श्रीमन्नारायणने सर्वांगं पूर्णधर्म और उसके उत्तम फलप्रदान करनेके लिये अनेक ब्रह्मरुद्रइन्द्रादि देवोंको जन्ममरणके भागी बनायाहै। और भी संसारमें धर्म और उसके फलदेनेकी शक्ति रखने वाले जड (कर्मजन्यअपूर्व) चेतन ब्रह्मादि देवादि अनेक रूपोंमें लक्ष्मीपति नारायण ही परिपूर्णरूपसे प्रकाशमान होकर ललित लीला कररहाहै।

उसके जन्मचरितोंको तथा अघटितघटना वाली उसकी मायाको यथार्थरूपसे जाननेकी शक्ती किसमें होसक्तीहै। उसके प्रभावको वही मनुष्य जानसकताहै जिसको वह कृपाकरके अपने ज्ञानकी शक्तिप्रदान करताहै वेद कहताहै (तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासासर्व मिदं विभाति) इसीकेप्रकाशसे संसारमें सबका प्रकाशहै।

❀ चतुर्थगाथा ❀

नाथोऽयं मम नामरूप शतसाहस्रावलीभृत्स्वयं।
भात्येकः सुविलक्षणः स्त्विति विदुर्नैवं बुधा नास्तिकाः॥
जानन्त्येव किलाऽस्तिकास्तु तमिमं विद्या विहीना अहो।
रूपं नाम च नास्यभाति किल भातीत्येव वादो महान्॥४॥

यह हमारा स्वामी जिसके हजारों प्रकारके नाम औरस्प है वह संसारकी सबी वस्तुओंसे विलक्षण (अन्य लक्षणवाला) है इसबातको नास्तिक लोग शास्त्रपडकरभी नही जानते और आस्तिक लोगतौ शास्त्रपरिश्रमके विना भी उसको (न ते रूपं न चाकारो नायुधानि न चास्पदम् । तथापि पुरुषाकारो भक्तानां प्रतिभाति वै जितंते) नाम रूपको भले प्रकार जानलेते है ।

नास्तिकों का कहनाहै कि यदिईश्वरकोनामरूपवाला मानते हो तौ वह अनित्य नाशवान होजायगा यदि नाम रूप रहित मानते हो तौ विना नाम तथा विना रूपवालेकी उपासना नहीं होसकती । यहविवाद शास्त्रोंमें अनादिकालसे चला आरहाहै । आस्तिकउसके नाम रूपका होना न होना दोनों मानतेहै । नास्तिक ईश्वरकोई नही मानते उसके नामरूपोंकी तौ बातही क्या है ॥ ४ ॥

* पंचमगाथा *

एवं षट् समयै श्च वादशरणैर्निर्णयेदिति श्रीधरो
वेदान्तार्थसुधारसं हि भगवान् कल्याणशीलोऽब्रवीत् ॥
आदिश्चान्तविवर्जितः किल हरिस्तद्भक्तिमार्गं शुभं
प्राप्यानन्यपरायणाश्च भवतः प्रध्वस्तकर्माशयाः ॥८॥

इस प्रकार आस्तिकोंके (सांख्य, योग्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसक, शांकरवेदान्त) षट्दर्शन तथा नास्तिकोंके (चार्वक, जैन, वैभाषिक, सौत्रान्तिक योगाचार, माध्यमिक,) ये षट्दर्शन और एक दूसरेका विरोध सदा सेही करतेआरहे है इसी कारण (धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः सपन्था) इस कहावतके अनुसार धर्मतत्त्व (ईश्वररूप) धांधलेमें होगया । इस धांधले बाजीको समूल नाशकरनेके लिये ही भगवान श्रीकृष्णने वेदान्तके सारार्थरूप गीताका उपदेश किया ।

(सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रता ।
नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते गी० ॥ ९ । १४ ।

भक्तगण–आदि अंतरहित उस हरिके स्वमुख से निकले शुभ कल्याणकारी भक्ति मार्गका सहारा लेकर और अन्य धर्मोंका अवलंब छोड़कर उसीकी शरण होजाओ। फिर तुम्हारे सर्व प्रकार के पापकर्म सदाके लिये तुम्हारा पीछा छोड़ देंगे। इसका सारांस यह हुआ कि अवतार धारण किए हुए का ही आश्रय लेना कल्याण कारक है ॥ ५ ॥

❀ षष्ठगाथा ❀

ज्ञातृत्वात्सततं च चिंतनपराः सर्वासु दिक्षु स्वयं ।
ज्ञानस्य प्रसरं विरच्य च जडाद् व्यावृत्तिमेतां निजाम् ॥
निश्चित्य श्रवणात्पुनश्च मननाद्योगाच्च मध्यस्थिति ।
विष्णोर्नित्थ जनास्त्रिमूर्तिषु हृदा वाचा भजध्वं परम् ॥ ६ ॥

भक्ति करनी चाहिये वह भी अवतार द्वारा शरीर धारणकरने वाले ईश्वर की यह बात तो कहदी किन्तु किस अवतार की क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन मूर्ति ही सब अवतारों में श्रेष्ठ और पूज्य मानी जाती हैं। इनमें से किस देवका आश्रय और भजन करने से जीवका कल्याण हो सकता है यह बात विचार ने के लायक है।

यहां पर यह युक्ति है कि अधिक ज्ञान और अधिक ऐश्वर्य वाले की उपासना करनाही वेद और लोकमें कल्याणकारक माना जाता है। इसलिये ये दोनों जिसमें अधिक हों वही उपास्य हो सकता है। अब सोचिये मधुकैटभ और वृन्दावन में वत्सहरण चरित को देखने से ब्रह्माजीके ज्ञान ऐश्वर्य दोनों ही तुच्छ नाशवान हैं। इसी प्रकार भृगुपरीक्षा और भस्मासुर चरितों को देखने से शिवजी का ज्ञान और ऐश्वर्य भी तुच्छ और नाशवान प्रतीत होता है। अब शास्त्रोंका श्रवण मनन और निदिध्यासन करने पर स्पष्ट रूपसे जान पड़ता है कि अनन्त अखण्ड ऐश्वर्य वाले विष्णु ही हैं। अये भक्तगण मन वचन कर्मसे सर्व प्रकार उस विष्णु श्रीमन्नारायण का ही भजन करो ॥ ६ ॥

सप्तमगाथा

एकानेकतयापि संशयकरान्नारायणं तं चतु
र्वक्त्रं रुद्रमिमान् विचिन्त्य बहुधा यूयं हृदि श्रीधरम् ॥
तं प्राप्तुँ सहसाऽप्यनन्यहृदया न्नारायणं स्वामिनं ।
यावच्चायुरिदं न नश्यति तदा भक्तिं कुरुध्वं पराम् ॥७॥

साधारण कोटीके भक्तों का कथन है कि एक परमात्मा ही सृष्ट्यादि कार्य करने के लिये ब्रह्म रुद्र विष्णु आदि रूप धारण कर लेते हैं। अत एव त्रिमूर्तिमें जिस किसी की उपासना से भी आत्म कल्याण हो सकता है। इस प्रकारकी शंकाको दूर करने के लिये आल्वार कहते हैं कि प्रिय भक्तजन जब तक आपका शरीर निरोग है इन्द्रियों में शक्ति है कालमूषक आकर जब तक आयु रूपी बेल को नहीं काटता तभी तक सावधान होकर सची लगसे परमपद पाने के लिये अपने स्वामी श्रीमन्नारायण की भक्ति आनन्द पाने के लिये करौ।

त्रिमूर्ति एक है अथवा अनेक है इस प्रकारके अनेक संशयों को छोड़कर अपने मनमें बारबार विचार करके लक्ष्मीपति की भक्ती करौ। इसी बातको श्री तुलसीदासजी ने भी अपने विनयमें महत्वके साथ कहा है कि—

* भजन पद *

इहै कह्यो सुत वेद नित चहूँ। श्रीरघुवीर चरण चिंतन तजि नाहिन ठोर कहूँ। जाके चरण विरिंचि सेइ सिधि पाई शंकरहूँ। शुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ। यद्यपि परम चपल श्री सन्तत थिर न रहति कतहूँ। हरि पद पंकज पाइ अचल भई कर्मवचन मनहूँ। और सकल सुरअसुर ईश सब खाये उरग छहूँ। तुलसीदास रघुनाथ विमुख नहिं मिटै विपति कबहूँ।

अष्टमगाथा

चेतो दोषहरं वयं यदि हरेः श्रीशस्य पादद्वयं।
प्राप्ताः सन्ततापकारि दुरिताख्यास्तु नाशो भवेत् ॥

इष्टार्थेषु न रिक्तता किल भवेत्कायस्य विश्लेषतो ।
निर्याणेऽन्तिमकालतोऽपि भजनं विष्णोर्भवे त्सार्थकम् ॥८॥

हरि भक्तगण यदि तुम लक्ष्मीपति की चरण शरण में प्राप्त होगये तो अनादि कालसे अनेक प्रकारके कष्टोंको देने वाले पाप पुञ्जोंका प्रणाश अति शीघ्रही होजायगा । चित्तमें रहने वाले समस्त मल नष्ट हो जायंगे । और उस प्रभुने—

(अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते ।
तेषाँ नित्याभियुक्तानाँ योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ गी०)

तुमको इच्छित पदार्थ देने का और तुमारे अनिष्ट की निवृति करनेका भार स्वयं अपने ऊपर लेलियाहै अब तुमको किसी प्रकार की चिंता नही करनी चाहिये ।

अये भक्तगण यदि तुमने इस असार संसारमें नर जन्म लेकर यदि अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ के झंझट (कमाने खाने) में ही पड़कर व्यर्थ में खोया है । और संसारके तापत्रयको शान्त करने वाली भगवद्भक्ति भागीरथीकी ताप पाप नाशिनी दिव्य धाराके स्नान का सौभाग्य आपको प्राप्त नही हुआहै । तो कम से कम प्राण निकलने के समय में भी यदि आपने भगवत् चरण शरण लेली और—

अन्त काले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति सम्द्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

इस भगवान की आज्ञा का पालन किया तो तुमारा जन्म सफल होजायगा ॥ ८ ॥

* नवमगाथा *

ब्रह्मा चापि चतुर्मुखः स्वजगता नाभीपुटे वर्तते ।
रुद्रश्च त्रिपुरान्तकः किल हरे पार्श्वं श्रितो दक्षिणम् ॥
प्रत्यक्षोपि भवे त्रिजेतु जगति स्वास्यावतारादसौ ।
यद्युच्येत हरे प्रभावजलधि र्भूयानगाधोऽद्भुतः ॥९॥

पूर्व गाथामें यह बतला चुकेहैं कि ब्रह्मादिक छोटे है नारायण बड़े हैं इस गाथामें यह बताया जाताहै कि ब्रह्म रुद्रादिको जो कुछ

ऐश्वर्य प्राप्त है वह सब श्रीमन्नारायणकी कृपासे ही है । चतुर्मुख ब्रह्माजी सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके साथ उनकी नाभी में बसतेहैं । त्रिपुरको नाश करने वाले श्रीरुद्रजी दक्षिण बगलमें स्थित रहतेहैं । जैसाकि गीतामें भी कहा है ।

पश्यामि देवाँस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥
पश्यैकादश मे रुद्रान्दक्षिणं पार्श्वमाश्रितान् ॥
द्वादशैव तथा दित्यान्वामपार्श्वं समाश्रितान्-भा० मोक्ष०

और वह अपना अवतार धारण करके अपने रचित जगतमें जन साधारणके प्रत्यक्षभी होजाता है । उस मेरे प्रभुका प्रभाव समुद्र के समान बड़ा अपार और अथाह है । स्तोत्ररत्नमें भी (स्वाभाविकानवधिकातिशयेशितृत्वं नारायण त्वयि न मृष्यति वैदिकः कः । ब्रह्मा शिवः शतमखः परमः स्वराडित्येतेऽपि यस्य महिमार्णवविप्रुषस्ते ॥ स्तो० रत्न १४) ऐसा कहा है ।

* दशमगाथा *

दिव्यज्ञानयुतान् सुरानपि च यः सम्मोहयत्यंजसा ।
मायाभिर्दिवि चासिताम्बुदनिभ स्त्रैलोक्यमानप्रभुः ॥
तस्यैवाङ्घ्रिसरोजयुग्ममनिशं भक्त्या स्मरन्कीर्तयन् ।
संश्लिष्यापि नमेयमित्यह ह्मे वाञ्छा स्वयं वर्धते ॥१०॥

अहह जन्म मरणके चक्रमें पड़े हुए प्रभुसे विमुख रहने वाले जीवोंको भी उसने अपने उदरमें रख लिया है । अतएव ऐसे कृपालु की शरण अवश्य जाना चाहिये (ऐसे ज्ञान) वाले इन्द्रादि देवताओंको भी जो अपनी मायासे मोह में डाल देते हैं । देवता ईश्वर की शरण आये उनकी प्रार्थना से भगवान ने नरकासुर का वध किया उनका कष्ट दूर किया। फिर जब श्रीकृष्ण कल्पवृक्ष को उखाड़ने लगे तब मदमत्त इन्द्र वज्र लेकर भगवान से लड़ने लगा यह भगवान की माया ही तो है ।

उस प्रभुने उच्च नीचका विचार न करके अपनी निर्हेतुक दयासे सर्वसाधारणके उद्धारार्थ निज चरणछाया प्रदान करने के लिए ही

त्रिविक्रम रूप धारण किया था । उस श्यामसुन्दर के चरण कमलों को सदाभक्ति भावसे स्मरण करूं कीर्तन करूं छाती से लगाऊं प्रणाम करूं मेरे मनमें यह बड़ी तीव्र लालसा है कि—

कदापुनः शंखरथाङ्ककल्पकध्वजारविन्दांकुशवज्रलाञ्छनम् ।
त्रिविक्रमत्वच्चरणाम्बुजद्वयं मदीयमूर्धानमलं करिष्यति स्तो०रत्न०

हे प्रभो मुझे आप अपने सर्व शुभ लक्षण सम्पन्न चरणस्पर्श का सौभाग्य प्रदान करेंगे वह बड़ा दिन कब आवेगा ।

❀ गाथा निगमनम् ❀

देवानामपि सेव्यमच्युतमिमं पाथोधिमन्थप्रभुँ
स्तोतुं श्रीहरिमेव दिव्यकुरुका पुर्या शठारिर्मुनिः ॥
कैङ्कर्यं किल वाचिकं व्यतनुत श्रीसूक्ति साहस्रतः
तत्रेदं दशकं तनोति पठतां मुक्तिं च सूरीन्द्रताम् ॥११॥

स्वर्ग में वास करने वाले देवता भी अपने अभीष्ट के लिये (देवानां दानवानां च सामन्यमधिदैवतम् । जितंता) जिसके चरणों की सेवा निरंतर किया करते हैं । उनकी प्रार्थना से जो समुद्र मथन करके जो उनको अमृत पिलाने वाले हैं । उन्ही श्री हरि की स्तुति करने के लिये कुरुका पुरी वासी श्रीशठकोपमुनि ने वाचिक सेवा करने के लिये रचे हुए सहस्र गीति ग्रन्थ में इस दशक को जो पढ़ेंगे वे संसार बन्धन से छूटकर नित्य मुक्त हो जायगें ।

प्रथम गाथा में प्रभुकी सुलभताका वर्णन १ द्वितीया में सुलभता के भेद २ तृतीया में उसके अवतार रहस्य की अपार महिमा ३ चतुर्थी में भक्तों को सुलभ अभक्तों को दुर्लभ ४ पंचमी में उस की भक्ति द्वारा शरण जाना ५ छठी में समाश्रयण योग्य गुण और समाश्रयण की विधि ६ सप्तमी में आयु थोड़ी है जल्दी बीत रही है इसलिये जल्दी से ईश्वर को शरण जाओ ७ अष्टम में ईश्वर की शरण में जाने से सब विघ्न दूर हो जायंगे ८ नवमी में अवतार लेने का प्रयोजन १० दशमी में मन वचनादि से ईश्वर का ही अनुभव करने की विधि ११ बताकर समाप्त किया ।

इति सहस्रगीतौ प्रथम शतके तृतीयदशकं समाप्तम् ।

अथमहस्रगीतौ प्रथमशतके चतुर्थदशकारंभः

इस दशक में आल्वार ने अपने को भगवान की पत्नी समझकर उनके क्षमा गुण का अनुभव करने के लिये पक्षियों द्वाराअपना सन्देशा भेजा है।

* प्रथम गाथा *

नित्यं चोपकृतिप्रसक्तहृदये त्वं हे वलाकाह्वये
मत्ता नायकसङ्गमात्किल कृपां त्व हन्त कृत्वा मयि ॥
दूतीभूय सनायकाद्य गरुडारूढं प्रभुं याहि मे
वन्धे तत्र धृताऽसि चेन्नहि भयं साह्यं तु मे त्वं कुरु ॥१॥

अये वलाके (वतक)तेरा तो स्वभाव ही परोपकार निःस्वार्थ भाव से करने का है, देख तू तो अपने पति के साथ आनन्द से मतवाली हो रही है, क्या पति की वियोगाग्नि से जलने वाली मेरे ऊपर तू कृपा करेगी, कि तू अपने पति के साथ मेरी दूती होकर गरुड़ की सवरी करने वाले मेरे स्वामी के पास मेरा दुःखमय सन्देश लेकर जायगी। तू मेरा सन्देश लेकर जायगी तो कदाचि तुझे वहाँ वन्धन भी भोगना पड़े तो भी मत डरै। क्योंकि परोपकारी जन दूसरों का कष्ट दूर करने के लिये स्वयं कष्ट सहा करते हैं।

* विशेपविचार *

पाठकगण आपको ऊपर की गाथा पढ़कर आश्चर्य होगा कि संसार व्यवहार के अनभिज्ञ आजन्म योगाभ्यासी शठकोप मुनि की यह कामी व्यक्ति की दशा क्यों हुई। क्या इससे मुमुक्षु भक्त गण कुछ शिक्षा रूपलाभ उठा सकते हैं। और क्या ऐसे आदर्श से समाज का कुछ उपकार होने की संभावना है।

अत एव हम इसका वास्तविक (असली) अर्थ वताने की चेष्ठा करते हैं। पूर्व में त्रिविक्रमावतारमें भगवान् का परत्व भजनीयत्व सौलभ्यत्वादि गुणों का आल्वार ने अनुभव किया। उस अनुभवानन्द का रंग ऐसा चढ़ा कि उस चरण को छाती से लगाने की स्मरण करने की प्रणाम करने की तीव्रलालसा ने उस आनन्द को विरह रूप में वदल दिया।

(आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः) इस श्रुतिवाक्यानुसार भगवत्प्राप्ति त्वरायुक्त चेतन हि यहाँ नायि का है। सर्व विद्या युक्त ईश्वर परायण सदा चार्य परम भागवतों के सहित वलाकादि पच्चि रूप है। आचार्य द्वारा भगवत्सन्निधि में क्षमा प्रार्थना करना ही सन्देश भेजना है। चेतन के अनादि काल से संचितपापों को नाश करने वाला क्षमा गुण ही गुरुड़ है। उस क्षमागुण की सहायता से समाश्रितों का उद्धार करने वाला परम कृपालु परमात्मा नायक है। आचार्य सम्बन्ध विना ईश्वर इस चेतन को स्वीकार नहीं करते अत एव प्रथम आचार्य सम्बन्ध आवश्यक है यही असली अर्थ है।

"नारायणोऽपि विकृतिं याति गुरोः प्रच्युतस्य दुर्बुद्धेः
कमलं जलादपेतं शोषयति रविर्न पोषयति" ॥

जो सूर्य जल में रहने वाले कमल को खिलाता है। वही जल वियुक्त को सुखा देता है। जो नारायण आचार्य सम्बन्ध से जीवों को मोक्ष देते हैं। वेही आचार्य सम्बन्ध हीन को नरक में डाल देते हैं। आचार्य कैसा होना चाहिये जो कि हमको हमारे अपराध क्षमा कराकर ईश्वर से मिला सके। इसलिये कुछ आचार्य के लक्षण लिखते हैं। आशा है कि पाठकगण एसेही लक्षण वाले आचार्य की शरण लेकर अपना कल्याण करेंगे।

गुरुकी आवश्यकता (तद्विज्ञानार्थं स गुरु मे वाभिगच्छेत् मुण्डक श्रुति)

शास्त्रादिषु सुदृष्टापि साङ्गा सह फलोदया ॥
न प्रसीदति वै विद्या विना सदुपदेशतः ।१। भर० सं०)
पापिष्ठः क्षत्रबन्धुश्च पुण्डरीकश्च पुण्यकृत्
आचार्य वत्तया मुक्तौ तस्मादाचार्य वान्भवेत् ॥२॥

सर्वांगं पूर्ण और समस्त विधि के सहित शास्त्रों में देखी गयी विद्या विना गुरूपदेश के फलदायक नहीं होती ॥१॥

अत्यन्त पापी क्षत्रबन्धु (सौदास) तथा अत्यन्त पुण्य कर्ता पुण्डरीक भी आचार्य सम्बन्ध से ही मोक्ष को प्राप्त हुए अतएव कल्याणेच्छु को सदाचार्य सम्बन्ध अवश्य करना चाहिये ॥२॥

सदाचार्य के लक्षण न्यासविंशतीग्रन्थमें

"सिद्धं सत्सम्प्रदाये स्थिरधियमनघं श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं
सत्वस्थं सत्यवाचं समयनियतया साधुवृत्त्या समेतम् ॥
दम्भासूयादि मुक्तं जितविषयगणं दीर्घबन्धुं दयालुं
स्खालित्ये शासितारं स्वपरहितपरं देशिकं भूष्णुरीप्सेत्" ॥

जो वैदिक संप्रदाय के रहस्यों को यथार्थ जानकर उसके सिद्धान्त में दृढ़ विश्वासी हो। जो गुरु द्वारा वेद पढ़कर उससे ईश्वर की उपासना करता हो। सत्व गुणी हो सत्य भाषी हो शिष्टाचार के पालन करने में दत्त चित्त हो। जो अपने अन्तः करण की शुद्धि के लिये ही धर्माचरण करता हो ख्याति लाभ पूजा के लिये नहीं। जो विषय भोगों से दूर हो। जो बन्धुभाव को दृढ़ बनाने के लिए स्वार्थ त्यागकर सकता हो। जो बिना स्वार्थ के दुःखी जीवों पर दया करता हो। जो ईश्वर और शास्त्र विमुख प्राणियों को अपने सदुप देश द्वारा सन्मार्ग में लासकता हो। जो शिष्य और अपने हित के लिये अहर्निश चेष्टा करता हो। इस गाथा में भी आचार्य के विद्यादि गुणों की प्रशंसा की है।

ऐसे आचार्य की शरण में उन लोगों को जाना चाहिये जो इस लोक में आदर्श वीर भक्त और परलोक में अनन्त अखण्डानन्द मोक्ष पाने के अभिलाषी हों। यह विषय अधिक है कि जिसको विस्तार से हमने "श्री वैष्णव सर्वस्व में" लिखा है इसलिये विस्तार भयसे इसे यहाँ ही छोड़ते हैं।

* द्वितीयगाथा *

यूयं वाग्मिनएव कोकिलगणा दूता भवन्तो मम ।
श्रीकान्तं प्रभुमम्बुजाक्षमुचितामुक्तिं वदेतैव चेत् ॥
हानि काः मम पापतो यदि पुरा तत्पादसेवामहं ।
न प्रापं किमिहाधुनाऽपि च तथा विश्लेषवान्दुर्विधैः ॥२॥

अरी कोकिलाओ तुमतो बोलने में बड़ी चतुर हो तुम

इकट्ठी होकर क्या सलाह कर रही हो। यह तो बताओ कि तुम मेरी दूती बन कर लक्ष्मीपति कमललोचन मेरे स्वामी के पास जाकर मेरे सन्देश को कहोगी कि नहीं और तुम मेरा सन्देश मेरे स्वामी को सुनादोगी तो इसमें तुमारी हानी ही क्या होगी।

पूर्व जन्ममें किये पापों के फल से उसके चरणों की सेवा मोकों प्राप्त न भयी यह मेरा दुर्भाग्य है। जो समय उसकी सेवा करने का था वह तो व्यर्थमें बिता दिया। अब तुम बताओ कि मेरे को इस विरहाग्निमें ही सदा जलना पड़ेगा अथवा वह प्राणप्रिय अपने दर्शन रूपी जलसे कभी शान्त करके मुझे सुखीभी करेगा। अरी तुम तो बहुत हो मैं तो अकेली हूँ, क्या तुम सब मिलकर भी मेरे दुखको दूर नहीं कर सकोगी।

इस गाथामें आचार्यके मधुरभाषित्व गुणको बतलाया है।

❀ तृतीयगाथा ❀

कान्तासंगमभाग्यवैभवयुता हंसा स्वयं मन्दगा
यूयं वामनमेव वञ्चकममुं दृष्ट्वा मदीयां दशाम् ॥
ब्रूत स्त्री किल काचिदद्य दुरितं किं मे महद्दुःसहं
हा हा हन्त न नश्यतीति नितरां चित्तेऽस्ति सम्मोहिता॥३॥

अ ह ह हंस तुम तो बड़े सौभाग्य शालीहो तुमारा जोडा तो कभी भी नहीं बिछुड़ता इसी लिये मन्दगतिसे घूम रहे हो। क्या तुम लोग जिसने पहले वामन रूप धरकर फिर बलिको छलने के लिये त्रिविक्रम बनगया उस ठगोंके सरदारको इस मेरी दशाको जाकर कहोगे। वञ्चनाके बहाने से बलिके ऊपर चरणधरकें जैसे उसके पापों को नष्ट करदिया था। उसी प्रकार क्या वे मेरे पापोंको नष्ट नहीं करेंगे।

चिन्तयन्ती (श्रीकृष्ण के ध्यान में शरीर त्यागने वाली व्रजकी एक गोपी) जिस प्रकार चिन्तामें ही नष्ट होगई उसी प्रकार क्या चिन्ता देवोके लियेही यह शरीर बलिदान करना पड़ेगा। क्या इस शरीरसे मुझै उसका संगम सुख होगा या नहीं तुम इस बातको

ठीक ठीक बताओ तुम जब तक न आओगे तब तक मैं तुम्हारी राह देखूंगी । इस गाथामें आचार्य के सारासार विवेकज्ञता गुणको अन्योक्ति द्वारा बतलाया है ।

॥ चतुर्थगाथा ॥

विश्लेषासहतां विलोक्य च मम स्वैरं कृपावानसौ
नासीत्किं मयि नीलमेघसुतनु श्वेत्येव वाचं मम ॥
यूयं केचन पक्षिणोऽद्य ममसद्भावोऽपि तस्मिन् विभौ
कान्ते नैवहि तिष्ठतीति वचनं ब्रूथैव चानैव वा ॥ ४ ॥

अरे क्रौंच पक्षियो वह मेरा प्रभु इस बातको स्वयं जानताहै कि वह (नायकी) मेरे वियोग में रहकर नहीं जी सक्ती । फिरभी उसने मेरे ऊपर कृपा नहीं की । अब नीलमेघके समान नेत्रानंद दायक सुन्दर वर्णवाले उसको मैं अपना दुःखमय संदेश भेज रहीं हूँ । ऐसे निर्दयीका तो नाम भी नहीं लेना चाहिये था, परंतु किया क्या जाय उस प्राणप्यारेके गुणचिंतन बिना चित्तमें चैनभी तो नहीं पड़ता ।

अरे तुम इस बातको कि "महाराज आप उसकी खबरको भूलकर भलेही सुखी रहसको, परंतु उसका मनतो आपमें ऐसा लगगया है कि आपके बिना एक क्षण भरभी उसका जीवित रहना कठिन है" जाकर कहोगे कि नहीं बताओ तो सही ।

इसी भावको संस्कृतके किसी कविने क्या अच्छा दर्शाया है कि-
अरतिरियमुपैति मां न निद्रा गणयति तस्य गुणान्मनो न दोषान्
विरमति रजनी न संगमाशा व्रजति तनुस्तनुतां न चानुरागः

अह ह यह बेचैनी तो बढ़तो जाती है, किंतु निद्रातो आतीही नहीं । मन ऐसा दुष्ट है कि उसके गुणोंका ही स्मरण करताहै । उसके निर्दयता दोषकी याद नहीं करता । दिनरात्रिकी गणना द्वारा आयु बीती जारही है । किंतु उसके संगमकी आशा नहीं बीतती शरीर सूखा जाता है, परंतु प्रेम कम नहीं होता है ।

इस गाथामें ईश्वरमें परमानुरागरूप आचार्य गुण कहा है-

❀ पञ्चमगाथा ❀

रक्षित्वा स्वयमेव सप्तभुवनान्यास्ते जगन्नायकः
किं मह्यं वतनैव भाति कृपया नारायणः पापतः ॥
दृष्ट्वा तं वद सुन्दराकृतिधरे क्षेत्रेषु सञ्चारिणि
प्रीत्या त्वं कुरुकाख्यपक्षिणि वचः किंचित्सबाष्पां तु माम् ॥५॥

समस्त ब्रह्माण्डोंका अधिपति सप्तभुवनों की भले प्रकारसे रक्षा करके सर्वोपरि प्रकाशमान होने वाला वह नारायणहै। मैं इस बातको अच्छी रीतिसे जानतीहूँ क्या हाय मेरे प्रबल पापोंसे आज उसके गुणोंका स्मरण भी मुझे दुर्लभ होगया अब क्या किया जाय।

अरी सुन्दर शरीरवाली सारस हरे हरे खेतों में विचरने का आनंद लूटने वाली तू मेरी तरफ तो देख कि—

"युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविंदविरहेण मे ॥

एक एक क्षण युगके समान बीतता है नेत्रोंसे वर्षाकी सी झड़ी बंदही नहीं होती। हाय उस गोविंदके बिना तो आज सारा संसार सूना जान पड़ता है। इस मेरी दशाको तू जल्दी से मेरे स्वामी से कहदे। इस गाथा में परमात्मा की प्राप्तिपर्यन्त निश्चल भावसे शुद्ध हृदयसे उसको सेवा करना रूप आचार्य गुण कहा है।

❀ षष्ठगाथा ❀

रम्यस्वोचितपत्रभंकृतियुतस्त्वं भृङ्ग दृष्ट्वा हरिं ।
नाथं भक्तकृपालुचक्रधरमेवेदं वचो मे वद ॥
निष्कारुण्यगुणोऽसि जातु कृपया तस्यास्तु जीवावधो ।
तद्वीथ्यां गरुडं च ते गमय भो देवेति किं मेस्त्यघम् ॥६॥

अरे चक्र के समान रेखा वाले भौंरा तेरे परपे उस प्रभुके आयुधाका चिन्ह है। अत एव तू उसे अधिक प्यारा है। इसलिये मैं तेरे से प्रार्थना करतीहूँ कि भक्तोंकी रक्षा कर लेनेके लिये कृपा

करके चक्र धारण करने वाले हमारे स्वामीसे जाकर तुम कहोकि आप उस विचारी के ऊपर क्यों निर्दयी हो गयेहो। उसने ऐसा क्या पाप किया है आप निर्हेतुक कृपा करके प्रभो कभी कभी गरुड़पै चढ़कर जब तक वह जीवित है तब तक उसकी वीथी (गली) में तो चक्र लगाया करो।

आओ आओ हे भ्रमर कमनीय कृष्ण कान्ति धर।
देखो जिस रूप जिस रंगमें रगेंहै हम ॥
आकुल किसीके अनुरागमें अवनिपर ।
इसी रूप रंगमें रंगाहै कोई और कहीं ॥
रंगमें उसीके चूर धूल हो हृदय यह ।
धीरे धीरे उड़ा चला जाता है बिखर कर ॥
जाओ पहुँचाओ पास प्रिय के हमारे अब।
अधिक नही तो एक बात मित्र मधुकर ॥

❀ सप्तमगाथा ❀

मत्संवर्धित हे शुकत्वमधुना श्रीकान्तमेवं वद।
क्लेशो मेस्ति हि दुःसहोऽयमधुना वाष्पार्द्र वस्रास्म्यहम्॥
आगांस्येव मम स्मरेत्किमु हरिः कारुण्यसिंधुर्न किं।
किं तादृङ मम वर्धतेऽद्य दुरितं पात्रं दयाया न किम् ॥७॥

मेरे हाथसे खाकर बढ़ने वाले अये शुक (तोता) तू जाकर मेरे स्वामी लक्ष्मीपति से कह तो सही कि महाराज अब उससे आपका वियोग कष्ट नही सहा जाता रोते रोते शरीर का सब वस्त्र भीज गयाहै। क्या ऐसी अति दयनी दशामें भी आप उसके अपराधों को स्मरण करेंगे आप तो दया समुद्र हैं। उसके थोड़ेसे पाप क्या आपकी दयाके भोजन न होंगे क्या वह दया करने योग्य पात्र नहीहै।

कितनी अविरल धार बहा कर हुए नयन मम ज्योतिविहीन।
सूखगया वह कंठ निरंतर करते करते क्रन्दन दीन ॥
कितनी अभिलाषाएँ अपनी तुझपर करदीनी बलिदान।
किन्तु न अबतक हुआ निठुर हा तव निष्ठुरताका अवसान ॥

भगवान की दया के विषयमें आचार्यों का कथन है कि—

"अह मस्म्यपराधचक्रवर्ती करुणे त्वंच गुणेषु सर्वभौमी
विदूषि स्थितिमीदृशीं स्वयं माँ वृषशैलेश्वर पादसा त्कुरुष्व,,

जिस प्रकार भगवान् के सर्व गुणों में दया प्रधान है । उसी प्रकार पापीयों में मैं भी प्रधान हूँ । इस प्रकार की दशाको जानने वाली दया देवी अब आप मेरेको भगवान् का दास बनादो यही मेरी महती प्रार्थना है ।

आचार्य के गम्भीरता गुणका वर्णन इस गाथा में किया है ।

❀ अष्टमगाथा ❀

दूतीभूय मम त्वमद्य पतग प्राप्तो न तं मूढधी ।
विष्णुं मे प्रभुमिन्दिरेशमनघं नावेदयो मे दशाम् ।।
अत्यन्तार्तिकरीमिमां किल ततो वर्णोऽद्य देहे मम ।
क्षीणोऽस्त्यन्तिम काल एव मितरांस्त्वं पोषका न्मार्गय ।।८।।

अरी मैना की बच्ची मैंने तेरेसे बार बार कहा कि तू दूती बनकर मेरे स्वामी के पास जाकर मेरा सन्देश सुनाया । परन्तु तू बड़ी दुष्ट है तेने मेरा कहना ही नहीं माना । तू दूती होकर लक्ष्मीपति मेरे स्वामी के पास न गई और न तेने मेरी यह दशा ही उसको निवेदन की । अब मेरे शरीरका रंगभी क्षीण होकर बदल गया है विरह व्यथा दिन दूनी रात चौगनी बढ़ती चली जारही है । अब मेरी जीवन यात्रा पूरी होने वाली है तू अपने रक्षक दूसरे ढूढले अब मेरे जीने की आशा मतकर बस हो चुका ।

"गतो यामो गतारात्रीर्गता मासा च वत्सरा: ।
हा हंत किं करिष्यामि न पश्यामि हरे मुखम् ।।,,

हाय प्रहर रात्री मास सम्वत् बीते जारहे हैं परन्तु सर्व दुःख हरणकर्ता हरी के मुखका दर्शन अभी तक नहीं हुआ हाय क्या करूं।

इस गाथा में आचार्य के अनुकूल होकर ही जीवन यात्रा बितानी चाहिये यह कहा है ।

नवमगाथा ।

मध्ये सञ्चरसि त्वमद्य सहसा गत्वाऽद्य भो मारुत
श्रीशं तं वद किंचिदेव वचनं नारायणं मे प्रभुम् ॥
तत्पादाब्जयुगे प्रसूनरचने भाग्यं न मे पाप्मतो ।
विश्लेषेऽत्र विषण्णताऽस्तिहि ततस्त्वं मे वपुर्नाशय ॥९॥

समस्त प्राणियों के भीतर बाहर संचार करने वाले वायुदेव तुम जल्दी से जाकर लक्ष्मीपति उस हमारे स्वामी नारायणसे हमारी एक बात तो कहदो कि अभी अनादि कालसे संचित किये असंख्यपापोंने मुझे आ घेरा है। सुन्दर सुगन्ध पुष्प को लेकर आपके चरणों में समर्पण करनेका सौभाग्य प्राप्त होना मुझे अब दुर्लभ है। और आपके वियोगमें यह शरीर अत्यन्त शिथिल होगया है इस जीवन नौकाको डुबादो यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है।

भक्तोंकी इसी प्रकारकी दशाको एक कविने स्पष्ट किया है कि।

"आहारे विरतिः समस्तविषयग्रामे निवृत्तिः परा
नासाग्रे नयनं यदेतदपरं यच्चैकतानं मनः ॥
मौनं चेदमिदं च शून्यमखिलं यद्विश्वमाभाति ते
तद्ब्रूयाः सखि योगिनी किमसि भो किंवा वियोगिन्यसि,,

अरी सखी तैने खाना छोड़ दिया है। और संसारके सर्व प्रकार के विषयोंसे मन हटा लिया है। नासाग्रमें दृष्टि लगाकर मनको एकाग्र कर लिया है। और मौन ऐसा साधाहै कि मानो तेरे लिये तो सारा संसार सूनाही हो गया है। अब तू बता तो सही कि तू योगिनी (योगाभ्यास करने वाली) है अथवा वियोगिनी (प्रेमीसे बिछुड़ी हुई और उसके ध्यान में लगी हुई) है।

❀ दशमगाथा ❀

भो भो मानस मे गभीर बहुधा संसारचक्रस्य वै ।
मोक्षस्यात्मगणस्य भोग्यकरणावल्याश्च निर्वाहकम् ॥
तं क्षीरार्णवशायिनं यदि हरिं पश्येः स्वयं चक्रिणं ।
त्वं ब्रूह्यद्य दशां मम प्रियतमागत्यै च मां मा त्यज॥१०॥

अत्यन्त गंभीर वेग वाले मेरे मन तू तो संसारमें सदा विचरण ही करता रहता है । अनेक प्रकारके संसार चक्र की सृष्टि रक्षा प्रलय करने वाले और प्राणिवर्गको विविध भोग और भोगसामग्री देने वाले तथा मोक्ष देने वाले आश्रितों के सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेके लिये क्षीर समुद्रमें शयन करने वाले शंख चक्र धारी प्रभुके दर्शन का अवसर तुमको कभी मिल जायतो उनसे मेरी दशा अवश्य कह देना । अरे मेरे मन जबतक मुझे उस प्राण प्यारे का समागम सुख सौभाग्य प्राप्त नही होता तब तक तू मेरा संग मत छोड़ । इसी भावको महात्मा तुलसीदासजी ने भी दिखाया है कि—

भजन पद ।

मन माधवको नेक निहारहि ।
सुन शठ सदा रंकके धनज्यो छन छन प्रभुहि समार हि ॥
शोभा शील ज्ञानगुण मन्दिर सुन्दर परम उदारहि ।
रंजन सन्त अखिल अघ गंजन भंजन विषय विकारहि ॥
जो विन योग यज्ञ व्रत संयम गयो चहहि भव पारहि ।
तौ जनि तुलसीदास निशिवासर हरिपद कमल विसारहि ॥

* दशक पाठफलम् *

उत्तुङ्गामितसप्तलोकसरणेर्नाथं च कृष्णं हरिं
दिव्यज्ञानबलाद्भजन्हि कुरुकापुर्यां शठारिः प्रभुः ॥
साहस्रं व्यतनोच्च वृत्तरचने रन्तादि पद्यावलीं
तत्रेदं दशकं तु भक्तपठितं दिव्यं पदं प्रापयेत् ॥११॥

सप्तलोकके सबसे बड़े स्वामी श्री हरि कृष्णको दिव्यज्ञानके बलसे सेवा करने वाले कुरुकापुरीके वासी श्रीशठकोपमुनिने सुन्दर पद्यावली की सहस्रगाथा जो रची थी उनमें इसदशकको भक्ति पूर्वक जो पाठकरेंगे उनको श्रीवैकुण्ठमें दिव्यपद अवश्य प्राप्तहोगा ।

प्रथमगाथामें आचार्यका ज्ञानवैभव २ में भक्त गोष्ठी का महत्व ३ में गुरुमहिमा ४ में शिष्यस्वरूप वर्णन ५ में परोपकार परायणता ६ में अनेक शास्त्रोंमें से सारग्राहिता, सारतमका ग्रहण अन्यका

त्याग ८ में शास्त्रीय उपदेशको अनुष्टानपर्यंत सेवन करना ९ में आचार्य सम्बन्ध से ही आत्मकल्याण १० में मधुरभाषी सारासार विवेकज्ञ सुन्दर शरीरवाला शुद्धस्वभाव वाला कृपालु गम्भीर हृदयवाला गुरु और शिष्यभी ऐसाही होना चाहिये यह बताया है ।

* इति श्री सहस्रगीतौ प्रथमशतके चतुर्थदशकं समाप्तम् *

अथसहस्रगीतौ प्रथमशतके पंचमदशकारंभः

इस दशकमे यह कहा है कि भगवान् शठकोपमुनि की प्रार्थना सुनकर कृपा करके उनको अपनी सन्निधि में ले जाना चाहते हैं ।

* प्रथमगाथा *

मूलं सप्तजगत्ततेश्च मनसा सूरीन्द्रनाथं स्मरन्
देहेऽहं शिथिलेन्द्रियश्च वचसा पापी वदाम्येव हि ॥
धूर्तं त्वं नवनीतचोर इति च स्मेराननां तां प्रियां
नीलां प्राप्तुमहो वृषानपि विभो सप्तावधीश्चेत्यपि ॥१॥

पूर्वोक्त प्रकारसे आल्वारको भगत्प्राप्तित्वराका वेग बढ़ते बढ़ते जब अन्तिम् सीमा (प्राणान्त) तक पहुँच गया तब भक्तवत्सलने, अपना मन्दस्मित मुख उनको दिखाया। उस मुखको देखतेही आपका विरहज्वर उतरगया और आप प्रकृतिस्थ होगये । तब आपको यह ज्ञान हुआ कि ओहो में एक अधम चेतन ईश्वर तो विधि शिवसन कादिकोंके ध्यानमें भी नहीं आने वाला है । जैसे बौना पुरुष चन्द्रमा का स्पर्श नहीं करसक्ता उसी प्रकार उस परात्परको प्राप्तकरनेका मुझे अधिकारही क्याहै इस बातको इस गाथामें बतायाहै ।

जो लीलाविभूति और नित्यविभूति दोनों विभूतियोंका स्वामीहै उस दिव्यपुरुषको मुझसरीका पापी यह कहै कि तू धूर्तहै तू माखन चोरहै । तूंने कामके वशहोकर नीला (नाग्नजिती) को आलिंगन करनेकी तीव्रलालसासे सात मतवाले और दौड़कर मारनेवाले बैलों को नाथने के लिये अपने जीवनको सन्देहमें डाल दिया और उसमें सफलता को प्राप्त होकर प्राणप्रियाका आलिंगन किया । इस प्रकार कहनेका ही क्या अधिकारहै ।

❀ द्वितीयगाथा ❀

देवास्ते मुनयोऽपि हन्त बहवः सर्वे स्वयं चेतसा
स्मृत्वा त्वद्गुणसन्ततिं शिथिलितस्वाङ्गा द्रवीभूय च
मालातीर्थं सुगन्धधूपसहितास्त्वां चेन्नमन्त्यच्युतं
मायिन् सर्वपदार्थमूलमलिनं किंस्यान्नते वैभवम् ॥२॥

हे प्रभो जैसे चाण्डालके स्पर्श करनेसे यज्ञवेदी अपवित्र होजाती है। उसी प्रकार मुझ पापीके स्मरणसे आपका दिव्यनाम दूषित न होजाय यह मुझे बड़ा भय है। ओहो ब्रह्मादिक देवता नारदादिक अनेक मुनिगण आपके शुभ गुणगणों का स्मरण करके प्रेमसे पिघल जाते हैं। उनके शरीरके अवयव शिथिल होजाते हैं और भक्तिवश होकर वे सब सुन्दर सुगन्ध पुष्पोंकी माला अति सुगन्ध धूप पवित्र जलादि लेकर जो आपके चरणोंकी सेवा करते हैं। हे मायपते क्या सर्वपदार्थों का मूलकारण आपका ऐश्वर्य इससे मलिन नहीं होता। जैसे समुद्रमें से थोड़ा जल लेकर समुद्रको अर्घ्य दिया जाय तो उससे समुद्रका कोई अतिशय नहीं होता, इसी प्रकार अखिल ब्रह्माण्ड स्वरूप आपके लिये उसी में से २-४ पुष्प थोड़ा जलादि समर्पण करने से कोई आपका महत्त्व नहीं बढ़ता प्रत्युत यह बात हँसने योग्य है।

❀ तृतीयगाथा ❀

देवादींश्च मुनीन् बहूनपि सृजत्वं सर्वजन्तूनपि
त्येवं तं चतुराननं प्रथमतः सृष्ट्वाऽप्य गम्यो मतेः ॥
लोकानप्यखिलान्स्वपादतलतः सृष्ट्वा स्वयं मातृवत्
वात्सल्याम्बुधिरेव सर्वजगतामत्यद्भुतः स्वाकृतिः ॥ ३ ॥

हे प्रभो आपने अनेक प्रकारकी जीव योनियों को रचने के लिये प्रथम ब्रह्माजी को उत्पन्न किया, परन्तु वे ब्रह्माजी भी आपके यथार्थ रूपको नहीं जान सके है। जिनको वेदोंने सर्वज्ञ बतलाया है। तब इतर प्राणियों की क्या शक्ति है कि वह आपके स्वरूपको जान सकें। हे करुणामय जिस कोमल चरणको लक्ष्मीजी भी अपने अति कोमल

हाथोंसे बड़े सङ्कोचके साथ छूती हैं कि मेरे हाथ के लगने से कहीं मृदुचरणों में छाले न पड़ जाँय उसी चरणसे तो आपने त्रिविक्रमावतारमें अनेक वन, पर्वत वृक्षादियुत भूमिका स्पर्श किया था, इसका कारण यही है कि जैसे माता अपने से विमुख रहने वाली सन्तान को भी पालन करती है, वैसे ही आप चराचर जगत्की माता हो, वात्सल्य भावसे आपने यह सब कुछ किया है । हे वात्सल्य समुद्र, आपके इस अद्भुत (अनोखे) रूप और इस वात्सल्य गुणको बार बार बलिहारी है ।

❀ चतुर्थगाथा ❀

मूलं सर्वजगत्ततेरपि हरियं स्त्वेक मूर्तिः प्रभुः
सङ्कल्पाद्बहुधा भवन् विजयते देवाश्च मूर्तित्रयम् ॥
एवं ते मुनयोऽपि मानवगणास्तिर्यङ्मुखा स्थावराः
सर्वं च स्वयमेव चाब्धिशयनो वैकुण्ठराण्मे प्रभुः ॥४॥

हे प्रभो आप अकेले ही समस्त संसारके कारण हो। आप प्रथम एक मूर्ति रूप थे (एकोऽहं बहु स्याम्) फिर अपनी इच्छासे अनेक रूप धारण करने का विचार करके (ब्रह्मा विष्णु महेश) तीन मूर्ति धारण करीं इस प्रकार इन तीनों मूर्तियों से देव, मुनि मनुष्य, पशु पक्षी नदी पर्वत वृक्षादि रूप होकर संसारमें प्रकाशमान हो रहे हो । तुम यही कभी क्षीर समुद्रमें और कभी वैकुण्ठ में राजसिंहासन पर विराजमान होने वाले मेरे स्वामी ही तो हो।

प्रभो हम आपसे दूर हैं इस प्रकार की अज्ञान चेष्टा हम भले ही किया करें, परन्तु आपतो हमारी अन्तरात्मा में दृढ़ आसन लगा कर ऐसे बैठे हों कि एक क्षणपल भी अलग नहीं होते फिर भी वह प्रभु हम से दूरहै हाय उसके दर्शन हमें कब होंगे इत्यादि, विलाप करना नितान्त मूर्खता है ।

❀ पञ्चमगाथा ❀

लक्ष्मीं तां मृगलोचनां शुभगुणां धृत्वा स्वयं वक्षसि
श्रीमंश्चापमिव स्वयं किलहरे कुब्जामृजू कृत्य ताम् ।

गोविन्दो मधुसूदनो मणिनिभस्त्वं ज्योतिषां भास्वरः
त्वत्पादाब्जयुगं कथं वत सुधास्यन्दि त्वघी प्राप्नुयाम् ॥५॥

हे प्रभो मृगलोचना लक्ष्मी को अपने वक्षःस्थलमें धारण करते हो इसी से कहते हैं कि बिना लक्ष्मी की सहायता के चेतनको परमात्मा स्वीकार नहीं करते, परन्तु टेढ़ी कुब्जाको सीधी करके स्वीकार करनेमें लक्ष्मीजीकी सहायताकी आवश्यकता नहीं हुई। अतएव हमें ठीक ठीक पता नहीं लगता कि आपके चरणोंकी प्राप्तिका सरल मार्ग क्या है।

आप गोविन्द (इन्द्रियोंकी बाह्यवृत्तिको रोक कर अपनी ओर लाने वाले) हो, आप मधुसूदन हो, (संसारके मधु सदृश विषकल्प भोगोंको भक्तोंके लिये नष्टकर देने वाले) हो आप मणितुल्य भक्तों की वाञ्छित पूर्ति करने के लिये चिन्तामणि समान हो तुम संसारके प्रकाशमान पदार्थोंमें सर्वोत्तम तेजवाले हो। हे प्रभो अमृत झरने वाले आपके चरणकमल युगलको मुझसदृश पापी किस प्रकार प्राप्त हो सकेगा, इस बातको बताने की क्या आप कृपा करेंगे ॥ ५ ॥

❀ षष्ठगाथा ❀

पापिष्ठस्य च पाप शान्तिविषये दिव्यौषधात्मासि भो।
देवानामपि सर्वतः परिवृढस्त्वं केशवोऽसि प्रभो॥
गोपानां कुलमूलनायक विभो मायामयो माधव।
त्वं वै सप्ततरुच्छिदेव बहुधा त्वामाश्रये श्रीधर।६॥

हे प्रभो अनेक पापों के प्रबल प्रताप से मुझे जो वियोग दुःख सहना पड़ाहै। उस दुःखको दूर करने के लिये आप औषध रूपहैं। आप केशव हो ब्रह्मादि देवों के सर्व प्रकार अध्यक्ष हो। विभो गोप कुलके तो आप मूल नायक (सबसे बड़े स्वामी) हो *आप लक्ष्मीपति* और सर्व प्रकारकी माया वाले हो। आपने कृष्ण रूपमें जलमें अक्रूरको तथा द्वारका बसाकर यादवोंको विराट रूप दिखा कर अर्जुनको अपनी मायाका प्रभाव दिखाया था।

आपने राम रूपमें सुग्रीव मित्रके कहने से एक ही बाण से आपस में मिले, सात साल वृक्षों को टुकड़े टुकड़े करके गिरानेसे अपनी मायाका प्रभाव दिखाया था। आप लक्ष्मी के पति हो, संसार में सर्व प्राणि वर्ग लक्ष्मी की हीं खोजमें अपने तन मन धन की संपूर्ण शक्ति लगा देते हैं। उसके पति की चिन्ता कभी नहीं करते इसीलिये दुःखी रहते हैं। मैंने तो आज आप श्रीधर का ही आश्रय लिया है।

भगवन्नाम औषध स्वरूप है इसको श्रीकुलशेखरभक्तने बड़े रोचक शब्दों में कहा है कि—

व्यामोह प्रशमौषधं मुनिमनो वृत्तिप्रवृत्यौषधं।
दैत्येन्द्रार्तिकरौषधं त्रिभुवने संजीवनैकौषधम् ॥
भक्तात्यन्तहितौषधं भवभयप्रध्वंसनैकौषधं।
श्रेयः प्राप्तिकरौषधं पिव मनः श्रीकृष्ण दिव्यौषधम् ॥

हे मेरे मन तू अब बेहोशी को दूर करने वाली मुनियों की मनोवृत्ति को जाग्रत करने वाली, भक्तों के संसार रोग को समूल नष्ट करके अत्यन्त आरोग्य प्रदान करने वाली, तामस प्रकृति वाले दैत्य सन्निपातको नाश करने वाली, तीनों लोकों को प्राण देने के लिये संजीवनी रूप आत्मा का अत्यन्त कल्याण करने वाली, श्रीकृष्णः शरणंमम,, इस दिव्य औषधी का पान करो।

❀ सप्तमगाथा ❀

अल्पज्ञोऽस्मिहि दास एष महतां तं ज्ञानिनां दुर्लभं।
श्रीकृष्णं तुलसीस्रगञ्चितमपि श्रीशं भवार्तिच्छिदम् ॥
द्रष्टुं हा वत कामयेऽद्य मनसा मूढोस्मि पापो स्वयं।
किं चेतः परमस्ति मौढ्यमधिकं दृष्टं श्रुतं वा क्वचित् ॥७॥

प्रभो यह आपका दास महामूढ है, परन्तु (चहिये अमृत जग जुरैन छाछी) बड़े बड़े ज्ञानीयों को भी जिसका यथार्थ निर्णय करके बताना कठिन है। उसी फूल तुलसी की वन माला से सुशोभित श्रीकृष्ण को जो लक्ष्मीपति संसार के दुःख का नाशक

है देखने के लिये मैं भी चाहता हूँ । हाय इससे अधिक मूर्खता संसार में क्या किसीने कहीं पर कभी देखी अथवा सुनी भी होगी।

संसारी तौ सदा अल्पज्ञ होते ही है आपके रूपको यथार्थ कौन जान सकता है । आप अचिन्त्य अगोचर होकर भी गोपी और भीलों तक को सुलभ होगये थे । वैसेही दास को भी सुलभ होने के लिये इस विरोधी शरीर को दूर करदें तौ आपका वियोग सहज में ही मिट जाय । किन्तु इस प्रकार की प्रार्थना करना भी तौ बड़ी मूर्खता है जिस मालिक का माल है वह स्वयं अपने मालको सभालैगा ॥७॥

* अष्टमगाथा *

मायाचेष्टित पूर्वमेव हि भवान्भुङ्क्ते स्म लोकानिमान् ।
सप्तापि स्वयमुद्गिरन्नपि पुनर्जातो मनुष्यात्मना ॥
एवं किं नवनीतभुक् पुनरभूः पूर्वोक्त मृद्भक्षणा
च्छेपं किं द्रवये सितत्वहतये दिव्यौषधं किंघृतम् ॥८।

अये मायावी प्रथम प्रलय काल के समय में आपने ब्रह्माण्डको खा लिया था। और फिर सृष्टि रचनाके समय अपने शरीर से सब निकाल कर बाहर बसा दिया है । फिर आप मनुष्य शरीर वाले श्रीकृष्ण रूप होगये । वहाँ आपने व्रजकी मिट्टी खाई थी ।

वैद्यों का कथन है कि जो बालक मिट्टी खाता है उसके पीछे से पाण्डु (पीलिया) रोग होजाता है । इसीलिये तौ श्रीकृष्ण रूपमें आपने माखन खाया था । प्रभो बताईये तौ सही कि आपने व्रज गोपियों के घरों में जो माखन खाया था वह पाण्डु रोग की औषध समझकर खाया था । कि अनन्य भक्त गोपिकाओं की वस्तु थी और भक्तोंकी वस्तु आपको अत्यन्त प्रिय है । इस कारण उस प्रिय वस्तुको लेनेके लिये व्रजांगनाओं के घरों में बलात्कर से भी माखन लेकर खाया था ॥८॥

* नवमगाथा *

मयां तामपि पूतनां विषमयीं हन्तुं स्वयं निर्मलो ।
बालोसौ विषमिश्रमप्यमृतवत्स्तन्यं महात्मापिवत् ॥
देवानामपि देवमेव कमलाकान्त ञ्च सर्वात्मनां ।
वात्सल्याम्बुनिधिं प्रभुं मम विभुँ संश्रित्य जीवाम तम् ॥६॥

अहह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिसके शरीर में वसता है उसीने बालक रूप धारण करके माया रूपिणी विषभरी पूतनाको मारनेके लिये विष भरे उसके स्तनके दूध को अमृतके समान पी लिया था। समस्त देवों के देव संपूर्ण चराचर जीव वर्गके स्वामी प्रेमके भण्डार सर्वसमर्थ मेरे स्वामी तुमारे चरणोंका आश्रय ही हमारे लिये संजीवनौषध है।

तात्पर्य यह है कि आत्म कल्याणके लिये परमात्मा में चित्त लगाकर उसको अपना समझ लेना ही बस है पूतना चरितसे यह शिक्षा और भी दृढ़ हो जाती है। कि उस प्रभुको चाहे द्वेष भावसे अपना समझो कि वह हमारा शत्रु है। अथवा दास भाव या मित्र भाव से कि वह हमारा स्वामी अथवा मित्र है। किसी भी प्रकार का परमात्मा में इस चेतन का ममत्व हुआ कि बस संसार से बेड़ा पार है ॥६॥

* दशमगाथा *

पूर्णज्यतिर्मयो सौ हरिरिहपरित श्चोपरिष्ठा दधश्च ।
व्याप्यास्ते चाप्रमेयः सकलचिदचितामन्तरात्मा परमात्मा ॥
मन्नाथो द्वन्द्वकर्मप्रतिहतमुखतो मेऽत्रसङ्गं प्रहृत्य ॥
स्वस्मिंश्चित्तं मदीयं भुवि दिवि च सदा स्थापय न्मां वृणोति ॥

ओहो यह मेरा स्वामी कैसा प्रभाव वाला है यह पूर्ण प्रकाशमान होकर चारों ओर ऊपर और नीचे व्याप्त होकर सर्वश्रेष्ठ रूपसे जड़चेतन के भीतर परमात्मा होकर बैठा है। यह पुण्य पाप रूप दोनों कर्मोंसे हमारे मनका संग छुड़ाकर स्वर्ग और धरातल में भी अपनी ओर उसे खींचकर लगाता हुआ हमारा उद्धार करने के लिये तयार होरहा है।

इस जीवको बांधने वाले कर्म दो प्रकार के हैं। पुण्य और पाप पुण्य सोनेकी बेड़ी और पाप लोहेकी बेड़ी है। प्रभु अपने भक्तोंको दोनों ही प्रकार के बन्धनों से मुक्त करना चाहते हैं। किन्तु (अप्रार्थितो न गोपायेत्) जब तक हम संसार सम्बन्ध को तृणवत् तोड़कर उससे अपनी करुणाभरी प्रार्थना नहीं करते तब तक वह सर्वज्ञ होता हुआ भी अज्ञ है। हां यदि आपने सच्ची प्रार्थना करी कि तुरन्त वह तुमारे बन्धनों को तोड़कर अपनी गोदमें बैठार लेगा और फिर उससे कभी तुह्मारा वियोग नहीं होगा ॥१०॥

* दशक पाठफलम् *

सर्वोत्कृष्टोऽसि मायिन् परमपुरुष हे माधवेत्येव मुग्ध
स्तस्येशस्य प्रसादादवहितहृदयः श्रीशठारि र्महात्मा ॥
साहस्रं चाह शस्यं द्रविडबुधवरै र्गानलोलैश्च भक्तैः ।
तत्रेदं रत्नरूपं दशकमपि विदन् वीतदुःखः सुखीस्यात् ॥११॥

हे मायी तुम सबसे बड़े हो, तुम परम पुरुष हो, माधव हो, इस प्रकार भगवद्गुण गानसे मोहित होकर उस परमात्माकी कृपा से सावधान हृदय वाले श्रीशठकोप मुनिने सहस्रगाथा ग्रन्थ बनाया जिसकी कि द्राविडके विद्वान् और गान कुशल भक्तों ने प्रशंसा की है। उसमें रत्न रूप यह दशक है। इसको जो पढ़ेंगे वे सर्व दुःखों से छूटकर सुखी हो जाँयगे।

प्रथम गाथामें अपनी अयोग्यता बतायी २ में अलग होनेका भी अधिकार मुझे नहीं है ३ में शील गुणको देखकर व्याकुलता, ४ में स्वामी का वियोग नहीं सहा जाता, ५ में स्वामी के चरण प्राप्ति के लिये उसकी कृपाकाअवलंब, ६ में उसको आधे क्षणकी देरी होनेमें प्राण त्याग ७ में उससे मिलने को अपने में अयोग्यता ८ में गोकुलके माखनके समान तुमारे दर्शनही प्राणधारकहैं ९ में विषसमान ईश्वरा नुभवही संसार सन्निपातका नाशकहै १० में अपनी सम्मति द्वारा परम पद देने की तैयारी ११ दशक में पाठ करने का फल बताकर समाप्त किया ॥ ११ ॥

० इति श्री सहस्रगीतौ प्रथमशतके पञ्चमदशकं समाप्तम् ०

अथसहस्रगीतो प्रथमशतके षष्ठदशकारंभः

इस दशक में आल्वार ने यह बताया है कि ईश्वर के दयादि कल्याण गुणों को न जानने वाले प्राणी नरक कष्ट व्यर्थ में ही सहते हैं, अरे भाई इसका प्रसन्न करना कठिन नहीं है ऐसा चेतनों को बताते हैं।

* प्रथमगाथा *

सञ्ज्ञाय पूर्णं विभवं निरवद्य मीशं
ज्ञानादि पूर्तिमपि चेत्परिलिब्धुकामाः ॥
यूयं त्वनन्यशरणा भजताद्य नाथं
धूपं च पुष्पमपि तत्र समर्प्य तीर्थैः ॥ १ ॥

अये भक्तगण परम ऐश्वर्य शाली उस परमात्माके गुणगान करके यदि आपको ज्ञानभक्ति आदिके प्राप्त करनेकी अभिलाषा है, तो आज ही अन्यावलंब छोड़कर हमारे स्वामीकी केवल पुष्प जल धूप लेकर सेवा करो वह इसो से प्रसन्न होकर आपके मनोरथको पूरा कर देगा। इसी बातको महाभारत में स्पष्टरूपसे बताया है कि-

अन्यत्पूर्णादपां कुंभा दन्यत्पादावनेजनात्।
अन्यत् कुशलसंप्रश्ना न्नेच्छति जनार्दनः ॥ भा० ३०।८६।१३

तथा- याः क्रिया संप्रयुक्ताः स्युरेकान्तगति बुद्धिभिः।
ताः सर्वाः शिरसा देव प्रतिगृह्णाति वै स्वयम् ॥ भा.मो. १७१।६४

उस ईश्वरके प्रसन्न करनेके लिये अधिक धन या विद्याकी आवश्यकता नहीं है। वह तो प्रेमपूर्वक पत्र पुष्प धूप जलादि समर्पण करने से ही स्वभक्तोंको आत्म समर्पण कर देता है।

* द्वितीयगाथा *

सुस्वादु गन्धतुलसी धरमप्रमेयं
वेदैश्चवेद्यमनघं पुरुषं पुराणम्।
आराधयामि कथमित्यपि मास्तु चिन्ता
सर्वं करोम्यहमितीह हि दासकृत्यम् ॥ २ ॥

हे हरि भक्तिके अभिलाषियो! तुमको अपने मनमें यह शंका नहीं करनो चाहिये कि वेदवेद्य उस परमात्मको जो सर्वदोष वर्जित है

जो सबसे पहला पुरुषहै जो विधि शिवादिकों से भी दुराराध्यहै। जो सुन्दर सुगन्धवाली तुलसी धारण करताहै उसको दीन हीन साधनरहित हम कैसे पूजन करें। अरे भाइयो उसके यहां गरीब अमीर ऊँच नीच का विचार नहीं है, वह सबकी सेवा ग्रहण करता है। तुमसे जो भी सेवा हो सके उसीको करो क्यों कि सर्व प्रकार की सेवा करनाही तो दासका धर्म है।

पूर्व गाथामें यह बताया है कि ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिये अधिक द्रव्यकी भी आवश्यकता नहीं जिसके पास जैसा साधन है उसी साधनसे ईश्वरको वह प्रसन्न कर सकताहै। इसगाथामें यह बतातेहैं कि उसको प्रसन्न करनेके लिये उच्चवर्ण और उच्चकुलकी भी आवश्यकता नहीं है। इसकें लिये शबरी विदुर धर्मव्याध दृष्टान्तहैं। कलियुगमें धना रैदास नरसी कबीर तुकाराम आदि भक्त दृष्टान्तहै।

"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदाहरिः॥"

इत्यादि शास्त्र प्रमाणहै॥ २॥

❀ तृतीयगाथा ❀

त्यागे परिग्रहविधौ च नृणां समानं
नैव त्यजेन्मम मनः किल तं प्रभुं मे।
गानं नहि त्यजति मे रसना च तस्य
प्रेम्णा ममाद्य किल नृत्यति देहयष्टिः॥ ३॥

वह मेरा प्रभु ऐसा है कि चाहै कोई भी किसी समय उसकी सेवा कर सकता है, और चाहै जब उसको छोड़ सकता है। सेवा प्रारम्भ के लिये घटी मुहूर्त की छोड़ने के लिये समयावधिकी आवश्यकता नहीं है। वह ग्रहण और त्याग में एक समान है। ओहो! आज तो मेरे शरीर में मानों कोई देव घुस गया है इस प्रकार मेरा शरीर नाचता है। मेरी जीभ उसके गुणगान से नहीं थकती प्रेम के मारे व्याकुल मन तो आज उसे छोड़नाही नहीं चाहता।

पूर्व गाथाओं में कहे अनुसार आल्वार भगवत् शरणागतिका उपदेश दे रहे थे कि एकाएक उनके शरीर में भक्ति की अधिक उमंग उठने लगीं इसी कारण शरीर सम्बन्धी ज्ञान उन्हें नहीं रहा और भक्तीके आवेश में आकर नाचना गाना रोना प्रारम्भ कर दिया। इसी दशा का वर्णन इस गाथा में है ॥३॥

❀ चतुर्थ गाथा ❀

आविष्टवत्किल वपुर्मम नृत्यतीदं ।
सम्यक् प्रणम्य ममनाथमयं हि देवैः ॥
स्तव्योऽस्ति सूरितिलकैरपि संभ्रमेण ।
श्री शस्य सद्गुणगणावलि रीदृशीहि ॥४॥

अ हह यह मेरा शरीर तो देवाविष्ट (कोई भूतल गेके समान) के समान मेरे स्वामीको बार बार प्रणाम करके नाचता है अरे यह क्या ऐसा क्यों हुआ (कुछ सचेत होकर) अरे भाई इस लक्ष्मीपति के गुणगण ऐसे ही हैं। इसके गुणगान मदिरा से मस्त ब्रह्माशिवादिक देव और अनन्त गरुड़ादिक नित्यसूरिभी बड़े आदर के साथ गान करकर्के मतवाले और बाह्य ज्ञान शून्य हो जाते हैं।

पाठगण जिस परमा भक्ति को आल्वार ने प्रत्यक्ष में दिखाया है। यह भगवत्कृपा के बिना नहीं मिलती ऐसे ही भक्त जन नरजन्म को सफल करते हैं। कहा भी है कि—

"हरिस्मृत्याल्हादस्तिमितमनसो यस्य कृतिनः
सरोमांचः कायो नयनमपि सानन्दसलिलम् ॥
तमेवाचन्द्रार्क वह पुरुषधौरेयमवने
किमन्यैस्तैर्भारैर्यमसदनगत्यागतिपरैः ॥"

हे भूमिदेवि जिसका मन ईश्वर स्मरणसे व्याकुल हो, शरीरमें रोमाञ्च खड़े हो रहे हों। नेत्रोंसे आँसुओंकी अखण्ड धारका प्रवाह पड़ताहो। नर जन्म सफल करने वाले उस पुरुष रत्नको तू जब तक चन्द्रसूर्य रहैं तब तक धारण कर नरकके कीड़े भक्तिहीन नरोंको धारण करके क्यों दुःखी होती हो।

इसी भक्ती की प्राप्ति के लिए वेद शास्त्रों में यज्ञ दान होमव्रत जप तपादि अनेक धर्म करने की आज्ञा दी है ॥४॥

* पंचमगाथा *

स्वीकारेधिक्कृतिविहीन मरागवैरं
सुस्वादु चेदमसृतं किल नित्यभोग्यम् ॥
वस्तु प्रयोजन परानपि चाप्य नन्यान् ।
सम्यग् विविच्य सुलभं परभक्तिभाजाम् ५॥

इस गाथा में आल्वार ईश्वर की समता को और भी स्पष्ट रूप से बताते हैं । भक्तगण उस प्रभुका दरबार ऐसा नहीं है कि यह विद्वान् ब्राह्मणहै इसका आदर करौं। यह शूद्रहै इसको यहां से निकाल दो। यह धनाढ्य है इसने बड़े बड़े स्वादिष्ठ पदार्थ हमको निवेदन किए है इससे प्रेम करो। यह निर्धन है इसने सूखी रोटी ही हमको निवेदन की इसलिए इसको मार कर भगादो।

वह सबके लिए समान है वह नित्य भोग करने योग्य है सर्व प्रकार के भक्तों का सन्मान समान रूप से करता है। वहाँ भेद भाव नहीं है। इसीको गीता में स्पष्ट रूपसे दिखाया है कि —

"आर्तो जिज्ञासु रर्थार्थी ज्ञानीच भरतर्षभ
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥"

सर्व प्रकार के मेरे भक्त उदार हैं (आदरणीय है) किन्तु ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है। आल्वार ने भी कहा है कि परभक्ति वालों के लिए वह अत्यन्त सुलभ है ॥५॥

* षष्ठमगाथा *

यश्चामृतं तु वितरन्नमरान्प्रतुष्टान्
कुर्वन्महोज्वल सुदर्शनभृत्परात्मा ॥
कल्लोल वैभव विशाल सुधाब्धिशायी
तत्रा मृताच्चमधुरा न्नितरां हि भोग्यः ॥ ६ ॥

वह हमारा प्रभु यद्यपि अमृत से भी अधिक भोग्य है तथापि

देवता लोगों ने (स्वल्पकेनापि तुष्यति) न्यायानुसार उस दिव्यामृत रूप को छोड़कर केवल समुद्र का जड़ अमृत ही उन से माँगा । तो भी उनकी इच्छानुसार उनको प्रभुने अमृत पिलाया और उनके विरोधियों को दूर करने के लिये उसने सुदर्शन चक्र भी धारण किया था ।

अ हह विशाल तरंगों से शोभित विशाल अमृत समुद्रशायी वह हमारा प्रभु तो अमृत और समस्त मधुर वस्तुओं से भी अधिक मधुर स्वादिष्ट है किसी भक्त ने कहा है कि—

"त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः ।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥ १ ॥
हे लोकाः शृणुत प्रसूति मरणव्याधेश्चिकित्सामिमां ।
योगज्ञा समुदाहरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादयः ॥
अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां ।
तत्पीतं परमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम् ॥ २ ॥"

प्रभो कोई पुण्यात्मा आपके कथामृतसमुद्रमें आनन्दके साथ विहार करते हुए चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को तृण समान समझ कर छोड़ देते हैं ॥१॥

अये भक्तवर्ग या ज्ञवल्क्यादिक महर्षियों ने जिस औषधि को मुक्तकण्ठ से जन्म मरण रोग को नाश करने वाली कहा है । जिसमें अनेक प्रभाव भरे हैं । जिसके समान औषध संसार में दूसरी नहीं है । उस कृष्णनाम औषध को पीयो । यदि उस कृष्ण अमृत को आपने पिया कि वह अवश्य ही आपको मोक्ष में पहुँचाकर अजर अमर बना देगा यह कृष्ण नामामृतही आपको मृत्यु से बचा सकेगा समुद्र के जड़ अमृत में यह शक्ती कहाँ है ॥२॥

❀ सप्तमगाथा ❀

विस्तीर्णवारिधिवृतां नगरीं च लङ्कां
शास्तुमु जानपि शिरांसि च यश्चकर्त ।
तत्पादपद्मयुगलं शिरसा प्रणम्य
प्रेम्णा स्वयं तरत काल महाम्बुराशिम् ॥ ७ ॥

विस्तृत समुद्र से घिरी लंका नगरीके राजा रावणके भुजा और शिरों को जिन्होंने युद्ध क्रीडा में काट डाला उन्हीं के चरणयुगलों को प्रेम से बार बार साष्टांग प्रणाम करके काल महासमुद्र को तरजाओ। अनादि अपार संसाररूपी समुद्र में रहने वाले शरीररूपी लंका के स्वामी मन के समस्त दोषों को भगवच्चरण सेवा के प्रभाव से समूल नष्ट करके काल महा समुद्र को तरजाओ यह आल्वार का भीतर का अभिप्राय है।

प्रथम गाथा में यह बताया कि परमपदवासी भगवान् को ही सर्व प्रकार से भोग्य (आनन्द दाई वस्तु) समझो, परन्तु भगवान् वैकुण्ठ में जब प्राप्त होंगे तब उनकी सेवा करके आनन्द मिलेगा। परन्तु तब तक किस प्रकार कालक्षेप किया जाय। इसलिये कहते हैं कि काल महासमुद्रके पार जाने के लिये भगवान् के अवतार के गुण चरित्र सुन के उन में अहंकार ममकार को छोड़कर जो प्रेम प्रणाम करेगा वह पार हो जायगा। जो अहंकार के वश होकर रावण के समान प्रभुचरणों को नहीं नवैगा उसका नाश होजायगा ॥७

❀ अष्टमगाथा ❀

भक्ता अनन्यशरणा भवताद्य यूयं
त्यक्त्वाऽन्यसक्ति ममुमेव हरिं भजध्वम् ॥
तस्मादनादिदुरितावलिविघ्नमालां
हत्वा स एव तनुते परमां गतिं यः ॥ ८ ॥

प्रिय भक्तगण आज आपलोग संसार में अन्य आश्रय को छोड़ कर अनन्य शरण होकर सर्व पाप नाशक इस हरि का ही भजन करो। यदि आपने ऐसा कर लिया तो वही हरी अनादिकाल से संचित पाप और विघ्न समूहों को क्षणभर में नाश करके परम गति को दे देंगे। इस गाथा में अवतारी ईश्वर के उदारता गुणको बताया उसके नाम में ही ऐसा प्रभाव है कि—

"वेपन्ते दुरितानि मोहमहिमा मोहं समालम्बते।
सातंकं नखरञ्जनीं कलयति श्रीचित्रगुप्तः कृतिः ॥

सानन्दं मधुपर्कसम्भृतिविधौ वेधाकरोत्युद्यमं ।
वक्तु' नाम्नि तवेश्वराभिलषिते ब्रूमः किमन्यत्परम् ॥"

हे प्रभो जब मनमें आपके नाम लेने की इच्छा होती है . तभी पाप काँपने लगते हैं। अज्ञान तो अज्ञान में डूब जाता है, चित्रगुप्त की लेखनी को ज्वर आजाता है। वैकुण्ठ के मार्ग में स्वागत के लिये ब्रह्माजी मधुपर्क की तैयारी आनन्द के साथ कराने लगते हैं। इससे अधिक हम और क्या कहें ॥ ८ ॥

* नवमगाथा *

यस्त्वाद्वितीयविभवः प्रभुरप्रमेयो
विष्णुः श्रियःपति रुदारफलप्रदोऽस्ति
सत्यं समस्तदुरितानि च युग्मरूपा
ण्युच्छेदयेत्स्वयमयं प्रतिवन्धकानि ॥ ९ ॥

जो प्रभु समस्त जगत का एक स्वामी है जिसके समान दूसरा कोई नहीं है जो सर्व व्यापक होते हुए भी लक्ष्मीपति है। फल देने में तो उनके समान उदार दूसरा कोई नहीं है। उसी की शरण तुमने ली कि अवश्य ही ज्ञान अज्ञान दोनों प्रकार के पाप जो उसके मिलने में विरोधी है। उनको नाश कर देगा, प्रभुकी उदारता के सुग्रीव विभीषण युधिष्ठिर ध्रुव प्रह्लादादि अनेक उदाहरण हैं।

अपने भक्तों के सर्व प्रकार के पापों को छुड़ाने की प्रतिज्ञा प्रभुने स्वयमेव की है। जैसे गीता १८ अध्याय में—

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

शास्त्रोक्त समस्त धर्मों का आसरा छोड़कर यदि तुम मेरी शरण आओगे तो तुमारे सब पापों को नष्ट कर मोक्ष में पहुँचा दूंगा। अतएव पापों को देखकर तुम किसी प्रकारका सोच फिकर मत करो ॥९

* दशमगाथा *

एवं महादुरितवारिधिशोषणं यः
श्रीमान् करोति च स एव हरिः परात्मा

नित्यं च कास्ति हि महोज्ज्वलतार्क्ष्यकेतुः
श्रीदिव्यमङ्गलशुभाश्रयदिव्यमूर्तिः ॥ १० ॥

इस प्रकार पाप समुद्रको सुखाने वाले सर्व श्रेष्ठ शुभाश्रय दिव्य मंगलविग्रह (शरीर) वाले दिव्यमूर्ति वाले गरुड़ की ध्वजा बनाने वाले और उसके ऊपर बैठकर घूमने वाले देखो वे तुह्मारे उद्धारके लिये प्रगट हुए हैं।

इस गाथामें शुभाश्रय दिव्य मूर्ति का जो वर्णन आया है उस को यदि यहाँ लिखा जाय तो बहुत विस्तार हो जायगा। इसलिये जिन सज्जनों को शुभाश्रय प्रकरण देखना हो वे श्रीविष्णु पुराण का प्रथम अंश अध्याय २२ श्लोक ६७ से देखकर अपनी शंका निवृत्त करलें।

यहाँ इतनी बात का ध्यान रखना चाहिये कि गरुड़ कोई पक्षी विशेष नहीं है, किन्तु वेदों की अधिष्ठात्री देवता जिसको शुक्ल यजुर्वेद अध्याय १२ कण्डिका ४ में विस्तार से वर्णन किया है, वही है अर्थात् वेदों से ही ईश्वर भली भाँति प्रकाशित होता है। ईश्वर की ध्वजा वेद है ॥ १० ॥

* दशक पाठफलम् *

श्रीमाधवस्तुतिपरं किल दोषहीनं ।
साहस्रमाह शुभमेव शठारिसूरिः ॥
तत्रापि दिव्य दशकं तदिदं तु भक्त्या ।
ये ये पठन्ति ननु ते भवबन्धमुक्ताः ॥११॥

सर्व दोषरहित माधवकी स्तुतिको बतलाने वाली निर्दोष सहस्र गाथा को शठकोप मुनिने बनाया है। उसमें इस दिव्य दशक को जो भक्ति भावसे पढ़ेंगे वे संसार बन्धन से छूट कर नित्यानन्द मोक्षके भागी बन जायगे।

* इति श्री सहस्रगीतौ प्रथमशतके पञ्चदशकं समाप्तम् *

अथसहस्रगीतौ प्रथमशतके सप्तमदशकारंभः

इस दशकमें आल्वार ने पूजन में सुलभ भगवान का पूजन भी सुख रूपही है
इस बात का प्रति पादन किया है ।

❀ प्रथमगाथा ❀

आत्मावलोकभरिताभवबन्धमुक्त्यै ।
तेजः प्रभावभरिता अपि धार्मिकाग्र्यम् ॥
श्रीचक्रपाणिमनघं परमं पवित्रं ।
प्राप्यं वहन्त ननु साधन मामनन्ति ॥१॥

अये तत्वज्ञान के भार ढोने वालों और दिव्य तेज रूप निराकार ईश्वर के उपासको आप यदि संसार बन्धन से मुक्त होना चाहते हो तो (धर्मो धर्मविदुत्तमः सहस्र ४३) इस शास्त्र प्रमाणानुसार सर्व धर्म तत्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ चक्रपाणि सर्व दोषरहित परम पवित्र परमात्मा ही को आराधन करो वह स्वयं अपने दिव्य धाम में तुमको पहुँचा कर निस्यसुखी बना देगा ।

शास्त्रों में ज्ञान मार्ग और उपासना मार्ग ये दो भगवत्प्राप्ति के साधन कहे हैं । इनमें तत्वज्ञान (स्वात्म ज्ञान से कैवल्य प्राप्त करना पहला सिद्धान्त है । और निर्गुण निराकार की योगाभ्यास द्वारा उपासना करके उसमें मिल जाना दूसरा सिद्धान्त है) । ये दोनों ही प्रकार की मुक्ति आनन्द शून्य है । प्रथम तो जैसे अपना माँस स्वयं खाने से आनन्द नहीं आता अथवा कोई युवती अपने कुचों को अपने हाथों से मर्दन करने से आनन्द प्राप्त नहीं कर सकती इसी प्रकार स्वात्म प्राप्ति (कैवल्य) में कोई आनन्द नहीं है ।

दूसरे में तो अपना स्वरूप ही नष्ट होजाता है जब स्वरूप ही नहीं तब आनन्द किसको और कैसे अतएव यह भी आनन्द शून्य ही है । इसलिए आल्वार ने दया करके दोनों को उपदेश दिया है कि भगवत्प्राप्ति में आनन्द है जैसे (सोऽश्नुते सर्वान्कामान सह ब्रह्मणा विपश्चिता) इत्यादि वेद प्रमाण से नाना प्रकारका आनन्द भोगने के

लिए संसार बन्धन से छूटना चाहते हो तौ चक्रधारी साकरकी पूजा करो वह (तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात् । भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्) अपनी प्रतिज्ञानुसार तुमको संसार बन्धन से मुक्तकरके नित्यानन्द भोगनेके लिए परमपदमें पहुँचा देगा ॥१॥

❀ द्वितीय गाथा ❀

भक्तान्न पाप सरणिष्वपि चेन्द्रियाणां
प्राज्यावयेदय मिहाच्युत इन्दिरेशः ॥
दिव्यौषधं च निधिरस्ति समस्त लोका
नान्दयन्प्रभुरहो मम गोपबालः ॥२॥

पूर्व गाथा में ईश्वर विमुख तत्त्वज्ञानियों को समझाया जो भगवद्भक्त है उनको प्रभु कैसे रखते हैं यह बताते हैं। हे भक्तगण गोपबालक वह मेरा प्रभु समस्त भक्तों के दुःख दूर करने को औषध रूप हो जाता है। भक्तों के इच्छित कार्य करने को अटूट खजाना हो जाता है। भक्तों के ऊपर पंचेन्द्रिय (जिह्वा त्वचा, घ्राण नेत्र श्रोत्र रूप शत्रुओं का प्रभाव भी नहीं होने देता। और वह लक्ष्मीपति भक्तों की समस्त विपत्ति को दूर करने को सदा तैयार रहता है।

अहह वह तौ इतना दयालु है कि हम लोगों के कष्ट दूर करने को ही वैकुण्ठ धाम के दिव्य सुखों को छोड़ कर गोपपालक बनकर गौओं के पीछे बन बन मारा फिरता है।

(या कंस मुख्य नृप कीट निवर्हणोत्था सा निर्जितित्रिजगत स्तव नैव कीर्तिः। गोपालनादि यदिदं भवदीयकर्मेत्यार्द्री करोति विदुषां हृदयं तदेतत् । अतिसानुप २४)

प्रभो त्रिलोकी को जीतने वाले आपने कंसादि कीटों को मारा यह इतना महत्व नहीं रखता जितना कि आपका गोपालन कर्म रखता है। दयार्द्र आपका गोपालन कर्मही विद्वानोंके हृदयको पिघला देता है ॥२॥

❀ तृतीयगाथा ❀

गोपाल बालमपि गोपवंशं 'निबद्धं' ।
माणिक्य भासमिह मायि सुधारसं मे ॥
आपीय सन्ततमहं हतवान्प्रमोहं ।
मायाभवं प्रकृतिजं मम दुःसहं तम् ॥३॥

मेरा यह माणिक समान रंग वाला गोपाल बालक जिसको गोपियों ने बाँध लिया था। उसी के ध्यानामृत से मेरा मोह जाल टूट गया। उस मायावी के ही प्रभाव ने आज मुझे इतना समर्थ बना दिया कि माया के रचे प्राकृतिक सम्पूर्ण मोहको हटाने की शक्ति पूर्ण रूप से मुझे प्राप्त है।

अये भक्तवर्ग-यह माया का जाल इतना जटिल है कि यदि चेतन इसको अपनी शक्ति से हटा नहीं सकता

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥गी०

भगवान् इस माया जाल को दुस्तर स्वमुखसे कह रहे हैं। परन्तु शरणागतों के लिए उसे सुलभ भी बना रहे हैं। जो मार्ग पग चलने से दूर और कठिन होता है वही सवारी (मोटर आदि) से सुलभ हो जाता है जो माया जाल शरणागति शून्यों को दुस्तर है वही शरणागति वालों को सुलभ हो जाता है।

इसी भाव को एक ईश्वर भक्त ने अपने स्वर में क्या अच्छा कहा है कि—

मेरे एक राम नाम आधार।
ढूंढ थक्यो पर मिल्यो न दूजो विपति पड़े को यार।
देखे सुने अनेक महीपति पण्डित साहूकार।
यद्यपि नीति धर्म धन संयुत नहिं अस परम उदार।
मात पिता भ्राता नारी सुत सेवक बन्धु अपार।
विपद् काल में कोउ न संगी स्वार्थ भरा संसार।
करि करुणा दयालु गुरु दीन्हो राम नाम सुखसार।
दुस्तर भव सागर महं अटक्यो बेड़ा है गयो पार।

❀ चतुर्थ गाथा ❀

मोहं प्रणाश्य मम यो हृदि नित्यवासी ।
ज्ञानादि वृद्धि कृदसौ महसां च राशिः ॥
देवाधि देवमपि मेऽनुमतिं दधानं ।
चेतोहरं मम कथं वत सन्त्यजेयम् ॥४॥

अत्यन्त प्रकाश वाला देवाधि देव वही तो अब मेरे हृदय में नित्य वास करने लग गया है । तभी तो हृदय के मोहान्धकार को दूर करके मेरे ज्ञान को उसने बढ़ा दिया है । अब तो में जो मनोरथ करता हूँ और उसे जो कहता हूँ उस सब मेरे मनोरथ और कहने को वह पूरा कर देना है । ओहो अबतो उसने मेरे मनको ऐसा हरण कर लिया है कि उसको छोड़ना मेरी शक्ति के बाहर की बात है ।

भक्तवर (रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवती) वह परमात्मा रस रूप है उसके आनन्द रस का चसका जिसको लगा है वह उसे कैसे छोड़ सकेगा । संसार में भी जिसको जिसका रस लग जाता है फिर वह उस रस को प्राणान्त होने पर भी नहीं छोड़ सकता यह तो सांसारिक दुःखमय रसों की बात है फिर वह नित्या नन्द रस जो नित्य प्रति नूतन आनन्द को देने वाला है । उस रस को छोड़ने वाला संसार में कौन है । इसी रस के रसिक किसी विद्वान् ने कहा है कि

मुग्धं मां निगदन्तु नीतिनिपुणा भ्रान्तं मुहुर्वैदिका ।
मन्दं बान्धवसंचया जड़धियं मुक्तादराः सोदराः ॥
उन्मत्तं धनिनो विवेकचतुरा कामं महादाँभिकं ।
मोक्तुं न क्षमते मनागपि मनो गोविन्दपादस्पृहाम् ॥

अर्थ–नीति चतुर भले ही मुझे मूर्ख कहें । वेदोक्तकर्म करने वाले भले ही पागल कहें । सम्बन्धी जन भाग्य हीन भले ही कहें । सगे भाई भले ही जड़ बुद्धि कहें । धनी लोग भले ही शैतान कहें । ज्ञानी लोग भले ही दम्भी (झूंठा धर्म करने वाला) कहें परन्तु मेरा चित्त गोविन्द चरण चर्चा को नहीं छोड़ना चाहता । यही दशा हमारे आलवार की हुई अब वे उसे कैसे छोड़ेंगे ॥४॥

* पंचमगाथा *

ज्ञानप्रदीपमिह मे हृदि संप्रविश्य
सञ्जीवयन्तमपि मे प्रभुमद्भुतैस्तैः ॥
वृत्तैश्च हन्त तरुणीरपि गोपिकास्ता
जित्वा विटायितममुं तु कथं त्यजेयम् ॥५॥

उस प्रभुने मेरे हृदय को सिंहासन बनाकर उस पर बैठकर मेरे ज्ञान रूपी दीपक को प्रकाशित किया है। और अज्ञान विपसे मृत प्रापको जिवाया है। उसने गोपियोंके घरों में जाकर माखन चोरने के बहाने से उनके नेत्रों में सुन्दर अपनी मूर्ति दिखाकर उन गोपियों के चित्त को चुराकर अपने वशमें कर लिया था मैं उसको किस प्रकार छोड़ने का साहस करूं।

गोपिका परमात्मा की परम भक्त थी आप भक्तवत्सल हैं अपनी चीज को संभारना प्रत्येक स्वामी का काम है। तो जब उसने (एवेमाः स्त्रियो वनचरी व्यभिचार दुष्टा) वनचरी व्यभिचार दुष्टा स्त्रियोंको ऐसा अपनाया कि वे पति पुत्र गृहादिक त्याग कर भक्तोंकी उच्च कोटि और शिष्टोंसे प्रणाम करने योग्य होगईं जैसा कि (वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः भाग १० स्कंधा) उद्धव ने कहा है तब फिर मैं उस परमकृपालु हृदयघन को कैसे छोड़ूं ऐसा आलवार का अभिप्राय है।

* षष्ठगाथा *

स्वामीधरोद्धरण कृत्तुलसीवृतश्री
मौलिप्रभूषितशिरा मम नायकोऽसौ ॥
मायामयो यदि भवेद्धतगन्तुकामः
सालच्छिदं कथमहं तमिहानुमन्ये ॥३॥

पृथ्वीके उद्धार करने वाला वह मेरा स्वामी जो जनसाधारण सुलभ तुलसीको ही अपने मस्तक पर चढ़ाता है। अनेक मायधारी ·· ह मेरा प्राणनायक जिसने कि साल वृक्षों को काट डाला था यदि

मेरे हृदयमें से बाहर जाने लगे तौ मैं उसको कैसे जाने दूंगा कभी नहीं। शंका यह है कि मुनिजी आपके हृदयमें जो परमात्मा बैठे हैं वे अपनी इच्छा से बे तुम्हारे तावेदार तौ है ही नही जो तुमको छोड़के नही जायगे वे चले गये तौ फिर तुम क्या करोगे । इस शंकाके उत्तर रूप यह गाथा है । आप कहते हैं कि जैसे मैं स्वामीके परतंत्रहूँ वैसे वह भी तौ मेरे परतंत्र है उनने कहा है (अहं भक्तपराधीनः) कि मैं भक्ताधीन हूँ उसने हमारे लिये पृथ्वी का उद्धार किया उसने भक्त सुग्रीव की प्रार्थना से साल वृक्षों को काटा उसने भक्त भीष्मकी प्रतिज्ञा पूरी करने को अपनी प्रतिज्ञा छोड़दी जब वे सदा से भक्तोंके वस होते आये हैं तौ अब क्यों नई बात करेंगे । अत एव अब हम उनको हृदयमें से नही-जाने देंगे ।

* सप्तमगाथा *

नाहं स्वयं तमिह मप्यनुमत्य कुर्वे
सोऽयं स्वयं मम मनोऽपि च वञ्चयित्वा ॥
देहे प्रविश्य मम चात्मनि संगतस्सन्
किं मां च दूरमनु मन्यत एव गन्तुम् ॥७॥

मैंने न तौ उस प्रभुको अपने हृदय में बैठने को कहा और न उसने इस बातकी मुझसे अनुमति माँगी वह तौ स्वयं अपनी इच्छा से बलात्कार से मेरे मनमें आकर विराजमान होगया है । जब हमारे विषयासक्त विमुख मनको उसने अपनी ओर खैंचकर उसमें बैठकर उसके मलों को नाश कर दिया है तौ वह हमको किस बहाने से छोड़ कर जायगा ।

हम रजोगुण तमोगुण प्रकृति वाले हैं हमारा मन सदा प्रभुको छोड़कर विषयोंकी ओर दौड़ता है । जैसे मलिन और विमुख बालक को माता बलसे पकड़कर मल धोकर छाती से लगाती है । इसी प्रकार परम दयालु प्रभु भी (हठेन केनापि वयं शठेन दासीकृता गोपवधूविटेन) अपने से विमुख काम क्रोधादि मल वाले अधम जीवों को बलात्कार से उनके मलोंको नाश करके अपनी दिव्य गोदी (परमपद) में बैठा लेता है और फिर उसको नहीं छोड़ता ॥७॥

॥ अष्टमगाथा ॥

मां दूरतः स्वयमसौ यदि सन्त्यजेन्मे
चित्तं तथाऽपि न वियोजयितुं समर्थः ॥
नीलां सुदीर्घशुभवृत्तभुजां प्रहृष्टः
संश्लिष्य भाति यदसौ दिवि सूरिनाथः ॥८॥

यदि वह मेरे को छोड़कर दूर चला भी जाय परन्तु वह मेरे मन में से कभी किसी प्रकार भी नहीं हट सकता। उसने सुन्दर लम्बी और गोल २ भुजा वाली नीलादेवी को बड़े हर्ष के साथ अपने हृदय से लगाया और श्रीदिव्यवैकुण्ठमें नित्य सूरियों को अंगीकार करके फिर नहीं त्यागता।

संसार में नियम है कि (स्वभावो दुरत्यजो नाथः) कोई भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकता। इसी प्रकार ईश्वर के स्वभाव में भी वात्सल्य सौशील्यादि गुण ऐसे हैं कि उनको वह छोड़ नहीं सकता। इन गुणों के वशीभूत होकर तो उसने हमको ऐसा प्रेमी भक्त बना दिया कि एक क्षण भर भी उसका वियोग नहीं सहा जाता। उनका वात्सल्य गुण उनकी स्वतन्त्रता को नष्ट कर देता है।

इसी भक्त परवसताको भक्तवर सूरदास ने कहा है कि—

हाथ छुड़ाये जातु है निबल जानि कै मोय।
हिरदेमें से जायगौ तब जानूंगो तोय ॥

सुरीन्द्रनाथमपि चादि विभुं सुराणां
दिव्यामृतप्रदममुं किलगोपबालम् ॥
आत्मा मम स्वयमुपेत्य च सं प्रविश्य
स्वैरं विहृत्य मिलितोऽस्ति कथं त्यजेत्तम् ॥९॥

यह गोप बालक जिसने मोहनी रूप से देवताओं को दिव्य अमृत पिलाया था। जो देवता और नित्य मुक्तों का सर्व श्रेष्ठ स्वामी है। जो मेरी आत्मा में आपही आप आकर उसमें घुसकर और अनेक प्रकार की स्वच्छन्द लीला करके उसमें ऐसा मिल गया है कि अब उसमें से अलग करना बड़ा कठिन है।

' आत्मा परमात्मा का (ऐतदात्म्यमिदं सर्वम् छां०) इस श्रुत्यनुसार तादात्म्य (अपृथक् सिद्ध) सम्बन्ध है अपृथक् सिद्धसंबन्ध वाले कभी अलग नहीं होते जैसे पुष्पसे गन्ध गुड़से मिठास नीमसे कडुआपन सूर्य से प्रकाश ईश्वर से कल्याण गुण कभी किसी उपायसे अलग नहीं हो सकते । इसी प्रकार आत्मा परमात्मा से कभी अलग नहीं होसकता नदीका जल समुद्र से जब मिल जाता है तब उसको सिद्ध योगी के बिना दूसरा नहीं जान सकता न अलग कर सकता है इस प्रकार ईश्वर में मिली आत्मा को तो कोई किसी प्रकार अलग कर ही नहीं सकता ।

विश्लेषिणं किल वियोजयति स्वयं यः ।
संश्लेषि संगतिरतोऽसुलभोऽस्तिवीरः ॥
मन्नायकोऽप्रतिभटस्स्वगुणैरनन्तैः ।
संकीर्त्य तं ननु दिवा निश मस्म्यतृप्तः ॥१०॥

जो नर उस परमात्मा से विमुख हैं वे परमात्मा भी उनको छोड़ देते हैं । जो सर्व भाव से उसको भजते हैं वह परमात्मा भी उनको सर्व प्रकार से स्वीकार करता है । विमुखों को वह सदा दुर्लभ है । वह मेरा स्वामी ऐसे दिव्य और अनन्त गुण वाला है कि उसकी समान कोटिका संसार में दूसरा कोई नहीं है । उसके गुणों को दिन रात्रि कीर्तन करने पर भी मेरी तृप्ति नहीं होती ॥

भृङ्गावृतार्द्र तुलसीधर मौलिदीपं
स्तुत्वा शठारिमुनिराह शुभं सहस्रम् ॥
तत्रेदमस्तिदशकं शुभमार्तिमालां
सर्वां च हन्ति जगतां सहसैव दिव्यम् ॥११॥

भ्रमर जिस पर गुञ्जार रहे हैं ऐसी हरी तुलसी को मस्तकपे धारण करने वाले परमात्माकी स्तुति करके शठकोप मुनिने जो गाथा सहस्र बनाया है । उसमें इस दिव्य कल्याण क रक दशक को जो पढ़ेंगे उनके सम्पूर्ण कष्ट बहुतही जल्दी नष्ट होकर वे सुखीहो जायंगे॥११॥

इति श्रीमद्गाथीतो प्रथमशतके सप्तमदशकं समाप्तम् ॥

अथसहस्रगीतौ प्रथमशतके अष्ठमदशकारंभः

इस दशकमें आल्वार ने यह बताया है कि भगवान् आर्जवगुण के वश होकर आश्रित को स्वयं स्वीकार कर लेते हैं।

* प्रथमगाथा *

आरुह्य गरुडं भाति दिव्यां च तुलसीं वहन् ।
नित्यसूरिवरैर्नित्यं सेव्योऽस्ति दिवि माधवः ॥१॥

भक्तगण-वह माधव जिसकी नित्य विभूतिमें दिव्य पार्षदगण नित्य सेवा करते हैं । सुगन्ध और हरी दिव्य तुलसीकी माला धारण करके गरुडपै चढ़कर वह आप लोगोंको दर्शन देने के लिये अपने सुन्दर दिव्य मङ्गल विग्रह को चमका रहा है ।

तुलसी जडवृक्ष है । गरुड़कूर पक्षी है तो भी हमारे प्रभु इतने सुलभ हैं कि जड और पक्षियों को भी ऐसा अपनाये है कि उनके विना न तो एक क्षण रह सकते हैं और न उनके विना कोई कार्य ही कर सकते हैं । फिर चेतन मनुष्य शरीरधारी शरणागत को क्यों छोड़ेंगे ।

दूसरा भाव यह है कि दिव्य पार्षदगण स्वयं योगसिद्ध है । प्रभु की इच्छानुसार वे वृक्ष पक्षी सर्पादिक अनेक शरीर धारण कर के प्रभुका सर्व विधकैङ्कर्य करने को सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्थामें तयार रहते हैं ॥१॥

* द्वितीय गाथा *

सर्वेश्वरोऽप्यसौ केशिहन्ता कृष्णोऽब्जलोचनः ।
आश्रितार्थं स्वयं जातः सत्वमाहात्म्य शोभितः ॥२॥

यह प्रभु सकल जड़ प्राणिवृन्दका ईश्वर होकरभी उसने स्वाश्रित भक्तों की कामना पूरी करने के लिए सुन्दर रक्त कमल लोचन वाले सर्वदिव्यगुण सम्पन्न कृष्ण रूप से अवतार धारण किया और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये उसने केशी आदिक दुष्टोंको उसने मारा था ।

आप भक्तोंके ऊपर इतना स्नेह करतेहै कि श्रीवैकुण्ठ के दिव्य सुखों को छोड़कर पृथ्वी में मनुष्य शरीर धारण करके दुष्टदलनादि अनेक कष्ट उठाकर भी भक्तों की रक्षा करते हैं ॥२॥

❀ तृतीयगाथा ❀

देवानामपि मर्त्यानां चक्षुर्यो वेंकटाचले ।
सूरीणामपि सेव्योऽसौ भाति रम्ये सुशीतले ॥३॥

जिस प्रभुकी नित्यसूरि सदा सेवा किया करते हैं, जो देवता और मनुष्यों का दिव्य नेत्र है। वही अत्यन्त शीतल छाया से रमणीय श्रीवेंकटाचल पर्वत के ऊपर प्रकाशित हो रहा है।

परस्वरूप में तो ईश्वर का अनुभव केवल नित्य मुक्त ही करते हैं। व्यूह का भी यही हाल है। विभव सदा किसी को भी सुलभ नहीं है। अन्तर्यामी का योगी जन ही अनुभव करते हैं। परन्तु आर्चावतार (मूर्तिरूप) का सर्व मनुष्य, पशु, पत्ती तक भी अनुभव कर सकते हैं ॥३॥

❀ चतुर्थ गाथा ❀

धृत्वा महाद्रिमप्येष निरायासोऽस्ति वीर्यवान् ।
आपद्बन्धुर्मम स्वामी स्मराम्यस्य यशः सदा ॥४॥

आपत् काल में बन्धु के समान रक्षा करने वाला यह मेरा स्वामी है। जिसने सात वर्ष की अवस्था में बड़े पर्वत गोवर्द्धन को धारण किया था। और जिसको ऐसा करने पर भी किसी प्रकार श्रम नहीं हुआ जो बड़ा बलवान् है। मैं इसी की कीर्ति को सदा स्मरण और कीर्तन करता हूँ।

आश्रितों के लिए आप इतने सुलभ हैं कि देवदेव इन्द्र के साथ भी बैर बांध कर छोटी अवस्था में बड़े पर्वत को सात दिवस अकेले धारण करते रहे पर अपने मन में श्रम नहीं माना ॥४॥

❀ पंचम गाथा ❀

नवनीतं सदाभुङ्क्ते स्वयं बाहू प्रसार्य यः ।
स मे वपुषि संक्तो भाति सत्योऽनृतं त्यजन् ॥५॥

ओहो ! यह तो भक्तों के सामने दोनों हाथ पसार के माखन मांग कर अथवा चोर कर खाते हैं। अब तो उसने अपनी चंचलता छोड़कर मेरे शरीर में सचा सा होकर, यह बड़ा आसक्त हो रहा है।

इसी गाथा के भाव को श्रीकूरेशस्वामी ने प्रकारन्तर से यों कहा है।

यन्नाथ नाथ नवनी मचूरस्त्वं।
तच्छादनाय यदि ते मतिराविरासीत् ॥
किं मुग्ध दिग्ध ममुना करपल्लवन्ते।
गात्रे प्रमृज्य निरगाः किल निर्विशंकः ॥

हे नाथ आपने माखन चुराया यह तो बात ठीक हुई, किन्तु उस चोरी को छिपाने के लिए जो आप माखन लिसे हाथों को अपने शरीर से पोंछकर बाहर भागे थे, यह चतुराई आश्चर्य जनक है।

❀ षष्ठगाथा ❀

संश्लिष्य मम चात्मानं कृत्वा स्वीयं मम प्रभु।
सर्वेन्द्रियहरो भाति वामनो धरणीं भजन् ॥६॥

यह मेरा स्वामी जिसने वामन रूप धारण करके बलिराजा से पृथ्वी को छलसे छीन लिया था। वही तो मेरे मन और शरीर को स्वीकार (अपना) करके उससे मिलकर बैठा है। उसने मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपनी ओर हरण कर लिया है। और वह ऐसा करके मेरे मनमें प्रकाशित हो रहा है।

प्रभु जिसके ऊपर कृपा करते हैं उसके सर्वस्व को बलात्कार से अपना बना लेते हैं। बलि ने आपके लिये थोड़ा सा ही देना चाहा परन्तु आपने तो उसकी इच्छा के विरुद्ध भी उसका राज्य, धन, शरीर और अहंकार भी हर लिया। इसी प्रकार हम यदि मनसे थोड़ा भी उसका ध्यान करें, परन्तु वह तो कृपा करके हमारे धन जन इन्द्रिय और अहंकार को भी हरण करके हमें निर्दोष बनाकर स्वीकार कर लेता है ॥६॥

सप्तमगाथा।

सप्तर्षिम महर्नाऽसौ सप्तलोकाँ च भक्षयन्।
परमे धाम्नि च स्थित्वा मम चित्तानुगः प्रभुः ॥७॥

यह प्रभु जिसने नीलादेवी के मिलने में विरोध करने वाले सात बैलों को नाथ लिया था। जो प्रलय आने पर सम्पूर्ण संसार को खाकर

पेट में रख लेता है। वह परमपद में आनन्द से रहता हुआ भी उसे छोड़ कर मेरे चित्त के पीछे पड़ा है। भक्तवत्सल जिसके ऊपर कृपा करते हैं उसके मन को ऐसा चुराते हैं कि फिर उसका मन उन्हीं में आसक्त हो जाता है। इसी भाव को एक विद्वान ने क्या अच्छा दर्शाया है।

अपहरति मनो मे कोप्ययं कृष्णचौरः
प्रणतदुरितचौरः पूतना प्राण चौरः ॥
वलयवसनचौरो बालगोपांगनानां
नयन हृदयः चौरः पश्यतां सज्जनानाम् ॥

अहह ? यह कृष्ण (काला) चोर मेरे मनको चुराता है। अरे पकड़ो पकड़ो हैं भाई इस चोर का पकड़ना बड़ी टेढ़ी खीर है यह बड़ा नामी चोर है यह भक्तों के पापको चुरा लेता है।

पूतना के तो प्राण तक इसने चुरा लिए। और विचारी ब्रज की छोकरियों के तो इसने जेवर और वस्त्र तक चुराये थे। इसको जो देखता है उसके तो नेत्र और मन को ही चुरा लेता है। इसे पकड़ना सहज बात नहीं है ॥७॥

❀ अष्टम गाथा ❀

गोपवेषधरोऽप्येष स्वयं मत्स्यवराहवत् ।
अवतीर्णोऽभव न्मह्यमवतारा असंख्यकाः ॥ ८ ॥

यह मेरे लिये गोप वेश धरके आया हो ऐसा ही नहीं, किन्तु इसके असंख्य अवतार हैं। इसी ने मत्स्य और वराह अवतार भी तो धारण किया था। अर्थात् हमारे उद्धार के लिये उसने इतने अवतार धारण किये हैं कि उनको गिनना भी कठिन है। वेद भी जिसको (विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममेरजांसि) कहते हैं कि कोई कभी पृथ्वी के रजकणों को गिन भी ले, परन्तु विष्णु के वीर्य प्रकाशक अवतारों को कोई नहीं गिन सकता ॥ ८ ॥

❀ नवम गाथा ❀

शंखचक्रधरो भाति रम्ये भुजयुगे स्वयं ।
मम प्रभुरसौ दीप्तः सर्वतोऽप्यवतारतः ॥ ९ ॥

अत्यन्त तेज वाला यह मेरा प्रभु सैकड़ों अवतार धारण करता हुआ भी अपने सुन्दर दोनों भुजों में शंख चक्र धारण करता ही प्रकाशित होता है।

तान्त्रिक लोग किसी को वश करने जाते हैं तो सिद्ध औषधी अपने हाथ में लेकर जाते हैं। इसी प्रकार हमारे स्वामी भी भक्तों को वश करने के लिये प्रत्येक अवतार में शंख चक्र धारण करके ही रहते हैं। शंख चक्रादि धारण करने का प्रयोजन केवल यही है कि शरणागत भक्तों की रक्षा करने में देरी न होजाय, इसीलिये सदा पंचायुधों को धारण करके ही रहते हैं। यही भाव हमारे अन्य आचार्यों ने भी कहा है—

पातुं प्रणतरक्षायां विलंबमसहन्निव।
सदा पंचायुधीं बिभ्रत्स नः श्रीरङ्गनायकः॥

* दशमगाथा *

ईश्वरः सर्वलोकांश्च पादे नाक्रम्य रक्षिता।
सुशीलो भाति मन्नाथो वेदसागरकीर्तितः॥ १०॥

सुलभ स्वभाव वाला वह मेरा स्वामी और सर्व लोकों का स्वामी उसने त्रिविक्रम होकर सम्पूर्ण लोकों को अपने चरणों से नापकर रक्षा करी थी, उसके प्रभाव को वेदों ने विस्तार से कहा है। वेदों में त्रिविक्र अवतार का महत्व बहुत लिखा है। जैसे—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पांसुरे। ५—१५
त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ततो धर्माणि धारयन्॥
शुक्लयजु० ३४ | ४३

इन्हीं मन्त्रों के अर्थ को कूरेश स्वामी ने भी कहा है कि—
त्वन्निर्मिता जठरगा च तव त्रिलोकी, किं भिक्षणादियमृते भवता दुरापा।
मध्ये तथा तु न विचक्रमिषे जगच्चे,त्वद्विक्रमैः कथमिव श्रुतिरश्चिता स्यात्

हे प्रभो यह त्रिलोकी आपकी बनाई और आपके उदर में बसती है। क्या बिना भोग्य माँगे आपको वह नहीं मिल सकती हाँ! इसी बहाने से आप यदि इस जगत् को नहीं नापते तो आपके पराक्रम से वेद मंत्र कैसे शोभा प्राप्त करते, भिक्षा के बहाने से संसार को आपने नापा तो वेद मंत्रों में उन्हींकी प्रसंशा होने लगी॥१०॥

* दशकपाठफलम् *

रक्षितुर्निम्नगान् विष्णोरार्जवं कीर्तयन्मुनिः ।
शठारिसहसाहस्रं तत्रेदं दशकं शुभम् ॥ ११ ॥

शरणागतों की रक्षा करने वाले विष्णु के आर्जव गुण को अनुभव और कीर्तन करने वाले शठकोप मुनिनें सहस्र गाथा जो बनाई उसमें पाठकों का कल्याण करने वाला यह दशक है ।

बहुत से सज्जन यह शंका करेंगे कि (आर्जव गुण) किसको कहते हैं इसलिये आर्जव शब्द का अर्थ बताना अत्यावश्यक है । ऋजु शब्द का अर्थ है सीधा चलना ।

ऋजु-गति स्थानार्जनोपार्जनेषु ऋजति सरलं गच्छतीति विग्रहे ऋजधातो रौणादिक उक्प्रत्यये ऋजुशब्दो निष्पन्नः । तत ऋजोर्भाव इति विग्रहे पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥ ५ । १ । १२२ इति वै कल्पिके ष्यण् प्रत्यये आदिपदवृद्धौ- आर्जवम्-इति ॥

इसकी विशेष व्याख्या हम इस प्रकार कर सकते हैं कि-

समोहमित्याह परः पराणां पार्थाय कृष्णोहि गुणेनयेन ।
रागादि शून्यस्य गुणं भजामि तमार्जवं श्रीव्रजभूषणस्य ॥

अर्थात् जिस गुण के वशीभूत होकर भगवान् सब में सम भाव से रह कर भी भक्तों का पक्षपात करते हैं । परमात्मा के उस आर्जव गुण का भजन भक्तों को अवश्य करना चाहिये ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ प्रथमशतके अष्टमदशकं समाप्तम् ॥

अथसहस्रगीतौ प्रथमशतके नवमदशकारम्भः

इस दशकमें आलवारसे जो प्रभुनें अपने सर्वाङ्गसे मिलकर उन्हें अपनाया इसी का वर्णनहै ॥

* प्रथमगाथा *

सर्वाचेतनसंततिं निकटतोऽदूरेऽपि दूरे स्थिता
मेवं चेतन सन्ततिं च सकलां स्वस्मिन् विधायापि यः ॥
सृष्ट्वा चाऽपि पुनः सरक्षणपरः सर्वान्तरात्मा स्वयं ।
स्वामी कृष्णविभुर्ममामृतरसः श्रीशोऽस्ति चाग्रे मम ॥१॥

—जो हमारा प्रभु अन्त समय सम्पूर्ण अचिद्वर्ग (माया का

पसारा) को जो उसके पास और दूर में रहता है। तथा चिद्वर्ग (प्राणी समूह) को जो अपने भीतर रख लेता है और फिर सृष्टि का समय आने पर चित् अचित् दोनों वर्गों को मिश्रण करके नाम रूप धारी बनाकर सृष्टि रचकर उसके भीतर अन्तर्यामी रूप से रहता है और जो स्वयं सबकी रक्षा करता है। सर्व व्यापक कृष्ण जो हमारे लिये अमृत के समान स्वादिष्ट है। वही लक्ष्मीपति मेरे आगे आकर खड़ा है। सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा प्रलय करने वाला सब के हृदय में अन्तरात्मा होकर रहने वाला कृष्ण अब मेरे को छोड़ कर अन्यत्र जाने में असमर्थ सा होगया यह भाव है ॥ १ ॥

* द्वितीयगाथा *

कुर्वंस्तामवतारसन्ततिमपि स्वेच्छाबलात्प्राक्तने
काले दिव्यवराहमूर्तिरवनीमुद्धृत्य यः केशवः ॥
मन्नाथः किल हस्तिशृंगभिदसौ देवैरवेद्यः स्वयं
गम्भीरामृतवारिधौ महति यः शेते स पार्श्वेऽस्ति मे ॥२॥

यह मेरा प्रभु सुन्दर घुँघराले केश वाला जो पहले समय में अत्यन्त गम्भीर मीठे जल के (अथवा क्षीर) समुद्र में सोता है। जिसने अपनी इच्छा से असंख्य अवतार धारण किये हैं। जिसने दिव्यवराह मूर्ति धारण करके भूमि का उद्धार किया था और मत वाले कुवलयापीड के दन्तों को उखाड़ कर अपना प्रभाव दिखाया था, जिसको देवता भी यथार्थ रूप से नहीं जान सकते वही तो आज मेरे पास में आकर बैठा है।

सृष्टि की आदि में जब यह भूमि जल में डूबी हुई थी उस समय सम्पूर्ण देवगण घबरा रहे थे कि इस भूमि का उ ार कैसे हो। जब उनको कोई उपाय धरोद्धार का नहीं सूझा तो परमात्मा से प्रार्थना करने लगे। जल के प्रवाह में सूकर जैसी सरलता से अपना कार्य कर सकता है वैसा दूसरा जीव नहीं कर सकता। यही सोच विचार कर परमात्मा ने वराह का शरीर धारण किया और भूमि का उद्धार करके उसे सृष्टि बसने योग्य बनाया, इस वराह अवतार की और धरोद्धरण की चर्चा वेदों में भी है—

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
मृत्तिके हन मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥
तैत्तिरीयारण्यक प्र० १० अ० १

हे भूमि देवि दुष्टदमन बाहुवाले कृष्ण ने आपका उद्धार किया ईश्वर का स्पर्श होने से आप परम पवित्र हो। यदि हमने कोई पाप किया हो तो उसे तुम दूर करदो ॥ २ ॥

❀ तृतीयगाथा ❀

नित्यानन्द मुनिर्मलात्मविभवः सूरीन्द्रनाथः स्वयं ।
चादिर्नीलमणि प्रभुः सुरुचिराम्भोजाक्षियुग्मो हरिः ॥
दीव्यत्यच्चगरुत्मदाश्रय इह श्रीदेव्युपेतः स्वयं ।
संश्लिष्याद्य मया सहाद्भुतरसं दत्वा न मांन्तु त्यजेत् ॥३॥

आज मेरा प्रभु यह हरि निर्मल नित्यानन्द स्वरूप वाला जो नित्य मुक्तों का स्वामी है। जो सर्व पदार्थों का आदि कारण है। नीलमणि के समान वर्णवाला है। सुन्दर कमल से नेत्र जोड़ा वाला है। वही श्रीदेवीको साथ में लेकर गरुड़ पर सवार होकर क्रीड़ा करने वाला है। वह मेरे शरीर से मिलकर मुझे आनन्द रस देकर क्या अब मुझे छोड़ेगा नहीं नहीं अब वह मुझे कभी नहीं छोड़ सकता ॥३॥

❀ चतुर्थ गाथा ❀

संश्लेषै करसाश्च यस्य कमला भूमिश्च नीलास्वयं
यस्यासी दुदरे जगत्रयमपि स्वामी शयानोऽम्बुधौ ॥
मायी योवटवृक्षपत्रशयितः कृष्णः प्रभुः श्रीधरः ।
सोऽयं भाति हि पार्श्वतोमम तनौ नित्यं यशोदासुतः॥४॥

यह हमारा स्वामी जिसके साथ रह कर कमलादेवी भूमिदेवी नीलादेवी ये तीनों आलिंगन रसको भोगती हैं। जो त्रिलोकी को पेट में भर के प्रलय समुद्र में अखण्ड समाधि लगाकर सोता है। वही लक्ष्मी सम्पन्न कृष्ण अपनी माया से छोटा बालक बन कर वट

के वृक्ष के पत्ते में सोया था। वही यशोदा को लाला मेरे शरीर के पास आकर भले प्रकार से प्रकाशित हो रहा है।

* पंचमगाथा *

रुद्रश्चापि चतुर्मुखः शतमुखः सर्वेऽपि चोत्पादिता।
येनेशेन स एव मायि हृदयां तास्तन्यदां चावधीत्॥
तद्भाव हरो हरिर्विषमयं स्तन्यं निपीय स्वयं।
स्वामीचाद्भुत वैभवः स भगवानास्ते हृदेऽञ्जेमम॥५॥

अहह जिस मेरे स्वामीनें रुद्र ब्रह्मा इन्द्रादि सम्पूर्ण देवताओं को उत्पन्न किया है वह अनेक माया वाला सर्व पापों को नाश करने वाला है। उसने स्तन पिवाने वाली पूतनाके दुर्भाव को दूर करनेके लिए विष भरे उसके स्तनों का दूध स्वयं पीकर उसे मार डाला और राक्षस योनि से उसे छुड़ा दिया।

वही भगवान् (ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तेज षड्गुण सम्पन्न) अनेक आश्चर्यों से भरे वैभव वाला मेरे मनमें आकर बैठा है॥५॥

* षष्ठगाथा *

मायी मे हृदयस्थितः किमितरै रेवं विधः स्यादसौ।
देहे चात्मनि मे शरीर्यनिल व ह्न्यात्मापि दूरेऽसताम्॥
भक्तानां सुलभश्च दस्मनसां चिन्ताद्यतीतः स्वयं।
शुद्धः संशयमोहकृच्च जगतां बाहूपरिष्ठो मम॥६॥

अनेक माया रचने वाला यह मेरे हृदय में बैठा है। क्या किसी दूसरे के साथ भी उसने कभी ऐसा प्रेम दिखाया है। मेरे शरीर में आत्मा, वायु, अग्नि रूपभी वही है। वह दुष्ट पुरुषों से तो बहुत दूर है। परन्तु भक्तों के लिए तो बहुत ही सुलभ है (न नमेयं कदाचन) इस प्रकार कहने वाले घमण्डी तो उसका विचार मन में भी नहीं कर पाते। वह स्वयं सर्वदोष शून्य शुद्ध है। संसार को नाना प्रकार के संशय और मोह में डालने वाला है। मेरे वह दोनों भुजाओं के ऊपर कन्धों में आकर बैठा है॥६॥

* सप्तमगाथा *

वाह्वना मुपरि मियोरसि शुभे मौलिस्थले चोज्वले ।
पादाम्भोजयुगे च रम्यतुलसीमालाञ्चितः श्रीधरः ॥
स्वामी निःसमवैभवः स्वमहसा दीप्तस्वमूर्तिः सदा ।
संश्लिष्यापि मया सहानवरतं जिह्वां प्रविष्टो मम ॥७॥

दोनों स्कन्धों पर सुन्दर वक्ष स्थल में शोभायमान मस्तकपर अति रमणीय, चरण युगल में अति सुन्दर, तुलसी जिसके धारण हो रही है। जो लक्ष्मपति है जिसके समान वैभव संसार में कहीं पर किसी का नहीं है। अति प्रचण्ड तेज से जिसकी मूर्ति सदा चमकती रहती है। वह मेरा स्वामी बार बार मेरे शरीर के साथ मिलता है और मेरी जिह्वा में तो उसने अपना दृढ़ आसन ही जमा लिया है॥७॥

* अष्टमगाथा *

विद्यास्वप्यखिलासु चात्मतनुरूपोऽयं स्वयं तज्जनि
ध्वंसादेरपि कारणं च कुसुमावल्या चतुर्बाहुधृत् ॥
वैरिध्वंसकचक्रशङ्खभृदसौ नीलोत्पलश्यामलः
पद्माक्षोद्य चकास्ति चोज्वलतमो मन्नेत्रयुग्मे हरिः ॥ ८॥

जो जिह्वा में बैठ कर सर्व प्रकार की विद्याओं का विस्तार करता है। जो सृष्टि स्थिति प्रलय को अपनी इच्छा के अनुसार सदा किया करता है। चारों भुजाओं में पुष्पों की वनमाला धारण करके शत्रुओं का नाश करने वाले चक्रशंखों को धारण करने वाला, जो नील कमल के समान श्याम सुन्दर देह वाला है, जिसके कमल के समान मन मोहने वाले नेत्र हैं। सर्व पापों को नाश करने वाला हरि निर्दोष शरीर वाला मेरे दोनों नेत्रों में विराजमान हो रहा है॥८॥

* नवमगाथा *

पद्माक्षो ममनेत्रगोचरतया भाति स्वयं यश्च मां
कृत्वा दिव्यकटाक्षपात्रमपि मे पञ्चेन्द्रियाणां प्रभुः ॥
आविर्भावसरोजसम्भवमजं फालाक्षयुक्तं विधिं
देवानप्यमलांश्च लोकसरणिं सृष्ट्वा ललाटेऽस्ति मे ॥ ९ ॥

यह कमल नयन जो मेरे नेत्रों के सामने दीख रहा है। जो मेरे को अपने दिव्य दृष्टि का पात्र बनाकर और मेरे पञ्चेन्द्रियों (जिह्वा, त्वचा, नाक, कान, आंख) को अपने वश में करके उनका स्वामी बना बैठा है।

जिसने कमल से होने वाले ब्रह्मा और ललाट में नेत्र वाले रुद्र प्रजापति को तथा अन्य निर्दोष इन्द्रादिक देवों को और संसार में जड़ चेतन रूप प्राणियों की सृष्टि रची है। वह प्रगट होकर मेरे ललाट में बैठा है ॥९॥

* दशमगाथा *

भक्तानां शिरसि प्रयुक्तचरणं मौलौ तुलस्यञ्चितं
कृष्णं देवमिमं भजन्ति हि सुराः सर्वेऽपि भक्त्या स्वयम् ॥
रुद्रश्चन्द्रकलाधरोऽपि च चतुर्वक्त्रोऽपि चेन्द्रादयः
प्रत्यक्षो मम मस्तकेऽद्यनितरां भाति स्वयं तादृशः ॥१०॥

जिसके मस्तक पै तुलसी शोभायमान हो रही है। जिसने अपने भक्तों के मस्तकों पर चरण स्थापन किया है। इस दिव्य गुणवाले कृष्णदेव का चन्द्रकला धारी रुद्र और चतुर्मुख ब्रह्मा तथा इन्द्रादिक समस्त देवगण भक्ति के सहित सेवन करते हैं।

आज मेरे समक्ष वह प्रगट होकर अपनी दिव्य मूर्ति की छटा दिखा रहा है। और उसने मेरे मस्तक पै तो अपना वासस्थान ही बना लिया है। भाव यह है कि आलवार को दर्शन देने के लिए परमात्मा प्रगट भये तो उसका लाभ इन्द्रादि देवों को भी मिल गया कि वे भी सब आकर दर्शन करने लगे ॥१०॥

* दशकपाठफलम् *

एवं मस्तक सुप्रतिष्ठितमिमं देवाधिदेवं हरिं
कृष्णं प्रेमभरेण शंसितु मयं भक्तः शठारिर्मुनिः
साहस्रं कुरुकेश्वरः समतनोद्धृत्का निवेद्य स्वयं
तत्रेदं दशकं वहन्ति शिरसा तत्पादयुग्मं सदा ॥११॥

इस प्रकार मस्तक पै भले प्रकार जमकर बैठने वाले सर्व देवों के देव कृष्ण हरिकी प्रेम के वेग वाले शठकोपमुनि ने भक्ति से स्तुति करने के लिए गाथा सहस्र बनाया उसमें इस दशक को भक्त लोग धारण करेंगे उनके मस्तक पै परमात्मा अवश्य अपना चरण स्थापित करेंगे ॥११॥

❀ छन्द ❀

सब देव देव श्रीकृष्ण उपकारी प्रति प्रीत अति,
कुरुकापुरी शठकोप स्वामी उदार की कही यह्कृतिः,
यह दशक एक सहस्र में उपकारिका जो नित कहै।
विनती करै तो पाद पंकज शिर धरै सन्निधि लहै ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ प्रथमशतके नवमदशकं समाप्तम् ॥

अथसहस्रगीतौ प्रथमशतके दशमदशकारम्भः

इस दशक में पूर्वोक्त प्रकार से परमात्मा के मिलने को देखकर आल्वार ने यह विचारा कि मैं इस कृपाके योग्य तो हूँ नहीं परन्तु प्रभुने अपनी निर्हेतुक दया से मुझे कृतार्थ किया इसलिए आपके किए उपकारों का प्रति पादन करते हैं।

❀ प्रथमगाथा ❀

दिव्यायुधात्मक सुचक्र सुशङ्खधारी
श्री मत्पदाम्बुजयुगं जगतां सुसेव्यम् ॥
कर्तुं निजं किल विलक्षणवामनात्मा
संवृद्धनीलमणिरस्ति ममाक्षियुग्मे ॥१॥

वह प्रभु दिव्यायुध चक्र शंखों को धारण करने वाला विलक्षण (अनोखा) वामन रूप धरने वाला है। उसने संसार में जन साधारण की सेवा करने योग्य अपने चरण को बड़ा बनाने के लिए त्रिविक्रम रूप धारण किया (रूप को बढ़ाया)।

उत्तम नीलमणि के समान कान्ति वाला मेरे नेत्रों में समा गया है। अब उसके सिवाय दूसरा मुझे दीखता ही नहीं है ऐसा अभिप्राय है ॥१॥

❀ द्वितीयगाथा ❀

यः पंचभूतजगदात्मक एकनाथः
तं प्राप्य भक्तिभरिता यदि सोऽस्ति दृश्यः ॥
सं चिन्तयन्ति यदितं स तदाऽपि वश्यः
स्याद्भक्ति युक्तमनसां किमितोऽस्ति कृत्यम् ॥ २ ॥

मेरे नेत्रों में वास करने वाला वह प्रभु पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश रूप पंच महाभूतों द्वारा संसार में व्याप्त हो रहा है। उसका परभक्ति द्वारा जो आश्रय करता है उसको वह प्रत्यक्ष दीख जाता है। जो उसका एकाग्र मन से चिन्तन करते हैं, उनके भी वश में वह होजाते हैं। यदि अत्यन्त भक्ति में मन वाले उसका स्मरण करें तो इससे ज्यादा उसके प्रसन्न करने का अन्य क्या उपाय हो सकता है।

भगवान् जो नेत्रों में आवसे इसका कारण केवल परभक्ति ही है। भगवान् भक्ति के आधीन हैं और भक्त भी भक्ति-अधीन है। इन दोनों का सहारा एक ही है। वे प्रभु कृपा करके आते हैं। यदि हम उसकी ध्यानलयमें ही अधिक लग जाँय तो वे हमारे ऊपर अवश्य कृपा करते हैं ॥ २ ॥

❀ तृतीयगाथा ❀

हे भव्य मानस भजाद्य मम प्रभुं तं
नाथं च मत्पितृपितामहतत्पितॄणाम् ॥
पद्माक्षमेव मयि दिव्यकटाक्षयुक्तं
लक्ष्मीं च वक्षसि दधान मुदात्तरूपाम् ॥ ३ ॥

हे मेरे भव्यमन आज तूं मेरेस्वामी और पिता पितामह तथा प्रपितामहों के भी स्वामी जिन्होंने बगल में अति दया और उदार स्वभाव वाली लक्ष्मी को धारण कर रक्खा है। जिसके कमल के समान सुन्दर नेत्र हैं, जिसने मेरे ऊपर दिव्य दृष्टि डाली है, उसी का भजन कर तभी तेरा उद्धार होगा ॥ ३ ॥

❀ चतुर्थ गाथा ❀

मन्मानस त्वमिह भासि सुसाधु साधु
त्वां प्राप्य किं ननु भजाम किमस्त्यसाध्यम् ॥

लक्ष्मी पतिं सततयौवनशालिनं तं
देवं भजत्वमनिशं मम यावदायुः ॥ ४ ॥

हे मेरे मन आज तो तू बड़ा ही साधु (अच्छे) स्वभाव वाला जान पड़ता है । प्रिय मित्र तुमको पाकर हमने यदि भगवान् का भजन किया तो संसार में हमारे लिये कौन वस्तु दुर्लभ है ।

अतएव नित्यनूतन यौवन से शोभा वाले उस लक्ष्मीपति का जो दिव्यगुण वाला है । तू निरन्तर (हर घड़ी) भजन कर जब तक इस शरीर में प्राण बसते हैं उसे मत छोड़ ॥ ४ ॥

* पंचमगाथा *

हे मानस त्वमिह पश्यसि सिद्धिमेतां
मत्कर्मणान्तु परितोऽग्नि विनवै चिन्ताम् ॥
भुक्त्वा च सप्तभुवनानि पदत्रयेण
त्रातारमेव जगतां त्वमपश्य एवम् ॥ ५ ॥

हे मन तू यह सिद्धि जो हमको प्राप्त हुई है, देख रहे हो । जो हमारे किये उद्योग और चिन्ता के बिना ही चारों ओर से फैल रही है । यह उसकी कृपा का ही अद्भुत फल है । क्या तुम यह नहीं देखते कि जिसने प्रथम सप्तलोकोंको खा लिया था। और फिर उसको बाहर बसाकर अपने तीन चरणों से नाप कर उसको रक्षा की थी, इसलिये अब उसके चरण चिन्तन को मरण पर्यन्त मत छोड़ना ॥५॥

* षष्ठगाथा *

हे चित्त मातृवदसौ पितृवच्च नाथो
लोकेऽपि नीलमणिवर्ण इहावतीर्णः ॥
स्वामी ममास्ति हि विलोक्य दशां किलैता
मद्यावयोर्न किल दुःखलवं च कुर्यात् ॥ ६ ॥

हे चित्त मैं तेरे को यह कहता हूँ कि यह प्रभु तो हमारी रक्षा माता पिता के समान होकर करता है । वही नील मणि सदृश वर्ण वाला हमारे उद्धार के लिये ही तो अवतार धारण करता है । वह

हमारा स्वामी है। तू हमारा मित्र है तो अब ऐसा मत करै कि हम स्वामी से और स्वामी हम से बिछुड़ जाय। तू अब कृपा करके स्वामी सेवक की जोड़ी अलग अलग करके हमारे प्राणों में दुःख का अंकुर उत्पन्न मत करे। अर्थात् निरन्तर स्वामी के ध्यानानन्द में ही लग कर हमें नित्य सुख देता रहे ॥ ६ ॥

* सप्तमगाथा *

यं सूरिवर्यनिवहाः परमं भजन्ते
स्वस्वामिनं स्वपितरं दिवि चिन्तयन्तः ॥
तं मानसे मम कथं वत पापशीलः
स्वस्वामिनं स्वपितरं च वृथाऽत्र मन्ये ॥ ७ ॥

जिस परम प्रभु को नित्यमुक्त गण बड़े आदर के साथ अपना स्वामी अपना पिता मान कर नित्य विभूति में सदा चिन्तन किया करते हैं। उसको मैं अपने मन में अपने स्वामी अपने पिता कह कर स्थापित करूं तो भी यह कार्य व्यर्थ ही होगा ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

जैसे यज्ञशाला में देवार्थ निर्माण किये पुरोडाश को कुत्ता छूने का अधिकारी नहीं है। वैसे ही निखिल दोष रहित नित्यमुक्तों के सम्बन्धी को मैं अपना सम्बन्धी बनाऊं यह बात उचित नहीं है ॥७॥

* अष्टम गाथा *

बाष्पावलिर्मम किल भवहत्यहो श्री
नारायणेति वचनं तु निशम्य नेत्रात् ॥
चित्रं कथं न्विदमसौ मयि सादरोऽस्ति
श्रीमन् दिवानिशमतो न निजं त्यजेन्माम् ॥ ८ ॥

ओहो मैं जब (श्रीनारायण) ऐसा वाक्य सुनता हूँ तो आँखों से आँसुओं की धारा बड़े जोर से बह निकलती है। कैसा आश्चर्य है कि सर्व सम्पत्तिशाली नित्यानन्द वाली विभूति को छोड़ कर मेरे में उसने ऐसा आदर कर लिया है। अब क्या रात्रि दिन में उसे छोडूंगा, नहीं नहीं। अब मैं उसे कभी नहीं छोड़ सकता।

पूर्वोक्त गाथा के अनुसार आल्वार अपने को श्रीनाम लेने का

अधिकारी नहीं समझ कर यह कहकर कि जैसे कुत्ता के छूने से पुरोडांस अशुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार मेरे पापी के स्मरण करने से श्रीनाम दूषित हो जायगा, इसलिये अब श्रीनाम को दूषित करने का पाप मैं नहीं करूंगा।

ऐसा विचार करके किसी बन्द कोठरीमें जाकर मौन हो सो गये। वहाँ मार्ग के सन्निकट एक बोझा ढोने वाला भार से पीड़ित होकर 'श्रीमन्नारायण ऐसाकहने लगा,इस श्रीमन्नारायणनामको सुनतेही चन्द्रोदय होने से चन्द्रकान्ता मणि के समान आलवार के नेत्रों से जल प्रवाह बहने लग गया। विष हरण मन्त्रके कान में पड़ने से जैसे विष उतर जाता है, उसी प्रकार प्रथम हरि विमुख भावना दूर होकर श्रीमन्नारायण नाम लेकर नाचना गाना रोना प्रारम्भकर दिया। यही भाव इस गाथा में दिखाया है ॥ ८ ॥

नवमगाथा ।

श्रीमत्कुरङ्गनगरस्थित मच्युतं तं
सम्पूर्ण वैभवमुदारसुवर्णमूर्तिम् ॥
सूरीन्द्रनाथमपि चादिपरं च तेजः
किंवा वदन्मम विभुं वत विस्मरेयम् ॥९॥

जो समस्त वस्तु के आदि कारण परम तेज वाले हैं वे अपना सम्पूर्ण वैभव लेकर सर्व मनोरथ सिद्ध करने वाली सुवर्ण के समान पीत रंगकी मूर्ति धारण करके श्रीकुरंग नगर में विराजमान हो रहे हैं।

उस अविकार अविनाशी को जो चराचर में व्यापक है। कौनसा बहाना बनाकर भूलजाऊं। मुझे उसकी सुलभता और भक्तवत्सलताके सामने उसे भूलने का कोई बहाना ढूंढने परभी नहीं मिलता॥९॥

* दशमगाथा *

विस्मर्तुमप्यह ह वेत्तु महं न शक्तो
यद्विस्मरेदयमिति स्वयमेव मत्वा ।

श्रीपुण्डरीकनयने मम भाति चित्ते
रत्नं कथं मणिनिभं मम विस्मरेयम् ॥१०॥

अहह मैं तो उसको स्मरण करना और भूलना कुछ भी करने को समर्थ नहीं हूँ। परन्तु उसी कमलदल लोचन ने स्वयं यह सोचकर कि कहीं आल्वार हमें भूल न जायं मेरे मानस मन्दिर में आकर अपना आसन जमा दिया है। अब तो वह हजारों उपाय करने पर भी नहीं हटता।

जन्म दरिद्री को यदि कोई रत्न मिल जाय तो वह उसे कभी भी नहीं भूलता इसी प्रकार अनादिकाल से अज्ञानान्धकार में फसकर ज्ञान स्वरूप उसको हमने भुला दिया था। परन्तु उस कृपालु ने कृपा करके हमारे अज्ञान को समूल नष्ट करके ज्ञानरूपी आनन्द दिया है। अब उस जीवन धन प्राणाधारको यह अकिञ्चन जन कैसे भूलेगा ॥१०॥

दशक पाठफलम्।

माणिक्यवर्णमपि सूरिनरेन्द्रनाथं
कृष्णं तमप्रतिमसुन्दरमूर्तिमीशम्।
स्तोतुं शठारितनोत्सुरसं सहस्रं
तत्रेदमेव दशकं पठतां हि सिद्धिः ॥११॥

इति श्रीशठकोपमुनिकृतसहस्रगीतौ प्रथमशतकं समाप्तम्।

नित्यमुक्त जिसकी सेवा करते हैं। नीलमणि के समान रंग वाले जिसके समान सुन्दर मूर्ति और किसी की नहीं है। जो सबका स्वामी है। उसी कृष्णकी स्तुति करने के लिए शठकोपमुनि ने सुन्दर रसको देनेवाली सहस्र गाथा की रचना की थी। उसमें इस दशक को जो पढ़ेंगे, उनको इस लोक की और परलोक की सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होंगी ॥११॥

इति श्रीमद्वेदवेदाङ्गाद्यखिल शास्त्रनिष्णात पराशरगोत्रावतंस श्रीमन्माधवार्यचरणाश्रित सत्सम्प्रदायाचार्य मधुरागलतामठाधीश्वर वसिष्ठनरस्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्यशास्त्रि विरचित विद्वन्मोदतरङ्गिणीभाषाटीकासहित
श्रीसहस्रगीते. प्रथमं शतकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ द्वितीयशतके प्रथमदशकारम्भः

इस दशक में आल्वार भगवान से मिलना चाहते थे किन्तु भगवान् थोड़ा दर्शन देकर छिप गए अतएव उनके वियोग में अत्यन्त दुःखी होकर अपने समान प्रभु के वियोग में चराचर को दुःखी देखकर उनकी दयनीय दशा का वर्णन करते हैं।

उद्यत्तरङ्गजलधौ वक ! सप्लवान !
क्लिष्टोऽसि किं ! किमहहामरनिद्रयाऽपि ।
निर्निद्र एव हि भवान् किमु पीडितोऽसि ?
किं पाण्डरोऽस्यहमिवाद्य हेरर्वियोगात् ॥१॥

उछलती तरंगों वाले समुद्र में तैरने वाले बगले ! क्यों तू इतना करुण क्रन्दन (दुख भरा विलाप) कर रहा है। अरे भाई समस्त देवगण भी इस समय में सो गये हैं। देवताओं सहित चराचर प्राणि वर्ग के सो जाने पर तुझे नींद नहीं आती। अरे बता तो सही तेरे शरीर में क्या रोग है जिस कारण तू सदा जागरण करके चिल्लाता ही रहता है। क्या तैंने भी मेरे समान निस्नेही चित्त हरण करने वाले श्याम सुन्दर से प्रेम किया है। इसी लिये उसकी वियोग चिन्ता में तेरा शरीर सफेद पड़ गया है। अरे भाई मैं भी उससे प्रेम करके अपार चिन्ता में उसके वियोग से पड़ी हूँ।

प्रथम आल्वार ने लक्ष्मीपति के दर्शन सुख का अनुभव किया। पीछे जब भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये तब उनके वियोग में अपने समान संसार के प्राणी वृन्द को मानकर बगलापक्षी को चिल्लाता हुआ और सफेद रंग का देखकर कहने लगे कि जिस प्रकार

विषये ते महाराज रामव्यसनकर्षिता ।
अपि वृक्षापरिम्लाना सपुष्पाङ्कुरकोरकाः
उपतप्तोदकानद्यः पल्वलानि सरांसिच ॥वा०अयोध्या स० ५९-४-५

चक्रवर्ती कुमार श्रीरामस्वामी के वियोग में वृक्षादिक भी कुम्हला गए थे उसी प्रकार मेरे स्वामी के वियोग में बगला, क्रौञ्च समुद्र, वायु, मेघ, चन्द्र, रात्री, क्षुद्रनदी, दीपक आदि वस्तु भी दुःखी

हो रहे हैं। "अतएव समस्त वस्तुओं को सम्बोधन करके अपना विरह दुःख सुनाने लगे" यह दशा तभी प्राप्त होती है जब हजारों जन्म के पुण्यों से अन्तः करण शुद्ध हो जाने पर प्रभु की निर्हेतुक कृपा से इस चेतन को परमाभक्ति प्राप्त होती है जैसे गोपियों की। विद्याभिमानी और ज्ञानभारवाही तो विना प्रभु की कृपा के इस दशाको कभीप्राप्त नहीं हो सकते॥२॥

हे सुन्दर द्विज महार्तरवोऽसि दीनो,
यामेषु सन्तत महो ! विलपन् किलत्वम् ।
अस्मादृशोऽस्ति विरहार्ति वशो भवान् किं,
श्री शेष शायि पदसत्तुलसीस्पृहार्द्रः ॥२॥

अरे क्रौंच तेरी तीखी वाणी तो सुनने वाले के हृदय को विदीर्ण करने वाली है। तू तो निरन्तर दुःख भरा विलाप करते करते ही चार प्रहर रात्री को बिताता है। इसीलिये दुबला हो गया है। अरे तू भी हमारे समान श्री शेषशायीकी चरण तुलसी को मस्तक पर चढ़ाने की लालसा से उसकी विरह वेदना से रो रहा है।

समुद्र में तैरने वाले बगला के दुःख को कह रहे थे कि समुद्रतट पर ताल वृक्ष पर बोलती हुई क्रौंची के ऊपर दृष्टि पड़ी उसको देखकर भाग० द० ९०–१५ में जैसे श्रीकृष्ण की पटरानियों ने कुररी को देख कर माना था। उसी प्रकार आल्वार भी क्रौंच को देखकर प्रभुकी विरह में अपने समान दुःखी मानने लगे। भाव यह है कि श्रीशेष शायी के चरणों की प्रसादी तुलसी यदिदास को मिल जाय तो सांसारिक सम्पूर्ण तापों से छूटकर नित्यानन्द प्राप्त हो जाय यही अभिलाषा दिखाई है। तुलसी वृक्ष की महिमा पद्म पुराणादि में देखनी चाहिए ॥२॥

भोगे विहीन इव हन्त दिवा निशं त्वं,
निर्निद्र एव विलपस्यहहार्द्र चित्तः ।
लङ्काप्रदाहि पदसक्तिदशां मदीयां,
किं प्राप्तवानसि समुद्र ! तवास्तु भद्रम् ॥३॥

अरे समुद्र तू तो दिन रात जागरण करता हुआ ही दुःख से ऐसा चिल्लाता है कि मानों तेरे लिए बहुत दिनों से भोजन ही नहीं मिला हो। अरे तू इतना दुःख से चिल्ला कर रोता है। क्या मेरे समान तू भी लंका जलाने वाले (श्रीराम) के चरणों में आसक्त होकर उनका स्पर्श न मिलने से मेरी सी दयनीय दशाको प्राप्त हुआ है। तेरा कल्याण हो तू किसी प्रकार की चिन्ता मत करे।

क्रौंची पर से सागर पै ध्यान गया उसकी भी अपनी सी दशा जान कर कहने लगे। अर्थात् अति विशाल लंका नगर को स्वतन्त्रता पूर्वक जलाने पर भी क्या अभी अग्नि की तृप्ति नहीं हुई तभी तो वियोगियों को जलाया करता है। अरे भाई इस दुःख को भोगने वाली मैं तो हूँ ही ईश्वर करे कि तेरे को यह दुःख न सहना पड़े। इसलिए आशीर्वाद देती है कि तेरा कल्याण हो ॥३॥

शीताङ्गवात जलधावचलेऽन्तरिक्षे,
सर्वत्र तं किल विचित्य तु मादृशोऽसि।
निर्निद्र एव च दिवा निशमच्युतं तं,
द्रष्टुं हि चक्रिण महो सततं स्पृहार्तः ॥४॥

अरे शीतल वायुदेव! तू तो उस प्रभु को समुद्र पर्वत आकाश में ढूंढ कर उसके दर्शन न मिलने से मेरे समान उसकी विरहाग्नि से गरम हो गया है। क्या सुदर्शन चक्रधारी को देखने की तीव्र लालसा से दिन रात्रि निद्रा को भूलकर निरन्तर चिन्ता से दुःखी है।

वायु सर्वत्र क्षीर समुद्र वेंकटाचल पर्वत परमपद में विचरण करता है। और उस प्रभु के ढूंढने के स्थान भी ये ही हैं। जब वह भी उसकी विरहाग्नि से संतप्त है तो साधारण जनकी क्या बात है। प्रभु चक्र लेकर मारने को आवें तो भी भीष्म सरीखे भक्तों को प्रिय ही लगते हैं। केवल अभक्तों को ही भयङ्कर दीख पड़ते हैं। भला ऐसे की अभिलाषा कौन नहीं करेगा और उसके न मिलने से कौन सहृदय दुःखी न होगा ॥४॥

हे वारिद ! त्वमपि भासि महाश्रुपाते,
स्स्मादृशः किल सदाऽपि च वर्षवाहिन् ।
किं वा विचिन्त्य मधुसूदन पौरुषं तत्,
खिन्नोऽसि तत्परवशो बत तेऽस्तु भद्रम् ॥५॥

हे मेघ तू भी तो वर्षा बिन्दू रूपी बड़े-बड़े आंसुओं को सदा बहा कर हमारे समान दीख पड़ता है। क्या उसमधुसुदन भगवान् के पराक्रम को विचार कें और उसकी दासता की फांसी में फंसकर तू भी दुःखी हो रहा है।

मेघ परोपकारी और सज्जन तथा पर दुःख से द्रवीभूत (पिघलने वाला) होने वाला है। वह प्रभु की प्रेम रज्जु में (जिसमें पड़कर न जीवै और न मर सके) फँसा हुआ है। प्रिय भक्तगण जैसे स्त्री संभोग में उसके ताड़न भर्त्सन पुरुष को सुखदायी जान पड़ते हैं उसी प्रकार उस प्रभु की विरह ही अनन्य भक्तों को अत्यन्त सुखदायी जान पड़ती है ॥५॥

हे चन्द्र ! कि क्षयवशोऽसिकलावशेष,
स्त्वं मादृशोऽद्य गगने नतमोऽपहारी ।
किं त्वं द्विजिह्वशयनस्य सुचक्रिणस्तत्,
सत्यं वचो वत ! निशम्य कलाविहीनः ॥६॥

हे चन्द्र तेरा तो रूप और शरीर दोनों ही क्षीण हो गये हैं। क्या मेरे समान तुझे भी उस प्रभु की चिन्ता से क्षय रोग लग गया है। इसी कारण तो अब तू गगन मण्डल के अन्धकार को दूर करने में असमर्थ है। क्या तू भी शेषशायी सुन्दर चक्रधारी प्रभु के सत्य सदृश कपट भरे वाक्य सुनकर कलाहीन हो गया है।

भगवान् श्रीरामजी सत्य के लिए और भगवान् श्रीकृष्ण असत्य के लिए प्रेमियों की गणना में प्रसिद्ध हैं। श्रीकृष्ण को गोपी तो सदा झूँठ बोलकर बहकाने वाला और कपटी ही कहती थीं। उसी कपटी के कपट भरे सत्य वचन से जैसे मैं कान्ति हीन हूँ उसी प्रकार

तू भी हो गया है। उसने कहा था कि (अहं स्मरामिमद्भक्तं नयामि च परां गतिम्) मैं अपने भक्त का स्मरणकरके उत्तम गतिमें पहुँचा देता हूँ। परन्तु मैं देखतीहूँ उसने अपनावाक्य अभीतक सत्य नहीं किया॥६

नारायणाय विभवे वयमद्य चित्तं,
भव्यं समर्प्य नितरां विरहातुरा हि।
क्रन्दाम एव महह त्वमहो निशे! किं
क्रूराऽसिवैरिवदनारतमस्तु भद्रम् ॥७॥

ऐ रात्रि! चराचर के भीतर बाहर व्यापक उस नारायण के लिए हमने अपना शुद्ध सरल मन अर्पण कर दिया। किन्तु फिर भी वह बड़ा वे परवाह है कि उसके वियोग से हम अब तक बड़ी दुःखी होकर चिल्ला रहीं हैं। परन्तु उसके कान पर अभी तक किसो शब्द का प्रभाव नहीं पड़ा। रात्रिदेवी तू भी वैरीके समान कठोर चित्त की हो गई है। तेरा राम भला करै अब तो तू हमको उस प्राण प्यारे से मिलाकर दयालु बन जा। जो प्रभु भक्तों के कष्टों को विना कहे ही नष्ट कर दिया करते हैं। हम विरह दुःखी उसके मिलने की आशा क्यों नहीं रखें यह भाव है॥७॥

कुल्ये! निशेव सततं बहुनीलवर्णे,
निद्रासि नैव हि दिवानिश मुद्भ्रमान्धा।
देवस्य तस्य शकटासुर मर्दनस्य,
त्वं किं कृपागुणजिता हृदि कर्शिताऽसि ॥८॥

अरी कुल्या (नहर) तू भी उस प्रभु की चिन्ता में रात्रि के समान काले रंग की हो गयी है। तू तौ पागल के समान दिन रात चलती फिरती ही रहती है। तू कभी सोती ही नहीं है। क्या शकटासुर का मर्दन करने वाले उस देव के कृपा गुणने तेरे को भी जीत लिया है। तभी मनकी चिन्ता से बड़ी दुर्बल होगई है॥८॥

हे दीपिके! सततमुज्ज्वल विग्रहे! त्वं,
सन्तप्तचित्तविकला नितरां हि खिन्ना।

किं पुण्डरीक नयनस्यतुमत्प्रभोस्त्वं,
बिम्बाधरस्य तुलसी मभिलष्य तप्ता ॥६॥

हे दीपिके (मसाल) तेरा तो शरीर बड़ा उज्ज्वल रंग का है। तू तो निरन्तर चिन्ता से जलती ही रहती है। इसी कारण विकल होकर अत्यन्त दुःखी है। क्या तू कमल लोचन लाल होंट वाले मेरे प्रभु के चरणों की तुलसी की अभिलाषा से दुःखी है।

सर्व-वस्तुओं को भगवद्विरहमें दुःखी देखकर उनका वर्णन करते थक गये फिर एकान्त में बैठ गए वहां पर दीपक जल रहा था उसको देखते ही आल्वार को फिर विरह ज्वर चढ़ गया इसी कारण उसकी दशा को भी अपनी दशा से तुलना करने लग गये ॥६॥

आशाहि ताप जननी नितरां कृशां मां,
नक्तन्दिवं च तुदति त्वमहो-हयं तम्।
हत्वा च केशिनमतीव हठात्प्रविश्य,
बृन्दासुरघ्न पृथ्वीहर ! मां न मुञ्चेः ॥१०॥

हे बलि से पृथ्वी छीनने वाले, अनेक सन्ताप देने वाली आपके मिलने की आशाही अत्यन्त दुबली मुझे दिन रात पीड़ा पहुँचाती है। तुमने घोड़ा का रूप धरने वाले केशी दैत्य को बड़े बलात्कार से मारा था। और यमलार्जुन नाम के दोनों वृक्षों के बीच में ओखली को लेजाकर और उसके झटके से उन दौनों को तोड़ कर उनकी मुक्तिकरी। हे प्रभो अब आप कृपा करके इस दासी को भी स्वीकार करके कभी नहीं त्यागना।

पूर्वोक्त प्रकार से आल्वार चराचर को प्रभु के विरह में सन्तप्त देखकर घबड़ा रहे थे कि वृन्दावन के बीच में रोने वाली गोपियों की भाँति अपनी मन्दस्मित स्याम छटा, वाली मनोहर मूर्ति के दर्शन उन्हें दिया। उस मधुर मूर्ति को देखते ही आल्वार का विरहज्वर उतर गया और फिर छोड़ कर न चले जाँय इस भय से उनसे प्रार्थना करने लगे कि प्रभो अब मुझे छोड़ के कभी नहीं जाना ॥१०॥

इसी भाव को एक भक्त ने इस प्रकार भव्य स्वर में प्रगट किया है कि—

प्रभु तव चरण किमि परि हरौं ।
यहि चरण मोहि परम प्यारे छिन न इनते टरौं ॥
जेहि चरण की अमित महिमा वेद सुर मुनि नित कहै ।
दास सन्तत करत अनुभव रहत निशि दिन गहै ॥
जे परसि पाहन शिलावन बनी सुन्दरि नारि ।
घरनि मुनिवर की अहिल्या सकौ केहि विधि टारि ॥
इहि चरण सम शरण अशरण मिलत जगमहँ नाहिं ।
होइ जो कोउ तुम बतावहु धाइ पकरौं ताहि ॥
अन्य विधि नहिं टरौं टारयो होइ साध्य सो करौ ।
जलजगत मकरन्द अलि ज्यों मनहि तिन महँ धरौ ॥ १० ॥

सर्वात्मनामपिच मूलमनादितेजः
प्राप्तुं परंशठरिपुः कुरुकापुरेशः ।
साहस्रमाह तदिदं दशकं पठन्तं,
स्तत्र प्रयान्ति परमं पदमेव धन्याः ॥११॥

समस्त चराचर जगत् का जो आदि कारण है, उस अनादि तेज को प्राप्त करने के लिये कुरुकापुरी वासी शठकोप मुनि ने जो सहस्र गीति बनाई है, उस में इस दशक को जो पढ़ेंगे वे उस परम पद में जाकर प्रभु के धन्यवाद के पात्र बनेंगे ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीसहस्रगीतौ द्वितीयशतके प्रथम दशकः समाप्तम् ॥



अथ सहस्रगीतौ द्वितीयशतके द्वितीयदशकारम्भः ।

इस दशक में शठकोप नायिका की विरह व्यथाको दूर करने के लिये प्रभु उनके पास गये उन प्रभुके दर्शन करके वे उनके परत्व का अनुसन्धान करने लगे और वह परत्व उनके अवतारों में भी प्रकाशित होता है, इस बात को कहते हैं ।

दिव्यामृतात्मक मुदार फलं च मुक्ति
सर्व्वं स्वयं प्रभुरसौ मनसोऽप्यतीतः ।
भूमिं द्यु लोकमखिलं जठरे निवेश्य
कृष्णश्चकास्ति परतत्त्वमितोऽपि नान्यत् ॥१॥

यह हमारा प्रभु दिव्य अमृतानन्द सर्वोत्तम फल और मुक्ति रूपी स्वयं होकर जिसका मन से भी ध्यान करना कठिन है । उसने प्रलय के समय में भूमि और स्वर्गादि समस्त लोकों को उदर में रख लिया था, वही तो कृष्णरूप से प्रकाशित हो रहा है । क्या इस कृष्ण से भी बढ़कर कोई बड़ा तत्त्व है अर्थात् कोई नहीं, कृष्ण का परत्व महाभारत राजसूय पर्व में दिखाया है । जैसे—

एष नारायणः श्रीमान्क्षीरार्णव निकेतनः ।
नागपर्यंक मुत्सृज्य ह्यागतो मथुरां पुरीम् ॥

भगवान् श्रीकृष्ण को बताकर भीष्मजी कहते हैं कि यह क्षीर समुद्रशायी नारायण है । यह वहाँ से शेषशय्याको छोड़ कर मथुरा में आकर प्रगट हुआ है, यह साक्षान्नारायण है ॥१॥

रुद्रस्य तस्य गुरुपातकमोचकोऽयं,
भिक्षा प्रदानकर एव च गोपसिंहः ।
योऽसौ कृपालु रतनोदपि सप्त लोकीं,
धन्यां स एव फलदोऽस्ति परः पुमान्नः ॥१३॥

यह गोपसिंह है इसने ब्रह्माजी का शिर काटने से पितृहत्या के पाप से रुद्र को छुडाया था और वृकासुर के भय के मारे प्राण बचाने की चिन्ता में पड़े उसको प्राण भिक्षा का दान दिया था । और जिसने निर्हेतुक कृपा करके सप्तलोकवर्ती जीवों को करण कलेवर

प्रदान करके मोक्ष के भागी बना कर धन्य बनाया वही सर्वोत्तम पुरुष हमारे अभिलषित फल को देगा।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश में कौन बड़ा है इस शंका को करने का अवसर ही नहीं रहता। क्योंकि ब्रह्मा शिवादि समस्त प्राणिवर्ग को समान रूप से प्रलयमें अपने उदर में रखने वालेमें यह प्रश्न नहीं हो सकता कि वे ब्रह्मा शिव से छोटे हैं अथवा बड़े हैं। जो सर्वशक्तिमान् ब्रह्मा रुद्र का उत्पादक और संहारक हैं। उस लक्ष्मीपति को ब्रह्मादि के मान मानना निरी भूल और अज्ञानता है नारायण के परत्व के लिए सुबालोपनिषत् और नारायणोपनिषत् विष्णुपुराणादिक देखने चाहिए।

रुद्रं सरोजभवमप्ययमच्युतस्व,
स्वाङ्गे यतश्रिय मिव स्वयमेव धृत्वा।
सौशील्यवानतिगतो हरिरूर्ध्वलोकान्,
भूमिं जिगाय किमतः परमस्ति दैवम् ॥२॥

यह अविनाशी विष्णु रुद्र और ब्रह्माजी को अपने शरीर में धारण करता है। और लक्ष्मीजी को भी अपने वक्षस्थल में सदा धारण करता है। वह प्रभु सुन्दर स्वभाव वाला होकर संसार के चराचर जीवों को अपनी शरण में लेने के लिये त्रिविक्रमरूप से इस पृथ्वी को जीतकर अपने वश में करकें ऊपर के लोकों में भी व्याप्त हो गया था। क्या संसार में इससे बड़ा कोई देव है ?

भगवान् अपने शरीर में ब्रह्मरुद्रादि को धारण करते हैं। इसके प्रमाण शास्त्रों में बहुत हैं परन्तु यहाँ पर सर्व मान्य गीता ११ अध्याय का ही एक प्रमाण संकोच वस से दिया जाता है:—

पश्यामि देवांस्तव देवदेहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥

अर्जुन कहते हैं कि हे देव देव मैं आपके शरीर में देव मनुष्यादि प्राणि समुदाय तथा ब्रह्मा और ब्रह्मा के आधीन रहने वाले शिव जी तथा समस्त ऋषि मण्डली और दिव्य नागराजों को देखता हूँ ॥२॥

देवाद्यशेष जगतामपि सृष्टि हेतो

स्तंनाभि पद्म भवमादि युगे तु सृष्ट्वा ।

देवश्चकास्ति परमः प्रभुरिन्दिरेशः

किं वेतरोऽर्हति सुमाद्यु पहारमालाम् ॥ ४ ॥

जिस प्रभुने देव मनुष्यादि सर्व जगत् की सृष्टि करने के लिये सर्व प्रथम अपने नाभि कमल से ब्रह्माजी को उत्पन्न किया । वह लक्ष्मीपति सर्व देवों का बड़ा स्वामी होकर प्रकाशित हो रहा है। क्या उसको छोड़कर पुष्प धूपादि की पूजा के योग्य अन्य देव है, कदापि नहीं सर्व प्रकार की पूजा लेने योग्य वही है ।

वासुदेवं परित्यज्य येऽन्यदेवमुपासते ।

तृषिता जाह्नवीतीरे मार्गन्ते वापिकां खलाः ॥

न वासुदेवात्परमस्ति मंगलं न वासुदेवात्परमस्ति पावनम् ।

न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं तं वासुदेवं प्रणमन्न सीदति-अनुस्मृति ॥

इत्यादिक असंख्य प्रमाण भगवान् विष्णु की सर्व श्रेष्ठता बताने वाले वेद शास्त्रों में भरे पड़े हैं ॥ ४ ॥

नित्योचितस्वमहिमान्वित एव चादौ

देवादि सृष्टि मपि तां परमां चकार ।

श्रीपुण्डरीकनयनः परमाच्च तस्मा

ज्ज्योतिः परं किम परं वत वेत्ति कोवा? ॥ ५ ॥

वह परम प्रभु जिसने सर्व देश काल में अपने स्वरूपानुरूप महत्व वाली महिमासे युक्त होकर सृष्टि की आदि में सर्व शक्ति वाले देवों की सृष्टि रची थी । जो सर्व श्रेष्ठ द्योतक पुण्डरीक नयन (कमल के समान नेत्र वाला) है । क्या उस सर्व श्रेष्ठ प्रभु से भी श्रेष्ठ कोई अन्य ज्योति तत्व को कोई कहीं पर जानता है अर्थात् (नत्वत्समोस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्य लोकत्रयेऽप्यप्रतिम प्रभावः) गीता ११-४३ उस प्रभु के समान संसार में कोई नहीं है । तब उससे श्रेष्ठ तो कदापि कोई होई नहीं सकता । अतएव सर्व प्रकार से उसी का पूजन करना सर्व भय निवारक और परम कल्याण कारक है ।

जगत् का कारण पुरुष वा प्रकृति को मानने वालों को यह उपदेश दियाहै कि ये दोनों कारण विना उस प्रभु की सदिच्छा के नहीं हो सकते (न तदस्ति विनायत्स्यान्मयाभूतं चराचरम् । गी०१०-३६) संसार में कोई भी वस्तु विना हमारे प्रभु की सहायता के नहीं रह सकती ॥ ५ ॥

सर्वेऽपि चेतन गणा यदचेतनाश्च
स्वस्मिन् कलांश शकला इव दर्शितास्ते ।
सोऽयं हि विश्वतनुरस्ति परं च तेजः
क्षीराब्धि शाय्यमितधीः परमः प्रभुर्नः ॥ ६ ॥

जिस प्रभुनें सम्पूर्ण चेतन अचेतन गणों को अपने भीतर रज कण के समान दिखाये थे । वह ही सम्पूर्ण विश्व को अपने शरीर में रख कर सर्व श्रेष्ठ ज्ञान वाला होकर क्षीर समुद्र में शयन करने वाला परम तेज सम्पन्न हमारा सर्व श्रेष्ठ स्वामी है ।

जैसे संसार में प्रकृति के प्रकोप से बिगड़ती हुई अपनी वस्तु को प्रत्येक प्राणी सुरक्षित रखते हैं । इसी प्रकार प्रलय के समय चराचर को नष्ट होता देखकर परम कृपालु परमात्मा अपने पेट में विना सङ्कोच के अर्थात् जैसे छोटी कुटी में बड़े शरीर वाले प्राणी को सङ्कोच से रहना पड़ता है । वैसें प्रभु के उदर में इतना विशाल स्थान है कि वहाँ पर किसी को हाथ पाँव सकोड़ कर संकोच करने की आवश्यकता नहीं है । सम्पूर्ण संसार बड़े आराम से अपनी इच्छानुसार वहाँ रह सक्ता है । ऐसे उस प्रभु से बड़ा कौन हो सकता है ॥ ६ ॥

धृत्वा निजोदर तले किल सप्तलोकीं
धीर शिशुर्वटदले शयितः प्रभुर्नः ।
गोप्यं च तस्य गहनं च विचित्रमाया
सङ्कल्पवैभवमिदन्तु विदुस्स्वयं के ? ॥ ७ ॥

वह हमारा प्रभु समस्त ब्रह्माण्डों को अपने पेट में धर कर और फिर बाल रूप धारण करके बड़े धैर्य के साथ वट वृक्ष के एक

पत्ते पर सोया था। उसकी गुप्त और अपार विचित्र माया के इस संकल्प वैभव को अपनी बुद्धि के प्रभाव से कौन जान सकता है?।

उस प्रभु की अघटित घटना माया (इच्छा) ऐसी है कि साधारण बुद्धि वाले की समझ में नहीं आ सकती। प्रलय काल में आपने इतना छोटा शरीर बना लिया कि एक बटके पत्ते पै पाँव फैलाकर सो गये। फिर भी आपका उदर तो इतना विशाल था कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी उसके एक कोने में सावकाश समा सकते हैं। तब बताइये उसकी ज्ञान क्रिया आदि का पता जानने की सामर्थ्य किस में है। तर्क बुद्धि वाले क्या उक्त घटना को अपने तर्क से सुसंगत कर सकते हैं, कदापि नहीं ॥ ७ ॥

संकल्पतस्सुरनरादिसमस्तलोकान्
संवर्ध्य भाति परमः प्रभुरेष मायी।
एवं विना किमपरो जगतां स्थितिं
तद्रक्षां च कर्तुमुचितः प्रभुरस्ति कश्चित् ॥ ८ ॥

यह असंख्य माया वाला परम प्रभु सृष्टि रचना के समय में अपने संकल्प से ही सुर नर पशु पक्षी आदि प्राणीवृन्द और समस्त लोकों को उत्पन्न करके बढ़ा देता है। वही तो सर्वोपरि प्रकाशमान है। क्या उस प्रभु के विना दूसरा कोई जगत् की सृष्टि रक्षा प्रलय करने वाला ईश्वर है। नहीं वह हमारा प्रभु ही इन कार्यों को कर सकता है, अन्य नहीं।

यह प्रभु प्रलय में भी सब जीवों को सँभाल कर अपने उदर में ऐसा रखता है कि वे फिर सृष्टि के समय बाहर आकर अपना अपना कार्य करने के योग्य रहते हैं। सर्व देश सर्व काल सर्व अवस्था में सर्व रक्षण उचित रीति से करने की शक्ति रखने वाला क्या कोई अन्य हो सकता है, कदापि नहीं।

संरक्षणाय जगतां प्रभुरेष कृष्ण
स्सर्वानपि स्वजठरे कृतवान् हि लोकान्।

तंनाभि सम्भवजं चतुराननंतं
देवन्द्रमप्यमरवृन्दमुखान सूत ॥

संपूर्ण जगत् परमप्रभु यह कृष्ण ही है। इसीने प्रलय के समय जगत् की रक्षा करने के लिये (प्रलय के कष्टों से बचाने के लिये) समस्त लोकों को अपने पेट में कर लिया था। और उसीनें अपनी नाभि कमल से चार मुख वाले ब्रह्माजी तथा देवराज इन्द्र तथा अन्य देवों को उत्पन्न किया था।

जो रक्षक है पालक है वही संहार कर्ता भी है विष्णु पुराणे
"सर्गस्थिति विनाशानां जगतोयो जगन्मय.।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने,, ।१।२।४।

वही श्रीकृष्ण, विष्णु नारायण है उसी की नाभि से कमल कमल से ब्रह्मा ब्रह्मा से सब जगत् उत्पन्न हुआ है ॥ ९ ॥

माया मयोऽसि भगवान्नखिलान् किलास्मान्
त्वय्येव दर्शयसि सर्वं जगत्तीश्च ।
इत्येव रुद्र चतुरानन शर्व मुख्या
देवा भजन्ति गरुड़ध्वज पादयुग्मम् ॥ १० ॥

हे भगवन्। आप अनेक माया वाले हो। आप हम सब लोगों को अपने शरीरही में दिखाते हो। और समस्त संसार को भी अपने शरीर में वास करने को स्थान देते हो। इस प्रकार श्रीरुद्र श्रीब्रह्म देव तथा अन्य देव गण भी गरुड की सवारी पर चलने वाले प्रभु के चरण कमल की सेवा किया करते हैं।

परमतत्व श्रीमन्नारायण हैं। न ब्रह्मा है न शिव न अन्य देव हैं। वेतो जब प्रभु गरुड पर सवार होकर अपनी कृपा से उनके सामने प्रगट होते हैं तब प्रभु की स्तुति करते हैं। वे प्रभु जब जिस देव का महत्त्व बढ़ाते है तब अवतार धारण करके नरवेष से उसकी स्तुति पूजा करते है। वह स्तुस्ति पूजा सत्य नहीं है। उस पूजा से हमको पर तत्त्व में सन्दे नहीं करना चाहिये। सर्वेश्वरतो नारायण ही है। अन्य देव सब उनके दास है ॥ १० ॥

स्तव्यं समस्त जगता मपि मान मूलं
स्म्याकृतिं शठरिपुः कुरुका पुरीशः।
स्तोतुं सहस्रमवदद्दशकं च दिव्यं
तत्रेदमत्र पठतां नहि दोषगन्धः ॥ ११ ॥

समस्त वेदादि शास्त्र प्रमाणों से जो जाना जाता है। और समस्त जगत् जिसकी स्तुति करता है। सर्व सुन्दर शरीर वाले परमात्मा की स्तुति करने को कुरुकापुरी वासी शठकोप मुनिनें जो सहस्र गीति बनाई उसमें इस दिव्य दशक को जो पढैंगें उनके समस्त पाप नष्ट हो जायंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीमहस्रगीतौ द्वितीयशतके द्वितीयदशकंसमाप्तम्।

अथसहस्रगीतौ द्वितीशतके तृतीयदशकारम्भः।

इस दशक में पूर्वोक्त प्रकार के परत्वगुण युक्त परमात्मा का अनुभव करने में संसारी चेतन सहायक नहीं हो सकते अतएव नित्य सूरियों के संग की प्रार्थना आल्वार करते हैं।

हे चित्त ! स्वयमत्र भासि वपुषि स्वस्त्य स्तुते साध्वसि,
त्वां प्राप्यैव हि सुरिरोणमधुरिपुस्वामी ममायं हरिः।
सोऽहं चैक रसात्मकं हि युगलं क्षीरं घृता सन्मधु।
स्वादुश्चेक्षु रसोघनश्च सकलं दिव्यामृतं सङ्गतम् ॥१॥

अये मेरे मन इस शरीर में तू बड़ी सज्जनता से प्रकाशित हो रहा है। तेरा कल्याण हो। तेरे को पाकर तौ आज मैंने देवाधिदेव सर्व पाप हरण कर्ता अपने स्वामी मधु सूदन परमात्मा को जान लिया। अब वह प्रभु दूध में शक्कर के समान मेरे आत्मा से मिलकर एक रस होगया है। अबतौ मेरे को इसके अनुभव में ऐसा आनन्द रस आता है कि मानों दूध घृत मधुगुड मिश्री ये सब इकट्ठे होकर भी इतने मधुर और स्वादिष्ठ नहीं हो सकते। आजतौ मेरे आत्मा में दिव्या मृत स्वाद की कल्लोल इतने वेगसे उठरही है कि उन्होंनें मेरें समस्त पाप तापों को दूर बहा दिया है ॥ १ ॥

स्वामिन् ! नैव समोऽधिकोपि च तव श्रीशासि मायामयो,
जातश्चासि सजातिरेव सकलैरात्माऽसि सर्वात्मनाम् ।।
माता मेऽसि पिता च मे गुरुरसावज्ञातसंशिक्षक,
स्त्वं नाथासि महोपकार निरतो नो वेद्मि कृत्यानि ते ।।

हे प्रभो आप मेरे स्वामी हो । आपके समान और आपसे बड़ा कोई नहीं है । हे लक्ष्मीनाथ आप बड़े मायावी हो । आप समस्त जीव वर्ग के अन्तर्यामी हो आप प्राणिवर्ग की जाति के समान जाति वाले होकर संसार में व्याप्त हो रहे हो । आपही मेरे माता पिता गुरु हो । आप अपनी प्राप्ति के अनेक गुप्त रहस्यों की शिक्षा देने वाले हो । हे नाथ आप समस्त प्राणि वृन्द के सर्वप्रकारके उपकारको सदा करने वाले हो । हे प्रभो अनेक पातक युक्त मलिन दीन हीन इस दास की शक्ति इतनी कहाँ है कि वह आपके कार्यों को यथार्थ जान सके ।

हम आज परमात्मा का अनुभव करने योग्य हुए यह किसका प्रभाव है । यह बात विचारने पर पता लगता है कि न तो यह हमरा प्रभाव है ।और न भागवतों का न आचार्यका इसका मूल कारण केवल प्रभुकी निर्हेतुक कृपा है। क्यों कि उस प्रभु के समान उपकारक अन्य कौन हो सकता है । वह ऐसा सर्वशक्तिमान् है कि मनुष्य में मनुष्य सदृश देव में देव समान पशु में पशु के समान होकर उनके कल्याण के लिए रहता है । आप आत्मरूप से धारण करने वाले तथा माता रूप से प्रिय और पिता रूप से हित करने वाले हैं । तथा आचार्य रूप से सत्य ज्ञान प्रदान करने वाले । आपने हमारे साथ जो उपकार किए हैं उनको हम गिना भी नहीं सकते ॥२॥

वेषाद्वामन एव सुन्दरवटुस्त्वं भूर्वले विक्रमे-
त्येवं वञ्चक एव मोह जनको विष्णो ! मयासङ्गतः ।
मायासंसृतिवार्धिमग्न मपि मां जित्वा हठात्ते हरे !
दास्ये नित्यरतं किलाद्य कृतवान् ! भातीदमत्यद्भुतम् ॥३॥

हे प्रभो आपने बलिराजा को छलने के लिए बड़े सुन्दर ब्रह्मचारी का रूप धारण किया था बड़े ज्ञानियों को मोह पैदा कर देने वाले वञ्चक विष्णु तुम आज आकर मुझ से मिले हो। प्रभो आज मुझे बड़ा आश्चर्य है कि माया रचित संसार सागर में डूबे हुए मेरे को बलात्कार से निकालकर अपनी दास्यवृत्ति में निरन्तर लगने वाला मुझे बना दिया आपके इस उपकार को धन्यवाद है।

अनेक उपकारों में से एक का स्मरणकरते हैं। आपने श्रीलक्ष्मण जी को अपना ऐसा प्रेमी बनाया कि उन्होंने बन जाते समय में बड़े हठ से (अहं सर्वंकरिष्यामि) सर्व प्रकार का कैंकर्य मांग लिया। वैसेही मैं भी जन्मकाल से ज्ञान शून्य और माया के दोषों में लपटा था कि उसको ऐसा अपनाया जैसा बलिको। मेरे साथी तो बली के गुरु के समान अहंकार ममकार बढ़ाने वाले थे परन्तु जिस प्रकार मैं अनन्य बनूं वैसा सुयोग भी आपने ही दिया है। जैसे बली के सर्व विरोधियों को हटाकर स्वीकार कर लिया उसी प्रकार मेरे विरोधियों को हटाकर मुझे अनन्य बना दिया ॥३॥

नाथ ! त्वं जठरे समस्त भुवना न्यादौ प्रवेश्य स्वयम् ।
त्राता मामपि रक्षसीति कृत विस्वास्तार्पणं चाचरम् ॥
नस्यादस्य निवृत्तिरात्मन इह त्वं भासि चात्मामम
स्वात्माको मम ! कोऽस्म्यहं ! स्वयमिह स्वीयं हि दाताऽवृणो॥४

हे नाथ आप समस्त लोकों को अपने उदर में धर लेते हो और इस प्रकार इनकी रक्षा करते हो। मैंने भी यही सोचकर कि मेरे स्वरूप की रक्षा भी ईश्वरको आत्म अर्पण करनेसे हो जायगी। इसी लिए अपना आत्मा आपके अर्पण कर दिया किन्तु इस आत्मा की दुःखनिवृत्ति इस प्रकार न हुई क्योंकि मेरी आत्मा तो आपकी वस्तु है उसे देने का मेरे कोअधिकार ही क्या है। नहीं प्रभो मैं और मेरा सब कुछ तो आप ही का है। इस आत्म वस्तु को सत्ता प्रदान करने वाले आपने अपनी वस्तुको स्वयं स्वीकार किया है। मैं उसे देने वाला कौन हूँ।

मेरे मनके भीतर प्रगट होकर उत्तम अनुभव दिया इस कारण

प्रथम उसको आत्म समर्पण किया फिर उसी ने ज्ञान दिया कि मैं उसी का हूँ फिर यह दान कैसा उस प्रभुने दुर्बुद्धि नष्ट करके सुबुद्धि दीनी यह भी उसका बड़ा उपकार है। हम प्राणिवर्ग प्रलय सृष्टि ज्ञान अज्ञान सब दशा में उसके ऋणी हैं ॥४॥

ज्ञानाधिभ्ययुतैरनाश्रितगणैर्न प्राप्यसे त्वं विभो !
भक्तानां स्वयमेव मोक्षसुखरूपोऽसीह दिव्यामृत !
व्यावृत्तो भव वारिधेरहमहो ! त्वञ्चादिरुत्तारको !
वाराहोऽसि जगद्धरस्त्वदशनेनाहं त्वदङ्घ्री श्रितः ॥

हे प्रभो जो आपके चरणाश्रित नहीं है वे तो सर्वोच्चज्ञान वाले होने पर भी आपको प्राप्त नहीं हो सकते। और भक्तों के लिए तो मोक्ष देने के लिए स्वयं सदा तैयार रहते हो। उनके लिए आप दिव्यामृत रूपी हो। मैं इस असार संसार से अलग होना चाहता. हूँ। और इस संसार से पार करके प्राणी के आदि उद्धारक तुम्हीं तो हो। आपने सर्व प्रथम वाराह रूप धारण करके इस भूमि का अपने दांतों से उद्धार किया था। मैंने भी अपने उद्धार के लिये आपके श्रीचरण कमलका आश्रय लिया है।

बिना प्रभुकी कृपा चेतन प्रभु को नहीं पासकता और यशोदा से प्रेमी जन घर बैठे ही उसके दर्शन स्पर्शन आनन्द को सहज में पाजाते हैं। समुद्र जलमें डूबी भूमिका जैसे उद्धार किया उसी प्रकार संसार सागर में डूबते हुए मेरे को अपनी प्राप्ति कराने वाला ज्ञान देकर उद्धार किया। जिसके सहारे से आपके चरण कमल प्राप्त हुए प्रभो इससे अधिक दासके ऊपर और क्या कृपा होगी ॥५॥

पापध्वंस करोऽसि संश्रितवतां दिव्यां गतीं प्रापयन्,
त्वं विश्लेषविवर्जितः किल सदाऽनन्यान् करोष्येव तान्।
तेजो रूप धरश्च तामस रुचिं सर्वां प्रहृत्य स्वयं।
क्रूरां शूर्पणखामिवासि भगवन् ! प्राक्त्वामहं संश्रितः ॥

हे भगवन् आप आश्रितों के पापों को नाश करके उनको दिव्य-

ज्ञान देते हो। और उन दिव्य ज्ञान संपन्न अनन्य भक्तों से कभी दूर भी नहीं होते। आप तेजस्वी रूप धारण करके भक्तों के हृदय की तामसी भावनाको शूर्पनखा के नाक कान के समान जड़ में से उखाड़ देते हो। इसलिए पाप पुञ्जों से बचने के लिए सर्व प्रथम मैंने आपकी ही चरण शरणली है। प्रभो इस दासको चरण शरणसे दूर न कीजिए यही प्रार्थना है ॥६॥

पूर्वं साधु सुगीतवाद्यरसिकैर्गानामृतं दापयन्,
भक्तानां परमोऽस्ति सेव्यतम एवाहो ! पवित्रो भवान् ।
त्वं भासीक्षुरसोऽमृतञ्च जलदो नीलो ममासि प्रभुः !
कृष्ण ! त्वान्तु विना न जीवितधरस्स्यां त्वं वृणु श्रीशमाम्॥७॥

हे लक्ष्मीपते पूर्व समय में गाने बजाने वाले परम रसिक नारदादिकों को गानामृत पिलाकर आपने जीवित किया था। और भक्तोंके लिए परम पवित्र तथा सेवा करने योग्य आपहो। आप नील मेघ के समान सुन्दर विग्रह वाले मेरे लिए तो ईख के रस और अमृतसेभी अधिक स्वादिष्ट जान पड़ते हो। हे कृष्ण आपके दर्शन बिना मैं अब जीवित नहीं रह सकता। प्रभो जल्दी से दर्शन देकर इस दास को जीवन दशा में ही इसे स्वीकार कीजिए यही प्रार्थना है ॥७॥

श्याम अब मत तरसाओजी-
मन मोहन नंदलाल दयाकर दरश दिखाओजी।
व्याकुल आज आपकी दासी माधव आ ओजी।
तव दर्शन लगि तृषित दृगन को सुधा पिया ओजी।
प्राणधार प्राणाधार निकसत वेगि सिधावोजी।
तुम बिन प्राण रहे अब नाहीं धाइ बचाओजी।

शिक्यस्थां नवनीत दुग्ध सरणिं सर्वां च भुक्त्वा रह-
स्येव त्वं ममनायकोऽसि भगवन् ! पापान्यहं खण्डयन् ।
दिव्यज्ञान श्रुतैस्तपोबलमहाभाग्येन लभ्यां गतिं,
दिव्यां तां चिरकालतोऽपि सहसैवाहं गतोऽस्यां जनो ॥८॥

अहह मेरा तो वही स्वामी है जिसने सूने घर में जाकर छींके पर से बहते हुए माखन को तथा दूध को भले प्रकार भक्षण किया था। प्रभो दिव्यज्ञान सम्पन्न शिवसनकादिक जिस गतिको बड़े बड़े कठिन तपोबल से बहुत दिनों में प्राप्त होते हैं। उसी दिव्यगतिको मैंने आपके चरण शरण बल से इस जन्म में ही सम्पूर्ण पापों का नाश करके बहुतही शीघ्र प्राप्त कर लिया है।

बहुयुग बहुत योनि फिरि हारो अबतौ एक भरोसो तिहारो।
यद्यपि कुटिल कामरत पापी तदपि तौ दास सदा हौं तिहारो॥
आऊं कहां तव चरण बिहाई लीन्हों पदकमल सहारो।
पायो नाथ दिव्य पद मैंने तव चरणन को कैसे बिसारों ॥८॥

विघ्राणस्य सुगन्ध वाहितुलसी मालां च कृष्णस्य वै,
सूरीणामपि नायकस्य परमस्याहं पवित्रस्य च।
कल्याणेपु गुणेपु मग्न हृदयः पापाब्धि संशोषकः,
सर्वत्रापि भृशं प्रविश्य सुगुणानापीय मोदेत माम् ॥९॥

अत्यन्त सुगन्धवाली तुलसी की माला को धारण करने वाले नित्य मुक्तों के स्वामी परम पवित्र भगवान् श्रीकृष्णके कल्याण गुणों में मेरा मन ऐसा डूब गया है कि उसके प्रभावसे मेरा पाप समुद्र सब सूख गया। वह सर्वत्र व्याप्त होकर ही उसके दिव्यगुणामृतका पान करके प्रसन्न होने वाले मुझे वह अवश्य आनन्द प्रदान करेंगे ॥९॥

उत्साहं च विषाद मप्यह महो ! दूरे विहाय त्यजन्,
जन्म व्याधि जरामृतीश्च महसां ज्योतिः परंशाश्वतम्।
त्रैलोकं धरणीं च पातु मनिशं श्रीशंखचक्रान्वितं,
देवं तं भजतां कदानु महतां गोष्ठीमुपैमि स्वयम्॥

अहह मेरे लिए वह शुभ दिन कब आवेगा जबकि मैं हर्ष और विषाद को दूर छोड़ कर तथा जन्म रोग बुढ़ापा मौत को त्याग कर समस्त तेजस्वीयों में सबसे अधिक तेज वाले, त्रिलोकी की रक्षा करने

के लिए जो सदा शंख चक्रों को धारण करते हैं। उन दिव्य गुण वाले प्रभु का भजन करने वाले महात्माओं की गोष्ठी (सन्निधि) में स्वयं जाकर सत्संग सुखका अनुभव करूँगा।

श्री वैष्णव महात्माओं की कोष्ठी के संग का प्रभाव नीचे के पदों से समझना चाहिए।

मन सत्संगति नित कीजै—

संत मिलन अघ तापनशावन सन्त चरण चित दीजै।
सन्तन निकट नित्य प्रति जइये हरिनामामृत पीजै,
सन्तहि सकल भांति नित सेइय सब विधि मुदित करीजे।
सन्तनमहं विश्वास करिय पुनि श्रद्धा अतिशय कीजे,
सन्तहि नित हरि रूप निहारिय सन्त कहैं सोई कीजै।
हरिको सकल मर्मते जानहिं तिनसों सब सुनि लीजै,
सुनि २ मन महं धारण कीजै मनतामह रंगिलीजै।
सन्त सुहृदय जो पन्थ बतावें तेहि पथ गमन करीजै,
झटपट हरिके धाम पहुँचिये प्रमुदित दर्शन कीजै॥१०॥

सङ्घी भूत निशाचराधिप कुलच्छेदाय रोपान्वितं,
देवं सज्जनवृन्दवन्द्यकुरुका धीशश्शठारिमुनिः।
स्तोतुं चाह सहस्रपद्यसरणिं दिव्यां सुबन्धावलीं,
तत्रेदं दशकन्तु भक्त निवहैस्सङ्कीर्त्य भो! नृत्यत॥११॥

राक्ष कुलके झुण्डों का नाश करने के लिए क्रोध युक्त होने वाले देवको, सज्जन गणों से वन्दना करने योग्य कुरुकापुरीके वासी शठकोप मुनिने स्तुति करने के लिए सहस्रश्लोक वाली सुन्दर सहस्रगीतिको कहा है। उसमें इस दशक को भक्त वृन्दके साथ कीर्तन करके नृत्य करना चाहिए। इसी से कल्याण होगा॥११॥

इति श्रीसहस्रगीतौ द्वितीयशतके तृतीयदशकं समाप्तम्।

अथश्रीसहस्रगीतौ द्वितीशतके चतुर्थदशकारम्भः।

इस दशक में पूर्वोक्त प्रकार से प्रार्थना करने परभी जब प्रभुने आल्वार को दर्शन नहीं दिया तब उनकी प्राप्तित्वरा से दुःखी होकर नायिकावस्थाको प्राप्त होकर वेहोसी में नायिका की माता के वाक्यों का वर्णन करते हैं।

भास्वल्ललाटललिता तनया ममेयं,
भ्रान्ता चरत्यहह ! विद्रुतचित्तभित्तिः ।
गीतानि गायति ततो गलिताश्रु धारा,
ष्यन्विष्य शुष्यति विभो ! नृहरे ! ममेति । १

ओहो चमकते हुए ललाट से सुशोभित यह मेरी पुत्री है । हाय आज इसका दिमाग़ बिगड़ गया है। यह पागल हो करके इधर उधर दौड़ती है । फिर आंसुओं की धारा बहाकर उस प्रभु के गीतों को गाती है । और अनेक स्थानों में ढूंढने पर भी उस प्रभुके दर्शन न पाकर इसकी शरीरलता सूखती है । और बारबार कहती है कि हे मेरे स्वामी नरसिंह क्या इस दासी की इस विरह ज्वालाको अपनी शीतल दृष्टि से शान्त नहीं करोगे ।

प्रभु से मिलने में प्रह्लाद के अति प्रबल विरोधियों को अघटित घटनामय नरसिंह रूप धरकर नष्ट कर दिया था । तो क्या वह मेरे तुच्छ विरोधियों को दूर करके मुझे अंगीकार नहीं करेंगे ॥१॥

सेयंलसन्मुख्रतला मम कोमलाङ्गी,
त्वद्दर्शनाय विरहादिह भाति खिन्ना ।
वाणासुरस्य तु सहस्र भुजच्छिदेवं,
किं निर्दयोऽसि ? तव दर्शन कामिनीयम् ॥२॥

यह सुन्दर मुखवाली कोमलांगी मेरी पुत्री तुम्हारे दर्शनों के लिये विरहाग्नि से जली हुई बड़ी दुःखी दीखती है । हे प्रभो आप इतने निर्दयी क्यों बन बैठे हो । आपके दर्शनों के लिए तो इसने सब कुछ छोड़ कर तीव्र इच्छा लगा रखी है । वाणासुर की हजार भुजाओं को काटने वाले क्या इस प्रकार की निर्दयता आपको उचित है।

उषा अनिरुद्ध के संयोग में बाधा डालने वाले प्रचण्ड पराक्रमी बाणासुर की सहस्रों भुजाओं को सहज में काटने वाले आपके लिए मेरे विरोधियों को दूर करना क्या कोई कठिन काम है ॥२॥

क्लेशादियं मनसि हन्त विभाति चाभो
लाक्षादिवद् द्रुततनुर्वत ! निर्दयोऽसि ।
लंकान्तु राक्षसपुरीं नितरां प्रणाश्य
प्रख्याति मान् किल भवान् किमु तेऽद्यकुर्याम् ॥ ३ ॥

हे प्रभो आपका वियोग कष्ट इसके मन में इतना बढ़ गया है कि उसने इसके शरीर को अग्नि में पड़ी लाख के समान गला कर पतला कर दिया है। हाय ! आप इतने निर्दयी बन बैठे कि इसकी खबर भी नहीं लेते। आपने राक्षसों की पुरी लंका को समूल नाश करके शरणागत रक्षक की प्रसिद्धि पाई है, परन्तु आपकी इस निर्दयता को आज मैं क्या करूँ ॥ ३ ॥

लंकापुरप्रमथनेति वदेत्पुनश्च तार्क्ष्य
ध्वजेति च वदेदिय मुच्छ्वसन्ती ।
सन्तप्त मानसतया किल साश्रुधारा
भ्रान्तिं गता भवति साञ्जलि बद्धहस्ता ॥ ४ ॥

प्रभो आज मेरी यह पुत्री मन के दुःख से इतनी व्याकुल होगई है कि आँसुओं की धारा बहाकर लम्बे लम्बे श्वांस लेती हुई पागल हो रही है। यह बारम्बार दोनों हाथों को जोड़कर अनेकप्रकार के प्रलाप करती है, कभी हे लंकापुर मथन करने वाले कहती है और कभी हे गरुड़ध्वज कह कर लम्बे श्वांस लेती है।

प्रथम गाथा में सीताजी के रक्षा करने के लिये विरोधियों के नगर तक को जला दिया था, किन्तु उनके मिलने की आशा में सीताजी को ११ मास का विलम्ब सहना पड़ा था यह कहा है। परन्तु इस गाथा में तो गजेन्द्र के दुःख दूर करने में क्षण विलम्ब को भी न सहने वाले गरुड़गामी का स्मरण करके यह सूचित किया है

कि हमारे दुःख को गरुड़ द्वारा अति शीघ्र आकर नष्ट करिये हम अल्प शक्तियों में अधिक विलम्ब सहने की शक्ति नहीं है ॥ ४ ॥

नक्तं दिवं भ्रमवचांसि हठाद्वदन्ती
नीलोत्पलाक्ष्यभवदेव हि साश्रुधारा ।
भृंगावृतां च सरसां तुलसीं न दद्याः
किं वेदृशी तव कृपा वत ! शुद्धशील ? ॥ ५ ॥

हे शुद्ध स्वभाव वाले ! नील कमल के समान सुन्दर नेत्र वाली यह मेरी पुत्री दिन रात आँसुओं की धारा बहा कर हठ करके भ्रम वाक्य (अनापसनाप) कहती है। यह कहती है कि जिस पै भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं, वह प्रभु के चरणों की प्रसादी हरी तुलसी से ही मेरी व्याधी नष्ट होगी । तो शुद्ध स्वभाव वाले आप उसको अपनी प्रसादी तुलसी देकर अपनी परम दयालुता का परिचय शीघ्र क्यों नहीं देते हो ।

जब प्राणी किसी बड़ी भारी चिन्ता से ग्रसित हो जाता है तब उसकी निद्रा भंग हो जाती और फिर वह रात दिन जग कर अनापसनाप बकने लगता है। जब तक उसकी चिन्ता दूर न होगी तब तक उसका वह रोग सैकड़ों औषधियों से भी नहीं जा सकता। अतएव चिन्ताहरण उपाय ही वहाँ परमौषध है। यहाँ पर चरण प्रसादी तुलसी मिलने की चिन्ता ही बड़ा रोग है। अतएव प्रभु कृपा से उसके मिलने से वह रोग नष्ट होगा अन्यथा नहीं ॥५॥

सेयं द्रवीकृत तनुर्विगत स्वचित्ता
हा ! हन्त ! जल्पति सुशील ! दयापरेति ।
संवर्धिता भिलपितोऽसि ममेश्वरेति
स्वात्मान्तरोऽसि च ममामृत सागरेति ॥ ६ ॥

प्रभो यह मेरी पुत्री जिसका मस्तक ठीक नहीं है। और विरह से गल गया है शरीर जिसका, वह बड़े दुःख के साथ चिल्लाती है कि हे सुन्दर स्वभाव ! हे दया परवश ! हे मेरे नाथ ! आप मेरे अन्तरात्मा हो और मेरे लिये अमृत सागर हो। आपको प्राप्त करने

के लिये ही मैंने बहुत दिनों से अभिलाषा बढ़ा रखी है। क्या इस अभिलाषा लता को सफल बनाने की आप कृपा करेंगे ॥ ६ ॥

सेयं हि वञ्चन परा हृदयं न वक्ति
व्यक्तं स्वयं स्वविटवञ्चन कृत्यखिन्ना ।
संशोपितात्मकतया वदतीह कृष्णे
त्यौदार्य वन्निति च वार्धिशयेति भूम्ना ॥ ७ ॥

प्रभो इस पुत्रीसे मैंने बहुत पूछा कि अरी बता तो सही तेरे को क्या दुःख है। परन्तु किसी विटलने उसे ऐसा ठगा है कि उस ठगाव से दुःखी होकर अनेक बहाने बनाकर हम से भी ठगपना लगाती है। और अपने हृदय की बात स्पष्टरूप से नहीं बताती। इसका शरीर और इन्द्रियाँ दुःख से सूख गई हैं। वह हे कृष्ण, हे उदारता वाले, हे क्षीर समुद्रशायी इत्यादिक नामों को बड़े महत्व के साथ कहती है। एक ओर तो प्रभु का वियोग दुःख दूसरी ओर उसकी अलौकिक कृपा का विचार कि उस परम दयालु ने हमारे लिये ही अनेक अवतार धारण किये हैं। और हमारे लिये ही क्षीर सागर में शयन किये हैं। परन्तु वह आज हमारे हृदय में प्रगट होकर हमारे दुःखों को दूर करने में क्यों देरी कर रहा है, इसका पता नहीं लगता ॥ ७ ॥

हे वञ्चकेति वदति स्वयमञ्जलिं च
स्वैरं करोति वत दग्ध निजान्तरङ्गा ।
सेयं हि निस्स्वसितिहा शरणं प्रपन्ना
त्वां कंस वञ्चक ! कथं वत ! वाऽनुभूयात् ॥ ८ ॥

इस मेरी पुत्री का मन वियोग दुःख से इतना दग्ध होगया है कि वह बार बार हे वञ्चक ऐसा कहती है। और फिर अपने आप हाथ भी जोड़ती है। फिर वह बड़े दुःख से लम्बे श्वांस लेती है। कंस को धोखे से मारने वाले आपकी शरण में प्राप्त हुई यह आपके दर्शन का अनुभव कैसे करे यह तो बताओ।

नटनागर ने मोहनचातुर्य से नायिका का मन तो हरण कर लिया, परन्तु मिलते नहीं इसी से वञ्चक कहा और अभी मिल

जायेंगे इस आशा से हाथ जोड़ना कहा। फिर भी वियोग समुद्र को दुस्तर समझकर श्वांस लेना कहा। आप कंस के हन्ता हो तो भक्त विरोधि नाशक हो। और यह आपके शरण आई है फिर न तो मिलते हौ और न भूलने देते हौ और न वियोग विरोधी को हरण करते हौ। समझ में नहीं आता कि आपकी लीला का क्या रहस्य है ॥८॥

अस्तं न वेत्ति नच वेत्ति किल प्रभातं,
सेयं सदाऽपि तुलसीं तव वक्ति रम्याम्।
ज्वालाकुलातिनिशितानन चक्रपाणे !
दीनामिमां प्रति किमस्ति तवाद्यचित्ते ॥९॥

हे चक्रपाणे यह मेरी पुत्री आपकी चिन्ता में इतनी व्याकुल हो गई है कि इसको सूर्य के उदय और अस्तकाल का भी ज्ञान नहीं है। यह सदा यही कहती है कि अहह मेरे प्राणनाथ आपके चरणों की तुलसी कैसी सुन्दर सुखदायिनी है। सैकड़ों ज्वालाओं से व्याप्त और अत्यन्त तीक्ष्ण है मुख जिसका ऐसे चक्र को धारण करने वाले! इस दीन दुःखिनी के लिए आपने अपने मन में आज क्या विचार कर रक्खा है।

यह तो आपके ध्यान और प्रसाद की चिन्ता में पागल सी हो गई है। आप चक्रधारी हौ चाहें इसके अज्ञान को हरण करिये चाहे इसकी प्राण यात्रा को समाप्त कर दीजिये। इन दोनों में से इस भोली की भलाई के लिए कोई तो मार्ग निकाल दीजिये ॥९॥

दीनात्वियं भ्रमवशाहि दिवानिशंचा,
प्यश्रुप्रवाह भरिताऽस्त्यसितायताक्षी।
लङ्कां प्रणाश्य किल कण्टकदुष्प्रभुत्वं,
प्राध्वंसयोऽद्य परिपाहि कटाक्षमस्याः ॥

यह बड़ी दीन है यह भोलेपन में आकर दिनरात अपने कजरीले नेत्रों से आंसू की धार प्रवाह को बहाकर रो रो कर उनको नष्ट करे देती हैं। आपने लङ्का को नष्ट करके उसके दुष्टराजा रावण को

सपरिवार नष्ट कर दिया था। दयालो! इस विचारी के नेत्रों की तो कृपा करके रक्षा करिये।

आपने दुष्ट रावण को मारकर रोती हुई सीताजी के नेत्रों की रक्षा करी थी। यह बाला बड़ी चंचल चित्तकी और भोली है। आपके मिलने में विरोध करने वालों का नाश करके आंसू पोंछ कर इसकी नेत्र रक्षा करना भी आपका कर्तव्य है।

नित्यामुदारगुणवामन दिव्य कीर्तिं,
स्तोतुं मुनिश्शठरिपु कुरुका पुरीशः।
छन्दोनिवद्धमिह पद्य सहस्रमाह
स्यात्तत्पदाब्ज युगले दशकं त्विदं स्रक् ॥

अत्यन्त उदार गुण वाले वामन भगवान् की नित्य तथा दिव्य कीर्ति की स्तुति करने के लिए कुरुका पुरीवासी शठकोपमुनि ने अनेक छन्दों में बन्धे सहस्रगीति को कहा है। उसमें यह दशक उस परम प्रभुके चरणोंमें पुष्पमाला के समान अर्पण किया जाता है॥११

इति श्रीसहस्रगीतौ द्वितीयशतके चतुर्थदशक समाप्तम्।



अथश्रीसहस्रगीतौ द्वितीशतके पंचमदशकारम्भः।

इस दशक में पूर्वोक्त विरह विलाप से सन्तुष्ट प्रभुने आल्वार को आकर अपनी छाती से लगा लिया। प्रभु के आलिंगन सुख का अनुभव करके अत्यन्त प्रसन्न चित्त से उनके दिव्य भूषण दिव्यायुध दिव्य अवयव सौन्दर्य का और नित्य सूरिजनसेवनीयता का अनुसन्धान शठकोपमुनि करते हैं।

स्थित्वाऽसौपरमे पदे ममहृदि स्वैरं प्रविष्टोऽधुना!
दिव्यास्त्रग्विकिरीट चक्र जलजा यज्ञो पवीतस्रजो।
एताभान्ति किलास्य नेत्र युगलं बिम्बाधरं चाङ्घ्रियुक्,
सर्वं चाम्बुजसन्निभं! तनुरहो दिव्यासुवर्णात्मिका ॥१॥

आह! दिव्य वैकुण्ठ में जो नित्यानन्दानुभव करता है। वही

प्रभु आज अपनी इच्छा से मेरे हृदय में आकर बैठ गया है। दिव्य मोती की झालरवाला उसका किरीट है। शंख, चक्र उसके हाथों में है। यज्ञोपवीत, फूलमाला उस कन्धे पर शोभायमान है। उसके दोनों नेत्र तो बड़े ही सुन्दर हैं। उसके लाल ओठ और दोनों चरण कमल के समान प्रकाशित हो रहे हैं। ओहो ! सुवर्ण के समान उज्वल उसका दिव्य मंगल विग्रह तो मनको मोहने वाला बहुत ही सुन्दर है ॥१॥

त्यक्त्वाऽसौ सकलं मया सह हरिस्साक्षात् स्वयं सङ्गतो,
नाथस्यास्य तनुर्विभाति दिनकृद्वर्णा च पद्मे दृशौ।
हस्तौ चाम्बुरुहौ ! श्रियोऽस्ति वसतिर्वक्षस्थली ब्रह्मणो,
नाभिर्भाति च जन्म भूरहह ! तल्लिङ्गं हरस्याप्यहो ॥२॥

ओहो ! यह हरि अन्य सबको छोड़कर मेरे साथ साक्षात् स्वयं आकर मिला है। इस मेरे स्वामी का शरीर सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा है। और दोनों नेत्र नील कमल के समान शोभा दे रहे हैं। तथा हाथ रक्त कमल के समान चमक रहे हैं। लक्ष्मी का वासस्थान इसका वक्ष स्थल है। ब्रह्मा का वासस्थान इसकी नाभि प्रकाशमान हो रही है। अहह श्रीरुद्र भगवान् का स्थान भी इसकी लिंगेन्द्रिय है ॥२॥

सम्यग्भाति महोज्वलः किल मया सङ्गत्य नाथो मम,
श्रीशस्यास्य महाचलस्य वदनं नेत्राङ्घ्रि हस्तात्मकम्।
सर्वं भाति सरोजमेव ! जगतां स्थानं किलास्योदरं,
नैव स्यात्किल किञ्चदप्यहह ! हा ! तस्मिन्न यन्सङ्गतम् ॥३॥

मेरा स्वामी मेरे साथ मिलकर बड़ी उज्वल मूर्ति से भली भाँति प्रकाशित हो रहा है। इस तेज के समूह रूप पर्वत के सम्पूर्ण अवयव मुख नेत्र चरण हस्त सर्व कमल के समान शोभा दे रहे हैं और इसका पेट तो समस्त ब्रह्माण्डों को रखने का एक मात्र स्थान है। अहह ऐसी कोई भी वस्तु संसार में नहीं है जो मेरे स्वामी के शरीर में न रहती हो।

सोऽयं सर्वकलासु सर्व दिवसेष्वप्यास्ति मासेष्वहो !
सर्वेष्वेव समस्तवत्सरगणे ष्वेवं हि कल्पेष्वपि ।
सङ्क्त्यैव मय। सहामृत निधिश्चाशेष एव स्वयं,
सर्वात्माऽसित पर्वतोऽम्बुजमिदंनेत्राङ्घ्रि हस्तं नवम् ॥४॥

यह यह मेरा प्रभु ऐसा है कि सर्व घड़ी सर्व दिवस सर्व मास तथा सर्व संवत्सरगण और कल्पों में भी अनुभव करने पर भी हमारे लिए नित नया अमृत का महासमुद्र है। वह सर्वान्तर्यामी नील पर्वत के समान कान्तिवाला है। उसके नेत्र चरण हस्त तो तत्काल खिले कमल के समान अत्यन्त चित्त को आनन्द देने वाले हैं ॥४॥

सम्पूर्णामृत वारिधिर्हृदि ममाप्यन्तः प्रविश्यासतो,
नाथो मेऽस्तिहि नीलमेघसदृशः कृष्णः प्रभुर्निस्समः ।
चक्षुः पाद करे न पद्ममुपमा ! नैव प्रवालोऽधरे ।
भूयादस्य लसन्ति हार मुकुटौ काञ्च्यादिभूषागणाः॥५॥

यह मेरा नाथ सम्पूर्ण ही अमृत का समुद्र है। उसने असत् हमारे आत्मा में प्रवेश करके उसको सत्ता प्रदान कीनी। जिसके समान दूसरा व्यक्ति नहीं है। वही नील मेघ समान रंग वाला है। उसके नेत्रों को,चरणों को, हाथों को, कमल की उपमा देना और होठों को मूंगा की उपमा देना कभी नहींहो सकता। इसके हार, मुकुट, कौंधनी आदि भूषण बड़े ही शोभा से प्रकाशमान् हो रहे हैं।

अभी तक तो उपमा देकरही मनको समझाते रहे किन्तु अनुभव जब उच्चकोटि को प्राप्त हो गया तो उपमा तुच्छ लगने लगी इसलिये उपमेय का ही वर्णन करते हैं। इस गाथा में श्रुतिप्रमाण से यह बात सिद्ध की गई है कि—

"असन्नेव सभवति असद्ब्रह्मेति वेदचेत् ।
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततोविदुः ॥" तैत्त० ब्रह्मानन्द वल्ली।

जब तक इस चेतन को ईश्वर का यथार्थ ज्ञान नहीं होता तब

तक यह असत् सा ही है। और जब ईश्वर का यथार्थ ज्ञान हो जाता है तभी यह सत पद वाच्य होता है।

इसीलिए इस गाथा में ईश्वर ज्ञान शून्य आत्मा को असत् शब्द का प्रयोग किया है ॥५॥

दिव्यान्याभरणानि चाप्यगणितान्यस्यास्ति नामावली,
दिव्याचाप्यमिताऽस्ति रूपसरणिर्दिव्याऽप्यनन्ता हरेः।
दिव्यं दृष्टि रुचिश्रुतिस्पृगुदितं प्राणेन्द्रियस्थं सुखं,
सर्वं चामित मेव शेप शयितुर्ज्ञानं च दिव्यं वहु ॥६॥

शेष पर शयन करने वाले इस हरिके असंख्य दिव्य आभरण हैं। और इसके नाम भी असंख्य हैं। तथा तेजोमय असंख्य दिव्यरूप है। इसके दर्शन भक्षण श्रवण स्पर्शन घ्राणज आनन्द दिव्य है। अर्थात् देखना खाना सुनना सोना सूंघना आदि सब उसके दिव्य (अलौकिक) है। उसकी शेष शय्या भी दिव्य तथा ज्ञान भी दिव्य ही है।

ईश्वर के दर्शनादिक कार्य ऐसे विलक्षण हैं कि उनको मनुष्य तार्किक बुद्धि से कभी नहीं जान सकता केवल भगवत्कृपा लब्ध शास्त्रीयज्ञान ही इन सबके जानने का एक मात्र उपाय है ॥६॥

क्षीराब्धौशयनं चशेषशयने नीलार्थ मेवाद्भुतः,
ख्यातःसप्तवृषप्रहार इह योऽभूत्सप्तसालाहतिः॥
तत्सर्वं कृतवान्मदर्थमयमेवात्यन्तरम्याकृतिः।
विष्णुः श्रीवृषवीर्यभाक् च तुलसी मालाकिरीटोज्वलः ॥७॥

अत्यन्त सुन्दर शरीर वाला सॉड के समान अत्यन्त बलशाली यह विष्णु जो क्षीर समुद्र में शेष शय्यापर शयन करता है। जिसने नीलादेवी की प्राप्ति के लिए अनोखे सात सॉडोंको नाथकर अपनेवश में कर लिया था। और अपने मित्र सुग्रीवको विश्वास दिलाने के लिए सात साल वृक्षों को वेधा था। और जो तुलसी की माला वाले किरीट से प्रकाशित हो रहा है। इस परमदयालुने यह सब हमारे ही उद्धार के लिए किया है।

वह प्रभु आश्रितों के उद्धारार्थ ही क्षीर समुद्र में विभव रूपसे कोमल शीतल विशाल सुगन्ध वाले शेषजी की शैय्या स्वीकार करके रहते हैं। वे ही तो हमारा उद्धार करने के लिए श्रीराम श्रीकृष्ण आदि अवतार धारण करते हैं कि चेतनगण किसी प्रकार उनकी शरण हो जाय ॥७॥

दीप्तोत्तुंगकिरीटधारिण प्रभुं वीरञ्च मे नायकं
रम्याजानुचतुर्भुजं निरवधिश्रीकं तुलस्यर्चितम्।
नीचेनापि मयाद्य संगतमहं किं वर्णयामि स्वयं
वाचा हन्त न गोचरोऽस्ति वचसः किंब्रूथ यूयं स्वयम्॥८॥

भक्तगण आप उस मेरे स्वामी के गुण कहाँ तक कहोगे। जिसने अत्यन्त प्रकाश वाला सर्वाधिक किरीट धारण किया है, जो बड़ा वीर है। जिसके घोंटू तक लम्बे मोटे गोल चार भुजा हैं। जिसकी सम्पत्ति का पार नहीं है। जो तुलसी की माला से पूजित है। वह आज दीन, साधन हीन मुझ सरीखे नीचसे आकर मिला है। उसको मैं अपनी वाणी से क्या वर्णन करूँ वह तो मनुष्य वाणी क्या वेदवाणी से भी वर्णन नहीं हो सक्ता।

जो नित्य विभूति, लीला विभूति दोनों विभूतियों के स्वामी हैं, वेद भी जिसका (यतोवाचो निवर्तन्ते) वर्णन करते करते थक जाते हैं। उसने ही तो दोष भण्डार मुझे दर्शन देकर अपना अनुभव कराकर कृतार्थ कर दिया है ॥ ८ ॥

यूयं कीर्तयताच्युतं मम विभुं चात्मना मप्यात्मनो
निःसीमाखिलसद्गुणं मणिनिभं ज्योतिश्च दिव्यामृतम्।
मोक्षस्यापि परं पदं त्वसुलभं तं योगिना मप्यहो
पद्मान्तश्च सुगन्धिबीजममलं नारीनरेभ्यः परम् ॥ ९ ॥

प्रिय भक्तगण ! आप लोग प्रेम के साथ अविनाशी मेरे स्वामी का कीर्तन करो। वह जीवात्मा का भी अन्तर्यामी है। उसके उत्तम गुणों की सीमा नहीं है। वह नील मणि के समान कान्ति वाला

दिव्य अमृत रूपी है। वह मोक्ष का भी परमाधार है। वह प्रेम हीन योगियों को भी सुलभ नहीं है। जिसके चरण कमल कमलकी सुगन्धि को भी सुगन्धित करने वाले हैं। जो सर्वदोष रहित शुद्ध है। वह स्त्री पुरुष दोनों से भिन्न और सर्वोत्कृष्ट है ॥ ९ ॥

न स्त्री नापि पुनान्नपण्ड इति च प्रामाण्यवश्यो नहि
स्वामी मे नहि चास्त्यसन्न खलु सन्भक्तात्मनां सुप्रियः।
तेषां चाभिमतोरुदेह इतरोऽप्यास्ते स्वयं श्रीहरि:
स्तं चैनं नहि शक्तिरस्ति वचसा वक्तुं न वक्तुं च मे ॥१०॥

वह मेरा स्वामी न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है, वह प्रमाणों के परतन्त्र भी नहीं है। वह सत् (कारण) असत् (कार्य) इन दोनों से भिन्न है। वह भक्तजनों के लिये तो बड़ा ही प्यारा लगता है। वह प्रभु अपने भक्तों की प्रार्थना से ही अनेक शरीर और नाम धारण करता है। उस परमात्मा का यथार्थरूप से कीर्तन करना वेदवाक्यों की शक्ति के बाहर की बात है। मैं तो उसे गाने और छोड़ने दोनों करने में असमर्थ हूँ ॥ १० ॥

एकं चापि गुणंतु यस्य वचसा वक्तुं न शक्तिर्भवे
तं स्तोतुं प्रभु मच्युतं घटविहारादि प्रियं श्रीधरम्।
साहस्रं कुरुकापुरप्रमुख्यं मौनी शठारिर्जगा
वायन्तं दशकं च तत्र तदिदं दिव्यं पदं प्रापयेत् ॥११॥

जिस परमात्मा के असंख्य गुणों में से एक गुण को वर्णन करना भी शक्ति के बाहर है। उस अविनाशी प्रभु कुम्भनर्तक लक्ष्मीपति की स्तुति करने के लिये कुरुकापुरी के स्वामी आजन्म मौन रहने वाले शठकोपमुनि ने सहस्रगीति को कहा है। उसमें इस दशक को जो पढ़ेंगे वे अवश्य ही उस प्रभु के दिव्य पद को प्राप्त हो जायेंगे।

इति श्रीसहस्रगीतौ द्वितीयशतके पंचमदशक समाप्तम्।



अथ श्रीसहस्रगीतौ द्वितीयशतके षष्ठदशकारम्भः

इस दशक में आल्वार का निराशानुसन्धान देखकर प्रभु को यह शंका हुई कि कहीं हमें छोड़कर ये निराश न हो जाय। इसलिये उनकी निराश भावना को दूर करने के लिये श्रीहरि प्रतिज्ञा करते हैं कि भाई तुम हमारे हो हम तुम्हे कभी नहीं छोड़ेंगे यह बताया है।

वैकुण्ठासि मणिप्रभः किल मम श्रीवामन त्वं प्रिय
स्संश्लेषं मयि सन्दधासि सततं दिव्यामृतात्मा महान्।
सम्पूर्णोऽसि फलप्रदश्च नमतां घोराघहन्ता हरे !
दुष्टानामसि कुन्तवत्प्रमथनस्त्वां संश्रितोऽस्मि स्थिरम् ॥

हे श्रीवामन ! आप नीलमणि के समान वर्ण वाले हो और वैकुण्ठ वासी हो। मेरे तो तुम प्राणों से भी प्यारे हो। आप सबसे बड़े दिव्य अमृत के समान भोग्य हो। आप अपने ऐश्वर्यादि गुणों, से परिपूर्ण हो। आप चरणाश्रितों के लिये समस्त फल देने वाले और उनके भयंकर पापों को नाश करने वाले हो। और आप से विमुख दुष्टों को भाले के समान छेद कर नष्ट करने वाले हो। मैंने तो आपके ही चरणों का स्थिरता से सहारा लिया है।

आल्वार चाहते हैं कि जैसा ईश्वर अनुभव हमको हुआ वैसा सभी भक्तों को हो। किन्तु यह बात परम प्रभु की कृपा के बिना नहीं हो सकती। वे जब कृपा करके स्वभक्तों के अनेक जन्मार्जित पाप को नष्ट कर देते हैं। तभी उनके चरणों में दृढ़ विश्वास होकर उनका अनुभव कर सकते हैं। इसीलिये उन से ऐसी प्रार्थना करते हैं।

ईषद्वाऽपि नहि त्यजेद्बहिरहो ! लोकानशेषान् वहन्
स्वस्मिन्नेव किल स्वयं मयि विशन् ज्ञान प्रभा भास्वरः।
तेजो राशिरुदार सद्गुण निधिर्दिव्यामृतात्मा हरिः
पश्चात्तो मम नायको ऽन्य परतां सन्त्यज्य मय्यास्थितः ॥२॥

थोड़ासा पदार्थ भी बाहर न रह सके इस प्रकार सम्पूर्ण लोकों को अपने शरीर के भीतर धारण करने वाला यह प्रभु दिव्यज्ञान के

प्रकाश से अत्यन्त देदीप्यमान है। संसार के संपूर्ण तेज इकट्ठे होकर एक समूह में हो गए हों ऐसा जिसका तेज है। उदार सद्गुणों (वात्सल्य-स्वामित्व-सौशील्य-सौलभ्य-ज्ञान-शक्ति पूर्ति-प्राप्ति-) के वे समुद्र हैं। सर्व पाप हरण कर्ता कमल लोचन दिव्यामृत स्वरूप वह मेरा स्वामी अन्यआशाओं को छोड़कर मेरे हृदय में आकर स्थिरता से बैठा है ॥२॥

पद्माक्षं दिवि नित्य सूरिनिव हैस्स्तव्यं ममैव प्रभुं,
पुष्पोद्यत्तुलसीस्रजं च कनकाद्रिं श्रीधरं सादरम्।
स्तुत्वा तं मनसा विचिन्त्य वपुषा चानम्य हृष्टा वयं,
नृत्यामोऽद्य ! स एव पद्यरचने शक्तिं च मेऽदात्स्वयम्॥३॥

रक्त कमलपुष्प समान नेत्र वाले उस मेरे प्रभुको जिसकी दिव्य वैकुण्ठ में नित्य सूरिजन सदा स्तुति किया करते हैं। जिसने पुष्पतुलसी की माला धारण की है। जिसके शरीर का रंग सोने के पर्वत के समान है। जिसने अपने वक्षस्थल में लक्ष्मी को धारण कर रक्खा है। उसकी परमादरके साथ वाणी से स्तुति करके मनसे उसका चिन्तवन करके शरीर से प्रणाम करके परम हर्ष को प्राप्त होकर हम लोग-आज नृत्य करें। उसीने मेरेलिए पद्य (कविता) रचना करने की शक्ति अपनी इच्छा से दी है ॥३॥

नित्योदार ! मम प्रभुं मरकताद्रिं त्वां मधुध्वंसिनं,
स्मृत्वाऽन्यत्सकलं विसृज्य सुगुणाम्भोधौ निमग्नोऽस्मिते।
नृत्यन्गानपुरस्सरं प्रमुदितः प्रध्वस्त दुःखोऽधुना,
धन्योऽहं तव सन्निधानानुभवं प्राप्य त्यजाम्येव किम् ॥४॥

सदा ही उदार भाव से रहने वाले मेरे स्वामी को मरकतमणि (पन्ना) के पर्वत के समान वर्णवाले मधु सूदन (भक्तों की मधु दैत्य के समान भयंकर भजन बाधाओं का नाश करने वाले) को स्मरण करके सांसारिक अन्य वस्तुओं को छोड़कर आपके उत्तम गुण समुद्र में निमग्न हो गया हूँ। उस स्वामी के गुण समुद्रमें मग्न हो कर नाथ

गान करने की प्रसन्नता से इस समय मेरे सम्पूर्ण दुःख नष्ट होगए हैं। आज इस संसार में मेरे समान धन्य भाग्य किसके हैं। प्रभो आपकी चरण सन्निधि में आपके गुणानुभव का आनन्द भोगकर क्या मैं अब उनको छोड़ूंगा? नहीं, कदापि नहीं ॥४॥

क्षीराब्धौ शयितोऽसि शेष शयने तां योगनिद्रां भजन्,
मन्नाथ! त्वदुदार रूपगुणभूत्यादिस्मृतेर्धन्यताम्।
लब्धाऽहं सकलाघसन्ततिहतिं कृत्वाऽधुना श्री हरे!
त्वद्दास्यं परमं शुभं निरवधि प्राप्तस्त्यजाम्येव किम् ॥५॥

हे मेरे नाथ आप तो चेतन वर्ग के हित चिन्तन के लिये उस- योग निद्रा (एकान्त ध्यान) का सेवन करने के लिए क्षीर समुद्र में शेष शय्या पर सोते हो। हे हरे! मैं तो आपके उदार रूप स्वरूप गुण विभूतियों का स्मरण करके धन्यता को प्राप्त होकर अनादिकाल के पापों से छुटकारा पाकर इस समय आपके दास भावको (जो परम मंगलमय और सुखकी सीमा रहित है) प्राप्त हुआ हूँ। क्या फिर उसको छोड़ने की कुचेष्टा करूँगा कभी नहीं।

इस गाथा में रूप स्वरूप गुण विभूति शब्दों का अर्थ ऐसा है कि चतुर्भुजादि युक्त राम कृष्णादि प्रभुका रूप है। और दिव्य ज्ञान दिव्य शक्ति आदि युक्त आपका स्वरूप है। पूर्वोक्त द्वितीय गाथा की व्याख्या में कहे वात्सल्यादिक आप के गुण हैं। असंख्य ब्रह्माण्डवाली लीला विभूति और इससे तिगुने विस्तार वाली नित्य विभूति यह आपकी विभूत है। इनका वर्णन वेदों में बड़े विस्तार से किया गया है।

रूपका वर्णन—यएषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयःपुरुषो दृश्यते हिरण्यश्म श्रुर्हिरण्य केश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णस्तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीक मेव मक्षिणी-छान्दोग्य १-६-७

स्वरूप का वर्णन—सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहा- याम्-तैत्तरीय-ब्रह्मानन्दवल्ली। सएवाधस्तात्स उपरिष्टात्सपश्चात्स पुरस्तात् छा० ७-२५

गुण का वर्णन—एतत्सत्यं ब्रह्मपुरं तस्मिन्कामाः समाहिता

एष आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्वि शोकोऽविजिघित्सोऽपिपासः सत्यकाम सत्यसंकल्पः । छान्दोग्य ८-१-५

विभूति का वर्णन (पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि- पुरुष सूक्त तद्विष्णोः परमंपदं सदा पश्यन्तिसूरयः । शु० य० ६-५

इत्यादि बहुत से प्रमाण हैं जिसको श्रीरामानुजस्वामीजी ने वेदार्थ संग्रह में विस्तार से लिखा है ॥५॥

वक्षस्तस्यहिरण्यकस्य मनसाऽपित्वां तु धिक्कुर्वत,
स्सम्भिद्यासि पुरानृसिंह ! जगतां त्राता ! स्मरंस्त्वामहम् ।
दिव्यां पद्यततिं विरच्य वचसा गायंश्च नृत्यन्नहो !
निर्मूल्याप्यघसन्ततिं मम सुखी ! किंवाऽस्त्यसाध्यं मम ॥६॥

हे प्रभो हिरण्यकशिपु जब मन वचन शरीर से आपको धिक्कारता हुआ बलवान् द्वेष करने लगा था। और त्रिलोकी में उसने बड़ा आतंक फैला दिया था। तब आपनें नृसिंह रूप धारण कर उसकी छाती को विदीर्ण करके त्रिलोकी की रक्षा की थी। उन्हीं को दिव्य- पद्यावली की रचना द्वारा वाणी से स्तुति गान करके नाचता हुआ अनेक जन्मों के अपने पाप समुदाय को समूल नष्ट करके सुखको प्राप्त हुआ हूँ। प्रभो क्या कोई भी वस्तु इस आपके दासके लिए असाध्य (न मिलने वाली) है।

अर्थात् आपके गुणानुभवजनित प्रभाव से इस दासको यह शक्ति प्राप्त हुई है कि इस लोक और परलोक दोनों की सर्व प्रकार की सम्पति सुलभ हो गई है ॥६॥

सर्वेषां जगतां च भक्षणकरस्सम्यक् प्रविष्टो मयि,
श्रीशो नैवहि मां त्यजेत्पुनरसौ ! मद्बान्धवाश्चाखिलाः
तेऽपी सप्त च पुरुषाः कुल भवाः प्रध्वस्तपापास्स्वयं,
हत्वा नारकदुर्गतिं प्रमुदिताः किंवास्त्यसाध्यं मम ॥७॥

जो प्रलय के समय समस्तजगत् को भक्षण करके अपने पेट के भीतर धर लेता है। यह लक्ष्मीपति मेरे भीतर घुमकर ऐसा पैठा है

कि अब निकालने से भी नहीं निकलता। इस प्रभु के चरण सम्बन्ध का यह विलक्षण प्रभाव है कि मेरे सम्पूर्ण सम्बन्धी और मेरे कुलकी सात पीढ़ियों के पाप आपसे आप नष्ट हो गए। और वे नरक के नाना कष्टों से छूटकर हँसते हुए स्वर्ग अथवा मोक्ष में आनन्द भोगने के पात्र बन गये। क्या मेरे को अब कुछ असाध्य रहा है ॥७॥

जन्मान्यत्र पुनः पुनश्च सुबहून्याश्रित्य चाद्यास्म्यहं,
त्वत्पादाम्बुज संश्रयो हृदि महानन्दामृताब्धौ स्वयम्।
मग्नोऽस्मीह! भवान् किला सुरगणप्रध्वंसकं वाहनं,
तार्क्ष्यं भांत्यधिरूढ एव! मयि नाथात्रैव नित्यं भव ॥८॥

प्रभो इस अपार संसार सागर में बारम्बार बहुत से जन्म मरणों को पाता हुआ मैं। आज आपके चरणों का समाश्रित हुआ हूँ। आज मेरे हृदय में आनन्द समुद्र की बाढ़ों ने उसे डुबो दिया है। अहह प्राणनाथ आप तो दैत्यकुल निकन्दन विनता नन्दन गरुड़जी के ऊपर चढ़कर मेरे हृदय में बड़ी सुन्दरता से प्रकाशित हो रहे हो। भक्त-वत्सल इस मधुर मूर्ति से सदा आप इस दासकी चित्त कुटीर में विराजे रहिये। यही इस अकिंचन दासकी प्रार्थना है।

चहौं बस एक यही श्रीराम।
अविरल अमल अचल अनपावनि प्रेमभक्ति निष्काम।
चहौं न सुत, परिवार, बन्धु, धन, धरणी, युवति ललाम।
सुख वैभव उपभोग जगत के चहौं न शुचि सुरधाम।
हरिगुण सुनत सुनावत कबहूँ मन न होई उपराम।
जीवन सहचर साधु संग शुभ हो सन्तत अभिराम।
नीरद नील नवीन कान्ति मुख शोभा मय सुख धाम।
निरखत रहौ विश्वमय निशि दिन छिनन लहौ विश्राम ॥८॥

स्थित्वा वेंकटभूधरे विजयसे मन्नाथ! लङ्कान्तक!
त्वं सालानपि सप्त चैकहतितश्छित्वाऽसि धन्वी महान्।
भासित्वं किल दिव्य रम्यतुलसी मालोऽद्य दिव्यामृत!
त्वां संश्रित्य मयीह नायक! कथं देवेश! यास्यन्यतः ॥६॥

हे नाथ आपने धनुष धारण करने वालों में श्रेष्ठ रूप से सात-साल वृक्षों को एक ही बाण से काट कर वीरता दिखाई थी। वीर चूणामणे ! आपनेही तो लङ्का नगर को नष्ट किया था। आज तुम वेंकटाचल पर्वत पर अति सुन्दर दिव्य तुलसीमाला को धारण करके विराजमान हो रहे हो। प्रभो मेरे हृदय में दिव्यामृत होकर और अपने ईश्वरत्व को मेरे में मिलाकर स्वामी नाथ ! देवाधिदेव अब दूसरी जगह क्यों जाते हो।

आलवार ईश्वर ध्यान में निमग्न थे कि कुछ शारीरिक बाधाओं ने उनका ध्यान हटाना चाहा। परन्तु वे उसी समय अपने चित्तको ईश्वर से हटता जान कर सावधान हो गए। फिर प्रभु से कहने लगे कि मेरे इस चित्त चत्वर में से अब आप अन्यत्र न जाइये ॥९॥

कालेष्वद्यतनेष्वतीत समयेष्वागामिकालेष्वपि,
त्वं माता च पिता ममासि हि ममाप्यात्मा जगन्नायकः।
सौशील्याम्बुनिधिं च वेंकटपतिं त्वां दिव्यमालोज्ज्वलं,
संश्रित्याद्य कथं त्यजामि तुलसी सौगन्ध्यसारान्वितम् ॥१०॥

हे त्रिलोकीनाथ ! इस समयमें तथा बीते और आने वाले समय में भी आप मेरे माता पिता हो मेरे भीतर बैठकर शरीर चलाने वाले आत्मा भी आपही हो। सौ शील्यगुण (अपने बड़प्पन को छोड़कर साधारण जनसे भी प्रेम करना) के समुद्र दिव्यमाला धारण करके उज्वल शोभा को दिखाने वाले आप वेंकटाचल पर्वत पर स्वामी रूप से स्थित तथा तुलसी की सुगन्धी के सार से सुगन्धित आपके चरणों का समाश्रय लेकर मैं अब उनको कैसे छोड़ूं ॥१०॥

मालाकारसुरम्यशीततुलसीभास्वत्किरीटं हरिं,
स्तोतुं पद्मविशाललोचनमसौ सूरिश्शठारिर्मुनिः।
साहस्रं कुरुकापुरप्रभुरहो माराभिधानोऽब्रवी,
त्तत्रेदं दशकं प्रगाय रसिकास्स्युः केशवस्य प्रियाः ॥११॥

सुन्दर शीतल तुलसी की माला से प्रकाशमान है किरीट जिसका। उस कमलदल के समान विशाल नेत्र वाले हरि की स्तुति करने को भार है प्रसिद्ध नाम जिनका ऐसे दिव्यज्ञान वाले कुरुका पुरीवासी शठकोप मुनिनें सहस्रगीति कही है। उसमें इस दशक को पढ़कर जो भगवान् के प्रणामादि कैङ्कर्य में प्रेम करेंगे वे केशव भगवान् के अत्यन्त प्रिय हो जाँयगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ द्वितीयशतके षष्ठदशकं समाप्तम्।

अथश्रीसहस्रगीतौ द्वितीशतके सप्तमदशकारम्भः।

इस दशक में भगवान् जो आल्वार के ऊपर कृपा किये तो अपने सम्बन्धियों पर भी वह कृपा हुई समझकर केशवादि द्वादश व्यूहों की शरण जाते हैं। और उस शरणा गति से अपने सात जन्मों की सात पीढ़ियों का उद्धार होगया ऐसा प्रति पादन करते हैं।

श्रीमत्केशवसंश्रयाः किल मम प्राप्ता कुलोत्पादिता
स्ते पूर्वोत्तरसप्तसप्त ! महतीं दिव्यां गतिं वैष्णवीम्।
ईशस्यास्य मम प्रभो रिह महामाणिक्य वर्णस्य च
श्रीसूरीन्द्रपतेः प्रसाद भरतो नारायणस्याश्रयात् ॥ १ ॥

हमारे कुल में जन्म लेने वाले जिन्होंने सर्वेश्वर केशव भगवान् का समाश्रयण किया है। वे सात पहली और सात पिछली पीढ़ी वाले सब, मेरे स्वामी नीलमहामणि समानवर्ण वाले नित्यमुक्तों के अधिपति श्रीमन्नारायण की शरणागति के प्रभाव और उसकी कृपा के बल से सर्वोच्च दिव्य वैष्णवी गति (श्री वैकुण्ठ) को प्राप्त होगये।

तावद्रागादय स्तेषां तावत्कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रि निगडो यावत्कृष्ण न ते जना ॥

श्रीनारायण एव सर्वजगतां नाथोऽस्ति वेदात्मको
मूलं कारणमस्ति कर्म च कृतिः पूर्वश्च सर्वात्मनाम्।
स्तव्यस्तत्र गुणाकरोऽमरगणैरन्यैश्च सर्वैरयं
स्वामी मत्तगजस्य दन्तभिदहो ! मे नायको माधवः ॥२॥

मेरा स्वामी श्रीमन्नारायण ही सब जगत् का आदि कारण है, सम्पूर्ण वेदादि शास्त्र इसी के रूप हैं। कर्म (यागादिक) कृति (यागादिसाधन द्रव्य काल विद्या जाति-आदि) ये सब उसी के स्वरूप हैं। वह सबसे प्रथम पुरुष है, समस्त देवगण ऋषि मुनियों द्वारा सदा उसी की स्तुति की जाती है। सम्पूर्ण शुभ गुणों का वह खजाना है। मतवाले कुवलयापीड हाथी के दाँत तोड़ने वाला वही लक्ष्मीपति मेरा सर्वविध स्वामी है। मैंने उसी की शरणागति अपने आत्मोद्धार के लिये लीनी है ॥ २ ॥

सत्यं ! माधव नाम कीर्तन बलात्स्वामी मम श्रीधरो
नानादोषततिं प्रहन्तुमपि मे चित्ते प्रविश्य स्वयम् ।
सर्वौघप्रशमप्रभुः किल सुधा पूरोऽब्ज नेत्रोमहा
नद्रिप्राय इहेक्षुखण्ड शरधि गोविन्द एवाच्युतः ॥ ३ ॥

मेरा स्वामी श्रीधर माधव नाम के कीर्तन के ही प्रभाव से अनेक प्रकार के पापों को नष्ट करने के लिए ही मेरे हृदय में आकर अपनी इच्छा से ही प्रविष्ट (घुस कर) होकर प्रकाशित हो रहा है। यह सत्य है। वह प्रभु अमृत के प्रवाह के समान आश्रित जनों के सर्व प्रकार के पाप तापों को शमन करने वाला है, जो सबसे बड़ा और कमल-दल-लोचन है। और पर्वत समान जिस का दिव्य मंगल विग्रह सर्वोच्च और सर्व समाश्रयणीय है (जैसे पर्वत में जाकर सर्व साधारण जीव गण विश्राम पाते हैं, इसी प्रकार हमारे स्वामी की शरण में भी समस्त जीवों को विश्राम और शान्ति मिलती है) वह अविनाशी गोविन्द मेरे लिए मिश्री से भी अधिक स्वादिष्ट और आनन्ददायी हो रहा है ॥ ३ ॥

गोविन्दो मम नायकः प्रभुरसौ जिष्णुर्घटे लीलया
गोपालो विहरन्महानिति पृथक् संकीर्त्य नृत्यादिभिः ।
सोऽहं यामि च संचरन् मम महापापावलिं ध्वंसयन्
मद्बन्धूंश्च स सप्त सप्त पुरुषान् विष्णुर्निजानातनोत् ॥४॥

मेरा स्वामी गोविन्द जो समस्त प्राणियों का भी स्वामी है। और जो सम्पूर्ण दुष्ट दल को जीतने वाला है। जिसको कुम्भनृत्य अति प्रिय है। उसी गोपाल को कीर्तन और नृत्य से प्रसन्न करने के लिये विचरता हुआ मैं शरण जाता हूँ। सर्व व्यापक वह विष्णु अनेक जन्मों के पाप समूह को नष्ट करता हुआ मेरे सात, सात सात पीढ़ियों में पैदा होने वाले पुरुषों को अपना दास बनाकर उद्धार करने वाला है।

इस गाथा की व्याख्या में जो कुम्भ नृत्य शब्द आया है उसका अर्थ यह है कि लोक में जिस प्रकार ब्राह्मणों के पास अधिक द्रव्य होजाने पर वे यज्ञादिक वैदिक कर्म किया करते हैं। इसी प्रकार गोपों (अहीरों) के पास अधिक द्रव्य हो जाता है तो वे सब इकट्ठे होकर नाचते हैं गोपों के इसी नृत्य का नाम कुम्भ नृत्य है।

स्त्रियाँ अपने मस्तकों पर कुम्भ धर कर उत्सवों पर नाचती हैं, इसको भी कोई कोई कुम्भ नृत्य कहते हैं॥ ४॥

विष्णोरस्य मम प्रभोरसुरुचिरश्रीमौलिभूषाभृतो
दिव्यं भांति सरोजमेव चरणौ हस्तौ च नेत्रे हरेः।
दीप्तो नीलमहाद्रिरेव हि तनुश्चन्द्रोऽस्तिशंखो महा—
नादित्यो मधुसूदनस्य रुचिरश्चक्रायुधात्मा विभोः॥५॥

इस मेरे स्वामी विष्णु के जो अत्यन्त सुन्दर भूषणों से सुशोभित मस्तक वाला है। उस हरि के दिव्य चरण दिव्य हस्त और दिव्य नेत्र कमल के समान प्रकाशित हो रहे हैं। जिसका दिव्य शरीर नील मणि के पर्वत के समान प्रकाशित हो रहा है। और जिसके हाथ में विराजमान होने वाला शंख चन्द्रमा के समान शोभा को बढ़ा रहा है। और सुदर्शन चक्र उस मधुसूदन के हाथ में विराजमान होता हुआ सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा है।

जिस प्रकार नील वर्ण और व्यापक आकाश में सूर्य और चन्द्रमा शोभा को प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार नीलमणि पर्वत समान और व्यापक हमारे प्रभु के दोनों हाथों में विराजमान शंख और चक्र चन्द्रमा और सूर्य के समान शोभा को दे रहे हैं॥ ५॥

नान्यं श्रीमधुसूदना त्किल परं प्राप्यं भजेऽहं सदा
कार्यं मेन किलापरैरिति हरिं तं मेऽद्य पद्यैस्स्तुवन् ।
एवं कल्पसहस्र तोऽपि विविधां जन्मावलीं मेस्वयं
ज्ञात्वा मे ऽभिमुखो दयालुरवशो दत्तेऽखिलं त्रिक्रमः ॥६॥

श्रीमधुसूदन से अन्य किसी देवको मैं कभी नहीं सेवन करता। और मेरे सम्पूर्ण पापों को हरण करने वाले उस हरि को अनेक प्रकार के पद्यों से स्तुति करते हुए, मेरे लिये दूसरे देवों से कोई काम भी नहीं है। इसी प्रकार हजारों कल्पों से अनेक प्रकार के मेरे जन्मों को वह प्रभु स्वयं जानकर दया परवश होकर मेरे सम्पूर्ण मनोरथों को पूरा करता है। जिसने पहले बलि राजा के मनोरथों को पूरा करने के लिये त्रिविक्रम रूप धारण किया था ॥ ६ ॥

कल्प ब्रह्मा के एक दिन को कहते हैं। वह कल्प (चतुर्युग सहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते) इस प्रमाण के अनुसार ४ हज़ार युग का होता है। अर्थात् सतयुग, त्रेता,द्वापर, कलियुग ये चारों युग एक एक हज़ार बार जब बीत जाते हैं, तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है। उसी को कल्प कहते हैं।

श्रीश ! त्रिक्रम पुण्डरीकनयन ! स्वामिन् ! शुचिम्बाधर !
त्वं भास्येव शुचिस्मितस्त्विति पृथक्त्वत्सद्गुणांश्चिन्तयन् ।
शंसंश्च प्रणमन् पदाब्ज युगलं कल्पेष्वनेकेषुते
संप्राप्यास्मि हि दास्यसक्तहृदयस्त्वं वामनो मे प्रभुः ॥ ७ ॥

हे प्रभो ! अनेक कल्पों में आपके चरणारविन्दों को प्रणाम और स्तुति करता हुआ। और हे श्रीश ! हे त्रिविक्रम ! हे पुण्डरीक नयन हे! सुन्दर होठों वाले मेरे स्वामी ! आपका मन्द मुसुकान कैसा सुंदर प्रतीत होता है, इस प्रकार अनेक समयों में आपके गुणों का चिन्तन करता हुआ आपके दास्यभाव में मेरा चित्त बहुत ही आसक्त हो गया है। मेरे हृदय में आप वामन रूप धारण करके जो बैठे हो, इस रूप के स्मरण को मैं सदा चिन्तन करता रहूँ यही मेरी प्रार्थना है।

इस गाथा में परमात्मा के उस रूप का निर्देश आल्वार ने किया है, जो कि सौशील्यता गुण के वश होकर चेतन मात्र का उद्धार करने के लिये उनके हृदय कमल में विराजमान हैं। जिनका महत्व वेदों में भी इस प्रकार से है ॥

ऊर्ध्वं प्राण मुन्नमयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामन मासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ कठो० २-५-३

हे श्रीवामन ! नीलरत्ननिभ ! मे पद्माक्ष कामोद्भवे
त्येवं त्वत्पदपद्मकीर्त्तनपरो नत्वाऽस्मि शुद्धाशयः ।
जाड्यं जन्मभवं प्रणाश्य मनसो दोषान्प्रहृत्यापि मे
स्वामिन् पूर्णं महाश्रियः किमु हरे ! कुर्यान्तव श्रीधर ॥८॥

हे लक्ष्मीपते ! आपके शुभनाम, हे श्रीवामन ! हे नीलरत्न समान ! हे पद्माक्ष ! इत्यादिक नामों का कीर्त्तन करता हुआ आपके चरणों का आश्रय लेकर और उनको बार बार प्रणाम करके मेरा अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध होगया है। और जन्म से लेकर अब तक मन में जो जड़ता रही उसको भी आपने नष्ट कर दियाहै। मेरे मन में जो काम क्रोधादि दोष भरे थे, वे समूल नष्ट कर दिये। प्रभो आपके इस उपकार का बदला मैं आपके लिये क्या दूँ, क्यों कि सम्पूर्ण सम्पत्तियों की जननी और अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी जी सदा ही आपके चरणों में पड़ी रहती हैं। अवाप्त समस्तकाम आपके लिये यह दीन हीन दास क्या उपकार कर सकता है। खद्योत की क्या सामर्थ्य है कि वह सूर्य को अपना प्रकाश दिखा सके ॥ ८ ॥

स्वामिन् ! श्रीधर ! रम्य पद्मनयनेत्येवं हि नक्तं दिवं
जल्पन् भ्रान्त इवाश्रुपूर्ण नयनस्सन्तप्त चित्तोऽभवम् ।
तामार्ति मम नाशयन् प्रमुदितं कुर्वन्सदा मां हरे !
त्वं मे भासि हृदि स्वयं किल हृषीकेश ! प्रतिष्ठापितः ॥९॥

हे श्रीधर ! हे मेरे स्वामीन् ! हे रम्य कमलदल लोचन ! इस प्रकार रात्रि दिन चिल्लाता हुआ पागल के समान नेत्रों से आँसू

पहाता हुआ मैं उस प्रभु के विरह से अपने चित्त में बहुत ही घबड़ा रहा था, परंतु सर्व पाप हरण कर्त्ता वह हरि मेरे उस विरह दुःख को नाश करके और मेरे चित्त को हर्षित करता हुआ मेरे हृदय में आकर विराजमान होके प्रकाशित हो रहा है। इंद्रियों की चित्त वृत्ति को रोकने वाले हृषीकेश तुम अपनी इच्छा से मेरे हृदय में जो प्रतिष्टित (विराजमान) हो रहे हो इससे मेरे सभी दुःख दूर हुए हैं। और मैं अब आपको कभी नहीं छोड़ूंगा ॥ ६ ॥

मन्नाथ ! त्वमुदार सद्गुण ! हृषीकेशासि लंकेशितु,
हन्ता तस्य दशाननस्य हि हरिर्देवाधिदेवोऽच्युतः ।
इत्येवं मम मानस ! त्वमनु सन्धाय प्रणामं कुरु
क्षिप्रं विद्धि ! यदि भ्रमोऽस्तिच पुनर्मा पद्मनाभं त्यज ॥१०॥

हे मेरे नाथ ! तुम तो उदार सद्गुणों से भरे हुए हो इंद्रियों के अधिष्ठाता हो, लङ्का के राजा दश मस्तक वाले उस रावण के नाश करने वाले हो। सम्पूर्ण देवों के भी अविनाशी देव हो। अरे मेरे मन ! तू इसी प्रकार उस प्रभु के गुणों का अनुसंधान करके और प्रणाम कर, यदि तेरे लिये किसी प्रकार का भ्रम है तो उसी पद्मनाभ को सर्वेश्वर जान कर और उपासना करके प्रसन्न कर और फिर उस को कभी मत छोड़े।

संसार रूपी समुद्र में माया के रज तम सत्व गुणत्रय रूप त्रिकूटाचल पर बसने वाला शरीर लंका है, उस में दश इंद्रिय रूपी मस्तक धारण करने वाला, संसारियों को रुलाने वाला, मन ही रावण है, उसका जब तक नाश नहीं होगा तब तक उस परम पिता का परम पद पाना बहुत कठिन है। और उसका नाश बिना भगवत्कृपा रूपी अस्त्र के नहीं होता। अतएव उस दुष्ट मन को नाश करने की प्रभु से प्रार्थना की है ॥ १० ॥

उत्तुङ्गोऽस्ति हि पद्मनाभ इह मे स्वामी परश्शक्तिमान्
स्वीकृत्यापि च मां ममापि विवशश्श्रीकल्पकश्चामृतम् ।

नीलाम्भोद समश्चवेङ्कटगिरौ भाति स्वयं नायक—
स्सूरीणा मधिपश्चकारित च हरि र्दामोदरो मे प्रभुः ॥११॥

सम्पूर्ण शक्तियों को धारण करने वाला सर्व श्रेष्ठ पद्मनाभ ही इस संसार में मेरा स्वामी है। जो भक्तों की सद्भावनाओं को पूरी करने में कल्प वृक्ष के समान हैं, जो भक्तों के जन्म मरणादि रोग के नाश करने में अमृत के समानहैं। उसने मुझे ऐसा पकड़ा है कि अब मुझे छोड़ कर कहीं अन्यत्र नहीं जा सकता, वह मेरे वश में होगया है। नील मेघ के समान वर्ण वाला वह मेरा स्वामी जो नित्य मुक्तों का अधिपति है। जिसनें भक्तवत्सलता दिखाने के लिये भक्तों के हाथ की रस्सी को अपने पेट में बाँध कर दामोदर नाम धरवाया था, वह स्वयं अपनी इच्छा से श्रीवेङ्कटाचल पर्वत पर निजाश्रितों को परम पद देने के लिये विराजमान हो रहा है ॥ ११ ॥

श्रीदामोदरमादिमूलमखिलान् लोकान्स्वयं चोदरे
बिभ्राणं कथमप्रमेयविभवं ज्ञातुं वयं शक्नुमः ? ।
इत्येवं हि चतुर्मुखेश्वरमुखा देवाश्च दामोदर
स्यांशास्तोतुमनर्हतां जगुरहो ! नाथं न मे ते विदुः ॥१२॥

जिस हमारे स्वामी को ब्रह्म रुद्रादिक देव गण कहते हैं कि ओहो संसार के आदि कारण उस दामोदर को जो प्रलयकाल में समस्त ब्रह्माण्डों को अपने उदर में धारण कर लेता है। जिसके वैभव को वेद भी (यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह तै०) यथार्थ रूप से जानने के लिये असमर्थ हैं । जिसका महा ऐश्वर्य इतना विशाल है कि जिसका कोई किसी प्रकार अनुमान भी नहीं कर सकता । उस प्रभु के वैभव को जानने की शक्ति हम लोगों में कहाँ है। जिस प्रभु के अंशों के अंशों से ब्रह्मादिक देवों की सृष्टी होती है। और ये सदा यह कह करके उस प्रभु का वैभव हमारी वाणी के अगोचर है निवृत्त होते हैं। उस हमारे स्वामी को यथार्थ रूप से कोई नहीं जानता ॥ १२ ॥

नीलश्रीमणिवर्णमच्युतमिमं ज्योतिः परं सूरिणां,
नाथं कृष्णमुदारमेव कुरुकानाथश्शठारिर्मुनिः ।
प्राप्तुं चाह सहस्रमुत्तमकृतिं तत्रापि च द्वादश,
श्रीनामप्रतिपादकन्तु तदिदं पादौ हरेः प्रापयेत् ॥१३॥

कुरुका पुरी के स्वामी श्रीशठकोपमुनि ने ज्योति स्वरूप अविनाशी नील मणि पर्वत के समान सुन्दर वर्ण वाले नित्य मुक्तों के जो स्वामी हैं। उस उदार गुण वाले, कृष्ण के चरणों को प्राप्त करने के लिये उत्तम कविता वाली सहस्र गीति कही है। उसमें परमात्मा के द्वादश नामों (केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर) का प्रतिपादन करने वाले इस दशक का जो पाठ करेंगे वे अवश्य ही भगवान् के चरणों को प्राप्त हो जायेंगे ॥१३॥

इति श्री सहस्र गीतौ द्वितीयशतके सप्तमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्री सहस्रगीतौ द्वितीय शतके अष्टमदशकारम्भः

इस दशक में ईश्वर समस्त संसार के जीवों पर भी निर्हेतुककृपा करते हैं ऐसा प्रति पादन करके अपने लिए मोक्ष देने के उपदेश प्रकार का वर्णन आल्वार करते हैं।

शेषे किलास्य शयनं प्रियमस्तिविष्णो,
लक्ष्मीतनोर्भवति सङ्गम एव भोग्यः ।
मूलंत योर्विधिशिवात्मकयोस्स सर्वो,
मोक्षप्रदोऽस्ति च भवार्णवपोतरूपः ॥१॥

इस मेरे हृदयांगण में विहार करने वाले सर्व व्यापक विष्णु को अत्यन्त शीतल और कोमल शेष की शैय्या बहुत ही प्यारी है। अमृत की सगी बहन लक्ष्मीजी के शरीर का संगम सुख बहुत ही आनन्ददायी है। श्रीब्रह्मा और शिव इनका वह मूल कारण है। सर्वस्व रूपी यह संसार सागर को तारने के लिए जहाज रूप होकर आश्रित वर्ग को मोक्ष देने वाला है।

शीतह्रदेऽम्बुजयुते गजदुःखहन्ता,
मन्नायकोऽस्ति तुलसीशुभहारभूपः ।
सङ्गोऽस्य सर्वजगतां भवदुःखहन्ता,
सर्वार्तिहृद्भवति मोक्षसुखस्य मूलम् ॥२॥

यह मेरा स्वामी जिसने सुगन्ध युक्त नवीन तुलसी के हार का भूषण धारण कर रखा है। जिसने स्वच्छ शीतल जल से भरे हुए और अनेक प्रकार के कमलों से शोभायमान सरोवर में ग्राह ने जब गज को पकड़ा था तब उस गज की दुःख भरी पुकार सुन कर ग्राह को मार कर उसके प्राण बचाये थे। इस मेरे स्वामी का संग (समाश्रयण) चराचर संसार के भय ताप (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) को समूल नष्ट करके संसार रोग को भगा कर मोक्ष में नित्य अखंड आनन्द को देने का प्रधान कारण है ॥२॥

स्वोद्धृतिनाभितलपार्श्वनिवासशीलो,
धाताऽपि सृष्टिकृदसौहि हरोऽपिहन्ता ।
युक्तश्रियोरसि निजाद्भुतशीलवृत्तैः,
स्सर्वान्तरात्मकतयाऽस्त्यभितः प्रसिद्धः ॥३॥

यह प्रभु प्रलय समुद्र में शेष शय्या पर योग निद्रा को सेवन करता हुआ रहता है। जिसके नाभि तल के बगल में सदा निवास करने वाले ब्रह्माजी हैं। जो अनेक प्रकार की सृष्टि रचना को किया करते हैं। और अन्त समय में श्रीरुद्र सम्पूर्ण प्राणियों का संहार करके नृत्य करते हैं वे जिसके कोष में निवास करते हैं। जो अपने अनेक प्रकार के आश्चर्य कारक स्वभावचातुर्य से लक्ष्मीजी के वक्षस्थल को आलिंगन करते हैं। जिनकी प्रसिद्धि सर्व प्रकार से सर्वान्तरात्मा से (सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में निवास करने से) है ॥३॥

पञ्चेन्द्रियैर्विषयपंचक भुक्ति सक्तैः,
स्मुक्ताः परं पदमनन्तसुखं विशन्तः ।

यूयं भवेत सकलासुरनाशकस्य,
ऽश्रीशस्य सन्तत बलादिगुणाब्धिमग्नाः ॥३॥

प्रिय भक्त गण ! आप लोग विषय पंचक (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) में ही आशक्त और उन्हीं के भोग को ही सुख रूप से मानने वाले पंचेन्द्रियों के (कान, त्वचा, नेत्र, जिव्हा, नासिके) पंजे से छूट कर आश्रितों के विरोधी वर्गों को नाश करने वाले उस लक्ष्मीपति के अनन्त और अखण्ड सुख वाले परमपद में जाने की इच्छा रखते हो तो उसके ज्ञान बलैश्वर्यादिक गुणों के अनुभव में निमग्न हो, (डूब) जाओ ।

स्वामी के गुणों में डूबे रहने से ही आपकी सब बात बन जायेगी। जिसके गुणों में आप निमग्न हो रहे हैं । वह परम प्रभु आपके अभिलषित फलों की प्राप्ति और विरोधी वर्ग की निवृति को स्वयं करेगा । अर्थात् गुणानुभव से प्रसन्न हुआ परमात्मा ही उपाय है और अप्राकृत देश में विराजमान वही उपेय है ॥४॥

नानार्तिसन्ततिकरीमपि सृष्टिमेतां,
रक्षां च संहृतिमनादिरयं हि कुर्वन् ।
देवाधिदेव इह मेऽस्ति च तीर्थरूपो,
वाजी च मत्स्यकमठादि रहो ! नरात्मा ॥५॥

यही मेरा स्वामी जो कि आदि रहित है। अनेक प्रकार के दुःख समुदाय को देने वाली सृष्टि को करता है और आश्रितों के अभिलषित फल प्राप्ति तथा विरोध निवृत्ति के लिए उसकी रक्षा करता है। और अन्त समय में वही संहार करता है । यही देवादिदेव मेरे लिए तीर्थ रूप (उद्धार कर्त्ता) होकर हयग्रीवरूप मत्स्य रूप, कच्छप रूप अनेक प्रकार के शरीर धारण करता हुआ नर रूप में भी मुझे आकर दर्शन देता है ॥५॥

तीर्थस्य यस्य पदयोः कुसुमावलीं तां,
भक्त्या समर्प्य शिवमस्तक एव दृष्ट्वा ।

पार्थेने तेन विदितं प्रथितं परत्वं,
तस्याद्य किं वत ! पृथक् प्रतिपाद्यमेव ॥६॥

जिस प्रभु के चरणों में अर्जुन ने फूल माला को समर्पण करके पूजन किया था। और फिर उसी फूल माला को शिवजी के मस्तक पर चढ़ी हुई देख कर। यह निश्चय किया था कि कृष्ण से श्रेष्ठ कोई देव नहीं है। कृष्ण ही सर्व व्यापक और परात्पर हैं। हम इससे अधिक उसका परत्व और क्या प्रति पादन कर सकते हैं।

यह तो कथा प्रसिद्ध है कि भगवान् ने त्रिविक्रमावतार में अपना जो चरण बढ़ाया था उसने ऊपर को जाकर ब्रह्माण्ड भित्ति को फोड़ कर दिव्य जल का प्रवाह ब्रह्म लोक में बहा दिया था। उसी जलको ब्रह्माजी ने भगवच्चरणों का तीर्थ समझ कर अपने कमण्डलु में भर लिया था। फिर श्मशान वासादि से अपवित्र रुद्र के मस्तक पै उस जल का अभिषेक करके उन्हें शिव रूपी बना दिया था।

अभिमन्यु के मर जाने पर उसको मारने वाले जयद्रथ का २४ घण्टे में वध करने की अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी। किन्तु इस काम को बहुत कठिन समझ कर भगवान् कृष्णने अर्जुन से कहा कि बिना पाशुपतास्त्र के जयद्रथ का मारना असंभव है। अतएव तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए भगवान् वृषभध्वजकी आराधना करो। और उनसे उनका अस्त्र लेकर जयद्रथ को मार सकोगे। अर्जुन ने शिव की आराधना की विधि पूछने पर भगवान ने कहा कि चलो हम तुम दोनों एकान्त में बैठकर पूजा सामग्री इकट्ठी कर उनका पूजन करें। ऐसा कह कर एकान्त स्थल में अर्जुन से कहा कि इस सामग्री से मेरे चरणों की पूजा करके तुम सो जाओ तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा अर्जुन नें भी ऐसा ही किया।

प्रातः काल का समय था अर्जुन अर्द्ध निद्रा से लेटा हुआ था कि स्वप्नमें भगवान् शिव के दर्शन हुए। जो कि पुष्पपत्राादिक सोते समय श्रीकृष्ण के चरणों में अर्पित किये थे वे सब श्रीशिवजी के मस्तक पर शोभित हो रहे थे। भगवत् चरण प्रसादी के अर्पण करने

से शिवजी ने उस अर्जुन को पाशुपत अस्त्र दिया। और विजयाशीर्वाद देकर अन्तर्द्धान होगए। इस स्वप्न में पाशुपतास्त्र की प्राप्ति से अर्जुन को निश्चय हो गया कि श्रीकृष्ण ही सर्वदेवमय और सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१॥

यह कथा महाभारत के द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथ बध पर्व में अध्याय ७७ से ८४ तक में लिखी हुई है।

शय्यां गतोऽप्युपविसन्नपि चात्रतिष्ठन्,
पादेन चाक्रमणतोऽपि वराहवेपात्।
उद्धृत्य चापि जठरे पृथ्वीं दधानो,
ऽप्याश्लिष्य बाहुभिरसौ बहुधाऽस्ति मुग्धः ॥७॥

यह मेरा स्वामी सो करके, बैठ करके, खड़ा हो करके, और चरणों द्वारा आक्रमण करके। और वराह रूप धारण द्वारा उद्धार करके और अपने पेट में रख करके और अपनी भुजाओं से आलिंगन करके इस पृथ्वीदेवी के सम्भोगमें अनेक प्रकार से व्यामोह को प्राप्त हो रहाहै।

क्षीर सागर में तो आप सोते हैं और श्रीवैकुण्ठ में आप विराजमान् हैं। और श्रीवेंकटाचल पर आप खड़े हुए हैं। त्रिविक्रमावतार में आपनें अपने चरणों से आक्रण किया था। वराहरूप से इसका उद्धार किया था। प्रलय के समय में अपने पेट में रख लिया था। इस प्रकार अनेक भाँति इस पृथ्वीदेवी की आलिंगन अभिलाषा को पूरी करनेके लिये आपने अनेक रूप धारण किए। अर्थात् अपने आश्रित जनों के हित के लिये प्रभु सभी कुछ करते हैं। उसकी अनन्त लीला का पार कौन पा सकता है ॥७॥

को वेत्ति मे प्रभुमिमन्तु कथन्तु वेत्ति,
श्रीकृष्णमस्य सकलं कवलं जगत्स्यात्।
स्थानं परं पदमसौ सकलान्तरात्मा,
व्याप्नोति सर्वमपि लेशमपि त्वमुञ्चन् ॥८॥

इस मेरे प्रभुको कोई किस प्रकार जान सकता है। जिस श्रीकृष्णके एक ही ग्रास में यह सारा संसार समा जाता है। यह प्रभु सर्व

वस्तुओं का अन्तर्यामी होकर भी परमपद (दिव्य वैकुण्ठ) में सम्पूर्ण रूप से विराजमान रहता है। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसमें कि वह मेरा स्वामी कृष्ण व्याप्त न हो।

हमारे हित के लिये। कृपा परवश होकर वह छोटा सा रूप धारण कर लेता है। उसके सम्पूर्ण विश्वरूप को कौन जान सकता है जो कि करोड़ों ब्रह्माण्डों को एक ग्रास में ही खा जाता है। उसके विशाल रूप को हम इन चर्म चक्षुओं से बिना उसकी कृपा कैसे देख सकते हैं ॥ ८ ॥

सर्वत्र सन्निहित एव हरिः किलेति,
प्राप्ते सुतेऽपि च रुषा स हिरण्यनामा।
स्तम्भे न हीत्यवददस्य वधायतत्रो,
द्भूतं नृसिंहमसमं वत ! वेत्ति कोवा ! ॥९॥

यह हरि निश्चय रूप से सम्पूर्ण पदार्थों में घुसकर बैठा है। ऐसा जब प्रह्लाद कह रहा था तब उसका पिता हिरण्यकशिपु क्रोध से कहने लगा कि यह पत्थर का खम्भा जो हमारे सामने खड़ा हुआ है। इसमें ईश्वर नहीं है यदि है तो वह हमारे सामने क्यों नहीं प्रकट होता। अरे प्रह्लाद मैं इसी खम्भ से तुझे बांधकर मारता हूँ। यदि वह तेरा ईश्वर सर्व व्यापक है तो इस खंभ में से निकलकर तेरी रक्षा करेगा ? ऐसा कह कर प्रह्लाद को मारने के लिये खड़े हुए। उस हिरण्यकशिपु का वध करने को उसी खंभ में से प्रगट हुए, उस नृसिंह को जिसके समान ऐश्वर्यशाली संसार में कोई नहीं है। क्या कोई यथार्थ रूप से जान सकता है।

पूर्व में जो ईश्वर की सर्व व्यापकता कही थी उसी को नास्तिक लोगों को प्रत्यक्ष दिखाने के लिये नृसिंहावतार का वर्णन करके प्रभुकी सर्व व्यापकता इस गाथा में सिद्ध की है ॥९॥

मोक्षप्रदश्च सुरनारकितां च कुर्वन्,
देवाद्यशेपजगतामपि धारकोऽसौ।

यन्ता च बीज मभितो विभुरब्दवर्णः
कृष्णो ममास्ति किललोचन गोचरोऽद्य ॥१०॥

जो भगवान् कृष्णनील मेघ के समान जिसका वर्ण है जो देव मनुष्य पशु, पक्षी आदिक समस्त संसार का पालन करने वाला है। और सबको अपनी इच्छानुसार चलाने वाला है। और समस्त प्राणियों को शुभ कर्मानुसार स्वर्ग में भेजने वाला और बुरे कर्मों के अनुसार नरक में डालने वाला है। और अपने चरणाश्रित भक्तों के लिए मोक्ष में पहुँचाने वाला है। और जो सबका आदि कारण है वही कृष्ण आज मेरे नेत्रों के सामने आकर अपनी श्याम सुन्दर छटा दिखाकर मेरे चित्त को प्रसन्न कर रहा है ॥१०॥

श्रीपुण्डरीक नयनं प्रभुमब्दवर्णं,
स्तोतुं शठारिवदत्कुरुकापुरीशः।
साहस्रमुत्तममिदं दशकं च तत्र,
ज्ञात्वा भजन्ति परमे च पदे स्वराज्यम् ॥११॥

कमल दल लोचन नील घनश्याम परमप्रभु की स्तुति करने के लिये कुरुका पुरी के स्वामी शठकोपमुनि नें सहस्र गीति कही उसमें इस सर्वोत्तम दशक को जो पढ़ेंगे अथवा। उसका अर्थ समझकर मनन करेंगे वे वैकुण्ठ दिव्यलोकमें अनन्त काल तक भगवत् कैंकर्यस्वाराज्य का भोग करेंगे ॥११॥

इति श्री सहस्र गीतौ द्वितीयशतके अष्टमदशकं समाप्तम्।



अथ श्री सहस्रगीतौ द्वितीय शतके नवमदशकारम्भः

इस दशक मे आल्वार भगवान् को पुकार कर कहते है कि मोक्ष को प्राप्त होकर हमें कोई लाभ नहीं लेना है । हमारी तो यही अभिलाषा है कि सर्व प्रकार का कैकर्य करने की शक्ति आप हमें प्रदान करें और हम आपके सर्व विध कार्य्यों को आपकी प्रसन्नता के लिये सदा करते रहे।

तत्तादृगुत्तमपदं नहि मोक्षभोग्यं,
कांक्षे त्वदीय पदपङ्कज युग्ममेव ।
त्वं मे निधेहि शिरसीह गजार्त्तिहारिन् !
मे वाञ्छितं हि सकलं त्विदमेव नाथ ! ॥१॥

हे नाथ ! ग्राहको मारकर गजके कष्टोंको छुडाने वाले मोक्षमें भोगने योग्य उस उत्तम पदको भोगने की मेरी इच्छा नहीं है । मैं तो केवल यही अभिलाषा रखता हूँ कि आपके दोनों चरण कमलों में मेरा यह मस्तक नवन करता रहे । और मेरा सर्व प्रकार का मनोरथ इसी से पूर्ति होवे ।

यह आत्मा ईश्वर का शेष (अत्यन्त परतन्त्र)है यह सिद्धान्त (पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्यम्। तै० नारायण) तथा स्वस्वमात्मनि संजातं स्वामित्वं ब्रह्मणि स्थितम् । उभयोरेष सम्बन्धो नान्यथेति मतिर्मम । इत्यादि श्रुति स्मृति प्रमाणों से निश्चित होता है । तब आत्मा का जब शेपत्वही रूप है । तब उसकी रक्षा दास भाव द्वारा ही हो सकती है । मोक्ष में जाकर यह शेपत्व स्वरूप (अहमन्नाद तै०) इस दशा में संकुचित हो जाता है । अतएव (अहमन्नम्) ऐसा अनुभव करने के लिए लीला विभूति में ही ईश्वर चरणों की शरण में रहना ही अत्युत्तम है ।

इसी भाव को एक स्थान पर मारुत नन्दन हनुमानजी ने भी प्रकट किया है कि—

भवबन्धच्छिदे तस्यै स्पृहयामि न मुक्तये ।
भवान्प्रभु रहं दास इति यत्र विलुप्यते ॥

प्रभो संसार सम्बन्ध का अत्यन्त नाश करने वाली उस मुक्ति

को मैं नहीं चाहता जिसमें जाकर आप मेरे स्वामी हो, और मैं आप का दास हूँ यह भावना नष्ट हो जाय ।

यह प्रसंग उस समय का है जबकि हनुमानजी की सेवा से प्रसन्न होकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने उनको मुक्ति देने को कहा था॥१॥

मन्नाथ ! नीलमणिवर्ण ! भवन्त मेव,
मेतावदेव सततं किल हन्त याचे ।
त्वत्पादलाभशरणं मम भक्तियोगं,
त्वं देहि मे ! न कुरु कालविलम्बमत्र ॥२॥

हे मेरे नाथ ! हे नीलमणि के समान वर्णवाले मेरी आपसे बार बार इतनी ही प्रार्थना है कि जिस भक्ति योग से आपके चरणों की प्राप्ति होकर आत्मा के स्वरूप की रक्षा होती है उस भक्ति योग को इस दास के लिए बहुत ही जल्दी दीजिये उसमें देर मत करिये ॥२॥

माभूस्तु पापकृदिति स्वयमेव चक्रं
धृत्वा च पाणितलतः कृपया ब्रवीपि ।
हे कृष्ण ! नाथ ! तव पाद युगस्तुतौ मे
कण्ठावरोधनविधावपि देहि शक्तिम् ॥ ३ ॥

हे मेरे नाथ ! हे कृष्ण ! आप स्वयं ही चक्र को हाथ में धारण करके अत्यन्त कृपालुता से कहते हो, कि संसार में कोई पाप मत करो, क्योंकि सर्व पापियों को खण्डन करने वाला मेरा यह चक्र है । हे प्रभो आपके चरण कमलों की स्तुति करने की शक्ति मुझे प्राण निकलते समय जब कि कफ और वायु से रुक गया हो तब भी रहे । यही एक बार यह अकिंचन दास माँगता है ॥ ३ ॥

त्वं सन्ततं च मम दास्य रतो भवेति
चित्ते मम स्थिरममुं किल हन्त कृष्णम् ।
एतावदेव हि फलं परमन्तु याचे
त्वं मां विधेहि सततं च तवैव दासम् ॥ ४ ॥

प्रभो ! आपने यह आज्ञा वेद शास्त्रों द्वारा और अपने श्रीमुख से भी दी है कि तुम निरन्तर मेरी दास भावना में ही लग जाओ। अतएव मेरे मन मन्दिर में दृढ़ आसन लगाकर बैठे हुए तुम कृष्ण को स्मरण करता हुआ मैं यही प्रार्थना करता हूँ। और इसी में अपने जन्म को सफल मानता हूँ कि आप अपनी दास सेवा में निरन्तर मुझे लगा रहने दें ॥ ४ ॥

देहावसानफलितं किल मुक्ति भाग्यं
स्वर्गादिनारकमपीह भवेत्तथान्यत् ।
नाना जनिं च भगवन्तमजायमानं
नित्यं स्मरन्नहमपारमुदाऽन्वितस्स्याम् ॥ ५ ॥

इस कर्मजन्य शरीर की समाप्ति में मुझे चाहे मुक्ति मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो। अथवा स्वर्ग में जाकर अनेक अप्सराओं के आलिंगन का सुखानुभव प्राप्त हो। चाहे हृदय विदारक नरक की अनेक पीड़ा सहने का दुर्भाग्य प्राप्त हो। अथवा अन्य पशु पक्षी आदि योनियों में जन्म लेना पड़े। सर्वत्र ही सदा आपका स्मरण करता हुआ ही (जो कि आप कर्मजन्य जरा मरणादिकों से रहित हैं। और अपनी इच्छा से देव मनुष्य पशु पक्षी आदि अनेक योनियों में जन्म लेकर आश्रितों का उद्धार करते हैं) आपके गुण कर्मादिक के अनुभव में ही अपने को आनन्द सम्पन्न और धन्य भाग्य समझूँ।

देवाद्य लोक नरलोक जडादि जन्तू
नुत्पाद्य भास्वर महाप्रभयाऽन्वितस्त्वम् ।
स्वामिन् ! मनो वचन कर्म समन्वितं मां
प्राप्य प्रहर्षय समागमतः प्रणम्रम् ॥ ६ ॥

हे मेरे स्वामिन् ! आप देवादि लोकों में अनेक प्रकार के पदार्थों को रच कर तथा मनुष्य लोक में चराचर प्रकार के अनेक जीवों को रच कर अपनी अलौकिक दिव्य कान्ति से प्रकाशमान हो रहे हो। इसी प्रकार के आपको मन वचन कर्म से प्रणाम करने वाले इस दास को अपना समागम सुख प्राप्त करा कर हर्षित कीजिये ॥ ६ ॥

त्वां नित्य मेव हृदि मे विनिवेश्य हृद्यं
त्वत्पादपंकजमनारतमाश्रितस्सन् ।
धन्यो भवेयमिति मे मतिरस्तिपूर्णं !
त्वं मां वियोजयसि किं ! समुपेहि तूर्णम् ॥ ७ ॥

हे प्रभो ! मेरे इस हृदय को सुशोभित करने वाले आपको इस हृदय में ही सदा बैठा कर और आपके चरण कमल का निरन्तर आश्रय लेकर धन्य हो जाऊँ यही मेरी दृढ़ धारणा है । प्रभो ! क्या आप इस दास से मुख मोड़ कर दूर हो रहे हो । नहीं, नहीं, बहुत ही जल्दी आकर आपकी वियोगाग्नि से जली हुई इस शरीर कृषी को अपने दर्शन अमृत की वर्षा करके हरी बना दीजिये ॥ ७ ॥

प्राज्ञैस्तु वैदिक वरै विमलैर्हि भोज्य
स्स्वामी भवान् रसघनं मधुरं फलं मे ।
चित्ते सदाऽपि परमो यदि भासि नाथ
त्वामर्थये न किल जातु चिदन्यमर्थम् ॥ ८ ॥

वेदों में जिनकी सर्व श्रेष्ठ कह कर प्रशंसा की गई है (हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्—तथा नमस्ते रुद्र मन्यव शु०यजु०)ऐसे सर्व दोष रहित ब्रह्मादिक। अथवा अनन्त गरुड़ विश्व क्सेन आदि नित्य सूरि गण जिनका ज्ञान तीनों कालमें अप्रतिहत और अबाधित हैं । वे जिसका नित्य अनुभव किया करते हैं, सो आप मेरे लिये श्रीखण्ड और केला किसमिस से भी अधिक मधुर स्वादिष्ट हो । प्रभो सर्व श्रेष्ठ आप मेरे इस चित्त चत्वर में सदा ही उस श्याम सुन्दर रूप की कान्ति दिखाते रहो बस इसे छोड़ मैं और कुछ भी नहीं चाहता ॥ ८ ॥

नाहन्त्ववेदिपमहो ! मम च स्वरूपं !
सोऽहं ममेदमिति च भ्रमवश्य आसम् ।

श्रीदिव्य सूरि निवहै रपि सेव्यमान !
स्वामिन् ममेदमहमप्यहह ! त्वदीयम् ॥ ९ ॥

हे नाथ ! हे स्वामिन् अनादि काल से जन्म मरण के चक्कर में पड़ा हुआ मैं। अपने स्वरूप को ही नहीं जानता था। मैंने अनेक जन्मों में कर्मानुसार अनेक शरीर धारण करके उस शरीर सम्बन्धियों को ही अपना मान कर अविद्या के भ्रम जाल में इस आत्मा को डाल दिया था। नित्य सूरिगण जिस की सदा सर्व प्रकार से सेवा किया करते हैं, ऐसे आपकी कृपा का ही यह प्रभाव है कि आज मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि मैं और मेरे सम्बन्धी सब कुछ आपका ही है ॥ ९ ॥

सप्तर्षं भानपि विजित्य हि दग्धवांस्त्वं
लङ्कापुरं सपदि रम्यतमं च वीरः।
मां न त्यजेस्त्वमहहोज्ज्वल दिव्यमूर्ते !
क्षिप्रं च सङ्गमय मां तवपाद पद्मे ॥ १० ॥

प्रभो उज्वल दिव्यमूर्ति धारण करने वाले आपने नीला को स्वीकार करने के लिये सात साँड़ों को जीताथा। अत्यन्त रमणीय लङ्का पुर को भी आपने वीर वेष धारण करके जलाया था। प्रभो अब आप मुझे मत त्यागिये बहुत ही जल्दी अपने चरण कमलों में इस दास को स्थान दीजिये।

नीलादेवी में इतनी शक्ति थी कि सात बैलों को नाथने तक आपके वियोग में उन्होंने प्राण धारण किया। और श्री जनक नंदिनी में भी इतनी शक्ति थी कि वे रावण के वध पर्यन्त आपके वियोग में प्राण धारण कर सकीं। अल्प शक्ति वाले इस दास में इतना साहस कहाँ कि विरोधियों कि निवृति पर्यन्त अधिक काल तक आपके वियोग में प्राण धारण कर सके। इस लिये आप शरीर पात समय की अवधि को न देख कर बहुत ही जल्दी अपने चरण कमल में मिला लीजिये ॥ १० ॥

नित्याप्रथक्स्थितसुदर्शननायक तं,
त्यक्तुं नहि क्षम इतीह शठारिसूरिः ।
साहस्रमाह परमं यदुदारभाव,
स्तत्रेददमेव दशकं पठतां हि मुक्तिः ॥ ११ ॥

सदा ही आपकी सन्निधि में रहने वाले और उसको छोड़कर क्षणभर को भी अन्यत्र नहीं जाने वाले ऐसे श्रीसुदर्शन चक्र के स्वामी उस प्रभु को छोड़ने के लिये मैं समर्थ नहीं हूँ। ऐसा कहते हुए उदार चित्त वाले शठकोप सूरिने सहस्र श्लोक वाली सहस्र गीतिको कहा उसमें इस दशक को जो पढ़ेंगे उनकी मुक्ति अवश्य हो जायगी ॥ ११ ॥

इति सहस्रगीतौ द्वितीय शतके नवमदशकं समाप्तम् ।



अथश्रीसहस्रगीतौ द्वितीशतके दशमदशकारम्भः ।

इस दशक में पूर्व दशक में जो कैङ्कर्य प्रार्थना की है वह भले प्रकार तभी सिद्ध होगी (सर्व विध कैकर्य तभी बन सकेगा) जब कि श्री वनाद्रिनाथ की शरण सर्व प्रकार से की जायगी यह प्रति पादन करते हैं।

प्राग्यौवनस्यविलयात्प्रचितौजसश्री.
मायाचरित्रवत एव गृहं प्रभोर्नः ।
नित्यप्रवृद्धतरुषण्डवृतं सुखाय.
श्रीमद्वनाद्रितलमाश्रयितुं हि युक्तम् ॥ १ ॥

हे भक्त गण ! ऐहलौकिक और पारलौकिक सर्व विधि सुख भोगने के लिये। आप लोग बाल्यवस्थाके समाप्त होते ही युवावस्थाके प्रारम्भ के कारण उत्पन्न हुआ है । बल और कान्ति जिसमें ऐसे शरीर को धारण करके अनेक माया मय चरित्रों को करने वाले हमारे स्वामी का निवास स्थान जो कि नित्य प्रति बढ़ते हुए वृक्ष समुदाय से मण्डित है । ऐसे श्रीवनाचल पे विराजमान प्रभु की शरण जाना ही उचित और कल्याण कारक है ।

स्वामी का सर्व विध कैंकर्य करने में ही इस जन्म की सार्थकता है। वह प्रभु इतना दयालु और भक्त वत्सल है कि वह नित्य विभूति के नित्य सुखको छोड़कर असक्त और अकिंचन हम लोगों की सेवा को सर्व प्रकार से स्वीकार करने के लिए जड़ सरीखा होकर वनाचल पै सुन्दरबाहुमूर्ति रूपसे विराजमान होकर हम लोगों के उद्धार की चिन्ता में लगा हुआ है ॥ १ ॥

चातुर्य्यशालितरुणीजनवश्यतां तु,
त्यक्त्वा प्रतिध्वनिविभूपितशंखपाणे !
श्रीरम्यबाहुभृत एव गृहं सुधांशू,
त्तंसोल्लसद्वनगिरिस्थलमेव शस्यम् ॥२॥

हे मुमुक्षुओ ! अनादि अपार संसार सागर को तरकर नित्य सुख का अनुभव यदि आप करना चाहते हैं। तो अनेक हाव भाव कटाक्षों की चतुरता से शोभा को प्राप्त होने वाली नव यौवनवती तरुणियोंकी सेवा सुश्रूषा और उनकी परतन्त्रता को छोड़ कर मधुर ध्वनि से शोभायमान शंख जिसके हाथ में है। इस सुन्दरबाहु भगवान् का घर वनाचल का विशाल दिव्य देश जिसकी शिखर पर चन्द्रमा शोभा को प्राप्त कर रहा है, अथवा चन्द्रमा के प्रकाश से शोभायमान है शिखर जिसकी उसमें निवास करके यथाशक्ति कैंकर्य करना ही अत्यन्त कल्याण करने के लिये प्रशंसनीय है ॥२॥

कृत्यं वृथैव वितथं किल चित्त ! वर्प,
न्मेघायितस्य तु हरेः प्रिय सन्निधानम् ।
सम्मोहनैस्तरुगणैश्च समीपशैले,
रम्यं शुभं वनगिरेस्थलमाश्रितव्यम् ॥३॥

ऐ मेरे मनः वैदिक कर्म (यागदान होमादिक) ये स्वयं क्षण भर में नष्ट होने वाले हैं। जो वस्तु स्वयं नाशवान है वह दूसरे को नित्य कैसे बना सकती है। अतएव कर्मों की आशा करना कि वेदोक्त कर्मों से ही हमारा उद्धार हो जायगा दुराशा मात्र है। क्यों कि बिना

प्रभु की कृपा के कोई कर्म इस प्राणी का उद्धार नहीं कर सकता। इसलिये वर्षा काल के मेघ के समान श्याम सुन्दर सुन्दरबाहु भगवान की सन्निधि वनाद्रिपर्वत जिसके पास मन मोहक वृक्ष समुदाय अपनी हरियाली से शोभा को बढ़ा रहा है। उसमें जाकर निवास करके कैंकर्य करना ही प्रभु की कृपा का हेतु और कल्याण कारक है।

प्रभु की कृपा के बिना सम्पूर्ण ही धर्म कर्म व्यर्थ हैं इस बातको एक अनुभवी परम भक्त ने भी अपने उद्गारों में प्रकट किया है।

आम्नायाऽभ्यसना न्यरण्यरुदितं वेदव्रतान्यन्वहं,
मेदश्छेदफलानि पूर्तविधयः सर्वं हुतं भस्मनि।
तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विनायत्पद-
द्वान्दाम्भोरुहसंस्मृतिं विजयते देवःस नारायण ॥

दुष्कर्म पाशसरणिं जगतां निहन्तुं,
तन्मुक्ति सिद्धि विषयेऽपि महाचलं यत्।
सन्धारयन् हरिरिहास्ति तरूपगूढ़े,
मेघावृते वनगिरौ गिरिरेप सेव्यः ॥४॥

जो महापर्वत गोवर्द्धनाचल समस्त संसार के दुष्कर्मों को नाश करने के लिए और सर्व साधारण को मोक्ष देने के लिये शास्त्रों में प्रसिद्ध है। उसी पर्वत को। पूजा भंग होने के कारण क्रोध करके व्रज का नाश करने के लिए इन्द्र द्वारा की गई महा वर्षा के कष्ट से अत्यन्त पीडित गौ और गोपों की रक्षा करने के लिये ७ दिन तक अपने हाथ पर जिन्होंने धारण किया है। वही भक्त वत्सल परमात्मा अनेक वृक्षों से और अनेक प्रकार के मेघ की घटाओं से घिरे हुए इस वनाचल पर आकर प्रगट हुए है। इसी कारण परम पावन प्रभु का निवास स्थान, वनाचल ही मुमुक्षु भक्त गणों के वास करने योग्य है ॥४॥

दुष्कृत्यनाशविषये जगतां क्लैस्तैः,
नानाविधै रूप करोति हि चक्रपाणिः।

तेनोपितस्य च वृतस्य शुभैः प्रवाहै,
वाँह्याचलैं वनगिरेर्वसतिश्शरण्या ॥५॥

सुदर्शन चक्र को हाथ में धारण करने वाले हमारे प्रभु संसार के सर्व प्रकार के पापों को नाश करने के लिये अनेक प्रकार के बल और ज्ञान द्वारा सर्व प्रकार का उपाय करते हैं। उसी प्रभु का निवास स्थान वनाचल जो अनेक शीतल स्वच्छ जल प्रवाहों से सुशोभित है उसी में वास करने से भक्तों की आत्म रक्षा होगी ॥५॥

त्यक्त्वा निहीन मपि कर्म शुभां गतिं तां,
संचिन्त्य चात्र तु सवत्समृगीसमेतम् ।
शिक्योपरिष्ठनवनीतभुजस्थलं तत्,
स्मर्तुं च सद्वनगिरेः कुशलं शरण्यम् ॥६॥

प्रिय भक्त गण ! नाना प्रकार की नरक यातना को देने वाले नीच कर्मों को छोड़कर आत्मा को शुभ गति में पहुँचा देने का विचार करके वनगिरि का स्मरण भी कल्याण कारक है। वह उसी प्रभु का अभिमत स्थल है कि जिसने व्रज में छींके पर धरे हुए गोपियों के माखन को छिप करके खाया था। और यह स्थल इतना आनन्द दायक है कि पशुजाति में जन्म लेने वाली शास्त्र ज्ञान शून्य हिरणी भी अपने अबोध बच्चों को साथ में लेकर सपरिवार अपने कल्याण के लिये जिसका समाश्रयण बड़े आदर से करती हैं। इसी वनगिरि का निवास स्थान आपके आत्मा का रक्षक और कुशल प्राप्त कराने वाला होगा ॥६॥

संचिन्त्यतां शुभमिदं नरकापनुत्त्यै,
पूर्वं धरोद्धरणकृद्वसतीह यस्मात् ।
दिव्यां मतिं वितरतीति च शेषभावा,
त्सार्धुं वनाद्रिमुचितं तरुपण्डरम्यम् ॥७॥

जो पुरुष आत्मा को नष्ट करने वाली नरक यातना से छूटने की इच्छा करते हों। उनको अवश्य ही शुभदायक इस वनाद्रि का चिन्तवन करना उचित है। क्योंकि जिस प्रभुने संसार की रक्षा करने के लिये

सृष्टि के समय भूमिका उद्धार किया था। वही प्रभु इस पर आकर निवास करता है। जो अपने दास वर्गों को शुभ बुद्धि प्रदान करने के लिए सदा ही तैयार रहता है। अतएव उस प्रभु की दास्यवृत्ति करने के लिये अनेक वृक्ष समुदाय से शोभित वनाद्रि में जाकर रहना ही उचित और कल्याण कारक है।॥७॥

सम्प्राप्य चापि वलमत्रवृथैव कालं,
नेतुं हि नोचित महो ! कुशलावहस्य।
गोपाल कस्य वसतिस्सुखवृन्दवन्द्या,
दिव्यस्थली वनगिरेस्सततंहि सेव्या ॥८॥

इस संसार में नर जन्म लेकर और उस प्रभु के प्राप्ति की सम्पूर्ण सामग्री (देह,इन्द्रिय,मन,प्राणादि) को प्राप्त होकर अमूल्य समय को प्रभु के विमुख होकर व्यर्थ में नहीं खोदेना चाहिये। इस क्षण भंगुर शरीर से "जो युद्ध क्रीड़ा में अपनी युद्ध कुशलता से शत्रु वर्ग को नाश करने वाले और ब्रज की गौवों की रक्षा करने वाले उस प्रभु की निवास भूमि वनाचल जिसकी प्रदक्षिणा और नमस्कार से ही देवगण अपनी इष्ट सिद्धि मानते हैं" उस दिव्य देश की निरन्तर सेवा ही कल्याण कारक है ॥८॥

प्राप्यं स्वरूप मिति चिंतयताद्य पापा,
न्युच्छिद्य दुष्टवनिताविनि हन्तुरेतत्।
दिव्यस्थलं तरुणवारणसेव्यमाढ्यं,
प्राप्तुं च सद्म गिरेस्स्मरणं शरण्यम् ॥९॥

हे भक्तवर्ग ! जिस स्वरूप में रहकर आपको नित्य अखंडानन्द भोगना है। उस स्वरूप को प्राप्त करने की चिन्ता अवश्य करनी चाहिये। यदि आप अनेक प्रकार के पापों के प्रायश्चित करने में असमर्थ हैं। और उन पापों का समूल नाश करना चाहते हैं तो दुष्ट स्त्री (ताड़का अथवा पूतना) को मारने वाले परमात्मा का जो दिव्य निवास स्थल है। और जो मतवाले तरुण हाथियों से सेवित है। उस

वनगिरिका स्मरण ही आप का पापों से रक्षक और कल्याण प्राप्ति कराने वाला होगा ॥९॥

द्रव्यार्जनाय विविधं च विहाय चौर्यं,
वेदार्थ वक्तुरिहं सन्निधिमच्युतस्य ।
बर्हिप्रियं विकचसूनमिदं वनाद्रेः
स्थानं प्रवेष्टु मुचितं पुरुषार्थरूपम् ॥१०॥

हे पुरुषो ! आप इस पापी पेट की पूर्तिके लिये 'जो वन में बिना बोये अपने आप उत्पन्न हुए शाक से भी भर सकता है' उसके लिए छलबल और कपट से दूसरे को धोका देकर धन जोड़ने के लिये चोर पना मत करो । जिस प्रभुने सृष्टी की आदिमें वेदार्थ ज्ञान रहित ब्रह्मा जी को वेदों का उपदेश दिया था । जो जरा मरण रहित अविनाशी है । उस प्रभु का निवास स्थान जिस पर मोर नृत्य करते हुए अपनी मधुर वाणी से प्रभु का स्वागत करते हैं । और नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित है । जो अनेक प्रकार की पुरुषों की कामनाओं को पूरी करने वाला है । उस वनाद्रि के दिव्य देश में जाकर वास करना ही उचित और कल्याण कारक है ॥१०॥

भूयाच्च सार्थक मितिस्वयमेवलोक,
स्रष्टुर्हरेस्सकलदिव्य गुणान् विशुद्धान् ।
स्तोतुं शठारि रवदच्च सहस्रमेत,
द्दिव्यं कृपालु चरणौ दशकं नयेद्वः ॥११॥

हमारा जन्म सार्थक हो जाय ऐसा विचार करके 'जिस ने अपने इच्छासे समस्त लोकोंकी सृष्टि की है' उस प्रभुके विशुद्ध दिव्य गुणों की स्तुति करने के लिए शठकोपमुनि नें सहस्रगीति कही । उसमें यह दिव्य दशक भक्तों को परम दयालु परमात्मा के दिव्य चरणों को प्राप्त करा देगा ॥११॥

इति श्रीमद्वेदवेदाङ्गाद्यखिलशास्त्रनिष्णात पराशरगोत्रावतंस श्रीमन्माधवार्यचरणाश्रित सत्संप्रदायाचार्य मधुरागवनाख्यमठाधीश्वर पण्डितस्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य शास्त्रि विरचित विद्वन्मोदतरङ्गिणी भाषाटीकासहित श्रीसहस्र गीतेः प्रथम शतकं समाप्तम् ।

अथ श्री सहस्रगीतौ तृतीय शतके प्रथमदशकारम्भः

इस दशक में वनगिरि नाथ का आश्रय करने वाले भक्तजनों के अनुभव करने के लिये भगवान के दिव्य मंगल विग्रह दिव्य भूषण दिव्य सौन्दर्य का प्रतिपादन आल्वार करते हैं।

ज्योतिस्ते मुखमण्डलस्य किमिदं मौलीन्दतेजोमयम् ?
पादाब्जस्य रुचिः किमेतदभवत्पद्मासनं ते हरे।
रम्याते कटिकान्तिरेव किमियं वस्त्रादिभूषात्मिका ?
श्रीश ! त्वं मम संशयान् परिहर ! त्वं वाच्यवाणीपतिः ॥१॥

हे हरे ? तेमुखमण्डलस्य इदं ज्योतिर्मौलीन्द्र तेजोमयंकिं ? एतत् पादाब्जस्य रुचिः पद्मासनं किमभवत्। इयं रम्या वस्त्रादिभूषात्मिका कटिकान्तिरेव किं भो श्रीश मम संशयांस्त्वं परिहर (दूरीकुरु) यतो वाच्यवाणीपतिस्त्वमेव खलु।

हेहरे ! आपके मुख मण्डल का यह प्रकाश ही क्या मुकुट में जाकर मिल गया है। और क्या यह चरण कमल की चारुचन्द्रिका पद्मासन रूप से हो गयी है। और यह अति मनोहर वस्त्रभूषणादि से ढकी हुई कान्ति ही कटिरूप से होगई है क्या ? हे लक्ष्मीपते मेरे, इन सन्देहों को आप कृपा कर दूर कर दीजिये। क्योंकि पदार्थ और शब्द इन दोनों के अधिष्ठाता तो आपही हैं। अतः हमारे उक्त संशय को दूर करने की शक्ति आप के बिना दूसरे में नहीं है।

दर्शन करने के समय प्रभु के मुख और किरीट दोनों ही प्रकाश मान हो रहे थे। अतः सन्देह हुआ कि मुख तेज किरीट में गया है अथवा किरीट का तेज मुख पर गया है। क्योंकि दुग्धमें शर्करा मिलने से जो विलक्षण स्वाद पैदा होता है। उसमें यह निर्णय नहीं हो सकता कि यह स्वाद दूध का है अथवा शक्कर का। इसी प्रकार एक की कान्ति दूसरे में मिल कर जो विलक्षण शोभा दे रही थी उसे देखकर आल्वार को उक्त सन्देह हुआ। यही व्यवस्था चरण कमल और कटि तट की समझ लेनी चाहिये ॥१॥

तत्त्वं चेत्परिशील्यते तव परज्योतिर्मयस्याम्बुजं,
चक्षुः पादकरैस्समं न ! कनकं शुद्धं न ते वर्ष्मणा ।
औपम्यं जगताऽत्र कल्पितमिदं सर्वं च हीनोपमा ?
वाभात्येव तव स्तवेषु बहुशःसत्यं निकर्षावहा ॥२॥

हे ! प्रभो जब हम दिव्य ज्योतिः स्वरूप आपके सौन्दर्य का यथार्थ रूप से विचार करते हैं । तब नेत्र चरण और हाथों को कमल की उपमा देना और आपके शरीरको शुद्ध सुवर्ण की उपमा देना किसी प्रकार भी नहीं हो सकता । जगत के जिन स्वतन्त्र कवियों ने इस प्रकार की उपमाओं की जो कल्पना की है वह सब निरी हीनोपमा है । आपकी वास्तविक सुन्दरता को परीक्षा करने पर वह प्रायः करके आपकी स्तुतियों के स्थलों में सत्य सी प्रतीत होती है । अप्राकृत को प्राकृत से उपमा देना हीनोपमा कहलाती है । कमल और स्वर्ण आदिक प्रकृतिसे उत्पन्नहुए विनाश शाली पदार्थ कहाँ ? और प्रकृतिसे परे दिव्य ज्योति स्वरूप अविनाशी परमात्मा कहाँ । जिसकी जितनी बुद्धि है उतना ही वह ईश्वर के गुणों का वर्णन करता है । आकाश अपार है उसमें अनेक पक्षीगण अपने पक्षों की शक्ति के अनुसार उड़ करही सन्तोष मान लेते हैं ॥२॥

सर्वस्मात्परमो भवान् हि भगवान् ! ज्योतिः परं त्वं हरे !
नास्त्येवोज्ज्वलमन्यदुत्तमगुणं ज्योतिर्विना त्वां क्वचित् ।
सङ्कल्पात्तव सर्वलोकसरणिं सृष्ट्वा स्वयं भ्राजसे ।
गोविन्दाद्य परं महस्तवगिरा वक्तुं न शक्तिर्मम ॥३॥

हे हरे ! षड्गुण (ज्ञान, शक्ति,बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज) ऐश्वर्य सम्पन्न आपही सबसे उत्तम और पूज्य हो । सर्व श्रेष्ठ ज्योति स्वरूप भी आपही हो । आपके बिना कहीं पर भी उत्तम गुण वाली और अत्यन्त उज्ज्वल ज्योति नहीं है । आप अपने संकल्प से ही सम्पूर्ण संसार के जीव योनियों को रचकर और उनके भीतर अन्तर्यामीरूप से और उनके बाहर भी अनेक रूपों से उनकी रक्षा करने के लिए

स्वयं प्रकाशमान हो रहे हो। हे गोविन्द आज वाणी द्वारा आपसे श्रेष्ठ ज्योति को कहने के लिए मेरे में शक्ति नहीं ॥३॥

विश्वं नाभिसरोजमस्तकमिदं सत्यं विशालं तव,
श्रीशस्याम्बुजकोमले वपुषि यच्चित्तं न वध्नात्यहो।
नानादुर्मतसम्प्रविष्टमपि यद्विश्वं तनोषि स्वयं,
तस्मात्त्वां तुलसीप्रियं कथमिदं विश्वं समाराधयेत् ॥४॥

हे प्रभो आपका नाभि कमल और मस्तक विशाल और अत्यन्त शोभा शाली है। लक्ष्मीपति आपके कमल कुसुम से भी कोमल दिव्य शरीर में जो अपने चित्त को नहीं लगाकर अनेक प्रकार के दुष्ट मतों के कुतर्क जाल मे फँस कर आत्म पात करता है। यह बड़े दुःख की बात है। जो आप अपने संकल्प मात्र से ही इस विश्व का अनेक प्रकार का विस्तार कर देते हैं। ऐसे आपको जो कि तुलसी के पत्र समर्पण से ही प्रसन्न हो जाते हो। अनेक कुतर्कों के भ्रम में पड़े हुए वे प्राणी आप की किस प्रकार आराधना कर सकते हैं ॥४॥

नैसर्गं हि तपःफलं त्विति महज्ज्योतिः परं ते तनु-
र्ज्ञानं चापि निसर्गसिद्धमपरिच्छिन्नं विभु श्रीहरे!
लोकान्पालयसि स्वयं हि सततं कालत्रयस्थोऽच्युतः
कल्याणानिह ते गुणान् कथमहं कार्त्स्न्येन सङ्कीर्तये ॥५॥

हे श्रीहरे! आपका यह जो दिव्य मंगल विग्रह है। जो सम्पूर्ण प्रकाशवाले पदार्थोंसे अत्यन्त तेज वाला है। और जो अनेक जन्मोपार्जित शुद्ध स्वभाव से किये हुए तप का फल है। और स्वभाव शुद्ध आपका ज्ञान अपरिछिन्न (सर्व देश सर्व काल सर्वावस्था मे नहीं रुकने वाला) है और सर्वत्र व्यापकहै। आप अविनाशी रूप से तीनों काल (भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान) मे रहते हुए अपनी इच्छा से सम्पूर्ण लोकों का पालन करते हो। आपके सम्पूर्ण कल्याण गुणो को यथावत् कीर्तन करने को शक्ति मेरे मे कहां है ॥५॥

वेदा विदां समस्तजगतां सर्वे वदन्त्यंशतः
पूर्णस्यापि गुणांस्तवैव तुलसीमालाकिरीटोज्वल !
पद्मा च स्वयमस्ति नित्य वसतिर्वक्षस्थले ते हरे !
शब्दैः कैः कथयाम्यहं कथमहो ! ता दृक्चते वैभवम् ॥६॥

तुलसी की माला से शोभित किरीट वाले प्रभो समस्त संसार के वेद पाठियों के सम्पूर्ण वेद सर्व प्रकार से परिपूर्ण आपके गुणों के एक अंश को भी कहने के लिये शक्ति नहीं रखते। जिसकी कृपा कटाक्ष से अत्यन्त जड़ वनस्पति भी ज्ञानियों में श्रेष्ठ बृहस्पति की तुलना करने लग जाता है, वह सरस्वती सदा हो जिस लक्ष्मी की दासी होकर रहती है। वह लक्ष्मी अपनी इच्छा से ही जिसके वक्षःस्थल में निरन्तर वास करती हैं। इस प्रकार महान् आपके उस वैभव को मैं किन शब्दों से किस प्रकार वर्णन करूँ ॥ ६ ॥

स्तोतारो बहवो भवन्त्विति भवनादौ स्वयं सृष्टवान्
ब्रह्माणं चतुराननं सृजजगन्मूलोदकादित्यहो !
रुद्राद्या अमराश्च दिव्यमतयस्संघीभवन्तः स्वयं
किं स्तोतुं प्रभवन्ति सद्गुणगणा नित्योज्ज्वलांस्ते हरे! ॥७॥

हे हरे आपने सृष्टि की आदि में यह सोच कर कि हमारी स्तुति करने वाले बहुत लोग हो जाँय। इसलिये सृष्टि की रचना के मूल कारण रूप जल से चार मुख वाले ब्रह्मा को उत्पन्न किया। और फिर उन ब्रह्माजी के द्वारा एकादश रुद्र द्वादश आदित्य अष्टवसु और अनेक प्रजापतियों को उत्पन्न किया। दिव्य ज्ञान से अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि वाले रुद्रादिक देव स्वयं इकट्ठे होकर भी सर्वदोषगन्धरहित आप के नित्य सद्गुण गणों की स्तुति करने को क्या समर्थ हो सकते हैं ? नहीं प्रभो आपके कल्याण गुणों की स्तुति यथार्थ रूप से कौन कर सकता है ॥ ८ ॥

श्रीकान्तं निरवद्य निर्मलमहातेजोनिधिं त्वां हरिं
दिव्यज्ञाननिधिं विकाररहितं सर्वाश्रयं सर्वतः ।

देवेशोऽपि चतुर्मुखश्शुभमतिस्स्तोतुं च सज्जो यदि
त्वत्पादाम्बुजयुग्मकान्तिरतुला किं नाप्नुयान्म्लानताम् ॥८॥

हे प्रभो ! सर्व पाप हरण कर्त्ता हरि और लक्ष्मीपति सर्व दोष रहित निर्मल, महा तेज के भण्डार, दिव्य ज्ञान के समुद्र, जन्म मरणादि सर्व विकार वर्जित चराचर, समस्त संसार के सर्व प्रकार के आश्रय रूप आपकी स्तुति करने के लिए सर्व देव पूज्य दिव्यज्ञान सम्पन्न चार मुख वाले ब्रह्माजी भी यदि तैयार हों तो । इस कार्य से आपके दोनों चरण कमल की कान्ति जिसकी समान तुलना संसार के किसी भी पदार्थ से नहीं की जा सकती । वह क्या मलिनता को प्राप्त न होगी अवश्य होगी । प्रभु के यथार्थ प्रभाव को न जानने वाले ब्रह्मा दिकों से की गई प्रभु की स्तुति उसी प्रकार हँसी के योग्य है, जिस प्रकार कि सुमेरु के प्रभाव को न जानने वाले ग्रामीण से बताये हुए उस सुमेरु के १०० रु० मूल्य के समान है ॥ ८ ॥

नित्यामोघ सुतीक्ष्ण चक्रधर ! ते कैंकर्यसक्तं गजं
त्रातुं त्वं गरुडं त्वरातिशयतो रूढस्स्वयं चागतः ।
सङ्कल्पैस्सफलैस्तवात्र जगतां रक्षासुदीक्षाऽस्तिचेत्
किं ज्योतिर्न तिरस्कृतं भवति ते वात्सल्यसीमाम्बुधेः ॥९॥

हे प्रभो ! नित्य ही शत्रुओं के संहार करने से जो कभी निष्फल नहीं होता ऐसे तीक्ष्ण चक्र को धारण करने वाले आपके कैंकर्य (स्तोत्र) में लगे हुए गजराज की रक्षा करने के लिए बड़ी जल्दी से गरुड़ के ऊपर चढ़ कर आप स्वयं गये थे । प्रभो ! क्या इस गज मोक्षण चरित्र से वात्सल्य गुण सागर आपके उस दिव्य तेज का अपमान नहीं होता ? जिससे आप सर्वत्र सफल होने वाले अपने संकल्प से समस्त संसार की रक्षा करने की दीक्षा में लगे हों ।

जो प्रभु अपने संकल्प मात्र से असंख्य ब्रह्माण्डों की रचना और रक्षा तथा प्रलय क्षण भर में कर देते हैं । वे क्या अपने संकल्प मात्र से गजेन्द्र के कष्ट को नहीं छुड़ा सकते थे । इस तुच्छ कार्य के लिये अत्यन्त त्वरा से गरुड पर सवार होकर आने को क्या

आवश्यकता थी। गजेन्द्र की रक्षा करने के समय वह आपका सत्य संकल्प कहाँ गया था, क्या इससे संकल्प सिद्धि की असमर्थता नहीं प्रकट होती। इसका रहस्य यह है कि प्रभु के अवतार होने के कारण दो ही हैं (१) भक्तों की इष्ट सिद्धि (२) उनके अनिष्ट की निवृत्ति, यद्यपि परम प्रभु भक्तों की अनिष्ट निवृत्ति (विरोधियों का नाश) अपने संकल्प मात्र से कर सकते हैं। तथापि उनके इष्ट (अभिलषित फल) की प्राप्ति संकल्प मात्र से नहीं कर सकते। जैसे किसी भक्त की भावना है कि मैं बालगोपाल की उपासना करूँ। किसी की राम रूप में किसी की कृष्ण रूप में किसी की नृसिंह रूप में किसी की वराह रूप में किसी की हयग्रीव रूप में इत्यादि भक्तों की अनेक प्रकार की भावना तभी सिद्ध होंगी जब कि ईश्वर अनेक रूप और अनेक नाम धारण करके अनेक चरित्र करेंगे। अतएव भक्तों की इष्ट सिद्धि करने के लिये ही प्रभु का अवतार धारण करना अनिवार्य है ॥ ९ ॥

गूढ़ं वेद चतुष्टयेऽतिगहने ज्योतिः परं त्वं हरे !
पर्यायेण जगत्त्वमेव सकलं सृष्ट्वा स्वयं भक्षयन् ।
उद्गीर्यापि पुनः पदक्रमत एवोन्मातुमासीः प्रभुः
किं चित्रं यदि सेव्यसे त्वमनिशं रुद्रेन्द्रधात्रादिभिः ॥१०॥

हे हरे! अत्यन्त दुर्ज्ञेय (बड़ी कठिनता से जानने योग्य) चारों वेदों में भी परम ज्योति स्वरूप आप छिपे हुए हो। आप अपनी इच्छा से समयानुसार इस जगत को रच करके फिर प्रलय समय में खा लेते हो। और फिर सृष्टि का समय आने पर अपने पेट से बाहर निकाल कर बसा देते हो। और उसको तीन पगोंमें नापनेके लिये फिर भी विशाल रूप धारण कर लेते हो। इस प्रकार संसार के सर्व प्रकार के कर्त्ता धर्त्ता विधाता जब आप ही तो ब्रह्मा रुद्रादिक आपकी निरन्तर सेवा करते हैं इस में आश्चर्य ही क्या है॥ १० ॥

चित्राणामपि चित्रमेव विशदज्ञानैकवेद्यं हरिं
नत्वा श्रीकुरुकापुरे शठरिपुस्तुष्टाव जिष्णवाश्रये ।

साहस्रे दशकं तदेतदपिचोद् घुष्टं समुद्रावृते
चास्मिन् भूमितले समुद्धतिकरं नाभाति जन्मापहम् ॥११॥

इस संसार की आश्चर्य कारक सम्पूर्ण वस्तुओं को आश्चर्य में डालने वाली है महिमा जिसकी और जो अनेक योगाभ्यासों से सम्पादित विशद और तीक्ष्ण ज्ञान से जाना जाता है, उस हरी को प्रणाम करके अनेक देव मूर्तियों से विराजमान अति विशाल दिव्य देशों से सुशोभित शब्दायमान समुद्र से घिरे हुए कुरुकापुर में श्रीशठकोप मुनि नें ईश्वर की स्तुति करने के लिये सहस्रगीति ग्रन्थ कहा। उस में यह दशक जो पढ़ेंगे उनको इस भूमितल में अत्यन्त समृद्धि प्राप्त होगी। और वे अन्त समय में जन्म मरण के चक्कर से छूट कर मोक्ष को प्राप्त होंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ तृतीयशतके प्रथमदशकं समाप्तम्।



अथ श्री सहस्रगीतौ तृतीयशतके द्वितीयदशकारम्भः

इस दशक में पूर्वोक्त प्रकार से ईश्वर का अनुभव करते करते आलवार इन्द्रियों की थकावट से अनुभव करने मे असक्त हो गये, तब भगवान आकर के उनको प्रोत्साहन देने लगे कि इस घनाचल पर्वत पर सर्व सुलभ रूप से तुम्हारे अनुभव करने के लिये ही मैं प्रगट हुआ हूँ, इसलिये निराश होने का कोई कारण नहीं है तुम्हारे पास जो साधन हो उसी से हमारा आराधन करो। यह कहा है।

लोकंच त्रिविधाम्बुसंश्रयमिमं सृष्ट्वोपकर्त्ताऽसिनः
कारुण्याच्च पयोद वर्ण ! यदहं त्वद्दत्त कायानुगः।
सन्तप्तोऽस्मि ! महार्तिपापसरणिं हत्वा समूलामिमां
त्वां सम्प्राप्य कदा भवामि भगवन् ! धन्यो न वेद्मिस्वयम्॥१॥

हे प्रभो ! तीन प्रकार के जल (नदी जल, वर्षा का जल, सोते का जल) के आश्रय से रहने वाले इस लोक को अपनी कृपा से रच करके आप हमारे बड़े उपकार करने वाले हो। हे श्याम सुन्दर ! मैं आपके दिये हुए शरीर और इन्द्रियों के परतन्त्र

होकर बड़ा दुखी हूँ । इस दुःख - समुदाय को समूल नष्ट करके मैं आप के चरण कमलों को प्राप्त होकर धन्यवाद का पात्र कब बनूंगा । भगवन् उस समय को मैं अपनी बुद्धि से नहीं जान सकता ।

प्रलय के समय में जब सम्पूर्ण जीवगण देहेन्द्रियादिक से शून्य थे। तब उनके कहे बिना ही प्रभु ने निर्हेतुक कृपा करके उनके भले के लिये त्रिविध जलके ऊपर विचित्र सृष्टि की और हमारे उद्धार करने के लिये उसने देह इन्द्रिय आदिक दिये, किन्तु हम अपनी दुर्बुद्धि से उनको प्रभु स्मरण रूप सद्रुप योग में न लगाकर संसारिक विषय रूप दुरूप योग में लगाने लगे । अतएव इन इन्द्रियों से की हुई दुर्दशा से ही घबड़ा कर अपने को आल्वार ने दुखी समझा और उस दुख से छूटने के लिये प्रभु से प्रार्थना की है कि प्रभो ! इन्द्रियों के इस दुख से छूटने के उपाय मैं नहीं जानता कृपा करके आप ही बताइए ॥१॥

मातुं त्वं पृथ्वीं विशालकठिनां पादाब्जतो वामनः
श्रीशाभूः किल ! मायया तव हरे ! नाना विधा जन्मतः ।
क्लिन्नोऽहं वत ! दुर्निवारदुरितक्लेशानुबन्धावली
मूलच्छेदकरः कदा तव महत्पादाम्बुजं संश्रये ॥ २ ॥

हे हरे ! आप लक्ष्मी के पति होकर भी अत्यन्त विशाल और महा कठिन पृथ्वी को अति कोमल चरण कमल से नापने के लिए अपनी इच्छा से वामन रूप हो गये थे । इस प्रकार के अनेक जन्मों में दिखाई हुई आपकी भक्त वत्सलता से मैं द्रवीभूत हो रहा हूँ । भोगने से किसी प्रकार भी नष्ट न होने वाले पापों से उत्पन्न हुए क्लेश समूहों को समूल नष्ट करके आपके चरण कमलों का मैं समाश्रयण करूंगा वह शुभ दिन कब आयेगा ।

बली अहंकार वश होकर आपके चरणों की शरण में न आ सका । किन्तु उसका उद्धार करने के लिये उसके घर स्वयं जाकर उसकी इच्छा न रहने पर भी उसके विरोधी वर्गों को दूर करके आपने उसे स्वीकार किया । इसी प्रकार मैं भी विरोधियों के जाल में फंसा हुआ आपकी

शरण नहीं आ सकता। अतएव आपही आकर मेरे विरोधी वर्गों को नष्ट करके इस दास को स्वीकार करें यही प्रार्थना है ॥२॥

नेतुं वाजिगणं हि वेत्रभृदभूस्त्वं शस्त्रहीनोऽवधी,
दुंष्टान् भारतसङ्गरे ! मम विभो ! त्वं सर्वसेनान्तकः ।
भूम्यामत्र न नश्यति स्वयमयं दुर्देहबन्धोमम,
स्वामिन् मे वद साधनं तव महासङ्गाय संरक्षितुः ॥३॥

हे प्रभो ! महाभारत संग्राम में आपने शस्त्र धारण न करने की प्रतिज्ञा करके अश्वों को चलाने के लिए वेत्र-(चाबुक) को धारण किया था। और उस अवस्थामें शस्त्र हीन रहते हुए भी आपने सम्पूर्ण दुष्ट सेना का संहार किया था। इस भूमि में मेरे इस दुष्ट देह का बन्धन जब तक नष्ट नहीं होता तब तक समाश्रितों की सर्व विधि रक्षा करने वाले आपके चरण कमल की सन्निधि प्राप्त करने का उपाय आप मुझे बतलादें।

महाभारत संग्राम प्रारम्भ होने वाला था। दोनों दलों के वीर एक दूसरे की हत्या करने के लिए शस्त्र उठा रहे थे इसी समय जो कृष्ण की सहायता से विजय की आशा करके आया था। वही वीरवर अर्जुन उस युद्ध स्थल में मरने मारने के लिए डटे हुए अपने सम्बन्धियों को देखकर करुणार्द्र होकर धनुष बाण को फेंक कर, श्रीकृष्ण से यह कह कर कि प्रभो ! यह बन्धु हत्या रूप युद्ध को मैं नहीं करूँगा पीछे हट गया। उस समय उसके धर्म विरुद्ध विचारों को देखकर आपने अपने बुद्धि कौशल से उसके हृदय मालिन्य को दूर करके और दिव्यज्ञान का उसके हृदय में प्रकाश करके स्वधर्मोचित युद्ध में उसे प्रवृत्त किया था। इसी प्रकार आप मेरे हृदय के अन्धकार को दूर करके और उसमें दिव्य ज्ञान का प्रकाश करके विरोधियों को नष्ट करके आपके चरणों को प्राप्ति करने की शक्ति इस दास को भी प्रदान करें॥३॥

ज्ञानौज्ज्वल्यमहानिधे ! ममविभो ! सर्वत्र च व्याप्तित,
स्सम्पूर्णोऽसि सदापि चाद्य दयया स्थित्वामदग्रे वद ।

धन्योऽहन्तु कथं भवेय मनघस्सन्त्यक्तभावान्तर,
स्त्वत्पादाम्बुजयुग्ममात्रशरणश्श्रीमन् ! मुरारे! हरे ॥४॥

हे श्रीमन् ! आप दिव्य और निर्मल ज्ञान के अक्षय निधि हो, और मेरे निरुपाधिक (स्वार्थ रहित) स्वामी हो। और ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त वस्तुओं में सम्पूर्ण रूप (रूप, स्वरूप,गुण, विभूति समेत) से सदा व्याप्त हो रहे हो । तो हे मुरारे ! आप कृपा करके मुझे यह बतायेंगे कि जिससे सांसारिक सम्पूर्ण भावनाओं को हृदय में से निकाल कर शुद्ध हृदय से आपके चरण युगल की एकमात्र शरण में हो जाऊँ ॥४॥

प्रादुर्भावविवशात्समागतममुं चेतो न मे त्वां भजेत् !
त्वत्प्राप्तिर्यदि दुर्लभाऽस्ति सततं चैवं मम श्री पते ।
कुत्राहन्तु कदाऽऽश्रयेयमतसीगुच्छालिसच्छाय मे,
वैनं त्वां मम नाथ मच्युत महो ! भाग्यं,किमीदृङ्मम॥५॥

अनेक प्रकार के अवतार लेकर आये हुए आपके चरणों में मेरी श्रद्धा नहीं है इस प्रकार आपकी प्राप्ति मेरे लिये निरन्तर दुर्लभ है । अलसी के फूलों (नीलवर्ण कान्तिवाले) के सदृश कान्ति वाले आपको मैं कहां पर किस समय आश्रयण करूं । हे मेरे नाथ अविनाशी आप के चरणों को प्राप्त होने का सौभाग्य क्या इस दास को मिलेगा ॥५॥

कृत्याकृत्यविवेकशून्य हृदयश्चासं पुरा सर्वदा,
नाना दुर्विषयप्रवर्तितमना दूरं गतोऽहं तव ।
संख्यातीतमनेकजन्तुनिवहं संकल्प मात्राद्भवा,
नुत्पाद्यारित परः कदा बत ! भजे दिव्यं त्वदङ्घ्रिद्वयम् ॥६॥

हे प्रभो ! मेरे हृदय में पहले इस प्रकार का ज्ञान ही नहीं था कि कृत्य (वेदानुकूल कर्म) क्या है ? अकृत्य (वेद विरुद्धकर्म) क्या है ? अनादि काल से अनेक प्रकार के दुष्ट विषयों(रूप रस गंधस्पर्श शब्दादि) में मेरा मन फँसा हुआ है । इसीकारण मैं आपसे बहुत दूर चला गया हूँ ।

आपने अपने संकल्प मात्र से ही असंख्य जीव समूहों को उत्पन्न किया और उन सर्व प्रकार के जीवों से आप श्रेष्ठ हो। आपके दिव्य चरण कमल का मैं सेवन करूँ। वह शुभ दिन इस दासको कब प्राप्त होगा ॥६॥

हे ! चित्त ! त्वदधीन एव सततं मोहाब्धिमग्नोस्म्यहं,
दुःखी पापरतो भवाम्बुधिगतः किं मन्दभाग्यस्य मे ।
किञ्चित् साधनमस्ति तस्य परमज्योतिर्मयस्याश्रये,
श्रीकृष्णस्य समस्तवस्तुनिवहव्याप्तिप्रतिष्ठाभृतः ॥ ७ ॥

अरे मेरे मन ! तेरे पराधीन हो कर ही मैं निरन्तर अज्ञान समुद्र में डूबा हुआ हूँ। इसी कारण किये हुए अनेक पापों के प्रभाव से उत्पन्न हुए दुःखों ने मुझे चारों ओर से दबा रखा है। अतएव अपार संसार सागर में प्राप्त होकर मन्द भाग्य मेरे लिए क्या कोई ऐसा साधन है ? कि जिससे दिव्य तेज मय मूर्ति वाले श्रीकृष्ण के जोकि समस्त वस्तु समूहों में व्याप्त होकर बैठा हुआ है। उसके चरण कमलों का समाश्रयण करूँ ॥७॥

नाना दुःखकराघराशिसरणिध्वंसाय यत्नो न मे,
त्वत्पाम्बुजसन्नतिश्च सततं नैवास्ति मे श्रीपते !
सौशिल्यादिनिधे ! ममापि चविभो! श्रीकृष्ण ! तेजोनिधे !
पश्येयं तव दिव्यरूपमिति च क्रन्दामि ! कुत्राश्रये ॥८॥

हे श्रीकृष्ण ! हे दिव्य तेजो निधे ! अनेक प्रकार के दुखों को सदा देने वाले पापों को नाश करने के लिये कोई उपाय (यागदान होमादिक) मुझ से नहीं बनता। हे लक्ष्मीपते ! अनेक दुःख समूहों को समूल नाश करने वाली आपकी चरण सेवा भी मुझ से नहीं बनती। आप सौशिल्य गुण के भंडारहो। और मेरे निरुपाधिक स्वामी हो। मैं दिन रात यही चिल्लाता हूँ कि आपके उस दिव्य रूप के दर्शन मुझे कहाँ होंगे। और आपका समाश्रयण किस जगह करूँ ॥ ८ ॥

घोराघाब्धिनिमग्न एव रुचिरं प्रभ्रष्टमार्गःस्वयं,
भ्रान्तोऽहं किल मन्दभाग्य इह हि ! त्वां ना श्रितोहं तदा ।

गोपालं जगतां च मानविधये त्रैविक्रमप्रक्रमम् !
क्रन्दन्नेव मनाथवद्भुवि कदा त्वत्सन्निधिं प्राप्नुयाम् ॥९॥

हे प्रभो ! मैं अनादि काल से सन्मार्ग को भूल रहा हूँ। इसी कारण भयंकर पाप समुद्र में डूब रहा हूँ। मैं ऐसा भ्रम में पड़ा हूँ कि आपके चरणों का आश्रय भी नहीं कर सकता। संसार की रक्षा करने के लिए पृथ्वी का उद्धार करके उसका पालन करने और संसार को नापने के लिए त्रिविक्रम रूप धारण करने वाले प्रभो इस भूमि में अनाथ के समान करुण क्रन्दन करता हुआ क्या आपकी सन्निधि को मैं प्राप्त हो जाऊँगा ? ॥९॥

काले चान्तक दूत पाशवितते स्तद्दुःखशान्त्यै स्वयं,
वेदैर्वेद्य मुदारमत्र सुलभं त्वां कृष्णमस्म्याश्रितः ।
मच्चित्तं समभूत्स्थिरं किल ! तदा त्वात्मा च मे नित्यतां,
सम्प्राप्यैव कृतित्वमुत्तममगादित्येव मे निर्णयः ॥१०॥

हे प्रभो ! अन्तकाल के समय यमराज के दूतों की फाँसी के जाल को और उससे उत्पन्न हुए दुख को काटने के लिए (सम्पूर्ण वेद जिसका प्रतिपादन करते हैं। जिसके समान उदार और सुलभ संसार में कोई नहीं है) उस कृष्ण का ही आश्रय मैंने लिया है। यदि यह मेरा चञ्चल चित्त आप के चरणों में स्थिर होगया तो नित्या नन्द को प्राप्त होकर यह मेरा आत्मा अवश्य ही कृत-कृत्य हो जायगा। यह मेरा निर्णय पूर्वक दृढ निश्चय है ॥ १० ॥

लोकानामपि चात्मनामधिपतिं श्रीशं हरिं कोकिलै
राक्रान्ते कुरुकापुरे तरुगणैश्चेतो हरे संवसन् ।
स्तोतुं चाह सहस्र सूक्ति सरणिं गेयां शठारिर्मुनि
स्तत्रे दशकं तनोति जगतां भुक्ति वपुः पाशतः ॥११॥

जो सम्पूर्ण संसार और समस्त आत्माओं का सर्वाधिक पति है। सर्व पाप हरण कर्त्ता उस लक्ष्मीपति की स्तुति करने के लिये ही कोकिलाओं की मधुर ध्वनि से शोभायमान चित्त को हरण करने

वाले अनेक वृक्ष जहाँ पर लगे हुए हैं। उस कुरुकापुर में वास करने वाले शठकोप मुनि नें। भक्त पण्डितजनों करके गाने योग्य सहस्रगीति को कहा। उस सहस्रगीति में यह दशक पाठ करने वाले लोगों को इस दुष्ट शरीर से छुड़ा कर मुक्ति अवश्य कर देगा ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ तृतीयशतके द्वितीयदशकं समाप्तम्।



अथ श्री सहस्रगीतौ तृतीयशतके तृतीयदशकारम्भः

इस दशक में श्रीवेंकटेश भगवान् की सन्निधि में सर्व विध कैंकर्य करने की प्रार्थना आल्वार करते हैं। यह कहा है।

सर्वत्र चाखिल दशास्वपि सर्वदाऽपि
प्राप्यात्र किंकरदशां वयमाश्रयामः ।
गम्भीरनाद गिरि निर्झर वेंकटाद्रि
ज्योतिः परं मम पितुश्च पितामहाख्यम् ॥ १ ॥

सम्पूर्ण देश और सर्व प्रकार की दशा तथा सर्वकाल में किंकर दशा को प्राप्त होकर। हम लोग उस वेंकटाद्रि की जिससे कि कर्णानन्द दायी गम्भीर ध्वनि वाले अनेक झरने झर रहे हैं। परम ज्योति का आश्रय लेंगे। जो वेंकटाद्रि की परम ज्योति (वेंकटेश भगवान्) मेरे पिता हैं और पितामह भी हैं ॥ १ ॥

भक्तगण ईश्वर का अनुभव करके ही अपना जीवन बिताना सार्थक समझते हैं। यद्यपि वैकुण्ठ वासी पर वासुदेव का अनुभव करना कठिन है और व्यूह (क्षीराब्धिशायी श्वेत द्वीप वासी) तथा विभव (राम कृष्णाद्यवतार) का अनुभव करना भी सर्वदा नहीं बन सकता। अतएव अर्चावतार (मूर्ति रूप) की उपासना और अनुभव सर्व देश और सर्व काल में बन सकता है। अत एव सर्व सुलभ अर्चावतार का ही सर्व विध कैंकर्य करना निश्रेयस्कर है।

मूलं पितुर्मम पितुश्च पितामहस्य
श्रीशः प्रभुर्लसति नीलपयोदमूर्तिः ।

कल्याण सद्गुणगणाम्बुनिधिस्समस्तै
देवैस्ससूरितिलकैः कृतपुष्पवृष्टिः ॥ २ ॥

वे लक्ष्मीपति भगवान् वेङ्कटेश जिनका विग्रहसौन्दर्य नील मेघ घटा के समान है। मेरे और मेरे पिता तथा पितामह के जो उद्धार के मूल कारण हैं, जो सर्व प्रकार के उत्तम कल्याण गुणों के समुद्र हैं। सम्पूर्ण देव और नित्य मुक्त गण जिन के ऊपर पुष्प वर्षा करके ही अपने जीवन को धन्य मानते हैं, वे ही भगवान् यहाँ (वेंकटाद्रि पर) प्रकाशमान् हो रहे हैं।

नाथः किलाद्भुतविचित्रचरित्र एष
श्री पुण्डरीकनयनोऽसित रत्नकान्तिः।
बिम्बाधरोऽत्र विमलाम्भसि वेङ्कटाद्रौ
देवाधिदेव इह भात्यमितप्रभावः ॥ ३ ॥

अनेक प्रकार के अद्भुत और विचित्र चरित्र हैं, जिसके और कमल के समान हैं नेत्र जिसके। और नीलमणि के समान है विग्रह कान्ति जिसकी। लाल हैं होठ जिसके ऐसा यह त्रिलोकीनाथ और सर्व देवताओं से श्रेष्ठ जिसका प्रभाव अपरिमित है, वह निर्मल जल के नदी प्रवाह से सुशोभित वेंकटाचल पर्वत पर विराजमान है ॥३॥

देवाधिदेव इति चेदहमद्य वच्मि
श्रीशस्य किं तदुचितं महिमातिसीम्नः।
तेजो निधेरपि च वेंकटनायकस्य
प्रेम्णाऽतिमोहितमतेरतिनीचवृत्ते ? ॥ ४ ॥

मैं सम्पूर्ण देवता जिसकी चरण रज और कृपा कटाक्ष की अभिलाषा के लिये तरसते हैं। वह लक्ष्मी सदा ही जिसके चरणों में लेटती रहती है, जिसकी महिमा की सीमा का अन्त नहीं है। उस को यदि मैं देवाधि देव कहूँ तो क्या यह उचित है। तेज के भण्डार वेंकटेश भगवान् का अति नीच वृत्ति वाले और सांसारिक विषयों से मोहित होने वाले मुझ में जो प्रेम है यह एक आश्चर्य की बात है।

ज्योतिर्मयं सकललोकसमाश्रितं चा
प्यादिं च सर्वजगतां यदि वच्मि मूर्त्तिम्।
वेदान्तसारममृतं किमहं स्तवीमि
श्रीवेंकटेशमनघं शुभसद्गुणाब्धिम् ॥ ५ ॥

जो दिव्य ज्योति स्वरूप है और, सम्पूर्ण संसार जिस का समाश्रयण करता है। और सम्पूर्ण संसार का जो आदि कारण है। जो वेदान्त का सार रूप अमृत है। और जो सम्पूर्ण सद्गुणों का समुद्र है। और जो सर्व दोष रहित है, उस वेंकटेश मूर्ति की स्तुति करने की शक्ति मेरे में कहाँ है ॥ ५ ॥

श्री वेंकटाद्रिपतये नम इत्यपीदं
मंत्रं च जप्य मिह बिभ्रति ये महान्तः।
तेषा मृणानि सकलानि हतानि हि स्यु!
पापानि चेति किल तेऽत्र विशुद्ध वृत्ताः ॥ ६ ॥

इस संसार में जो बड़भागी नित्य प्रति जप करने योग्य "श्रीवेंकटाद्रिपतये नमः" इस मन्त्र को नित्य ही जपा करते हैं। उनके सर्व प्रकार के ऋण (देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण) और सर्व प्रकार के पाप अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं। और उनके अन्तःकरण बहुत ही शीघ्र शुद्ध हो जाते हैं ॥ ६ ॥

यह बात श्रुति और स्मृति से प्रसिद्ध है, कि यह जीव जब नर जन्म धारण करता है, तभी इसके ऊपर तीनों ऋण देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण लद जाते हैं। और इन तीनों ऋणों को बिना चुकाये मोक्ष का अधिकारी नहीं होता। अतएव प्रत्येक द्विजाति को अपने कल्याण के लिये स्ववर्णाश्रम धर्म का पालन करके तीनों ऋण चुकाने पड़ते हैं। किन्तु विशेष शास्त्र से यह बात सिद्ध होती है कि भगवन्नाम संकीर्तन से ही इस प्राणी के समस्त पाप और ऋण छूट जाते हैं। और वह नित्य कल्याण का भाजन बन जाता है। इसके लिये हम सर्वलोकमान्य भागवत का प्रमाण देते हैं।

देवर्षिभूताप्तनृणां न किंकरो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यश्शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कृत्यम् ॥
इसका अर्थ ऊपर हो चुका है। भा० ११ ५—४१

संधार्यदिव्य कुसुमानि जलं च दीपं,
धूपं च भक्तिभरितास्तु भजन्ति देवाः ।
सूरीन्द्रवर्यसहिता इह । वेंकटाद्रि,
स्सोऽयं ददाति किल नः-परमं च साम्यम् ॥७॥

दिव्य कल्प वृक्ष के पुष्प और गंगा जल तथा दिव्य धूप और दिव्य दीप को लेकर सम्पूर्ण देवगण और नित्य मुक्तवृन्द अत्यन्त भक्ति भाव के सहित जिस वेंकटाद्रिनाथ की सदा सेवा करते हैं। वह वेंकटाद्रिनाथ हमारे लिए भी अपनी सारूप्य मुक्ति को देते हैं । परमकृपालु अवास समस्त काम वेंकटाद्रिनाथ के आराधन के लिए बहुमूल्य सामग्री की आवश्यकता नहीं है। वह केवल बिना मूल्य अथवा स्वल्प मूल्य से प्राप्त होने वाले पुष्प, धूप, दीप फलादि से ही प्रसन्न होकर निज भक्तों को सारूप्य मुक्ति प्रदान करते हैं ॥७॥

उद्धृत्य चाद्रिमपि रक्षति शीतवर्षा,
द्विक्रान्त सर्वभुवनस्स परात्परोऽसौ ।
स्वामी विचिन्त्य तमिमं किल वेंकटाद्रिं,
प्राप्तोऽय मेव गिरिरस्मदघप्रहन्ता ॥८॥

जिस प्रभु ने एक पर्वत को उठाकर वर्षा और शीत से पीड़ित गौ और गोपों की रक्षा करी । और जिसने अपने पैरों से सातों लोकों को नाप लिया था। वही सर्व श्रेष्ठ प्रभु हमारे पापों को नाश करने के लिये संसार में सर्वोत्तम स्थान ढूंढ़ कर श्रीवेंकटाद्रि के ऊपर ही आकर विराजमान हुआ है ।

पर्वत उठा के एक गाँव की रक्षा करी, सप्तलोकी को नापकर एक भक्त को स्वीकार किया । संसार में सर्वोत्तम समझकर एक पर्वतको अपना निवास स्थान बनाया। और एक बार ही सेवा करने से ही साधक को सारूप्य मुक्ति देने का आपका संकल्प भी है ॥६॥

नश्यन्ति वार्धकजराजननं मृतीश्च,
श्रीशस्य वेङ्कटपतेश्चरणारविन्दम् ।
संसार ताप हरणस्य वहन्ति वाचा,
चित्ते न चापि किल ये जगतीह तेषाम् ॥९॥

जो प्रभु संसार के सम्पूर्ण तापों को नष्ट करने वाला है। उस वेंकटेश भगवान् के चरणारविन्द का जो प्राणी वाणीसे मनसे स्मरण करते हैं। उनके जरा मरण और जन्म ये सब नष्ट हो जाते हैं। सांसारिक प्राणियों को संसार सम्बन्ध छुड़ाकर दिव्य वैकुण्ठ में पहुँचाने के लिए ही तो आप वेंकटाचल पर आकर प्रगट हुए हैं। जो उनका वाणी से उनका नाम लेता है मन के चरणों का ध्यान करता है, उसको मुक्ति अवश्य ही देंगे ॥९॥

क्लृप्तेषु हन्त ! दिवसेष्ववसानकाले,
सर्वेन्द्रियप्रलयतश्च पुरा भजध्वम् ।
श्रीशेषशायि वर वेंकट सानुदेशं,
रम्यैर्विशालमिह वृक्षगणैः प्रसूनैः ॥१०॥

हे प्राणियों आपके लिए यह जो जीवन मिला है। उसके दिन विधाता ने गिन कर नियत कर दिये हैं। और उनकी अवधि अब थोड़ी सी ही बाकी है। इसलिये जब तक काल का विकराल आक्रमण आपके ऊपर नहीं होता। और जब तक इन्द्रियों की शक्ति बनी हुई है। उससे पहले ही शेषशायी भगवान् वेंकटेश जहां पर विराजमान हैं। और अत्यन्त रमणीय फूल वाले विशाल वृक्षों से शोभा को प्राप्त होने वाले वेंकटाचल के शिखर का सेवन करो।

इसी भाव को लेकर एक संस्कृत के कवि ने अपने करुणामय उद्गार इस प्रकार प्रकट किये हैं कि:—

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावत्क्षयो नायुषः,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो दूरे जरा।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यं प्रयत्नो महान् ।
संदीप्ते भुवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥१०।

विस्तीर्य पादतलमथ्यवनीं प्रमातुः,
श्रीवेङ्कटाचल पतेश्शठ कोपनाम्ना ।
स्तोत्रा कृते विदुरिदं दशकं सहस्रे,
ये ते तु यान्ति पदवीं भुवनप्रशस्ताम् ॥११॥

जिस प्रभुने पृथ्वी को नापने के लिए अपने चरण को फैलाया था। वही आकर वेङ्कटेश रूप में श्रीशेषाचल पर विराजमान हैं। उस प्रभु की स्तुति करने के लिये शठकोप नाम के विद्वान नें सहस्रगीति नामक ग्रंथ बनाया। उसमें इस दशक को जो पाठ अथवा अर्थ से जानेंगे वे सम्पूर्ण संसार से प्रसंशनीय उच्चपद को प्राप्त हो जायेंगे॥११

इति श्री सहस्रगीतौ तृतीयशतके तृतीयदशकम् समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ तृतीयशतके चतुर्थदशकारम्भः

इस दशक मे समस्त ससार के पदार्थों को ईश्वर शरीर और संपूर्ण शब्दों को ईश्वर वाचक समझकर आल्वार अनेक पदार्थों के उपमानरूपसे वर्णन करके प्रभुकी स्तुति करते हैं।

स्तव्योऽयं परमोऽद्वितीय इति किं वच्मि ? स्वयं धारिणी,
सेयं निस्समवैभवेति किमहो ? वाराम्निधिःशीतलः ।
किंवाऽयं दहनोऽनिलः ? किमु नभस्सवत्रगं ! किं दिवि,
ज्योतिर्द्वन्द्वमुता खिलं च तदिदं किं वेति कृष्णं ब्रुवे ॥१॥

भक्तगण ! मैं इस कृष्ण को किस उपमान से निरूपण करूँ। क्या संसार में स्तुति करने योग्य सर्व श्रेष्ठ एक यही अद्वितीय है। ऐसा कहूँ। अथवा जो गुण अन्य देवों में नहीं दीख सकते उन कल्याण गुणों का एक मात्र भूमि है ऐसा कहूँ। अथवा अपार अनन्त वैभव वाला कह कर स्तुति करूँ। अचल प्रकाशमान सर्वोत्तम शील का सागर कहूँ। अथवा आश्रितों के सर्व पापों को जलाने वाला, अग्नि कहूँ। अथवा सर्वसंग दोष वर्जित वायु कहूँ। अथवा सर्वत्र व्यापक आकाश की उपमा दूँ। अथवा आकाश में स्थित ज्योति द्वय (सूर्य चन्द्रमा) के समान उसे कहूँ। मेरी दृष्टि में तो संसार के समस्त

पदार्थ उसी मेरे प्रभु श्रीकृष्ण के रूप हैं। फिर अमुक पदार्थ में श्रीकृष्ण व्याप्त है में ऐसा किस प्रकार कहूँ।

अर्जुन को जब भगवान् कृष्ण को कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई तब चराचर विश्व को ही कृष्णमय उन्होंने देखा था। इसी प्रकार भगवत् की पूर्ण कृपा से आल्वार को दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है। अतएव भगवान् का पूर्ण रूप से अनुभव करने लगे। संसार का अस्तित्व दो वर्गों में विभक्त है। क्षर (शरीर व माया) अक्षर (जीवात्मा) गीता में इसी को निर्देश करके (क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते १५ | १६) कहा है। और इन दो वर्गों को चलाने वाले और सर्वदा इन के साथ अधिष्ठाता रूप से रहने वाले को (उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः) परमात्मा के नाम से कहा है। इसी प्रकार उपनिषदों में भी इस तत्वत्रय का ही वर्णन है। यथा—

"संयुक्त मेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीश ।
क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः ॥"

श्वेताश्व १ | ८

ईश्वर सर्वदा विभूतिद्वय (क्षर-अक्षर) विशिष्ट (युक्त) ही रहते हैं अर्थात् क्षर (अचित्) अक्षर (चित्-जीव) विशिष्ट ब्रह्म ही जगद्रूप से प्रतीत हो रहा है। सर्व संसार प्रभु का शरीर है, आप स्वयं अन्तर्यामी है। तब आपका सेवन कहाँ कैसे बने। उसकी वेया कह कर स्तुति की जाय इसी कारण आल्वार के चित्त में विचार परम्परा उठने लगे और उसे गाथोक्त प्रकार से कहने लगे ॥ १ ॥

स्तोतुं नैव हि शक्नुयां मम विभुं कृष्णं सरोजाम्बकं
किंवाऽमी गिरयः कि मेतदखिलं वर्षं च संजीवनम् ॥
भास्वत्तारकमालिका किमथवा वेद्याः कलाश्चाखिलाः
किं ज्ञानाश्रय वाच्यराशिरथवा नैवास्मि वक्तुं प्रभुः ॥ २ ॥

कमल दल लोचन उस मेरे स्वामी श्रीकृष्ण की यथार्थ रूप में स्तुति करने की मेरे में शक्ति कहाँ है। क्या वह पृथ्वी को स्थिर रखने वाले पर्वत रूप में है। अथवा अखिल विश्व को जीवन दान

देने वाले मेघ रूप से वह स्थित है। और क्या गगन मण्डल में चम चमाने वाले तारागण के रूप में वह है। अथवा लोकरञ्जन के लिये जानने योग्य समस्त कला उस प्रभु को कहूँ। अथवा उसको ज्ञाना-श्रय (जानने वाला) और वाच्यराशि (घटपटादि) रूप धारी कहूँ। इस प्रकार अनन्त शब्दवाच्य उस प्रभु की महिमा को यथार्थ रूप से कहने को मेरी सामर्थ्य नहीं है ॥ २ ॥

किंवाऽयंवरपुण्डरीक नयनः किंवा प्रवालाधरः ?
किंवा रम्यलसत्पदाम्बुजयुगः ? किं नीलवर्णोऽच्युतः ? ।
किंवाऽत्युज्ज्वलदिव्य मौलिरुरसि श्रीवत्सचिन्हाङ्कितः ?
किं माणिक्यमिदं वदामि विमलं श्रीशंखचक्रोज्ज्वलम् ॥ ३ ॥

दिव्य शंख चक्र से शोभायमान उज्वल कान्ति वाले इसको कमल लोचन कहूँ ? कि मूंगा के समान होठ वाले कहूँ ? कि प्रकाश मान रमणीय चरण कमल वाला कहूँ ? कि नीलघन श्याम कहूँ। अथवा अत्यन्त उज्वल दिव्य मुकुट वाले कहूँ ? कि वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिन्ह वाले कहूँ ? कि निर्मल माणिक वर्ण कहूँ ? सर्व वस्तु रूप उस परम प्रभु को क्या क्या कहकर निर्देश करूँ ॥ ४ ॥

किं माणिक्यमहो ! वदामि ? किमहो भास्वत्सुवर्णं च तं
मुक्ता राशिमुत ब्रवीमि ? विमलं वज्रं प्रदीपं शुभम् ।
आद्यं ज्योतिरुदाहरामि पुरुषं किंवा पुराणं परं ?
मन्नाथं हरिमच्युतं तममलं संहारकालस्थितम् ॥ ५ ॥

जो प्रभु सर्व सृष्टि का नाश होने पर भी अविनाशी रूप से स्थित रहता है। उस प्रभु को माणिक कहूँ ? कि चमकता हुआ सुवर्ण कहूँ ? कि मोतियों की राशी कहूँ ? अथवा निर्मल उत्तम जाति का चमकता हीरा कहूँ ? कि जगत् का मँगलदीप कहूँ ? कि सुन्दर आदि ज्योति रूप कहूँ ? अथवा सर्व श्रेष्ठ पुराण पुरुष कहूँ ? सर्व पाप हरण कर्त्ता उस मेरे स्वामी को क्या क्या बताकर सन्तोष करूं ॥४॥

किंवाऽयं त्वमलोऽच्युतश्श्रितजनक्लेशापहः किं हरिः ?
किं विश्वस्त महौषधं ? किमु सुधावाराशि सारामृतम् ? ।
किंवा तं मधुरं ब्रुवे रसघनं ? किं षट्रसं वौदनं
किं वेदं मधु साज्यमेव ? किमहो ! पक्वं फलं वा पयः॥ ५ ॥

क्या वह प्रभु सर्व दोष वर्जित अविनाशी है। और क्या आश्रित जनों के क्लेशों को दूर करने वाला है । अथवा वह हरि है । अथवा संसार रोग नाश करने वाली अत्यन्त विश्वसनीय महौषधि है । अथवा समुद्र का सार रूप अमृत है । अथवा वह अति मधुर मिश्री का पिण्ड है कि वह षट्रसों के योग से निर्मित एक विचित्र ही रस है, कि वह उत्तम भोजन भोग योग्य ओदन (भात) है । अथवा मधु और घृत रूप है । अथवा वह पका फल (आम आदि) है अथवा मिश्री मिला दुग्ध है । उस प्रभु को मैं क्या क्या बताऊँ ॥ ५ ॥

शाखारूपमिदं चतुश्श्रुतिफलं किं नीति सूत्रात्मकं ?
किं सङ्गीतमिदं मनोरममुत श्रेष्ठं च सर्वेष्वपि ।
सर्वातीतमिदं फलं किमसमं ! कृष्णं ब्रुवेऽहं पतिं
माया चेष्टितमादिपूरुषमिमं देवाधिदेवं हरिम् ॥ ६ ॥

इस मेरे स्वामी कृष्ण को मैं चारों वेदों की शाखा रूप से वर्णन करूँ । अथवा उनके फल रूप कह कर वर्णन करूँ । अथवा न्याय सूत्र रूप से वर्णन करूँ । अथवा मनको हरण करने वाला संगीत शास्त्र कह कर स्तुति करूँ । अथवा सम्पूर्ण वेद और शास्त्रों से श्रेष्ठ बताकर स्तुति करूँ । अथवा सर्व संग रहित कह कर स्तुति करूँ । अथवा सर्व समान रहित कह कर स्तुति करूँ । अनेक प्रकार की मायामय चेष्टा वाले सर्व प्रथम पुरुष देवों के पूज्यदेव हरि को किस वस्तु के रूप में निर्देश करके स्तुति करूँ ॥ ६ ॥

देवानामपि मूलमेव किमिमं तेषां च पूज्यं ब्रुवे
किं तेषामपि भोगमेवच फलं तेषां च किं रक्षणम् ।

किं वैश्वर्यमनश्वरं च कलये किं स्वर्गलोकं स्थिरं
नित्यासङ्कुचितं चमोत्तमथवा माणिक्यवर्णं ब्रुवे ॥ ७ ॥

मणि सदृश वर्ण वाले उस कृष्ण को मैं सम्पूर्ण देवताओं का आदि कारण कहूँ, कि उनका पूज्य कहूँ, कि उनका भोग कहूँ, कि उनका फल कहूँ, कि उनका रक्षण करने वाला कहूँ, कि नाश रहित दिव्य ऐश्वर्य कहूँ, कि अनन्त काल तक रहने वाला स्वर्ग कहूँ, कि सदा ही अति विशाल रूप से नित्य रहने वाला मोक्ष कहकर उसका वर्णन करूँ ॥ ७ ॥

लोकानामपि रक्षणाच्च मुदितं सृष्टैश्च तैस्संस्तुतं
कृष्णं मे प्रभुमेव मायिनमिमं दिव्यं हरिं स्रग्विणम् ।
किं वाऽहं मणिवर्णमुज्ज्वल महो वच्मि स्वयं स्तव्यमे-
वाहोस्विज्जुटिनं हिमांशुशिरसं ! किं वा विरिञ्चिं ब्रुवे ॥ ८ ॥

इस मेरे प्रभु कृष्ण को लोकों की रक्षा करने से प्रसन्न होने वाले सर्व रक्षक विष्णु कहूँ, कि सृष्टि में उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण प्राणियों से स्तुति किये गए और सृष्टि के विधाता ब्रह्मा कहूँ, कि शीतल किरण युक्त चन्द्र कला से सुशोभित जटा वाले शिव कहूँ। दिव्य फूलों की माला पहिनने वाले दिव्य मायामय इस हरि को जिसका दिव्यमणि के समान वर्ण है। और समस्त देवों करके स्तुति करने योग्य है। उसको मैं किस किस रूप में वर्णन करूँ ॥ ८ ॥

सर्वाचेतन चेतनात्मकमिमं कृष्णन्तु मायामयं
हत्वाऽम्भोनिधि मन्थनादमृत मेवास्मद्विभुञ्चाच्युतम् ।
स्तुत्वाऽनन्तमनन्तशायिनमहं लोकान् गिलन्तं पुन–
र्वात्सल्यादपि चोद्गिरन्तमधुना मातुं न वै शक्नुयाम् ॥९॥

सर्व प्रकार की माया को वश में करने वाले। इस संसार में जड़ चेतन रूप से प्रकाशित होने वाले कृष्ण को। जिसने समुद्र का मन्थन करके मोहनी रूप से अमृत हरण किया था। इस अविनाशी मेरे स्वामी

को जिसका अन्त नहीं है। और जो अनन्तशैय्या पर शयन करता है। और जो प्रलय काल में सम्पूर्ण सृष्टि को खाकर वत्सलता के वश में आकर फिर इस सृष्टि को अपने उदर से बाहर निकाल कर बसाता है उसको यथार्थ रूप से जानने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ ॥ ९ ॥

सर्वाचेतन चेतनात्मकतयाऽप्यस्पृष्ट एव स्वयं
तत्तदोषगणैस्तदिन्द्रियगणातीतश्च मूर्तिर्मतेः ।
देहे जीव इव स्वयन्तु विमलस्सत्यं च नित्यं हरि-
स्तत्सम्भावित मेव चेत्तु तदिदं चास्त्येव सम्भावितम् ॥ १० ॥

वह प्रभु सम्पूर्ण चेतन और अचेतन वर्ग के भीतर और बाहर रहता हुआ भी उनके दोषों से अलग रहने वाला है। और सम्पूर्ण इन्द्रियगण जन्य ज्ञान से दूर है। जो ज्ञान की साक्षात् मूर्ति है। जैसे देह का अधिष्ठाता और अन्तर्यामी जीव है। इसी प्रकार जीव का भी सत्य और नित्य अन्तर्यामी श्रीहरि है, यह जितना भी जड़ चेतन वर्ग मिश्रित संसार है वह सब हरि की सत्ता से ही सत्तावान् है। और उस हरि को ही सम्भावना (आराधना) के लिये जड़ चेतन वर्ग की सृष्टि हुई है ॥ १० ॥

भृङ्गोपेत सुमस्रजं हरिमिमं नीलाब्दवर्णं स्तुवन्
साहस्रं कुरुकेश्वरश्शठरिपुर्भव्यं त्वकार्षीच्छुभम् ।
तत्रेदं दशकं पठन्ति भुवि ये ते नित्य सूरिप्रियाः
नित्यं स्युः परमे पदे भगवतो नित्यानुभूत्या स्वयम् ॥ ११ ॥

भौंराओं के गुञ्जार से शोभायमान वनमाला को धारण करने वाले नील मेघ सदृश वर्ण वाले इस हरि की स्तुति करते हुए कुरुका-पुर के स्वामी श्रीशठकोपमुनि ने सुन्दर और कल्याण कारक सहस्रगीति की रचना करी है। उस सहस्रगीति में इस दशक को जो पढ़ेंगे वे नित्य सूरियों के प्रेम पात्र होकर भगवान् के नित्यानुभव के प्रभाव से वे स्वयं भी नित्य मुक्त हो जायेंगे ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्रगीतौ तृतीयशतके चतुर्थदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ तृतीयशतके पंचमदशकारम्भः

इस दशक में जो प्राणी मन वचन कर्म से प्रभु के गुणों को नृत्य गान द्वारा अनुभव करके ईश्वर परायण है उनका जन्म सफल है । और दूसरों का व्यर्थ है यह कहा है ।

रम्याम्भोजतटाकमध्यकलितं नक्रावृतं हस्तिनं,
त्रातुः कालपयोदवर्णसुरुचः कृष्णस्य नाथस्य नः ।
स्तोत्रं नैव चरन्तिये न च मुदा नृत्यन्ति येसम्भ्रमात्,
किंतेषां वत ! जीवितात् किमुफलं ब्रूताद्य भौमानराः॥१॥

इस भूमि पर जन्म लेकर जो मनुष्य हमारे स्वामी कृष्ण का जिसने अत्यन्त मनोहर कमलों से सुशोभित तालाब में जब ग्राह ने गज को पकड़ा था, तब उस गज की पुकार को सुनते ही तुरन्त आकर उसकी रक्षा की थी। और जिस का वर्षा काल के मेघ के समान रंग है। उस हरि की जो स्तुति नहीं करते और उसके गुणानुभव जन्य आनन्द में मग्न होकर आदर के सहित नृत्य नहीं करते । उनके जीवन से क्या लाभ है ? इस बात को भूमण्ड वासियो क्या आप बता देंगे ॥१॥

वाराश्यावृतभूतलस्थ मनुज प्राणान्तकांश्चासुरान्,
पापिष्ठान् बलवीर्यशौर्यभरितान् हन्तुं कृताविर्भवम् ।
श्रीकान्तं भुवि दिव्य गीत पठनैर्ये न स्तुवन्ति स्वयं,
चोत्प्लुत्यापि चरन्ति नैव किल ते पापाः पतन्त्यथ्यधः ॥२॥

समुद्र से घिरी हुई भूमि में रहने वाले मनुष्यों के प्राणों की हत्या करने वाले अत्यन्त पापी बल वीर्य शूरवीरता से सम्पन्न असुरों को मारने के लिये जिसने अनेक अवतार धारण किये हैं । उस लक्ष्मी पति की जो प्राणी स्तुति नहीं करते । और उस प्रभु की सन्निधि में उछल उछल कर जो नृत्य नहीं करते वे पापी मनुष्य अवश्य ही नरक में जाकर नीचे गिरते हैं ॥२॥

गोसङ्घान् परिरक्षितुं गिरिधरं नाथं शिलावर्षतः,
स्तावं स्तावमनारतं भुवि शिरो विन्यस्य चोर्ध्वाग्रयः ।

सम्भ्रान्ता न भवन्ति ये वत ! महाघोरार्तिकृन्नारके,
तेसत्यं हि पतन्ति हन्त ! संततं क्लेशाकुलास्स्युः खलाः॥३॥

अहह जिस प्रभु नें मेघों द्वारा वर्षाई गई शिलाओं से गौ और गोपों की रक्षा करने के लिये गोवर्द्धन पर्वत को धारण किया था। उस मेरे नाथकी निरन्तर-बारंबार स्तुति करके भूमि में मस्तक टेककर और ऊपर को चरण करकें नृत्य करते हुये जो मनुष्य प्रेम विह्वल नहीं होते। वे महा दुःखदायी घोर नर्क में अवश्य पड़ते हैं और वहां सदा वे दुष्ट क्लेश से व्याकुल रहते हैं॥३॥

नीलादेव्यनुभूतये भुवि महासप्तर्षभध्वंसिनं,
स्तुत्वा शीलगुणान्वितं मुरहरं बिम्बाधरं श्रीधरम्।
नृत्यन्त्येव न चाक्रमाद्भुवि विपर्यस्तस्वमस्तास्तु ये,
तेषां सम्भवतः फलं किमु भवेत्सन्मगडले भूतले ? ॥४॥

जिस लक्ष्मीपति ने नीलादेवी का संभोगानुभव करने के लिये भूमि में सात साड़ों को नाथकर उनका बल नष्ट किया था। उस मुरारी लाल होंट वाले श्रीधर की सन्निधि में जो अनेकपदविन्यास (पैतरा बदलने) से तथा उलटा मस्तक करके नृत्य नहीं करते। उन प्राणियों का जन्म सम्पति शाली घरों में होकर भी निष्फल है व्यर्थ है॥४॥

साधूनामपि चार्तिसन्तति करं कंसं निहन्तुं परं,
ज्योतिश्चाद्यमुदारमाविरभवत्तत्रैव चात्रापि यत्।
वेदानामपि चादि कारण मिदं तत्वं स्तुवन्तस्सदा,
ये वीथीषु चरन्ति नैव किमु ते प्राज्ञाग्रतो जापकाः॥५॥

जो दुष्ट कंस सज्जनों को बारंबार अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाया करता था। उस दुष्ट को मारने के लिये परम पद में आद्य ज्योति स्वरूप से रहने वाले ही भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में यहाँ प्रगट हुये थे, जो सर्व श्रेष्ठ प्रभु वेदों का भी आदि कारण है। उस परम तत्वकी स्तुति करते हुए ही जो नर वीथी (गली) में विचरण नहीं करते वे समस्त

वेद वेदाङ्गों का पाठ करने वाले होते हुए भी क्या जप करने वाले माने जा सकते हैं। अर्थात् वैदिक मंत्रों के जप करने का यथार्थ फल उन ईश्वर भक्ति रहित पुरुषों को प्राप्त नहीं होता है ॥५॥

मानुष्यात्सुर तिर्यगादिवपुषा माया तनुं निस्समं,
जातं चाप्यजमुत्तमाम्बुधिशयं नाथं च-रुच्यं फलम् ।
माधुर्येक्षुरसं घनं मधुसुधा सारं हरिं निर्मदाः
स्स्तुत्वा सम्भ्रमनृत्तसक्तहृदयाप्राज्ञाःसुशीलान्विताः ॥६॥

जो प्रभु निजाश्रितों की रक्षा करने के लिये ही क्षीर सागर में शयन करता है। जो स्वयं जन्मादि शून्य है। परन्तु निर्हेतुक कृपा करके भक्त हितार्थ ही मनुष्य देव, पशु, पक्षी आदि का शरीर अपनी इच्छा से धारण करता है। और जो भक्तों के लिए रुचिदायक फल है। जिसके अनुभव की मधुरता ईख रस मिश्री मधु तथा अमृत की सार से भी अति रमणीय और स्वादिष्ट भोग्य है। उस हरि की स्तुति जो मान मद छोड़कर करते-करते और नाचते-नाचते प्रेम व्याकुलता से तन्मय हो जाते हैं। वे ही इस संसार में पण्डित और सुशील कहलाने के योग्य हैं ॥६॥

दुश्शीलात्मशतान्तकं च कृपया पञ्चात्मनां पालकं,
बन्धुं सर्वचमूविनाशमसमं ज्योतिः परं श्रीधरम् ।
स्मृत्वा नृत्तरतास्स्रवाष्पनयना नैवार्द्रचित्ताश्च ये,
मेदोवृद्धिकरैस्सदोदरभरैः किं स्यात्फलं तैस्सताम् ॥७॥

दुष्ट स्वभाव वाले सौ कौरवों का नाश करके और कृपा करके पांच पाण्डवों की जिन्होंने रक्षा की थी। जो उन का बन्धु है। जिस के समान प्रतापशाली संसार में दूसरा कोई नहीं है। जिसने विरोधियों की सेना का नाश बिना शस्त्र के ही कर दिया था। उस श्रीधर को स्मरण करके नृत्य में लग कर जो पुरुष नेत्रों से आंसू बहा कर प्रेम से नहीं पिघलते। और जो नित्य चकाचक माल खाकर अपनी तोंद बड़ी बनाते हैं। उनका सत्कुल में जन्म लेने से क्या फल है ॥७॥

रम्यार्द्रोत्तरवेंकटाचल पति नाम्नां सहस्रैस्स्वयं,
स्तुत्वा चाक्रमतश्चरन्ति नगरे ये कानने वा जनाः ।
उन्मत्ताइव नृत्तसक्तहृदया लोकैः परीहास्यतां,
प्राप्तास्ते हि भवन्ति दिव्यनिलयैस्सेव्यास्स्वयं सूरिभिः ॥८॥

जो पुरुष बहते हुए जल वाले शीतल झरनों से शोभायमान उत्तर वेंकटाचल पति का सहस्र नामों से स्तुति करते हुए, पागल के समान नाचते हुए, ग्राम वा नगर वा वन में विचरण करते हैं । संसारी पामर जन जिनकी पागल और पाखण्डी कह कर हँसी उड़ाते हैं । ऐसे ही बड़भागी जन दिव्य वैकुण्ठवासी नित्य सूरियों की सेवा के पात्र बन कर कृतार्थ हो जाते हैं ॥८॥

दिव्यैस्सूरि वरैश्च सेव्य मखिलभ्राजज्जगन्नायकं,
योगध्यानपराविधाय हृदये ये सन्ति सायुज्यगाः ।
तानेस्तांस्तु विना समस्तजगतां कर्त्तव्यमेशानिशं,
श्रीशप्राप्तिकृते हि नर्तनमिहोत्प्लुत्याप्यहो ! धावनम् ॥९॥

अष्टाङ्ग योगाभ्यास द्वारा ध्यान बल से ईश्वर का अपने हृदय में जो ध्यान नहीं कर सकते । ऐसे समस्त भक्त जनों को करने लायक यही उत्तम कर्म भगत्प्राप्ति के लिये करना चाहिये । कि जो प्रभु दिव्य सूरिजन जिसकी सेवा करते हैं । और अत्यन्त प्रकाशमान सम्पूर्ण जगत् का जो स्वामी है । उसको प्रसन्न करने के लिये नाचना कूदना और उसकी अनेक प्रकार की सेवा करने के लिए दौड़ कर सर्व प्रथम जाना है ॥९॥

कर्माण्येव च सर्वकर्मफलमप्येपोऽयमाद्यं स्वयं,
सर्वेषामपि कारणं च विलसन्माणिक्यवर्णो हरिः ।
पद्माक्षं हृदि देवदेवमिममेवाराध्य नृत्तादिभि,
निर्लज्जा विहरन्तु भक्तिभरिताश्शंसन्तु तं चाक्रमात् ॥१०॥

सर्व प्रकार के कर्म और कर्म फल का जो मूल कारण है । जिसका

मणि के समान वर्ण और जो सर्व देवों का देव है, जिसके रक्त कमल के सदृश नेत्र हैं । उस हरी को संसार की लज्जा छोड़कर नाच गान से प्रसन्न करके भक्ति भाव से पूर्ण होकर सम्पूर्ण मर्यादा को छोड़कर भक्ति मदिरा मत्त होकर विचरना ही नर जन्म को सफल बनाना है॥१०॥

दास्ये भक्त गणान्नियोज्य सकलैः पूर्णं गुणैरच्युतं,
देवानामधिदेवमीश्वरमयं श्रीशं शठारिर्मुनिः ।
अस्तावीत्कुरुकापुरस्य विलसत्सस्यावृतस्य प्रभु-
स्साहस्रे दशकं तदेतदखिलं हन्यान्महापातकम् ॥११॥

भक्त गणों को दास भाव में लगाकर सम्पूर्ण कल्याण गुणों से पूर्ण अविनाशी सर्व देवों के पूज्य देव इस ईश्वर की सुन्दर खेतों से सुशोभित पुरकापुर वासी श्रीशठकोपमुनि ने स्तुति करी है जिस सहस्रगीति से उस में इस दशक को जो भक्त गण पढ़ेंगे उनके बड़े बड़े पाप नष्ट हो जायँगे ॥११॥

इति श्रीसहस्रगीतौ तृतीयशतके पंचमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्री सहस्रगीतौ तृतीयशतके षष्ठदशकारम्भः

इस दशक में ईश्वर के पर व्यूह विभव अन्तर्यामी रूपों से अर्चा (मूर्ति) रूप ही श्रेष्ठ है यह कहा है क्योंकि प्रभु का अर्चा रूप ही इतना सुलभ है कि जिसकी सेवा सर्व देश काल में प्राणी कर सकता है ।

पद्माक्षः परमं महः किल हरिस्सप्तापि लोकानयं,
भुंजानः परमोऽद्वितीय विभवो मूर्तित्रयं च स्वयम् ।
रोदस्यो मनुजास्सुरास्तदितरेचान्येऽपि चान्येऽपिचा,
प्यन्ये चेति समस्त कारणमभूज्ज्ञानं जगत्सर्गकृत् ॥१॥

यह पुण्डरीक नयन हरि जो सर्व तेजों से श्रेष्ठ तेज वाला है । और सप्त लोकों को खाने वाला है । जिसके समान वैभव किसी अन्य देवका नहीं है । जो मूर्तित्रय (देव मनुष्य तिर्यग्) रूप से स्वयं हो रहा है । जो आकाश पाताल में मनुष्य देव पशु पक्षी आदि समस्त जीवों का कारण है । जिसका सृष्टि रचना करने वाला ज्ञान सर्वोपरि

है। हे पुरुषो उसी परमात्मा की स्तुति करके शरण जाओ तभी आप का कल्याण होगा अन्यथा नहीं।

जानकी जी ने रावण को उपदेश दिया वह व्यर्थ गया। और प्रभु के ध्यान में वह लगी रही तो वह सफल हो गयीं। इसी प्रकार अनधिकारियों को उपदेश देना व्यर्थ समझकर आल्वार आप स्वयं प्रथम प्रभु के ध्यान में लगते हैं और उसी का अन्य लोगों को उपदेश देते हैं ॥१॥

यो मूर्तित्रयरूप एव परमं मूलं त्रयस्यापित,
च्छापघ्नश्च महोदधौ च शयितो देवाधिदेवोऽच्युतः।
लङ्काध्वंसकरं तमेव शरणं कोदण्डपाणिं हरिं,
पद्माक्षं कलुपापहं भजत भो लोकास्स्तवैर्भक्तितः ॥२॥

जिसने संसार की सृष्टि रक्षा प्रलय करने को त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, शिव, इन्द्र) धारण करी और त्रिमूर्ति का स्वयं कारण भी है। और उनके शाप को नष्ट करके उनको दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। सर्व देव जिसका आराधन करते हैं, जो अविनाशी है। जो सर्व देवों की प्रार्थना सुनने के लिये ही क्षीर समुद्र में शयन करते हैं। जिसने लङ्का का विध्वंश किया था। हे लोगो! उस धनुषधारी, कमल लोचन, सर्व पाप नाशक, हरि का ही भक्ति पूर्वक स्तुति करके सेवन करो, तभी आपका कल्याण होगा।

आश्रितों का उद्धार करने के लिये राम रूप धारण किए हुए प्रभु की स्तुति इस गाथा में की है ॥२॥

देवैस्तव्यमहागुणं च परमं ज्योतिः परं तं हरिं,
रासक्रीडितमच्युतं मणिनिभं कुम्भादिलीलाधरम्।
कृष्णं शेषशयं प्रभुं च जगतीरक्षार्थं निद्राधरं,
स्तोतुं यूयमहर्निशं च सततं सक्तास्स्थ चित्ते निजे ॥३॥

जिस हरि के दिव्यगुणों की देवगण स्तुति करते हैं, जो अत्यन्त प्रकाशमान ज्योति स्वरूप है। जिसको रास क्रीड़ा (गोपियों के

साथ हाथ मिलाकर नाचना) अत्यन्त प्रिय है। जो मणि के समान वर्ण वाला है। जिसको कुम्भ नृत्य लीला अत्यन्त प्रिय है। जो जगत् की रक्षा करने के लिए शेष के ऊपर निद्रा लेता है। उस मेरे प्रभु कृष्ण की स्तुति करने के लिये निरन्तर दिन रात अपने चित्त में दृढ़ विचार करलो।

पूर्व गाथा में श्रीराम स्वामी की स्तुति करी। इस गाथा में श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं ॥३॥

युष्माकं मनसि स्वयं कुरुत तन्माहात्म्यमन्यादृशं,
मायाचेष्टितभास्वरस्य तु हरे रित्येव किं मादृशै,
वक्तव्यं भवतीदमस्तु तदिदं ! ब्रह्मेन्द्ररुद्रादयो,
देवाश्च प्रणताः पदाब्ज युगले शंसन्ति चैनं सदा ॥४॥

हे भक्तवर्ग मायामय लीलाओं से प्रकाशमान हरि को आप लोग अपने मन में स्वयं ही स्थापित करो। मेरे समान व्यक्तियों का उपदेश कहाँ तक उपयुक्त हो सकेगा। तथापि मेरा इतना ही वक्तव्य है। कि यह जो वस्तु राम कृष्ण रूप में आप देख रहे हो यह वही वस्तु है। जिसके चरण कमल में ब्रह्म रुद्रादिक देवगण प्रणाम करके सदा जिसकी स्तुति किया करते हैं ॥४॥

आविर्भाव इहाच्युतस्य तु विभो ! कृष्णस्य नीलाम्बुद
श्यामस्याम्बुजलोचनस्य दिविपत्सेव्यः किरीटोज्वलः।
वाय्वाकाशधरार्णवाग्निरविचन्द्राद्याश्च देवाः स्वयं,
भौमामानुपतिर्यगादि जड़वस्त्वाद्यं च सर्वं भवेत् ॥५॥

भक्तगण किरीट मुकुटादि से शोभित यह व्यापक अविनाशी नीलघनश्याम कमल लोचन भगवान् श्रीकृष्ण के ही अवतार हैं। जिमकी कि देवगण सेवा करते हैं। जो स्वयं ही वायु, आकाश, पृथ्वी, समुद्र, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमादिक तथा स्वर्ग में देवता रूप और भूमि में मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जड़ चेतन रूप से स्वयं हो जाता है।

इस गाथा में भी श्रीकृष्ण का ही महत्व प्रतिपादन किया है ॥५॥

आविर्भूयच जन्मनाशरहितो भात्यद्वितीयो हरि,
र्मूर्तिश्श्रीनृहरिः क्रुधाकुलमतिर्भक्ताश्रितांघ्रिद्वयः ।
वात्सल्यादनुरक्तलोचनमिमं सूरिन्द्रसेव्यं भजे,
नान्यं जातु हिगन्धरूपरसंवाक्स्पर्शात्मकं तं विना ॥६॥

यह हरि जो जरामरण रहित है । वह अवतार धार करके एक अद्वितीय रूप से प्रकाशमान हो रहा है । इसने क्रोध से व्याप्त शरीर वाले नृसिंह का रूप धारण किया था । जिसके चरण कमलों की अनेक भक्त गण उपासना करते हैं । और जिसके नेत्र प्रेम के कारण कुछ कुछ लाल हो रहे हैं । जिसकी नित्य सूरिगण सेवा करते हैं । उसी की मैं सेवा करता हूँ । उस प्रभु को छोडकर गन्ध, रूप, रस, वाणी, त्वचा ये कोई कार्य नहीं कर सकते हैं ।

इस गाथा में भगवान् नृसिंह जी के प्रभाव का वर्णन आलवार ने किया है॥६॥

माधुर्य्यामृतमात्मनो ममसदा भास्वान् मया सङ्गतो,
ज्योतिश्श्रीमणिवर्ण एव सततं कुम्भादिलीलापरः ।
भोज्यं सूरिवरैश्च मौनिनिवहैर्दिव्यं फलं श्रीधरं,
यूयं संश्रयताद्य शुद्धमनसस्सर्वाघशान्तिर्भवेत् ।७॥

यह कुम्भ नृत्य प्रिय कृष्ण मेरे मन के लिये अमृत से अधिक मीठा है । जो सदा सर्व दोष रहित होकर प्रकाशमान है । जो ज्योति स्वरूप मणिवर्ण है । यह निरन्तर मुझ से आकर मिल गया है । मौन होकर मनन करने वाले सूरिवर्य जिसका निरंतर अनुभव करते हैं। लक्ष्मी को धारण करने वाले और दिव्य फल स्वरूप हैं । आप लोग अब शुद्ध मन से उसका समाश्रयण करें । इससे सम्पूर्ण पापों का नाश अति शीघ्र हो जायगा ॥ ७ ॥

सर्वेषां सुख दुःखकारणमहाकर्मावलीशासिता
तत्संस्पर्श विवर्जितश्च परमो ज्योतिः परं शाश्वतम् ।
भुङ्क्ते चोद्गिरति स्वयं यमभटध्वंसीचलोकान्हरि
श्श्रीशं दाशरथिं विनाच्युतमिमं नान्यं शरण्यं भजे ॥८॥

अहह ! मैं तो आज समस्त प्राणियों को सुख दुःख देने वाले पुण्य पाप रूप कर्मों का नाश करने वाले । और उन पुण्य पापों के स्पर्श से जो वर्जित है । जो नित्य परंज्योति स्वरूप है, जो सर्व लोकों को अपनी इच्छा से खा करके फिर उगल कर बाहर बसा देते हैं । जो यमदूतों का नाश करने वाले हैं । जो लक्ष्मी के अविनाशी पति हैं । मैं तो इस दशरथ के पुत्र को छोड़ कर दूसरे की शरण में जाना ही नहीं चाहता । राम नाम का ऐसा माहात्म्य वेद पुराण शास्त्रों में लिखा है कि जो विवश होकर भी सच्चे मन से (श्रीरामायनमः) ऐसा उच्चारण कर लेता है । वह स्वप्न में भी यमदूतों को नहीं देखता विशेष पद्म पुराणादि में देखना चाहिये ॥ २ ॥

माता चापि पिता स्वयं हितपरस्त्वन्योऽपि बन्ध्वात्मक
स्सूरीणामपि चाग्रणीस्त्रिविधमूर्त्यादिश्च यश्श्रीधरः ।
तं तादृक् स्वयमीदृगीत्यपि भिया मा संशयं मानवा
लोकेऽस्मिन् कुरुत स्मृतस्तु भगवान् गम्भीर एवाब्धिवत् ॥३

हे मनुष्यो ! वह लक्ष्मीपति आप लोगों का प्रिय हित करने के लिये माता पिता तथा अन्य बन्धु रूप हो जाता है । वह नित्य मुक्तों का भी प्रथम पूज्य है । उसने ही अपनी इच्छा से ब्रह्मा विष्णु शिव तीन मूर्ति धारण करी हैं । उस प्रभु को शरण में जाने के लिये ऐसा संशय मन में मत करो । कि परात्पर सर्वेश्वर को शरण जो संसार का कर्त्ता धर्त्ता विधाता है, नित्य मुक्त भी जिसकी स्तुति करते हैं, जो विधि शिवादि के भी वाचामगोचर है, उसकी शरण हम अधम चेतन कैसे जाँय । प्रिय साधक वर्ग ! उसको जो जैसा स्मरण करता है वह उसके लिये वैसा ही हो जाता है (ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहम्) गी० उसने कहा है जो मुझे जैसा स्मरण करता है मैं उसको वैसा ही होकर स्वीकार करता हूँ । इस साधक का ईश्वर सर्व विध बन्धु हो जाता है । इस में शास्त्र का प्रमाण भी है कि 'माता पिता भ्राता सुहृद्गतिर्नारायण' । सुबालोपनिषत्

पितृ मातृ सुतभ्रातृ दारमित्रादयोऽपिवा ।
एकैक फल लाभाय सर्वलाभाय केशव ॥ विष्णु धर्मोत्तरे

सूरीणां मणिरत्नमुत्तमगुणं श्रीशेपशायी परं
ज्योतिश्चापि गुणाम्बुधिर्मम हरिः कृष्णोऽस्ति वैधारकः ।
पूर्वं यश्शतवीरसैन्यमखिलं हन्तुं स्वयं रक्षितुं
पंचाजौ निरतोऽस्य सारथिविभोः पश्यानि पादौ कदा? ॥१०

जो हरि नित्य मुक्तों के अनुभव योग्य उत्तम मणिरूप है। समस्त उत्तम गुण जिस में भरे हैं। जो शेष शैय्या पर शयन करते हैं, जो परम ज्योति स्वरूप और समस्त कल्याण गुणों का सागर है। वह कृष्ण ही तो मेरे प्राणों का धारण करने वाला है। महाभारत संग्राम में पाँच पाण्डवों की रक्षा करने के लिये और सारे विरोधियों की वीर सेना को मारने के लिये जिसने अर्जुन का सारथी कर्म किया था। उस विभु के चरणों के मैं कब दर्शन करूँगा। यह बड़ी लालसा मेरे मन में लगी है ॥ १० ॥

अक्षिद्वन्द्वपरोक्षमेव मनसस्साक्षात्पदं शीलतः
पृथ्व्यां प्राणितते कृपाजलनिधिं सूरीन्द्रनाथं हरिम् ।
स्तोतुं श्रीकुरुकेश्वरश्शठरिपुस्साहस्र मेवाकरो
त्तत्रेदं दशकं तनोति परमां भक्तिं ! जनैः पठ्यताम् ॥११॥

जो प्रभु नेत्रों से प्रत्यक्ष न होकर मन से ही ध्यान करने में आता है। इस भूमि पर प्राणियों के लिए जो कृपा का समुद्र बन जाता है। जो नित्य मुक्तों का स्वामी है, उस प्रभु की स्तुति करने के लिये ही कुरुकापुरी वासी शठकोपमुनि ने सहस्त्रगीति ग्रन्थ बनाया है। उस में इस दशक को जो पढ़ेंगे उन्हें परमभक्ति प्राप्त होगी। अतएव ऐसी भक्ति के अभिलाषी जनों को यह दशक अवश्य ही पढ़ना चाहिये ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्रगीतौ तृतीयशतके पञ्चदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ तृतीयशतके सप्तमदशकारम्भः

इस दशक में मन वचन कर्म से सर्व प्रकार भगवत्कैंकर्य करने वाले परमभागवत ही हमारे स्वामी हैं। इनकी सेवा ही हमारा कल्याण करने वाली है। यह कहा है।

ज्योतिस्तत्परमं सरोजनयनं क्षीराम्बुधौ शायिनं,
भक्तार्थं हरिमच्युतं श्रितवतां भोग्यं हि भाग्य परम् ।
ये केचिच्च भजन्ति ते हि सततं सेव्या भवंत्येव नः
प्राप्याःसर्वजनिष्वपीह परमास्ते सन्ति नश्शेषिणः ॥१॥

जो प्रभु परात्पर ज्योति स्वरूप और कमल लोचन हैं। जो भक्तों के हितार्थ क्षीर समुद्र में शयन करते हैं। ऐसे अविनाशी हरि का आश्रय लेकर उसी को जिन्होंने अपना भाग्य और भोग्य मान लिया है। ऐसे परम भक्तों की सेवा में जो निरन्तर लगे रहते हैं। उन भागवत दासों की सेवा ही हमें निरन्तर करनी चाहिए। और होने वाले सब जन्मों के ये ही हमारे सर्व विध शासन करने वाले स्वामी हों तो हम इसमें अपने भाग्य को धन्य मानेंगे।

कोई कोई भक्तवर तो अपने जन्म की सार्थकता इसी में मानते हैं कि—

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे ।
मत्प्रार्थनीय मदनुग्रह एष एव ॥
त्वद्भृत्यभृत्य परिचारक भृत्य भृत्य ।
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ॥ मुकुन्द माला

सेव्यत्वे परमं च सर्व सुलभं कृष्णं च चक्रान्वितं
विष्णुं दिव्य चतुर्भुजं मणिनिभं नाथं च नश्श्रीधरम् ।
सेवन्ते भुवि ये कृताञ्जलिपुटास्साष्टाङ्गमेते सदा
ऽप्यस्माकं प्रतिजन्म सेव्य विभवा नाथा हेरस्सुप्रियाः ॥२॥

सेवा करने के लिये सर्व श्रेष्ठ तथा सर्व सुलभ तीक्ष्ण चक्रधारी भगवान्कृष्ण को और चतुर्भुजाधारी लक्ष्मीपति मणि के समान वर्ण वाले हमारे स्वामी विष्णु को। जो दोनों हाथ जोड़कर भूमि में

साष्टांग प्रणाम करके सेवन करते हैं। परमात्मा के प्यारे भक्त वे ही हमारे प्रत्येक जन्म में स्वामी हैं उनके ही वैभव (विशुद्धाचार) की हम सदा सेवा किया करें। यही लाभ है ॥२॥

नाथं भौमगणैश्च सूरिनिवहैस्तव्यं तुलस्याश्चितं,
दिव्यं दिव्यसुदर्शनं मम विभुं पादावनम्रास्तु ये।
सेवन्ते सततं च तेहि परमाश्शास्त्रोक्तरीत्या स्वयं,
पूज्यास्सर्व जनिष्वपि प्रियतमा अस्माकमार्य्यास्सदा ॥३॥

भूमि में रहने वाले मनुष्यादिक तथा नित्यमुक्त जिसकी सदा स्तुति किया करते हैं। जो तुलसी माला धारण करता है। तथा दिव्य गुण से जो प्रकाशमान है और दिव्य सुदर्शन चक्र को धारण करता है। ऐसे मेरे स्वामी के चरणों में प्रणाम करके जो निरन्तर शास्त्रोक्त विधि से उस प्रभु का सेवन करते हैं। ऐसे परमभक्त हमारे होने वाले समस्त जन्मों में परमादरणीय परम प्रिय हों। यही परमात्मा से प्रार्थना है ॥३॥

श्रीनारायणमुत्तरीयवसनं भूषान्वितं कण्ठिका-
कांचीदाम सुवर्णमौलिविलसद्यज्ञोपतीताञ्चितम्।
सेवन्ते सततं च ये भुवि हरिं भक्ताश्च तेषां सदा,
प्यास्माकं परमाश्चसर्व जनिषु प्राप्याश्च सेव्यास्स्वयम्॥४॥

पीताम्बरधारी और कण्ठिकाभरणधारी तथा कौंधनी और सुवर्ण के मुकुट से शोभायमान है। मस्तक जिसका और सुवर्ण के यज्ञोपवीत से शोभित है वक्षस्थल जिसका। ऐसे हरिका जो सज्जन भूमि में सदा पूजन करते हैं। और उस हरि के पूजन करने वाले भक्तों की जो सदा सेवा किया करते हैं। वे सदा समस्त जन्मों में हमारे स्वामी हैं। उनकी सेवा करके उनके चरणों की प्राप्ति हो जाने में ही हम अपने को धन्य भाग्य समझते हैं।

प्रभु के भक्त अनेक प्रकार के होते हैं जैसे रूपोपासक भूषणों पासक, आयुधोपासक, विभूतिउपासक उनमें भूषणों पर बलिहार जाने वाले भक्तों पर आल्वार बलिहार जाते हैं,॥३॥

नाथं सूरिवराधिपं सुरगणान् पूर्णामृतप्राशना
द्रक्षित्वाऽप्युपकारिणं बहुतमां शंसन्ति ये त्वक्रमात् ।
तेषां स्तोत्रपरायणाः किल भवन्त्यस्माकमार्या भुवि
प्राज्ञास्सेव्यतमास्तथा दिवि चते ह्युज्जीवयन्त्येव नः ॥५॥

नित्यमुक्तों से सेवित चरण हमारे स्वामी को जिसने पूर्ण अमृत पिलाकर देवताओं की रक्षा की थी और उनके अनेक उपकार जिसने किये थे। उसकी जो लोक मर्यादा छोड़ कर स्तुति करते हैं और उन ईश्वर स्तुति परायण भक्तों की जो सेवा प्रशंसा करते हैं। वे ही उत्तम बुद्धि वाले भूमि में हमारे परम पूज्य और उपास्य देव हैं और परमपद में भी वे ही हमारी आत्मा को उन्नत बनाने वाले हैं। भागवत गुणानुवाद करने वाले महात्मा ही मुमुक्षु के ठीक रक्षक हैं। वे संसार के सम्बन्ध से छुड़ाकर प्रभु में मन को लगवा देते हैं। देवताओं को अमृत पान कराने वाला स्वामी हमको स्वगुणानुभव पान करावेगा और वह उक्त प्रकार के भक्तों की कृपा से ही प्राप्त होगा ॥ ५ ॥

दातारं परमं हरिं यदुपतिं कृष्णं च चक्राञ्चितं
सौगन्ध्यार्द्रसुमस्रजं मणिनिभं नाथं च मे श्रीधरम् ।
ज्योतिस्तत्परमुज्ज्वलं हृदि तु ये कुर्वन्ति नित्यं च ते
सत्यं नः परिपालयन्ति सततं चाजन्मजन्मान्तरम् ॥ ६ ॥

सुदर्शन चक्र से शोभायमान संसार के रक्षक सर्व श्रेष्ठ यदुपति कृष्ण को जिसने सुगन्ध से भरे फूलों की माला धारण कर रखी है। जो लक्ष्मी को धारण करने वाले मणि के समान वर्ण वाले हैं। अति निर्मल प्रकाश वाले उस मेरे स्वामी को नित्य प्रति हृदय में जो ध्यान धरते हैं। ऐसे पुण्य मूर्ति परमभक्त ही हमारी जन्म जन्मान्तर में रक्षा करने वाले हैं ॥ ६ ॥

नाना जन्मसु भक्तवर्गसरणिं नीत्वा च साक्षात्कृतिं
दत्वा स्वाङ्घ्रिसरोजयुग्मपदवीसेवां च कृत्वा स्वयम् ।

रक्षन्तं प्रभुमच्युतं स्तुतिपराश्शंसन्ति ये तत्स्तुतिं
कुर्वन्तः किल नश्चिरं प्रभुवरा विश्वास पात्रं परम् ॥ ७ ॥

जन्म जन्मान्तरों में दासजनों की रक्षा करके उनके हृदय में सद्गुणों को बढ़ाकर अपने चरणों की शरण में रखने वाले, अविनाशी हमारे प्रभु की जो नित्यप्रति स्तुति में लगे हुए हैं। ऐसे भक्तों की जो स्तुति की प्रसंशा करते हैं। ऐसे भक्तवर ही हमको उस प्रभु की भक्ति के विश्वासपात्र करते हैं।

प्रभुने शरणागतों के उद्धार का भार अपने ऊपर ले लिया है। वे भक्तों के सर्व पापों का नाश करके उन में सद्गुणों की वृद्धि करके अर्चिरादि मार्ग द्वारा परमपद में बुलाकर नित्य कैंकर्य का पात्र बना कर मुक्त कर देते हैं। इस प्रकार अन्तिम जन्म वाले परमभागवत ही हमारा उद्धार करने वाले हैं ॥ ७ ॥

पूर्णं चाखिलविश्वसृष्टिनिरतं श्रीवत्सवक्षस्थलं
देवानामपिदुर्गमं मतिमतां शंसन्ति चेन्नारके ।
ये केचित्किल तेऽपि जन्म सरणिष्वस्माकमीशास्त्वयं
सेव्या एवहि सत्यमेतदिति मे दिव्यं मतं पावनम् ॥८॥

जो प्रभु सर्वैश्वर्य पूर्ण है। जो समस्त विश्व की सृष्टि रचना करते हैं। जिन के वक्षस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह है। अति विशाल बुद्धि वाले देवगणों को भी जिसका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। नरकों में पड़े हुए भी जो प्राणी उस प्रभु की स्तुति करते हैं। वे ही भक्त शिरोमणि सम्पूर्ण जन्मों में हमारे स्वामी हैं। सर्व प्रकार से अपने कल्याण के लिये उन्हीं की सेवा करनी चाहिये। यही मेरा सत्य दिव्य और पवित्र सिद्धान्त है।

अति नीच कुल और कष्टमय दशा में रहते हुए भी जो भगवत्परायण है। उन भक्तों का चरण शरण लेना ही मनुष्य मात्र के कल्याण कारक है ॥ ८ ॥

चातुर्वर्ण्य कुलापकृष्टचरिताश्चण्डालचण्डालका
श्चापि श्रीहरिमच्युतं मणिनिभं चक्रान्वितं संश्रिताः ।

कैंकर्येषु रताश्चये भुवि जनास्तेषां च दासात्मनां
दासास्स्युः परमाश्च शेषविभवा अस्माकमार्यास्सदा ॥९॥

जो पुरुष चतुर्वर्ण (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र) से भी नीच हैं। जिन के चरित्र अति घृणित हैं। चण्डालों के भी चण्डालोचित कार्य करते हैं। ऐसे पुरुष नीलमणि वर्ण तथा चक्रधारी अविनाशी हरि की शरण लेते हैं और सर्व प्रकार का कैंकर्य प्रभु का जो करते हैं। इन विलक्षण भागवतों की जो दास्यवृत्ति करते हैं और ऐसे परम भागवत सेवियों के जो दास हैं। वे सदा हमारे माननीय पूज्य और श्रेष्ठ हैं। संसार में इस प्राणी को आत्म सम्बन्ध ही कल्याण कारक है। शरीर सम्बन्ध अकिंचित्कर है, इसको मानकर शास्त्र में यह कहा है कि—

भगवद्भक्ति दीप्ताग्निदग्ध दुर्जाति किल्विषः।
चाण्डालोऽपिद्विजैः पूज्य न विप्रो भक्तिवर्जितः॥

भक्ति रूपी अग्नि से नीच जाति रूप मल जिसके जल गये हैं, ऐसा चाण्डाल भी ब्राह्मणों का पूज्य हो जाता है ॥ ९ ॥

पादाक्रान्तजगत्ततिं च सकलां भुक्त्वा स्वयं तद्दशा
द्बालं तं वटपत्रशायिनमपि श्रीशं हरिं निस्समम्।
अस्माकं प्रभुमाश्रिता भुवि च ये तद्दासदासानुगा
स्तद्दासाश्च तदीयदास्य निरता नित्यं च नाथाहि नः ॥१०॥

जिस प्रभुने समस्त जगत् को अपने तीन पैरों से नापा था और फिर उस सम्पूर्ण संसार को स्वयं खाकर जो छोटे से बड़के वृक्ष के पत्ते पर शयन करता है। उस सर्व श्रेष्ठ लक्ष्मीपति हरि हमारे स्वामी का जो पृथ्वी में समाश्रयण करते हैं। उनके दास स्त्री पुत्रादिक, उनके दास नाई कहार आदिक, उनके दास और उनके दासों के दास जो भक्त हैं, वे सर्व देश सर्व काल सर्वावस्था में हमारे स्वामी हैं ॥ १० ॥

जो भगवत् शरण हो जाते हैं, उनको अमुक जाति अमुक

ग्राम कुल के नाम से व्यवहार नहीं करना चाहिये उनको परमभागवत ही कहना चाहिये।

"एकान्ती व्यपदेष्टव्यो नैव ग्रामकुलादिभिः ।
विष्णुना व्यपदेष्टव्यः स्तस्य सर्वं स एवहि ॥"

दृप्यद् दुष्टशतं विनाश्य च तदा पञ्चाश्रितानां दया,
सिन्धुं वन्धुमुदारसद्गुणनिधिं स्तोतुं शठारिर्हरिम् ।
चक्रे श्रीकुरुकेश्वरः कृतिततिं साहस्रपद्यावलिं
तत्रेदं दशकं तदीय मरमभ्यस्याश्रिता मोक्षगाः ॥११॥

जो परमात्मा अहंकार वश में रहने वाले धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों का नाश करके पांच पाण्डवोंके ऊपर दया करके उदारता से उनके बन्धु बन कर रहें। उन प्रभु की स्तुति करने के लिए ही कुरुकापुरी वासी शठ कोपि मुनि नें सहस्रश्लोक वाली सहस्रगीति को बनाया। उसमें भगवद्दासों का महत्व बताने वाले इस दशक का अभ्यास करके जो भागवत सेवा परायण होंगे वे अवश्य मोक्ष को प्राप्त हो जायंगे ॥११॥

इति श्री सहस्रगीतौ तृतीयशतके सप्तमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ तृतीयशतके अष्टमदशकारम्भः

इस दशक में भगवद्भक्तों की प्रत्येक इन्द्रिय भगवत्कैंकर्य करना चाहती है अतः इन्द्रियों के विभिन्न प्रकारके भगवत्कैंकर्यों का वर्णन कहा है।

श्रीदिव्य मौलिधर ! सेव्य जगत्त्रयस्य
स्तव्याङ्घ्रिपङ्कज ! पयोनिधि मन्थनोऽसि ।
तार्क्ष्यध्वजासित पयोधरवर्ण चित्तं,
सूरीन्द्रनाथ ! परमेति ममास्ति मुग्धम् ॥१॥

हे दिव्य किरीट मुकुट धारण करने वाले। तीन लोक से सेवा करने योग्य ! हे स्तुति करने योग्य चरण वाले, आपने अगाध समुद्र का मथन करके स्वाश्रित देवताओं को अमृत पिला कर उनको अजर

अमर बना दिया था । गरुड़ की सवारी और उसी की ध्वजा वाले ! नील मेघ के समान शरीर कान्ति वाले ! हे मुनि भक्तों के स्वामी आपके स्वरूप रूप गुणविभूतियों का स्मरण करके मेरा मन आनन्द मग्न होकर व्याकुल सा होजाता है ।

जिस प्रकार भूखे कुटुम्ब को बहुत दिनों में स्वादिष्ट भोजन मिले तो वे सब दूसरे का ध्यान छोड़कर प्रथम अपने पेट को ही भरने लगते हैं। इसी प्रकार बहुत दिनों से तरसती हुई इन्द्रियों को भगवदनुभव मिला है । इस कारण मैं खाऊँ मैं खाऊँ की कहावत को चरितार्थ करती हुई एक दूसरे का ध्यान छोड़कर अलग अलग ईश्वरानुभव करने लगी यही अनुभव इस दशक में बताया जाता है ॥२॥

जिह्वाहि वक्ति मम सन्तत मन्तरन्तङ्गे,
वासिन् ! पुरे मम शरण्य दयापरेति ।
लङ्केश्वर प्रथमनेति जगत्त्रयस्या,
प्याक्रान्तिकृत्यचण ! वंचक वामनेति ॥२॥

हे मेरे मन महानगरमें सदा प्रकाश होने वाले प्रभो ! मेरी जिह्वा सदा यही कहती है कि हे शरणागत रक्षक ! हे दया समुद्र ! हे रावण का विध्वंस करने वाले ! त्रिलोकी को निज चरण से नापने वाले ! हे बलि को ठगने के लिए वामन रूप धरने वाले प्रभो आपकी जय हो ।

रावण बड़ा ऐश्वर्य वाला था, किन्तु श्रीचरणों में नम्र न होने के ही कारण वह मारा गया । बलि यद्यपि अहंकारी था किन्तु वह भूमि दान के बहाने से ही आपको प्रणाम कर चुका था इसी कारण उसको ठग विद्या से भी आपने अपनाया । एक महागुणदान रहने से से ही बलि का उद्धार हुआ । कोई सद्गुणके न रहने से रावण का नाश हुआ । अतएव प्रभु प्राप्ति के लिए सद्गुण की भी आवश्यकता है ॥२॥

जिह्वाप्रचोदक ! दयापर सूरिसेव्य !
नव्येन्दु भास्वर ! हरे नवनीत चोर ।

गोपेश्वरेति सततं च तवैव विष्णो !
मत्पाणि युग्ममिह मार्गणकृत्यसक्तम् ॥३॥

हे जिह्वा को भाषण शक्ति देने वाले। हे दया समुद्र हे नित्य मुक्त गण सेवनीय। हे नूतन चन्द्रमा के समान प्रकाश करने वाले। हे हरे, हे माखन को चुराने वाले, हे गोपों के ईश्वर। हे विष्णो मेरे दोनों हाथ निरन्तर आपके कैंकर्य की खोज में लगे रहते हैं।

जिस प्रकार सर्प की एक ही नेत्र इन्द्रिय देखने का और सुनने का काम देती है। उसी प्रकार हमारी एक ही इन्द्रिय आपके अनेक कैंकर्य करने को त्वरा करती है। गोपों के अन्धेरे घरों में माखन चोराने के लिये गये, वहाँ आपको कुछ हँसी आगई तौ दांतों के उज्वल प्रकाश से अन्धकार हट जाने के कारण माखन के पात्र शीघ्र मिल गये वे स्वीकार किये। इसी प्रकार हमारे हाथ की सेवा स्वामी कब स्वीकार करेंगे यह बड़ी लालसा है ॥३॥

पाणि द्वयेन सततं तव पाद सेवां,
कृत्वा क्षणादपि वियोग सहं न भाति।
त्वा मेव शेषशयनानिशमीक्षितुं मे,
नेत्रद्वयं परम कांक्षत एव सत्यम् ॥४॥

हे शेष के ऊपर शयन करने वाले, दोनों हाथों से आपके चरणों की निरन्तर सेवा करके मुझे उस सेवा का वियोग एक क्षण भर भी अच्छा नहीं लगता। प्रभो सदा शेषशायी आप के दर्शन करने की तीव्र लालसा में मेरे दोनों नेत्र निश्चित रूप से लगे हुए हैं।

एक बार प्रणाम करने से हाथ हठते हों सो नहीं किन्तु श्वेत दीपवासी जिस प्रकार निरन्तर प्रणाम करते रहते हैं उसी प्रकार मेरे हाथ सदा प्रणाम करना चाहते हैं। उसके सम्पूर्ण ज्ञानानन्दानुभव करने को नेत्र चाहते हैं। इतना ही नहीं किन्तु वे प्रणाम करना और स्तुति करना भी चाहते हैं।

द्रष्टुं च लोचन युगेन किमस्ति शक्ति,
रित्येव वामन मिहावनियाचकं त्वाम्।

आरोह्य हृष्टविनता सुत पक्षघोषं,
श्रोत्रद्वयं मम सदाऽपि च ऽऽकाङ्क्षतेहि ॥५॥

इन दोनों नेत्रों को दर्शन देने को प्रभु कब आवेंगे। प्रभु के दिव्य प्रकाशमान विग्रह सौन्दर्य को देखने की इनमें शक्ति कहां है। इसी कारण पृथ्वी की भीख मांगने के लिए वामन रूप धारण करने वाले। आपके चढ़ने से अत्यन्त हर्ष को प्राप्त होने वाले गरुड़जी के पक्षों की ध्वनि को सुनने की अभिलाषा मेरे दोनों कान सदा रखते हैं। शुक्ल यजुर्वेद के १२ अध्याय के ४ मंत्र से यह बात सिद्ध होती है कि जब भगवान् गरुड़ चलने के समय अपने पंखों को हिलाते हैं। तब उनके शरीर में से अनेक प्रकार के साम, वेदों की ध्वनि निकलती है। जैसे शिर में से त्रिवृत्साम नेत्रों से गायत्रसाम दोनों पक्षों से बृहत्साम, रथन्तरसाम, छाती से स्तोमसाम, अन्य अंगों से वामदेव्यसाम, पूंछ से यज्ञायज्ञिसाम इत्यादि गरुड़के पक्षो से निकली साम ध्वनि को ही सुनने के लिये आल्वार के कान लालायित हो रहे हैं ॥५॥

श्रोत्रेन्द्रियेण तव कीर्ति फलं सुपक्वं,
दिव्यामृतं कविवरार्जितमेव भोक्तुम्।
त्वा मेव दिव्यकनकोज्ज्वल चक्रपाणि,
पृथ्व्यां समाश्रयत एव सदा ममात्मा ॥६॥

हे प्रभो मेरे मन में सदा यही अभिलाषा लगी रहती है कि दिव्य सुवर्ण के समान उज्वल चक्र को धारण करने वाले आपकी अनेक श्रेष्ठ कवियों द्वारा जिसका पृथ्वी में विस्तार किया गया है। जो कि आम और केला किसमिस से भी अधिक स्वादिष्ट है। जो दिव्य अमृत के समान अजरामर बनाने की शक्ती रखने वाली है। उस कीर्ति को अपने कानों से निरंतर सुना करूँ। इसी लिये मैंने आपके चरणों का समाश्रयण भी किया है ॥ ६ ॥

मत्प्राण भूत परिपूर्ण रसामृतत्व-
त्सौंदर्य मेव गरुड़ ध्वजचक्र पाणे।

पापी स्वमानसमनोरथवाक्यघोषै,
रुद्घोष यन्नपि न दृष्टिवशं भजेऽत्र ॥७॥

हे गरुड़ के ऊपर चढ़कर हाथ में चक्र धारण करने वाले ! परि-पूर्णरस और अमृत के समान अति भोग्यरूप आप मेरे प्राणों के समान प्रिय हो । अनादिकाल कृत पाप युक्त मैं अपने मनके मनोरथों से अत्यन्त ऊँचे स्वर से चिल्लाता हूँ । तथापि आप मेरे नेत्रों के सामने नहीं आते यह बड़े दुःख की बात है ।

प्रभो आपने तो भक्तों को धीरज बंधाने के लिये उसको गरुड़ को और उनकी आपत्ति दूर करनेके लिए चक्र को रखा हैं। परन्तु मैं तो ऐसा पापी हूँ कि बारबार चिल्लाने पर भी बहुत समय बीत गया, परन्तु पाप तापहारी हरि का हर्षित मुख नहीं दीखा । जब तक हमारी आशा पूरी नहीं होगी तब तक पुकार करे बिना कैसे रहा जायगा ॥७॥

सौंदर्य विग्रह ! सरोरुह नेत्र युग्म,
नीलांजनाभ ! ममधारकशीलमूर्ते ।
भूतं भविष्यमपि चाद्यतनं भवन्तं,
पश्यामि कुत्र च कदेति विचिन्तयामि ॥८॥

हे सुन्दर शरीर वाले । हे कमल के समान दोनों नेत्रों वाले । हे काजल के समान विग्रह वाले । आप मेरे प्राणों के धारक हैं और सुन्दर स्वभाव की मूर्ति वाले हो । मैं भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालों में कहां कब किस प्रकार आपके दर्शन पाऊँ, इसी प्रकार की चिन्ता किया करता हूँ ॥८॥

याचे पदत्रयतलं हि महाबले त्वं,
देहीति वंचकवटो खलकंसनाशिन् ।
बाणासुरस्य दृढ़ बाहु सहस्रभेदिन् !
प्राप्स्ये कदा गरुड़वाहन माधव त्वाम् ॥९॥

प्रभो आप ब्रह्मचारी का रूप धारण करके बलि के पास गये थे और कहने लगे कि हे बलिराज! मैं तुम से तीन पग भूमि माँगता हूँ ।

उसे आप मुझ को दें। इस प्रकार तीन पग भूमि को मांग कर फिर चालाकी से उसका सर्वस्व आपने छीन लिया। दुष्ट कंस को भी तो आपने धोखे और चालाकी से ही मारा था। बाणासुर के हजार हाथों को काटकर उसके गर्व को धूल में आपने मिलाया था। गरुड़ की सवारी करने वाले लक्ष्मीपति आपको कब प्राप्त होऊँगा यह बड़ी भारी इच्छा मेरे मन में लगी है ॥९॥

संवृद्ध पीनयमलार्जुनभजंक ! त्वं,
नाथोऽसि मे ! पदयुगं ननु ते दिदृक्षुः ।
खिन्नोऽहमच्युत ! तव स्तुतिमालिकान्तु,
प्राप्योत्सुकोऽस्मि समयं च कियन्तमेवम् ॥१०॥

प्रभो आपने बहुत मोटे और ऊँचे यमलार्जुन वृक्षों को तोड़ा था। मेरे आप निरूपाधिक (स्वार्थ रहित) स्वामी हो। मैं तो आपके चरणों को देखने की तीव्र लालसा से दुःखी हो रहा हूँ। हे अच्युत ! आपकी स्तुति रूपी मालाको लेकर आपके मिलने की बाट कब तक देखूँ।

यमलार्जुन वृक्ष जड़ देह धारी अज्ञानी थे। उनके उद्धार के लिए आप स्वयं बन्धन में पड़े और उनके पास जाकर अपनी बद्ध दशा में ही उनको मुक्ति किया। ऐसे परमकृपालु दीन हीन साधन रहित हमारे ऊपर अवश्य कृपा करेंगे। इसी कारण आपके श्रीनामों को पुकारना मैंने भी उचित समझा है ॥१०॥

स्तव्यं त्रिविक्रममुदारगुणं महात्मा,
स्तोतुं मुनिस्तु कुरुकाधिपतिश्शठारिः ।
साहस्रमाह परमं दशकं तदेत,
द्धन्याः पठन्ति यदि यान्ति परं पदं तत् ॥११॥

जिस प्रभुने तीन पैरों में सब लोकों को नाप लिया था। उदार गुण वाले उस प्रभु की स्तुति करने के लिए कुरुकापुरी वासी महात्मा शठकोप मुनि ने सर्वोत्तम सहस्रगीति को बनाया है। उसमें इसदशक को जो पढ़ेंगे वे धन्यवाद के पात्र होकर परमद (मोक्ष) को अवश्य प्राप्त कर लेंगे ॥११॥

इति श्री सहस्रगीतौ तृतीयशतके अष्टमदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ तृतीयशतके नवमदशकारम्भः

इस दशक में संसारियों को आल्वार उपदेश देते हैं कि उत्तम काव्य की सफलता परमात्मा की स्तुति करने से ही है। अतएव साधारण पामर जनकी स्तुति में लगाकर उस कविता को व्यर्थ नहीं करना चाहिये। यह कहा है।

उक्तं चेत्तदिदं विरुद्धमिह वस्सत्यं तथाप्युच्यते,
यूयं संशृणुताद्य ! भृंगविहृतेर्झङ्कारशब्दान्विते।
शेषाद्रौ मम लालनीयविषयस्स्वामी मम स्तव्यतां,
प्राप्याऽऽस्ते ! रसनाभिरामकवितां दद्यां न मेऽन्येष्वहम् ॥१॥

हे भक्त पुरुषो ! यह मेरा सत्यमत यद्यपि आपको विरुद्ध सा प्रतीत होगा। तथापि इसको कह देना मैं परमावश्यक समझता हूँ। अतः आप लोग सावधानी से सुनिये। भौंराओं के उड़ने की झंकार से श्रवण सुखदायी श्रीशेषाचल पर्वत पर स्थित मेरा स्वामी जो सर्व प्रकार के लालन (लाड़करने) का पात्र हैं। वही मेरी स्तुति का विषय है। अर्थात् सर्व प्रकार की स्तुति करने योग्य वही है। जिह्वा से रस टपकाने वाली इस मेरी कविता को मैं किसी अन्य को कभी नहीं दूंगा। क्या सर्वगुण सम्पन्न उस प्रभुको छोड़कर साधारण जन की कविता द्वारा स्तुति करना मनुष्य का धर्म है ? नहीं।

जो पुरुष परमेश्वर को छोड़कर अन्य की स्तुति कविता बनाकर करते हैं। उनके उस व्यर्थ प्रलापको जयदेव कविने भी ऐसा स्पष्ट किया है किः—

"बीजं ? यस्यचिरार्जितं सुचरितं प्रज्ञानवीनोऽङ्कुरः।
काण्डः पण्डितमण्डलीपरिचयः काव्यं नवः पल्लवः॥
कीर्तिः पुष्पपरम्परापरिणतःसोऽयं कवित्वद्रुमः।
किं वन्ध्यः क्रियते विना रघुकुलोत्तंसप्रशंसाफलम॥

इसका भाव श्रीतुलसीदास के पदों से इस भाँति समझना चाहिये —

ऐसे हि जन्म समूह सिराने।
प्राण नाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरण विराने।
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल साने।

सूखत वदन प्रशंसत निन्ह कहँ हरि से अधिक करिमाने ।
सुख हित कोटि उपाय निरन्तर करत न पाँय पिराने ।
सदा मलीन पन्थ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने ।
यह दीनता दूरि करिवे को बहुत यतन उर आने ।
तुलसी चित चिन्ता न मिटै बिनु चिन्ता मणि पहचाने ॥

किंवा स्यात्फलमत्र मानुषतते स्स्तोत्रेण या भूतले
सत्तां स्वामभिनंद्य फल्गुधनमप्यास्ते च मत्तावृथा ।
तीर्थैस्सस्य समृद्धिभिः परिवृते रम्ये कुरुङ्गापुरे
भास्वन्तं कुलनायकं मम विभु सर्वेश्वरं तं विना ॥ २ ॥

ओहो ! अनेक प्रकार के सरोवरों से और हरे हरे खेतों से घिरे हुए अति रमणीय कुरुङ्गपुर में प्रकाशमान होने वाले हमारे पिता और उनके पिता के पिता इस प्रकार हमारे सम्पूर्ण कुल के ही स्वामी सर्व व्यापक सर्वेश्वर को छोड कर थोड़े धन के गर्व से मतवाले और अपनी ही प्रशंसा कराने में प्रसन्न होने वाले क्षुद्र मनुष्यों की स्तुति करने में ही यदि अपनी अमूल्य मधुर वाणी का व्यय किया तो इस भूमि पर मनुष्य जन्म लेने से क्या फल है ।

अर्थात् उस परमात्मा की स्तुति छोड़कर अन्य मनुष्यों की स्तुति करना अमूल्य जन्म को व्यर्थ में खोना है ॥ २ ॥

नित्यं सन्तत किं करत्वविभवं भोग्यं परं पावनं
भक्तेभ्यो वितरन्तमच्युतममुं सूरीन्द्रनाथं विना ।
अन्यत्र स्वयमद्य यूयमहह ! श्लाघ्याःकवीन्द्रा अपि
भ्रान्ता क्षुद्र नरस्तुतौ हि निरताः किं स्यात्फलं वस्ततः ॥३॥

अहह भक्तगणो ! जो अविनाशी प्रभु अति पवित्र परमभोग्य नित्य कैंकर्य रूपी ऐश्वर्य को अपने भक्तों को निरन्तर प्रदान किया करते हैं । जो नित्यमुक्तों के स्वाभाविक स्वामी हैं, उस प्रभु को छोड़कर विश्ववन्द्य कवि होकर भी आप क्षुद्र मनुष्यों की स्तुति के भ्रम जाल में क्यों पड़े हो । उससे क्या कोई सत्य फल आपको प्राप्त हो सकेगा । नहीं नहीं कभी नहीं । सत्य फल तो उस प्रभुकी स्तुति करने से ही प्राप्त होगा ॥ ३ ॥

प्राज्ञाः ! किं फलमद्य हे ! कविवरास्स्तुत्वा नरानस्थिरान्
प्राप्यं वः ? किमिदं चिराय भवतां भोग्यं भवेदल्पकम् ।
भास्वद्रत्नकिरीटमच्युतममुं सूरीन्द्रनाथं हरिं
स्तुत्वा स्याद्भवतामनन्यसुलभं मुक्तेः पदं शाश्वतम् ॥४॥

हे सर्वोत्तम कविवरो ! क्षण विनाशी शरीर वाले मनुष्यों की स्तुति करके कौनसा स्थिर फल लेने की आपकी इच्छा है । यदि मनुष्य की स्तुति करने से आपको कुछ भोग्य पदार्थ रूप फल मिल भी गया। तो भी वह थोड़ा और नाशवान् ही होगा । अतएव अनेक संकट मय जीवन वाले मनुष्यों की स्तुति छोड़कर नित्यमुक्तों के स्वाधीन स्वामी अविनाशी हरि जिनके मस्तक पर रत्नों का किरीट चमकता है, उनकी स्तुति करो । इस परम प्रभु की स्तुति करने से आपको वह नित्य मुक्ति का स्थान मिल जायगा जो भक्तों के सिवाय किसी दूसरे को नहीं मिलता ॥ ४ ॥

प्राप्यं नैव हि कश्चिदस्ति भवतां प्राज्ञाः कवीन्द्रा वृथा
स्तुत्वा क्षुद्रधनाश्रयानिह नरान् मिथ्याप्युदारानिव ।
स्तव्यं पूर्णगुणं त्वभीष्टवरदं निर्दोषमेवाच्युतं
नित्यौदार्यनिधिं हरिं मणिनिभं स्तोतुं समागच्छत ॥५॥

हे बुद्धिमान कविराजो ! थोड़े धन से ही अपने को झूँठा उदारता का पुँछल्ला लगाने वाले क्षुद्र मनुष्यों की स्तुति करने से आपको क्या फल प्राप्त होगा । अरे भाइयो बड़े बड़े ब्रह्मादिक देव भी जिनकी स्तुति करते हैं । जो सम्पूर्ण कल्याण गुणों से परिपूर्ण है । जो समस्त दोषों से शून्य है । जो अविनाशी उदारता (दानीपन) का एक मात्र भण्डार है । नीलमणी के समान जिसका वर्ण है । जो निजाश्रितों को मनमानी अटूट सम्पत्ति देने वाला है । उस हरि की ही स्तुति करने के लिये आप सब आओ । और प्रभु की स्तुति करके अनेक जन्मार्जित पाप तापों को धोकर अपने आत्मा को अजर अमर बनालो ॥ ५ ॥

आयातार्याः कवीन्द्रा करकृततितिभिर्देहयात्रां कुरुध्वं !
लोकेऽस्मिन्नद्य नैव प्रभुवरधनिकास्सन्ति दृष्टं तदेतत् ।
युष्माकं सत्कवित्वं त्वभिमतविषये देववृन्दे प्रयुक्तं
सर्वं स्तोत्रं भवेन्मे मणिमुकुटभृतश्श्रीपतेरेव सत्यम् ॥६॥

हे श्रेष्ठ कविवरो ! आइये अब आप लोगों को अपनी देह यात्रा हाथ पैर के परिश्रम द्वारा ही चलानी पड़ेगी, क्योंकि आज कल इस संसार में बहुधा देखने में आता है कि उदार हृदय के राजा और धनिक नहीं हैं, जो आपके काव्य का आदर करें। अतएव अपनी मधुर कविता से आप यदि अपने इष्टदेव को प्रसन्न करेंगे तो आपका सत्कवि पना सफल हो जायगा, क्योंकि मैं तो मणि-मुकुट धारी लक्ष्मीपति की ही सर्व प्रकार से अपनी काव्य द्वारा स्तुति करके सफल मनोरथ हुआ हूँ। अतएव मनमाना सम्पत्ति सुख भोगने के लिये हमारे और आपके इष्टदेव लक्ष्मीपति की स्तुति करना ही उचित और उत्तम होगा ॥ ६ ॥

दाने चाप्रतिमं महागुणनिधिं निस्सीममेवाच्युतं
देवं नामसहस्रयुक्तमतुलं विष्णुं विनाऽन्यान् भुवि ।
क्षुद्रान् दानपराः पयोदसदृशा हस्ताश्च वो बाहवो
ऽप्येते पर्वतसन्निभा इतिभृशं मिथ्या वचो न ब्रुवे ॥७॥

जिसके समान उदार दानी संसार में कोई नहीं है। जो अनेक कल्याण गुणों का महा समुद्र है। जिसके ऐश्वर्य की सीमा नहीं है। जिसके पराक्रम और ऐश्वर्य सूचक हजारों नाम हैं। जिस देव की समानता दूसरा कोई देव नहीं कर सक्ता। उस अविनाशी विष्णु को छोड़कर अन्य क्षुद्र जनों की स्तुति करके मिथ्या भाषण करने का पातकी बनना मैं तो नहीं चाहता। अन्नदाता आपके हाथ मेघ के समान सदा दान वर्षा करने वाले हैं। इस प्रकार की झूँठी प्रशंसा क्षुद्र मनुष्यों की करके झूँठ बोलने के अतिरिक्त और क्या हो सक्ता है॥७

नीलायाः पतिमच्युतं सुविलसद्वाहो गुणानां गणै-
स्स्तुत्वाऽनन्तशतैश्चिराय बहुधा मे देहयात्रां चरन् ।

तत्पादाम्बुजसंश्रययोत्सुकतमः किं क्षुद्रमर्त्यान्भुवि
स्तोतुं मे वचसा ब्रवीमि किमपि प्राज्ञोऽद्य मायान्नशान् ॥८॥

अत्यन्त शोभायमान भुजा वाली नीलादेवी के पति अविनाशी प्रभु की असंख्य गुण समूहों से अनेक प्रकार से स्तुति करके बहुत दिनों तक शरीर निर्वाह करता हुआ मैं तो उस प्रभु के चरण कमल का आश्रय लेने के लिये ही इच्छा कर रहा हूँ। भूमि में अनेक माया जाल में पड़े क्षुद्र मनुष्यों की मैं अपनी वाणी से स्तुति करने का दुःसाहस क्या आज करूँगा। मेरे को प्रभु की कृपा से अब वह बुद्धि प्राप्त हो गई है कि जिससे मैं ईश्वर का और संसार तथा अपना स्वरूप यथार्थ रूप से जानने लगा हूँ। अब क्षुद्र मनुष्यों की प्रशंसा करके क्या उस स्वरूप को मैं नष्ट करूँगा, कभी नहीं ॥ ८ ॥

नाहं मानुषवर्गसाशंसनपरो वाचाः कविः श्रीधरं
वेदान्तप्रतिपाद्यवैभवमुदाराग्र्यं प्रभुं चक्रिणम् ।
संश्रित्यास्मि कृती ! स एव परमो ज्योतिर्मयो यस्तुमा
मर्चामूर्तिपरात्पराद्यनुभवैर्मुक्तं करोत्यच्युतः ॥९॥

मुझे आज जो कविता करने की शक्ति मिली है, वह वाणी से मनुष्यों की प्रशंसा करने के लिये नहीं है। जिसका महत्व वेदान्तों में भले प्रकार से प्रति पादन किया है। जो उदारों में सर्व श्रेष्ठ है। जो आश्रित संरक्षण करने के लिये चक्र धारण करता है। मैं उस प्रभु का समाश्रयण करके कृतार्थ हुआ हूँ। वह सर्व श्रेष्ठ परम ज्योति स्वरूप अविनाशी मेरा प्रभु है। जो हमारी इच्छानुसार हमारी बनाई मूर्ति में विराजमान होकर अपना यथार्थ अनुभव हमको कराकर संसार बन्धन से हमको मुक्त कर देता है। जिस प्रकार लक्ष्मणजी (सृष्टस्त्वं वनवासाय) की सृष्टि वन जाने के लिये ही हुई थी। उसी प्रकार हमारी वाणी की सृष्टि उस परम प्रभु के गुण गान से स्तुति करने के लिये ही हुई है ॥ ९ ॥

पार्श्वे तिष्ठति नित्यमेव हि नृणां देहात्ययेऽपि स्वयं ।
तेषां भात्यनुगः प्रभुस्स्ववशगान् कर्तुं सदा तान्हरिः ।
हर्तुं जन्मपरम्परान्तु जगतां स्रष्टुः किलाहं कवि,
स्तस्यैव स्तुतये सदाः किमुचिता भूयान्ममान्यस्तुतिः॥१०॥

जो भगवान् हरि निर्हेतुक दयावश होकर समस्त जीवों के शरीर नष्ट होने पर भी उनके पास में रहते हैं। और अपने भक्तों की मनोवृत्ति को अपनी ओर खींचने के लिये जो सदा उनके पीछे चलते हैं। और उन भक्तों की सम्पूर्ण जन्मों की फांसी काट देते हैं। संसार रचने वाले उस प्रभु की स्तुति करने के लिये ही मैं कवि हुआ हूँ। अतएव उसकी सदा स्तुति करने वाले मुझ से क्या किसी दूसरे की स्तुति होगी ॥ १० ॥

नित्योदारगुणोज्ज्वलं मुररिपुं सूरीन्द्रनाथं हरिं,
कृष्णं स्तोतुमुदार सद्गुणनिधिः प्राज्ञश्शठारिमुनिः ।
रम्यं श्री कुरुकेश्वरश्शुभगुणं साहस्रामेवाकरो,
त्तत्रेदं दशकं भुवीह पठतां जन्मैव नस्या न्नृणाम् ॥११॥

उदारगुणों से जोसदा प्रकाशमान है। मुर नामक दैत्य को जिन्हों ने मारा था। जो नित्य सूरियों का स्वामी है। सर्व पाप हरण कर्ता उस कृष्ण की स्तुति करने के लिये कुरुकापुरी के वासी उत्तम उदार गुण के भण्डार। बड़े बुद्धिमान शठकोप मुनि ने शुभ गुण वाली सहस्र गीति की रचना करी उसमें जो मनुष्य इस दशक को पढ़ेंगे उनका इस पृथ्वी पर जन्म ही नहीं होगा अर्थात् वे नित्य मुक्त हो जाँयगे।

इति श्री सहस्रगीतौ तृतीय शतके नवमदशक समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ तृतीयशतके दशमदशकारम्भः

इस दशक में जो कविगण मनुष्यों की स्तुति करते करते थकने पर भी पूर्ण मनोरथ नहीं हुए उनको निराश देखकर आल्वार कहते हैं कि भाई मैंने तो उस परमेश्वर की स्तुति करने से ही सर्व प्रकार का मनोरथ सिद्ध कर लिया है।

नानाजन्मसु जन्मभागिह भुवि प्रादुर्भवन्माधव-
श्शंखं चक्रमपि स्वशाङ्र्गमुसलौ श्रीनन्दकं तां गदाम्।
बिभ्रद्गारुडवाहनोऽसुरगणान् रक्षो गणान्मर्दयन्
युद्धे भाति च भक्तवत्सल इमं स्तुत्वाऽस्मि पूर्णाशयः ॥१॥

भक्तवरो! इस संसार में अनेक प्रकार की योनियों में अवतार लेता हुआ भी वह माधव-शङ्ख, चक्र, शार्ङ्ग धनुष, मुसल, खड्ग, गदा आदि आयुधों को धारण करके गरुड़ के ऊपर सवार होकर असुर और राक्षस गणों का नाश करने के लिये जो युद्ध में प्रकाशमान होता है। इसी भक्तवत्सल को स्तुति करके मैं सर्व प्रकार से पूर्ण मनोरथ होगया हूँ।

जैसे हम लोग कर्म परवश होकर अनेक जन्म लेते हैं, वैसे ही परमेश्वर भी (सम्भवाम्यात्ममायया) अपनी इच्छा से हमारे विरोधि वर्ग को दूर करने के लिये निज आयुधों के सहित अवतार लेते हैं। विधि शिवादिकों के नेत्रों के भी जो अगोचर हैं, वे हमारे चर्म चक्षुओं के सामने प्रगट हुए हैं। ऐसे कृपालुको छोड़कर अन्यको स्तुति पापी पेट के भरने के लिये करना मनुष्यताके विरुद्ध बड़ी भारी भूल है ॥१॥

पूर्णाम्भोधितलेऽस्ति शेषशयनः पद्माम्बकस्सुन्दर-
श्श्रीमान् योगपतिर्हरिर्मणिनिभः कृष्णश्च तार्क्ष्यध्वजः।
प्रध्वंस्यासुरवर्गमुत्तमगुणस्सर्वेश्वरो भात्ययं!
स्तुत्वैनं परिगाननृत्यसहितः पूर्णोऽस्म्यहं सन्ततम् ॥२॥

लक्ष्मी को वक्षस्थल में धारण करने वाले और गरुड़ की ध्वजा रखने वाले ये कृष्ण हैं। जिनके कमल के समान सुन्दर नेत्र हैं। जो विशाल समुद्र में शेष शय्या पर शयन करते हैं। जो नीलमणि के समान वर्ण वाले हैं। योगीजन एकाग्र समाधि द्वारा जिनका

ध्यान करके अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं। जो सर्वेश्वर और उत्तम गुणों का एक मात्र आधार है। जो दुष्टों को नाश करने वाले बल और वीर्य से प्रकाशमान् हो रहे हैं। मैं इन्हीं की गान पूर्वक स्तुति करके सर्व प्रकार से परि पूर्ण मनोरथ होगया हूँ ॥२॥

त्रैलोक्याधिपतिं च भोगभरितं सर्वेश्वरं श्रीनिधिं
माधुर्य्याब्धिरसं घनं मधुरसं चीरं फलं चोत्तमम् ।
दिव्यं चामृत मिक्षुमेव तुलसीभास्वत्किरीटं हरिं
नत्वा तत्प्रणवाशयोऽनिशमहं चिंतार्तिलेशो न मे॥ ३ ॥

अये कविवरो! जो तीन लोकों का अधिपति है। जो सर्वेश्वर लक्ष्मी का अखण्ड भण्डार है। जो समस्त भोगों से भरा हुआ है। जो माधुर्य रस का समुद्र है। जो मेरे लिये रस घन (मिश्री) दूध मीठे फलों से भी अधिकभोग्य रूप है। जो ईश्वर समुद्र रस अमृत से भी मधुर स्वादिष्ट है। जिसका किरीट तुलसी माला से अति शोभायमान है। उस हरि को ही प्रणाम करके मैंने अपना मन उस में निरन्तर लगा दिया है। अब तो मैं ऐसा पूर्ण मनोरथ होगया हूँ, कि किसी प्रकार की चिन्ता का लेश भी मेरे को नहीं है।

सर्व प्रकार से भोग्यतम प्रभु चरणों में अपना आत्मभार समर्पण करने वाले को दुःख का लेश कहाँ इस प्रकार जो प्रभु परायण हो जाते हैं वे ही इस क्षणभंगुर नर जन्म को सफल कर लेते हैं ॥३॥

रक्षाम्येव भवन्तमाश्रितमिति स्वैरं प्रतिश्रुत्य तं
बाणं च त्रिपुरान्तकस्तु समरे सेनासमेतश्शिवः ।
सूनुस्तस्य तथाऽनिलोऽपि च जिताः पक्षेण यस्याप्यमुं
तार्क्ष्यं चाप्यधिरुह्य चक्रधरमेवाहं श्रितो निर्भयः ॥ ४ ॥

अति कठिन तपस्या से प्रसन्न होकर बाणासुर को भोलानाथ जीनें वरदान दिया था कि मैं तुम्हारी सर्व प्रकारसे रक्षा करूँगा। फिर जब उषा और अनिरुद्ध के कारण बाणासुर से श्रीकृष्ण भगवान् युद्ध करने गये तब बाणासुर का पक्ष लेकर लड़ने के लिये भगवान् भूत

नाथ सेना सहित आये। तो उन शिवजी की सेना को उनके पुत्र कार्तिकेय को और इनकी सहाय करने वाले अग्नि को भगवान् कृष्ण के पक्ष वालों नें जीत लिया था। उस गरुड़गामी सुदर्शन चक्रधारी की शरण लेकर ही मैं आज निर्भय होगया हूँ।

त्रिपुर विध्वंसन कर्मसे लब्ध प्रतिष्ठ शिवजी भी जिसके पराक्रम से कुण्ठित होकर (कृष्ण कृष्ण महाबाहो जानेत्वां पुरुषोत्तमम-वि० ५-३३-११) शरणागत होकर प्राण भिक्षा माँग कर निर्भय हुए थे। उसी सर्वेश्वर की शरण जाकर प्राणी निर्भय हो सक्ता है। अन्य देवों की शरण जाने से नहीं ॥ ४ ॥

दुःखानां शमनाय हन्त ! जगतां पार्थश्च कृष्णाश्रय-
स्सुख्यातःसः च वैदिको निजरथे दिव्यं स्वयं रोपितौ ।
येनासौ परमेच धाम्नि हि विशं स्तस्यात्मजान् वैदिक-
स्यानीयार्पितवान् सदेहमिममाश्रित्यास्मि निर्दुःखभाक् ॥५॥

यह बात तो संसार में प्रसिद्ध ही है कि भगवान् श्रीकृष्ण का समाश्रयण करके ही अर्जुन संसार के अनेक दुःखों को दूर करने में समर्थ हुए थे। जब द्वारिकापुरी में एक वैदिक ब्राह्मण के अनेक पुत्रों के मरजाने पर उसको उस पुत्र मरण कष्ट से व्याकुल देख कर महावीर अर्जुन ने प्रतिज्ञा करी कि मैं आप के इस दुःख को दूर करने को आपके मृत पुत्र को लादूँगा। यदि ऐसा न कर सकूँ तो मैं जीवित ही अग्नि में जल जाऊँगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा को अनेक यत्न करने पर भी जब पूरी न कर सके तो अग्नि में जलने को तैयार हुए। तब भगवान् ने अर्जुन को उस आत्महत्या से रोक कर कहा कि चलो इस हमारे रथ में बैठो तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी। इस प्रकार अपने रथ में बैठार कर उसको श्वेतद्वीप में ले गये और वहाँ से ब्राह्मण के पुत्रों को सदेह लाकर उस ब्राह्मण को दिलाकर अर्जुनकी प्रतिज्ञा पूरी करके उसका दुःख निवारण किया। इसी परमात्मा की शरण लेकर मैं समस्त दुःखो से निर्मुक्त हुआ हूँ।

पूर्णे चोज्वलतेजसि स्वमहिमस्थेम्ना निजे भास्वति
प्रादुर्भूय च मानुषे व्यसनिनि प्रत्यक्ष एवप्रभुः ।

निर्दोषोऽद्भुतकृत्यकृत्किल महामाहात्म्यतोऽभूच्च तं
कृष्णं मायिनमाश्रितोऽस्मि सततं ! स्याद्दुःखगन्धो नमे ।६॥

जो प्रभु सर्वानन्द पूर्ण उज्वल तेज वाले नाश रहित प्रकाशमान परमपद में वास करता है। वही नित्यानन्द प्रभु अनेक दुःखमय संसार में प्रगट होकर जन साधारण के प्रत्यक्ष होजाता है। जो निर्दोष और आश्चर्य कारक चरित्रों को अपने महात्म्य को प्रसिद्ध करने के लिये करता है। अनेक मायामय लीला करने वाले उस कृष्ण की ही मैंने निरन्तर शरण लोनी है। इसी कारण अब मेरे पास दुःख का गन्ध भी नहीं आसकता। उस प्रभु के नाम का प्रभाव शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि—

"आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता घोरेषुच व्याधिषु वर्तमानाः।
संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति,,
भवनाशनदुरमनि हरन दुःख हरन हरिनाम
नारायण निश दिन भजै सफल होंय सब काम ॥६॥

संसारं सुखदुःखमिश्रमखिलं विश्वं च तन्नारकं
नानादुःखमयं च नाकमपि तं भोग्यं स्वयं व्याप्य यः
नित्यानन्तचिदाश्रयो भवति तं नाथं हरिं श्रीधरं
मायामोहमयं विलासरसिकं प्राप्तस्य दुःखं नमे ॥७॥

यह समस्त संसार सुख और दुःख दोनों से भरा है। अर्थात् मृत्यु लोक के प्राणियों को दुःख से सुख और सुख से दुःख इस प्रकार एक के अनन्तर दूसरा आकर दबा लेता है। परन्तु नरकों में केवल दुःखही दुःख है वहाँ सुख का लेश नहीं है। और स्वर्ग में केवल सुख ही सुख है। वहाँ दुःख का लेश नहीं है। परन्तु हमारा प्रभु नित्य अनन्त चैतन्य शक्ति का आधार होकर सुख दुःख नर्क स्वर्गादि सर्व पदार्थों में व्याप्त है। माया मोह का रूप धरकर जो संसारके अनेकविलासों का रसिक हुआ है। सर्व पाप हरण कर्ता लक्ष्मी पति उस मेरे नाथ की जब मैं शरण होगया तो अब मुझे कोई दुःख बाधा नहीं कर सकता। ईश्वर का माया मोह रूप धरना वि०३-१७ में देखो।

निर्दुःखं सुसुखं सदाऽपि परितस्सौन्दर्यं तेजोमयं
भोगानन्दमयं श्रिया कमलया नाथं हरिं निस्समम् ।
द्रव्यज्ञाननिधिं समस्तजगतां स्रष्टारमेवाच्युतं
कृष्णं मायिनमाश्रितः पदयुगे निर्दुःखगन्धोऽस्म्यहम् ॥८॥

जो प्रभु दुःख रहित सीमा शून्य सुख का भण्डार है । चारों ओर से सौन्दर्य युक्त तेज से जो प्रकाशित है । जो कमल कुसुम सदृश कोमलाङ्गी लक्ष्मी के संभोग में आनन्द भोगने वाला है । जो दिव्य ज्ञान का अक्षय निधि है । जो निर्हेतुक दया पर वश होकर समस्त चेतनों को करण कलेवर देकर सृष्टि रचना करता है । जो अनेक मायामय लीला करता हुआ भी समानता शून्य अविनाशी है । उस सर्व पाप हरण कर्ता स्वामी के चरण कमलों का आश्रय लेकर मैं समस्त दुःख गन्ध रहित हो गया हूँ । संसारी जीव जब अपने दुःख की निवृत्ति के लियें लक्ष्मी का आश्रय लेते हैं । तब मैंनें तो लक्ष्मी के पति-अखण्ड ज्ञान के भण्डार परमात्मा का आश्रय लिया है तब मेरे दुःख का लेश कैसे रह सकता है ।

दुःखस्पर्श विहीनमुज्ज्वलमतिं तेजोनिधिं भूषितं,
देवं मे तुलसीस्रजाऽप्यभिमतस्वेच्छात्तमायातनुम् ।
नानाचेष्टितमाश्रितं च सकलैर्ब्रह्मादिरुद्रादिभि,
स्स्वांशैर्विश्वभुजं श्रितोऽस्मि नहि मे शक्त्यादिहानिः क्वचित् ।९

जो देव सर्व प्रकार के दुःखों से रहित है । जो दिव्यज्ञान और तेज का अखण्ड भण्डार है । जो अपनी इच्छा से अनेक प्रकार के माया मय शरीरों को धारण करता है । जिस की अनेक लीलाओं को ब्रह्मा रुद्रादिक देव मनन किया करते हैं । जो असंख्य अंश रूप विभूतियों द्वारा संसार के पदार्थों का, उपभोग करता है । तुलसी की माला से भूषित उस देव की मैंने शरण ली है । उसने ही मुझे काव्य रचने की शक्ति दी है । जिसकी कभी कमी नहीं होती है ।

जो प्रलय समय में वटपत्रशायी होकर अपने पेट में चराचर को

स्थापन करके रक्षा करते हैं तो उस की शरण लेने वाले मुझ को ता प्रलय काल में भी किसी प्रकार का भय नहीं है ॥९॥

सर्वत्रापि च सर्वदाऽपि च विभुं चैकं परं कारणं,
ज्योतिर्ज्ञाननिधिं त्वतीन्द्रियमहातेजोनिधिं स्वामिनम् ।
चन्द्रार्कात्मकपंचभूतमयमप्याश्रित्य मायाविनः,
कृष्णस्याङ्घ्रियुगं प्रपद्य नहि मे हानिः कचिज्ञातुचित् ॥१०॥

जो प्रभु सर्व जगत् का सर्वोच्च कारण होकर सदा सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। जो दिव्य ज्योति और दिव्य ज्ञान का अखण्ड भण्डार है। जिसको कोई इन्द्रिय नहीं देख सकती। ऐसे महा तेज का जो अक्षय निधि है। जो चन्द्र सूर्यादिक रूपों से पंच तत्वों में भी व्याप्त हो रहा है। उस अनेक माया धारी मेरे स्वामी कृष्ण के दोनों चरणों को प्राप्त होकर मेरी किसी प्रकार की हानि कभी नहीं हो सकती।

जो प्राकृत रूप रहित होकर सबका सर्वविध कारण होकर अन्तर्यामी रूप से विराजमान होकर रक्षक भये हैं। तो वे हमारे अनर्थ और कुमार्ग प्रवृत्ति को स्वयं नष्ट कर देंगे। फिर किसी प्रकार की हमारी हानी होने की संभावना ही कहाँ है ॥१०॥

निर्दोषं शुभसद्गुणामृतनिधिं तं केशवं श्रीहरिं,
स्तोतुं प्राह सहस्रमत्र कुरुकाधीश्शठारिमुनिः ।
तत्रेदं दशकं पठन्ति भुवि ये तेषां हरिश्श्रीधर-
स्स्वाराज्यं च निरङ्कुशं वितनुते श्रेयांसि मुक्तिं पराम् ॥११॥

जो समस्त दोष वर्जित और समस्त सद्गुणों के भण्डार हैं। सुन्दर केश वाले उन हरी की स्तुति करने के लिए कुरुका पुरी वासी शठ कोप मुनि ने सहस्रगीति बनाई उसमें इस दशक को जो पढ़ेंगे उनके लिए इस भूमि तल में भगवान् लक्ष्मीपति निष्कण्टक स्वराज्य देंगे और अन्त में परम कल्याण रूपी मुक्ति पद में पहुँचा देंगे ॥११॥

इति श्री महेदवेदाद्याखिलशास्त्रनिष्णात पराशरगोत्रोत्तंस श्रीमन्माधवार्य चरणाश्रित श्रीरामानुजसम्प्रदायाचार्य मथुरा गतनामठाधीश्वर पण्डितस्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य श्री विरचित विद्वन्मोद तरङ्गिणी भाषा टीका सहित श्रीसहस्रगीतीतृतीयशतकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्र गीतौ चतुर्थशतके प्रथमदशकारम्भः

इस दशक-में राज्यलक्ष्मी स्त्री पुत्रादि जल बुद्बुद के समान क्षणभंगुर हैं। स्वर्गादिक भोग नदी वेग के समान थोड़े ही दिन रहने वाले हैं। निर्गुण आत्म प्राप्ति रूप कैवल्य निष्फल हैं। अतएव आत्म कल्याण के लिये सर्वेश्वर लक्ष्मीपति श्रीमन्नारायण की शरण लेना ही सर्व श्रेष्ठ उपाय है यह कहा है।

एकच्छत्राधिपत्यं विदधति किल ये भूतले तेऽपि काले
नीलश्वाकृष्टपादाश्च्युतघटशकला भिक्षुका एव हि स्युः।
अस्मिन् देहेऽपि सर्वैर्जगति सुविदिता एव ! तस्मात्तु यूयं,
श्रीमन्नारायणस्य स्मरत पदयुगं नित्यमुज्जीवनाय ॥१॥

हे संसारी मनुष्यो ! यह कौतुक संसार में प्रायः देखने में आता है। और इतिहास पुराणादि प्रसिद्ध भी है कि जिन पुरुषों ने किसी समय अखिल भूमण्डल का एक छत्र राज्य किया था। वे ही दूसरे समय में फूटे घड़े का खपरा हाथ में लेकर भीख मांग कर अपना निर्वाह करते हैं। जिनकी भयंकर स्थिति को देखकर मार्ग जाते समय बहुत से काले कुत्ते भी उनके पैरों में काट लेते हैं। यह दशा इसी देह में भोगते हुए मनुष्यों की देखी जाती है। इस कारण आप लोग अपने नित्य कल्याण के लिए श्रीमन्नारायण के ही चरण युगल का स्मरण करो ॥१॥

उज्जीव्यं हि करार्पणैरिति नृपानाज्ञाप्य राज्ञां वरा,
भूम्यामत्र किल त्यजन्ति रमणीस्स्वीयाश्च भुक्ता अहो।
अन्येषान्तु करेषु हन्त ! विपिनेऽप्यत्यन्त तीव्रातपे,
सन्तप्ता इति दीप्तमौलिसहितं श्रीशं भजध्वं क्षणात् ॥२॥

जो नृपश्रेष्ठ एक दिन संसार के समस्तराजाओं के ऊपर अपना अधिकार जमा कर यह आज्ञा देते हैं कि हमारे को अमुक करदो। तभी तुम जीवन निर्वाह कर सकते हो अन्यथा नहीं। वे ही दूसरे दिन राज्य कोष तथा प्राणप्यारी स्त्री को भी दूसरे के हाथों में छोड़ कर निर्जन वनों में अत्यन्त कड़ी धूप में तपते हुए अति कष्ट से

विना अन्न जल खाये ही जीवन को बिताते हैं। अतएव क्षण भंगुर ऐश्वर्य से सुख मिलने की आशा छोड़कर रत्नजटित किरीट से प्रकाशमान मस्तक वाले लक्ष्मीपति की सेवा करने में इसी क्षण लग जाओ।

लक्ष्मी, वैभव, स्त्री, हाथी, घोड़ा आदि को हमारे देखते देखते दूसरे छीनकर उनका भोग करते हैं। और हम घोर वन में शत्रु के पंजे में फँसकर नरक से अधिक दुःख भोगते हैं। अतएव उचित है कि हमारे पास बुरा समय न आने पावे। उससे पहिले ही श्रीमान् के चरणों का आश्रय लेकर सदा के लिये श्रीमान् बनजावें ॥२॥

राजानो निजपादसक्तनृपमण्डल्यावलीमौलयो,
नित्याकर्णितभेरिनादविजयास्स्वीयाङ्गणेषु स्वयं।
धूलिभूतकणाणवः किल गतास्तस्माद्भजध्वं क्षणात्।
कृष्णस्यैव सुदिव्यगन्धतुलसीशीर्षस्य पादाम्बुजम् ॥३॥

इस धराधाम में असंख्य ऐसे चक्रवर्ती राजा हुए हैं जिनके चरणों में अन्य आश्रित नृप गण अपना मस्तक झुकाते थे। जो अपने आंगन में नित्य ही विजय दुन्दुभी का घनघोर शब्द सुन कर आनन्द निमग्न होते थे। वे ही इस धूली के परमाणुओं में मिलकर सदा के लिए अदृश्य हो गये। इसी लिये दिव्य सुगन्ध वाली तुलसी को मस्तक पर धारण करने वाले भगवान् कृष्ण के चरण कमल की सेवा में जल्दी से लगजाओ।

भगवद्विमुखों का बड़े से बड़ा ऐश्वर्य क्षण भर में जब धूली में मिल जाता है। तो नित्य ऐश्वर्य प्रदान करने वाले प्रभु के चरणों की सेवा ही सर्वश्रेष्ठ कल्याण कारक है ॥३॥

संचिन्त्येत यदि स्वयं च तदिदं राज्ञां गणाः प्रायशो,
ऽनन्तास्ते सिकताधिका हि जलधौ नष्टा युगेषु स्वयम्।
किं तेषां भवनानि नैव सकलान्यत्यन्तनष्टान्यहो ?
दृष्टं सर्वमतो भजत्पदयुगं मत्तद्विपध्वंसिनः ॥४॥

जब हम दीर्घ काल के इतिहास को अपने सामने रखकर वि...

करते हैं तो यह बात ध्रुव सत्य हो जाती है कि बड़े बड़े चक्रवर्ती राजाओं के समूह समुद्र में रज-कण के समान इस अति विशाल काल के क्रोड में विलीन हो गये । क्या उनके गगन चुम्बन करने वाले महल और आज्ञा शिरोधारण करने वाले सामन्त गणों का आज नाम का भी पता कोई लगा सकता है? कभी नहीं। अतएव मतवाले कुवलयापीड हाथी को मारने वाले उस कृष्ण के ही चरण युगल का भजन करना कल्याण कारक है।

यही भाव नीचे के श्लोक से और भी स्पष्ट हो जाता है कि

आतः कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत् ।
पार्श्वे तस्य चसापि राजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः ॥
उद्रिक्तः सजराजपुत्रनिवहस्ते मन्दिनस्ताः कथाः ।
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपदं कालय तस्मै नमः ॥४॥

रम्यत्वान्वितशीतपुष्पशयने सीमन्तिनीभिस्स्वयं,
रामाभिस्सह भोगसारमनुभूयैव प्रियाभिर्जनाः ।
ताभिस्त्रीभिरपि स्वयं परिभवं नानाविधं प्रापिता,
स्तस्मान्नीलमणिस्वरूपमनघं कृष्णं भजध्वं सदा ॥५॥

जो बड़ भागी पुरुष किसी समय अति कोमल, शीतल, सुगन्ध पुष्पों की शय्या पर घुंगराले सुगन्धित केश युक्त मधुर भाषण करने वाली नव यौवना प्राण प्यारी स्त्रियों के संभोग सुख से आनन्द प्राप्त करते हैं, वे ही पुरुष किसी समय उन्हीं स्त्रियों से अनेक प्रकार से अपमानित होते हुए देखे जाते हैं। अतएव नीलमणी के समान व्यमोहक स्वरूप वाले श्रीकृष्ण का भजन करना ही सदा कल्याण कारक है।

संसार में जब तक पुरुष के शरीर में पुरुषार्थ रहता है। धन कमाने की शक्ति रहती है। कामिनियों की कमनीय भावना पूरी करने की शक्ति रहती है, तभी तक अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये स्त्री पुत्रादि उससे प्रेम करते हैं। जब वृद्धावस्था के कारण कुटुम्बियों का स्वार्थ सिद्ध करने में असमर्थ हो जाता है तो वे उसके पूर्वोपकारको भूलकर उसका अपमान करने लग जाते हैं ॥५॥

श्रीमन्तो धनिकाश्च वुद्वुदसमा नश्यन्ति नश्यन्त्य हो !
सत्यं ! जन्मत एव नैक विधता ह्यावधि स्यादहो ॥
तेषां सम्पदि नश्वरत्वमत एवास्तीति श्रूयं स्थिरां,
प्राप्तुं सम्पदमप्यगाधजलधौ सुप्तं हरिं प्राप्नुत ॥६॥

इस संसार में बड़े बड़े श्रीमान् धनाढ्य जन्म लेकर पानी के बबूला के समान क्षण भर में नष्ट हो गये हैं। जन्म लेकर अन्त तक एक सा सुख या धन रहता हो, सो भी नहीं क्योंकि वहाँ भी नित्य परिवर्तन होता रहता है। कभी बीमार पड़ गये। कभी द्रव्य की आय कम हो गई इत्यादि से एक जीवन में भी पूरा सुख नहीं है। संसार की सभी सम्पति क्षण भङ्गुर हैं। अतएव नित्य सम्पत्ति प्राप्त करने की इच्छा वालों को अगाध समुद्रमें शयन करने वाले परम प्रभु की शरण जाना चाहिये।

इसी भाव को एक भाषा के कवि ने अपने दोहा में क्या अच्छा दिखाया है ॥६॥

राम भरोसो छोड़ के करै भरोसो और।
सुख सम्पति की क्या कहूँ नरक न पावै ठौर ॥

तत्तादृग्विध षड्रसान्वितमहाश्लाघ्यान्नतृप्ता अपि,
स्वैरं मुग्धवधूवचश्चतुरतावश्याः पुनर्भुञ्जते ।
याञ्चार्थं कवलं किलैक मपि च प्राप्तुं च तासामपि,
द्वारि स्युस्तत एव दिव्य तुलसी शीर्षं महस्संस्तुत ॥७॥

जो पुरुष अति सुन्दरी नव यौवना स्त्रियों के चतुराई के वाक्यों के (प्राण प्यारे मेरे हाथ से एक ग्रास तो और खालो) आधीन होकर अति स्वादिष्ट प्रशंसनीय षड् रसों वाले भोजनों से तृप्त होते हैं। वे ही पुरुष किसी समय उन्हीं स्त्रियों के द्वार पर एक-एक टुकड़ा मांगते फिरते हैं। इसलिये दिव्य तुलसी से शोभायमान मस्तक वाले दिव्य तेज-वाले पुरुषोत्तम की ही स्तुति करना कल्याण कारक है ॥७॥

प्रख्याताः शुभ कीर्त्तयोऽपि च नृपा दानप्रशोण्डास्स्वयं,
लोकानामधिपाश्च भोगरसिकास्सत्यं निवृत्ताः पुनः।
श्रीशस्याश्रयणं विनैवहि ! तत श्रीशेषशय्याश्रयं,
नाम्ना कीर्त्तयताच्युतं नहि तदावस्यान्निवृत्तिः पुनः॥८॥

बड़े बड़े राजा जिनकी शुभ कीर्ति संसार में फैल रही थी जो दान वीरों में पहले गिने जाते थे। जो तीनों लोकों के ऐश्वर्य का भोग करते थे। वे लक्ष्मीपति के चरणों की शरण के बिना संसार के सुखों को छोड़कर सदा के लिये अदृश्य हो गये। इसलिये श्रीशेषशायी के नामों का कीर्तन ही करना कल्याण कारक है। नाम जपने वाला फिर इस संसार में नहीं आता वह मुक्त हो जाता है ॥८॥

अरघ खरघ लौं द्रव्य है उदय अस्त लौं राज।
तुलसी रघुवर भक्ति बिन सभी नरक को साज॥

क्षेत्रं चाभरणादिकं च सकलं सन्त्यज्य जित्वेन्द्रिया,
अत्यन्तं च विशोष्य काममनिशं क्षीणा कृशाङ्गा अपि।
अन्ये सन्ततभोगसक्त हृदयास्स्वर्गस्थिताश्च च्युता-
स्तस्मात्तौ गरुड़ध्वजस्य चरणौ प्राप्य स्त नित्याच्युताः॥९॥

जो पुरुष संसार में स्वर्ग की इच्छा से भूमि धन भूषण आदिको छोड़कर और इन्द्रियों को अपने वश में करके, वन में जाकर अनेक प्रकार के तप करने से शरीर को सुखाकर अनेक सुख भोगने के लिए स्वर्ग प्राप्त करने को कृश शरीर वाले होकर तपस्या द्वारा स्वर्ग जाते हैं। और वहां जाकर मनमाने सुखों को भोगते हैं। फिर पुण्य चुक जाने पर वहाँ से भूमि पर आ गिरते हैं। इसीलिये नित्य अविनाशी सुख को भोगने की इच्छा हो तो भगवान् गरुड़ध्वज के चरणों का आश्रय लेना ही उचित है।

संसार सुख को अनित्य समझ कर जो स्वर्ग सुख को ही सर्वोपरि मानते हैं। उनके लिए आल्वार उपदेश देते हैं कि (स्वर्गेऽपिपात भीतस्य क्षयिष्णोर्नास्ति निवृत्तिः) स्वर्ग का सुख नित्य नहीं है। वहाँ भी गिरने का डर बना ही रहता है ॥९॥

नित्य अविनाशी जीवात्मा में एक प्रकार का विकार करने का कुयोग है ॥ १ ॥

वल्लीसमास्तनुकटीः परिभुज्यगोपी,
यस्साहसादकृत रासविधानलीलाम् ।
दिव्यां च तस्य तु हरेस्तुलसीं पदस्थां,
वाञ्छत्यहो ! ममसुता किल पापवत्याः ॥ २ ॥

हाय आज मेरे कैसे पाप उदय हुए हैं, कि यह मेरी पुत्री जिस की बेल के समान पतली कमर है। वह चाहती है कि जिस प्रभुने बलात्कार से भी गोपियों का भोग करके रास लीला करी है। उसी प्रभु के दिव्य चरणों की तुलसी मिल जाय तो मेरे सर्वदुःख दूर हो जायंगे। व्रजके समस्त असंख्य प्राणियों की इच्छा पूर्ण करके उसने उन्हें सफल मनोरथ बनाया है, तो क्या वह हमारी इच्छा को पूर्ण न करेगा ? अवश्य करेगा।

छन्दांसि च श्रुतिमयानि च दिव्यमाला,
आनीय देव निवहैर्मुनिभिश्च पूज्यैः ।
आराधितस्य तुलसीं पदपद्मसक्तां,
वाञ्छन्त्य हो ! मम सुता कुसुमस्रगाढ्या । ३ ॥

अहह ! यह मेरी पुत्री फूलों की माला को धारण कर के चाहती है कि अनेक वेदों के छन्दों से स्तुति करके दिव्य माला को लाकर देव समूह तथा परम पूज्य समस्त ऋषिगणों कर के पूजा किये गये परमात्मा के चरणों में चढ़ी तुलसी मिलने से ही मेरे दुःख की शान्ति होगी।

निर्दोष दिव्य गुण कीर्तन सक्त चिन्तान्,
विद्वद्वरानपि च मोहयतो मुरारेः ।
पादाब्ज दिव्यतुलसीं सततं पठन्ती,
सेयं सुता शुभभुजा मम पापवत्याः ॥ ४ ॥

जो मुरारी दोष रहित दिव्य गुणों के कीर्तन में आसक्त चित्त वाले बड़े बड़े धुरन्धर विद्वानों को भी मोह करा देते हैं । उन्हीं प्रभु के चरणकमल की दिव्य तुलसी को सुन्दर भुजा वाली यह मेरी पापिनि की पुत्री बारंबार स्मरण करती है ।

वेदान्त ब्रह्म विद्या को वर्णन करने वाले वाक्य दो प्रकार के हैं । सगुण और निर्गुण कोई तो सगुण वाक्यों को सत्य मानकर निर्गुण का खण्डन करते हैं । और कोई निर्गुण वाक्यों को सत्य मानकर सगुण का खण्डन करते है । ईश्वर की विचित्र लीला ऐसी है कि इस प्रकार बड़े २ ज्ञानियों को भ्रम में डाल देती है । तात्पर्य यह है कि उक्त दोनों कोटि को सुसंगत करके किसी प्रकार की भी ब्रह्म विद्या में निष्ठ होकर प्रभु का अनुभव करना चाहिये ॥४॥

नीलां मनोरमभुजामुपभोक्तु कामः,
मृषर्षभानपि च यो जितवांश्च गोपः ।
तस्याङ्घ्रिगा घटभृतस्तुलसी शुभेति,
क्रन्दन्त्यहो ! प्रतिदिनं मम कन्यकैसा ॥ ५ ॥

जिस प्रभुनें गोप भेप धारण करके मन को प्रसन्न करने योग्य भुजा वाली नीला का भोग करने के लिये सात वृषभों (साड़ों) को जीत लिया था । जो प्रभु कुंभ नृत्य करने में बड़े कुशल हैं । उनके चरणों की तुलसी कैसी सुन्दर मनोहर है । इसी प्रकार मेरी यह कन्या दिन रात चिल्लाती है हाय इसको क्या किया जाय ।

नारीजनोत्तम महापृथ्वीं च भोक्तुं,
वाराह रूप भृत एव पुरा धरित्रीम् ।
अण्डात्समुद्धृतवतस्तुलसीं पदस्थां,
संकीर्त्य मोहितमतिर्हि ममात्मजेयम् ॥ ६ ॥

समस्त नारियों में सर्वोत्तम भूदेवी को भोगने के लिये सृष्टि की आदि में वाराह रूप धारण करके नीचे की ओर अण्ड की भीत से लगी हुई धरती का जिसने उद्धार किया है । उसीके चरणों की तुलसी का बार बार कीर्तन करके यह मेरीपुत्री अत्यन्त मोहित हो गईहै ।

नीला देवी की प्राप्ति के लिये बल पुरुषार्थका कार्य किया परन्तु भूदेवी की प्राप्ति के लिये तो अति नीच कर्मों चित्त वराह शरीर को धारण किया। वह प्रभु ऐसा परम दयालु है कि आश्रितों के संरक्षण के लिये सब कुछ करने को तैयार रहता है। तो वह हमारी पुत्री के कष्ट को भी अवश्य ही दूर करेगा ऐसा नायिका की माता का अभि प्राय है ॥ ६ ॥

पद्माश्रया च तरुणी रमणी मणिश्री
यस्यास्ति वक्षसि धृता सुविशाल रम्ये ।
तस्यैव दिव्यरचनां तुलसीं पदाब्जे
स्मृत्वाऽ वसीदति सुता मम ! दीप्तभाला ! ॥७॥

कमल के फूल पर वास करने वाली तरुण रमणियों में सर्व श्रेष्ठ श्री (महालक्ष्मी) को जो अपने अति विशाल वक्षस्थल में धारण करते हैं। उन्ही प्रभु के चरण कमल में दिव्य रचना (हार के आकर) से समर्पण की गई तुलसी को उज्वल ललाट वाली मेरी पुत्री स्मरण करके बारबार मूर्छा (बेहोसी) को प्राप्त होती है।

लक्ष्मी जी प्रभु की सदा सहचरी ही हैं, किन्तु मनो विनोद के लिये वे जब अन्तर्ध्यान हो जाती हैं तो उनके मिलने के लिये प्रभु समुद्र मंथन का नाटक रचते हैं। और समुद्र में से कमल पुष्प द्वारा प्रगट होकर पुनः सर्व देव गणों के समक्ष प्रभु के वक्ष स्थल में वास करने लग जाती हैं। लक्ष्मी को जो अनुभव हुआ उसी अनुभव को नायिका भी चाहती है यही माता का अभिप्राय है।

सीताभिरक्षणधिया नगरीं च लङ्कां
दग्ध्वा शराग्निभिरहो ! जगतां प्रशास्तुः ।
देवस्य दिव्यसुरभिं तुलसीं पदाब्जे
वाञ्छत्यसौ मम सुता ! किमिहाद्य कुर्याम् ॥८॥

संसार की सर्व विधरक्षा करने वाले प्रभु जिन्होंने । सीताजी की रक्षा करने की बुद्धि से लङ्का को बाँण से निकली हुई अग्नि से

जला दिया था। उस देव के दिव्य चरणों की सुगन्ध भरी दिव्य तुलसी को यह मेरी पुत्री बहुत ही चाहती है। हाय मैं इसके लिये आज क्या करूं।

जिस प्रतापशाली रावण के सामने सूर्य और अग्नि तेज हीन हो गये थे। उसकी लंकापुरी को श्री जनकनन्दिनी की रक्षा के लिये बाण की अग्नि से जला दिया उसी आश्रित वत्सल प्रभु की कृपा का अनुभव नायिका चाहती है ॥ ८ ॥

यूयं च पूर्ण हृदयास्तनयां प्रसूय,
प्राप्ताः प्रहर्षमहमद्य सुतां च दीनाम्।
एनां किमित्यहह ! वच्मि ? तदीय शङ्खं,
चक्रं च हन्त ! तुलसीं सततं प्रवक्ति।

अये नर नारियो! आप लोग एक कन्या को उत्पन्न कर के परम हर्ष को प्राप्तहुए होंगे। किन्तु आज मैं अति दीन अपनी इस पुत्री को क्या कहूँ कभी तो यह उस प्रभु के शंख का नाम लेती है और कभी चक्र का तथा कभी उस के चरणों की दिव्य तुलसी का नाम लेकर पुकारती। मैं इसे कैसे समझाऊं।

नायिका उन्माद नाम की काम की नवमी दशा को प्राप्त हो गई, अतएव पूरा नाम लेना भी कठिन हो गया शंख धारी न कह कर शंख कह कर ही चुप हो जाती है। वह रात दिन उसकी चरण प्रसादी तुलसी कोही रटती है,अब इसका क्या किया जाय उस नट नागर से इस को मिलाना हमारे बस की बात नहीं है ॥ ९ ॥

दीनाममाद्य तनुजा किल कोमलेयं !
वश्या नमेऽस्ति ! न हितं शृणुतेऽद्य पूर्णा।
कृष्णस्य पादतुलसी शुभवक्षसोऽद्य
स्वोच्चस्तनाभरणमेव हि वांछतीयम् ॥ १० ॥

हाय कोमल अंग वाली यह मेरी पुत्री प्रभु की विरह में बहुत दुःखी है। वह विरह व्यथा से पूर्ण मेरे हित कारक वाक्यों को नहीं

सुनती न मेरी आज्ञा में रहती है। वह अब मेरे वस में नहीं है। सुन्दर वक्ष स्थल वाले कृष्ण के चरणों को तुलसी को ही यह आज अपने मोटे मोटे स्तनों का आभरण बनाना चाहती है।

यहां भगवत्प्राप्तित्वरायुक्त चेतन नायिका है। सदाचार्योपदिष्ट शास्त्रीय ज्ञान से उत्पन्न दृढाध्यवसायात्मिका बुद्धि नायिका की माता है। साधक जब अनेकजन्मोपार्जिततप और ईश्वर ध्यानादि द्वारा उस प्रभु के प्राप्त होने की देरी को सहने में असमर्थ हो जाता है। तब अध्यवसायात्मिक बुद्धि भी उसे नहीं रोक सक्ती। उसके लिये एक क्षण भी युग हो जाता है। इस रूपक को लेकर इस गाथा में माता ने कहा कि वह नायिका मेरे वश में अब नहीं है।

विश्लेषदुःख शमनस्य पदाब्ज सक्तः
कृष्णस्य चाह कुरुकाधि पतिश्शठारिः।
साहस्र मुत्तमगुणं दशकं तदेत
द्भक्ताः पठन्ति यदि यान्ति च सूरिगोष्ठाम् ॥ ११ ॥

वियोगियों के वियोग दुःख को दूर करने वाले कृष्ण के चरण कमलों में अत्यन्त आशक्त कुरुकापुरी के स्वामी शठकोप मुनि ने 'उत्तम गुण' वाले सहस्र गीति ग्रन्थ को कहा। उसमें इस दशक को जो भक्तवर्ग पाठ करेंगे वे नित्यमुक्तोंकीगोष्ठी में जाकर वास करेंगे॥११॥

इति श्री सहस्र गीतौ चतुर्थशतके द्वितीय दशक समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ चतुर्थशतके तृतीयदशकारम्भः

इस दशकमें पूर्वोक्त प्रकार से राम कृष्णादि अवतारों के दर्शन कर के आल्वार को बड़ा आनन्द आया। उस आनन्द के वशीभूत होकर अपना सर्वस्व इन्द्रिय शरीर मन आदि ईश्वर को समर्पण करते हैं।

बिम्बोष्ठी मुपलब्धुमेव वृषभध्वंसी च लंकेशितु,
र्हन्ता त्वं किल मत्त हस्तिदशनध्वंसी हरिश्श्रीधरः।
नाहं त्वां कुसुमैर्जलैरुपचरन्नाराध्य धन्योऽस्म्यहो!
चित्तं मेऽस्त्यतसीसुमायिततनोस्तेऽङ्गरागायितम् ॥ १ ॥

हे प्रभो आपने लाल ओष्ट वाली नीला को स्वीकार करने के लिये ही तो वैलों का मान मर्दन किया था। प्राण प्रिया जानकी को स्वीकार करने के लिये लंका के राजा रावण का सर्वनाश किया था। अपनी अति प्यारी मथुरा पुरी की रक्षा करने के लिये ही मतवाले कुवलयापीड़ हाथी के दांत तोड़े थे। लक्ष्मीपते! सर्व पाप हरण कर्ता आप के चरणों का शुद्ध पुष्प जल लेकर आराधन करके धन्य बनने का मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। हे नील पुष्प सदृश सुन्दर विग्रह वाले! बाह्य पूजनाशक्त मैं अपने मन को ही चन्दन रूप से आपके दिव्य विग्रह की शोभा बढ़ाने के लिये आज श्री चरणों में समर्पण करता हूँ। ॥ १ ॥

ईशस्यापि जगत्त्रयावनकृतश्चाप्येकमूर्त्तेः प्रभो-
रस्माकं तव दिव्यगन्धमपि मे चित्तं स्रजं वाक्कृतिम्।
वस्त्रं ते मम सूक्तिमेव किल तां भूषां च दिव्यां तव
श्रीशस्याञ्जलिबन्धमेव मम भो! जानीहि भोग्यं त्रयम् ॥२॥

हे प्रभो तीनों लोकों की रक्षा करने के लिये उन को खाकर फिर निकाल कर आप बाहर बसा देते हो। और सर्व प्रधान एक विष्णु की मूर्ति धारण करके रहते हो। उस आपके पूजन के लिये मेरा चित्त ही दिव्य चन्दन है। मेरी यह वाणी की स्तुति ही पुष्पों की माला है। और सुभाषितमयी मेरी यह काव्य ही पीतांबर वस्त्र है। लक्ष्मी पति के लिये मेरा अञ्जलिबान्धना ही दिव्य भूषण है। इस प्रकार करणत्रय (मन वचन शरीर) से आप ही मेरे परम भोग्य हो ॥ २ ॥

मूर्तिश्चैकविधा द्विधाऽपि किल सा त्रेधाऽप्यनेकात्मिका
भूतानामपि पंचकं शशिरवी च त्वं हि सूक्ष्मान्तरः।
दुग्धाब्धौ शयितश्च शेषशयनो नारायणोऽसि स्वयं
भुक्त्वेदं सकलं च तन्मम मनस्यात्माऽसि निर्दुःखभाक् ॥३॥

हे प्रभो आप एक मूर्ति (ब्रह्माजी) दो मूर्ति (मनुशतरूपा) त्रिमूर्ति (देव, मनुष्य, तिर्यक) और अनेक मूर्ति रूप से होकर पंच भूत और चन्द्रमा सूर्यादिकों के भी भीतर सूक्ष्म रूप से व्याप्त हो रहे हो। इस सब सृष्टि को खाकर क्षीर समुद्र में श्रीशेषजी के ऊपर शयन करने वाले नारायण भी तो आपही हो। भगवन् आप मेरे आत्मा से आकर मिल कर एक रूप हो गये हो। अतएव अब मेरे समस्त दुःख दूर हो गये हैं ॥३॥

हत्वा च स्तनदायिनीं किल भवान्मायाविनीं मायया
गोपालोऽपि च वामनोऽपि च भवानासीत्स्वयं माधवः ।
त्वां नाराध्य कृती किलास्मि भगवन्नद्यास्ति धन्यात्वियं
भूषा श्री मुकुटस्य ते मम विभो प्राणात्मिका मालिका ॥४॥

हे प्रभो आपने गोपाल रूप धारण करकें, विष भरे स्तन को मारने की इच्छा से पिलाने वाली मायाविनी पूतनाको मारकर गौ पालन किया था। लक्ष्मी के पति होकर भी आप मांगने के लिए वामन हुए थे। भगवन् ! शुद्ध शीतल जल पुष्पादि लेकर आपके चरणों का पूजन कर मुझे कृत कृत्य होने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु आपके श्रीमुकुट की शोभा बढ़ाने के लिये भूषण रूप यह मेरे प्राणों की माला ही आपको अर्पण की जाती है।

पिशाची नें विष देकर आपको प्राण अर्पण किये मैं आपको अपना सर्वस्व देकर अपने प्राणों को अर्पण करता हूँ ॥४॥

आत्मा मे ननु मालिका मम विभोः कृष्णस्य कालेशितुः
विष्णोश्चक्रभृतोऽस्ति भक्तिरपि मे मौल्यादिभूषामयी ।
सैव स्याद्वसनात्मिका त्रिजगतां शस्यापि कीर्तिश्चसा
श्रीशस्यैव हरेस्समस्त मपि मे भात्येव भोग्यात्मकम् ॥५॥

सुदर्शन चक्रधारण करने वाले काल के भी अधिष्ठाता सर्व व्यापक कृष्ण के लिये मैंने अपने प्राणों की माला अर्पण करदी। मेरी भक्ति ही उस प्रभु के मस्तक के आभूषण हैं। त्रिलोकी में विस्तार

पाने वाली वह कीर्ति ही उस प्रभु के योग्य वस्त्र रूप है। मेरे और भी जो भोग्यपदार्थ हैं वे सब सर्वपापहरणकर्ता लक्ष्मीपति के ही हैं।

परम प्रभु स्वयं दिव्य वस्त्र भूषण युक्त है उसके लिये सच्चे प्रेम के अतिरिक्त हम और अर्पण ही क्या कर सकते हैं ॥५॥

कालाधीश्वर चक्रशंख विलसत्पाणे ! जगद्भक्षक ?
त्वं नारायण एव सर्वजगतां स्रष्टाप्यहोरक्षकः।
इत्येवं वहुधाऽपि घोषणरवैराहूय च त्वामहं
भग्नाशोऽस्मि तथाऽपिते पदयुगं मन्मूर्ध्नि भूषायते ॥६॥

काल के अधीश्वर चक्र शंख से शोभायमान हाथ वाले ! प्रलय काल में जगत् को खाने वाले ! आप नारायण रूप होकर समस्त जगत की सृष्टि रक्षा करने वाले हो। इस प्रकार अनेक प्रकार से चिल्ला चिल्लाकर मैं आपको बुलाबुला कर थक गया। किन्तु आपके दर्शन न मिलने से निराश हो गया हूँ। तथाऽपि आपके दोनों चरण कमल मेरे मस्तक पर भूषण के समान शोभित हो रहे हैं ॥६॥

मातुं भूमितलं समस्तमपि यत्पादाब्जतो वामन !
त्वं जातोऽत्र नवाङ्घ्रि पंकजरतास्त्वां भायिनं संश्रिताः।
नाहं त्वां हरिमर्चयन् कुसुमतो धन्योऽस्मि पाद्यादिभिः
दिव्यंतेऽस्ति तथापि चात्मनि हि मे वेदान्त गूढ़ वपुः ॥७॥

प्रभो आपनें अपने चरणों से भूमि और रसातल को नापने के लिये ही वामन रूप धारण किया था। उस समयमें आपके चरण कमलों की भक्ति वालों ने आपकी शरण ली थी। परन्तु मैंने तो दुर्भाग्यवश सर्व प्रकार से पूजा करने योग्य आपका फूल जलादि लेकर पूजन करके धन्यवाद का पात्र बनने की चेष्टा नहीं करी। तथापि वेदान्तों में छिपा हुआ आपका दिव्य विग्रह मेरे मन में बसा हुआ है ॥७॥

प्रीत्या चात्मनि मे त्वमुज्वलतनुर्ज्ञानात्मक स्सर्वतो
लोकान्सप्त च सम्प्रविश्य सकलं भूत्वा स्वयं भ्राजसे।

आत्मा मे तव वश्य एव च तवाप्यात्मा वशो मे हरे
दृष्ट्वा चाखिलमित्थ मिन्यपि च तद्वक्तु न शक्यं हिमे ॥८॥

प्रभो आप मेरे हृदय में सर्वत्र ज्ञान स्वरूपी उज्वल शरीर धारण करकें प्रीति से विराजमान हो रहे हो। सातों लोकों में घुसकर सर्व रूपी होकर स्वयं प्रकाशमान हो रहे हो। हे हरे मेरा अन्तःकरण आपके वश मे और आपका अन्तः करण मेरे वश में है। इस प्रकार समस्त वस्तुओं की स्थिति को देखकर मैं यह नहीं कह सकना कि अमुक वस्तु में ईश्वर है। और अमुक में नहीं हैं ॥८॥

वक्तु नैवहि शक्तिरस्ति ममते कीर्त्यब्धिपारं कदा
यामिश्रीधर भक्तिवश्य हृदयो मुग्धोऽस्मि तेजोनिधे
सर्वस्मात्पर दिव्यलक्षणगुणः श्रीसूरिसंस्तव्य भो.
देवश्रीपुरुषोत्तमाद्य करवै स्तोत्रं तवाज्ञोऽप्यहम् ॥९॥

प्रभो मैं जब आपके गुणों का कथन भी यथार्थ रुप से नहीं कर सकता तो आपके कीर्नि समुद्र का पार कब पा सकता हूँ। हे लक्ष्मी-पते! तेज के भण्डार, आपकी भक्त परवशता को विचार कर मैं तो बहुत ही व्याकुल हो गया हूँ। आप सर्वेश्वर हो तथा दिव्य लक्षण वाले गुणों से परिपूर्ण हो। निन्यमुक्त जिनकी निरालस्य होकर सदा स्तुति किया करते हैं। हे पुरुषोत्तम देव! मैं बहुत ही अज्ञानी होकर भी आपकी स्तुतिकरनेकीचेष्टा कररहाहूँ क्या यह आपको सहनहोगा।

सर्वत्र फैली हुई चन्द्रमा की संपूर्ण चान्दनी को एक चकोर नहीं पी सकता। तो भी जितनी उससे पी जाती है। उतनी ही पीकर वह अपने जीवन को सफल बनाता है। इस प्रकार प्रभुके अपार गुणों में से जिससे जितना वर्णन हो सके उतना वर्णन करके ही वह अपना उद्धार कर सकता है ॥९॥

स्तोतु चेत् प्रवणोऽम्यहं च सकला लोकास्स्वयं श्रीधर
स्साक्षादच्युत एव च स्तुतिरियं किंवाऽस्ति शक्याक्वचित्।

दिव्यं तन्मधुदुग्धमेव मधुरं किं शर्कराखण्ड ए
वाहो स्वित्त्वमृतं किमित्यहमपि स्तौम्येनमुज्जीवितुम् ॥१०॥

मैं ही अकेला प्रभु की स्तुति करता हूँ सो नहीं, किन्तु सम्पूर्ण लोक वासी भी लक्ष्मीपति की स्तुति करने में स्वयं लगे हुए हैं। तौ क्या उस अविनाशी की इस प्रकार से यथार्थ स्तुति हो सकती है। उसकी सर्वाङ्ग पूर्ण स्तुति करना यद्यपि हमारी शक्ति के बाहर है। तथापि हम जितनी कर सकें वही हमारे लिये मधु दुग्ध शक्कर खाँड़ से भी मधुर स्वादिष्ट है। अथवा इस से भी अधिक जरामरण नाशक प्रभाव वाली है। अतएव अपने आत्मा के उद्धार के लिये हम उसकी स्तुति करते हैं ॥१०॥

नान्यत्साधनमस्ति सर्वजगतामुज्जीवनायेत्यसौ,
श्रीकृष्णस्य पदाब्जयुग्मनुतये गाथासहस्रं मुनिः ।
दिव्यश्रीकुरुकेश्वरश्शठरिपुः प्राह स्वयं ये पुन-
स्तत्रेदं दशकं पठन्ति भुवि ते भूमेर्दिवश्चेश्वराः ॥११॥

इस संसार में प्राणियों के उद्धार का अन्य उपाय नहीं है, ऐसा विचार करके श्रीकृष्ण के चरण युगल की भक्ति करने के लिये ही कुरुकापुरी के स्वामी शठकोपमुनि नें स्वयं दिव्य गाथा सहस्र कहा। इसमें जो पुरुष भूमि पर इस दशकको पढ़ेंगे वे भूमि के ऐश्वर्य को प्राप्त होकर स्वर्ग के ऐश्वर्य के भागी बनेंगे ॥११॥

इति श्री सहस्रगीतौ चतुर्थशतके तृतीयदशकं समाप्तम् ।

अथश्री सहस्र गीतौ चतुर्थशतके चतुर्थदशकारंभः।

इस दशक में पूर्वोक्त प्रकार से प्रभु को सर्वस्व समर्पणकरके उनकी स्तुति करते करते आल्वार जब तन्मय हो गये। तो प्रभुने देखा कि कहीं आल्वार आनन्द मग्न हो कर विदेह न हो जायँ,इस लिये अपनी मूर्ति उनके सामने से छिपा लेते हैं। फिर उनके दर्शन न होने से विरह से तप्त होकर आल्वार उन्मत्त के समान हो जाते हैं यह बात नायिका की माता के वाक्यों के रूप में कहते हैं।

भूमिं स्पृष्ट्वा किलेयं वदति मम सुता वामनेनैव पूर्वम्
पादाक्रान्ता धरेयं त्विति गगनतलं वीक्ष्य तद्वासदेशम् ।

श्रीवैकुंठ हि वक्ति स्वकर युग मुखाद्दर्शयन्ती च साश्रुः
प्राहेनं वार्धिवर्णं किमहह करवै मत्सुतोन्मादकर्त्तुः? ॥२॥

हाय यह मेरी पुत्री यह कह कर कि इस पृथ्वी को पहले समयमें भगवान ने नापा था। भूमि पर लेट जाती है। और आकाश मण्डल में मेरे स्वामी का वास स्थान है ऐसा कह कर बार बार आकाश की ओर देखती है। यह अपने दोनों हाथ और मुख के संकेत (इसारे) से वैकुण्ठ को कहती है। और फिर आंसुओं की अविरल धारा बहा कर प्रभु को हे समुन्द्र वर्ण! कह कर विल्लाती है। अहह मेरी पुत्री के ऊपर मोहनी मधुर मूर्ति का जादू डाल कर उसको उन्माद (पागल पन) कराने वाले उसका मैं क्या करूं।

अत्यन्त भक्ति परवश चेतन की दशा देख कर बुद्धिदेवी जो विचार प्रदर्शन कराती है उसी का रूपक नायिका की माता के शब्दों में शठकोपमुनि नें कहा है॥ १ ॥

कृत्वाचाञ्जलिबन्धमेव शिथिली भूतस्वभूपोत्कर-
द्वन्द्वाद्वारिनिधिं प्रदर्श्य च रविं श्रीसस्य वासस्थलम्।
तेजो राशिनिधिं प्रदर्श्य च रविं श्रीशस्य बिम्बोऽयमि-
त्येवं मे तनुजाऽश्रुपूर्णनयना नारायणेत्याः कथम् ॥२॥

ओ हो यह मेरी पुत्री शिथिल हो गये हैं भूपण जिनके ऐसे दोनों हाथों से अञ्जली बाँध कर समुद्र की ओर इशारा करके कहती है। यह मेरे स्वामी के सोने की शय्या है। अति तेज वाले सूर्य को बता कर कहती है कि यह मेरे स्वामी की मूर्ति है। इस प्रकार नेत्रों से निरन्तर आसुओं की धारा बहाकर हे नारायण पुकार कर शिथिल हो जाती है। हाय आज मैं इसको कैसे समझाऊं।

रात्री के समय समुद्र तट पर बैठे हुये प्रभु की चिन्ता में आळवार मग्न थे कि एकाएक समुद्र पर दृष्टि गई उसीको प्रभुका शयन स्थान मानकर कुछ धैर्य आया। थोड़ी देर सूर्योदय हुआ सूर्यको देखतेहैं आपने जाना कि आज साक्षात प्रभु मुझे दर्शन देनेके लिये प्रगट हुए हैं

अतः हाथ जोड़कर उनकी प्रार्थना करने लगे ॥ २ ॥

आलिंग्याग्निमयं ममाच्युत इति प्रेम्णोज्वलं मे सुता
चित्रं नैवहि दह्यते च पवनं स्पृष्ट्वाऽपि चाश्लिष्य च ।
गोविन्दो मम सोऽयमित्यपि वदेद्गन्धस्तुलस्या भवेत्,
पापिन्याऽद्य नवेद्यते किल मया किंकिं करोति भ्रमात् ॥३॥

अहह यह मेरी पुत्री प्रज्वलन्त अग्नि को देखकर यह मेरा अविनाशी स्वामी है, कहकर बड़े प्रेम से उसे आलिंगन करती है। परन्तु जलती नहीं यह बड़ा आश्चर्य है। यह शीतल पवन को देख कर छाती खोलकर उससे मिलती है। और कहती है कि यह मेरा स्वामी वही गोविन्द है। तभी तो इसमें तुलसी की सुगन्ध आती है। हाय मुझ पापिनी को तो इस का यथार्थ पता भी नहीं लगता कि यह उन्माद में आकर न जाने क्या क्या करती है।

ऐसा जान पड़ता है कि आलवार को भगवत् मंत्र की पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो गई है। तभी तो वे प्रल्हाद के समान आश्चर्यचरित करने लगे प्रल्हाद भी अग्नि में बैठे हुये बड़े धैर्य से पिता से कहते हैं कि,

"रामनाम जपतां कुतोभयं सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्यतातमगात्रसन्निधौपावकोपि सलिलायतेऽधुना ॥"

समस्त पापों को शान्त करने वाले रामनाम को जपने वालों को भय कहां। पिताजो देखिये तो सही मेरे शरीर के पास में जलता हुआ यह अग्नि उसी के प्रताप से मेरे लिये जल के समान शीतल हो गया है।

चन्द्रं पूर्णकलं प्रदर्श्य मणिवर्णं श्रीहरिं तंवदे-
दद्रिं वीक्ष्य किलस्थिरं प्रणयिनं तं नायकं चाह्वयेत् ।
वर्षंतं च विलोक्यवारिदमियं नारायणं त्वागतं,
मत्वा नृत्यति कोमला मम सुता भ्रान्ता कृता साम्प्रतम् ॥४॥

यह मेरी पुत्री पूर्ण चन्द्रमा को देखकर कहती है कि ये मणि वर्ण हरि भगवान हैं। पर्वत को देखकर यह कहकर के कि यह मेरा विशाल नाथ प्राणनाथ है बुलाती है। वर्षते हुए बादल को देख

कर समझती है कि मेरे ऊपर कृपा पीयूष की वर्षा करने वाले नारायण आये हैं। ऐसा मान कर नाचती है। हाय कोमलांगी यह आज किसी ने पागल करदी है।

चन्द्रमा को उज्वल कीर्ति मान प्रभु समझना। पर्वत को त्रिविक्रम भगवान् समझना। मेघ को श्याम सुन्दर समझ कर मयूर के समान नाचना इस प्रकार यह व्यामोह सुकुमारी प्राण प्यारी पुत्री को बढ़ता ही जाता है। इस की यह दशा कैसे सुधरे माता का ऐसा अभिप्राय है॥ ५॥

वत्सानाश्लिष्य सेयं सुतरुणवयसस्ते च गोविन्दपाल्या,
इत्येवाह स्वयं चाप्यनुसरति हठात्सर्पमेवप्रयान्तम्।
तस्येयं भाति शय्येत्यहह मम सुतामीदृशींभ्रान्तचित्तां,
मायावी कोमलां किं वत वत कुरुते हन्त वल्लीं नजाने॥५॥

यह तरुण और सुकुमार बछड़ों को देख कर उनको पकड़ने के लिए दौड़ती है। और कहती है कि इन्ही बछड़ों को गोविन्द ने बड़े प्यार से चराया था। सर्प को जाते देखकर उसके पीछे दौड़ती है और कहती है कि यह मेरे चितचोर प्रभु की शय्या है। किसी मायावी ने कोमलांगी मेरी पुत्री को पागल बना दिया है। और न जाने इस वल्ली के साथ वह क्या क्या नाटक करता है। उसका तो मेरे को पता भी नहीं है।

बछड़ों को देख कर यह समझ कर कि बछड़े आये हैं तो उन का चराने वाला गोविन्द भी आ जायगा उनको पकड़ती है। सर्प को देखकर यह समझती है कि प्रभु इस पर सोते हैं। यह उस प्रभुके पास हीजाता है। इसलिए इसके पीछे जाने से प्रभु मिल जाँयगे ऐसा समझकर उसके पीछे जाती है॥ ५॥

लीलासक्ता घटैश्चेन्मम किलतनयां चानुयात्येव कृष्णो
गोविन्दोऽयं ममेति भ्रमवशहृदया वेणुनादे च मुग्धा।
सोऽयं मायीति दृष्ट्वा सपदि च नवनीतं तु तद्युक्तमाह,
श्रीशः किं पूतनाया असुहरणपटुः कोमलां मेऽद्य कुर्यात्॥६॥

जब नट लोग कुम्भ धारण करके नृत्य लीला करते हैं। तो उनको श्रीकृष्ण समझकर पकड़ने को दौड़ती हैं। और कहती हैं यह मेरा गोविन्द है। उत्तम वेणुका शब्द सुनकर बड़ी व्याकुलता के साथ कहती है कि यह वही मायावी कृष्ण है। गोपियों का माखन देखकर कहती है कि ओहो हमारे प्रभुनें इसे ही खाया था। विपकी बहिन लक्ष्मी का पति जो पूतना के प्राण हरण करने में बड़ा ही चतुर है। वह न जानैं कोमलांगी मेरी पुत्रीके साथ क्या क्या धृष्टता करैगा ॥६॥

विश्वं कृष्णेन सृष्टं वदति किल महामोहवश्या यदि स्या-
दूर्ध्वां रेखां विलोक्य भ्रमत इह तदीयत्व बुद्ध्याऽनुधावेत्।
दृष्ट्वा सेयं तुलस्या दलमपि वदति स्रक् च नारायणस्ये,
त्येवं मुग्धाऽप्य मुग्धाऽपि च किल कमला मायिनस्तस्य वश्या ॥७॥

यह मेरी पुत्री मोह को प्राप्त होकर कहती है कि यह सम्पूर्ण विश्व मेरे प्रभु कृष्ण की रची हुई है। भस्म अथवा श्वेत मृत्तिका के ऊर्ध्वपुण्ड्र धारियोंको देखकर भ्रम वशमें आकर उनको ईश्वर भक्त जान कर उनके पीछे दौड़ती है। सुगन्ध तुलसी पुष्पों को देखकर कहती है कि यह तो नारायण की माला है। इस प्रकार यह लक्ष्मी ज्ञान अज्ञान दोनों अवस्थाओं में उस मायावी के वश में हो गई है।

समस्त सृष्टि प्रभु की है। यह तो ज्ञान दशा है। और भस्म की ऊर्ध्व रेखा वालों को भगवद्भक्त समझना अज्ञान दशा है। इन दोनों दशाओं में जिसकी उस प्रभु के चरणों के ध्यान में अखण्ड समाधी लगी है। उसको लक्ष्मी ही कह सकते हैं ॥७॥

भूपालान्वीक्ष्य पूर्णान् हरिरयमनघश्श्रीधरश्चेति वक्ति,
भ्रान्ता नानापदार्थानपि वदति हरिं लोकमातारमेव।
देवागाराणि वक्ति स्वयमपि सहितान् विग्रहैरालयादीन्,
भीता वा हन्त मुग्धासततमपि भवेत् कृष्णपादाब्जसक्ता ॥८॥

यह जब वस्त्र भूषण से पूर्ण राजाओं को देखती है तो कहती है कि आज तो मैंने लक्ष्मीपति के दर्शन कर लिये। यह पागल के

समान होकर ऊँचे और लम्बे पदार्थोंको देखकर लोकों को नापने वाले विष्णु उन्हें बताती है। अन्य देवताओं के मन्दिरों को देखकर उनको परम प्रभु के ही मन्दिर बताती है। यह मेरी पुत्री भयभीत होकर अथवा वेहोश होकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में बड़ी ही आसक्त हो गई है ॥८॥

दृष्ट्वा सन्यासिवर्गान् विपुलतमजगद्रक्षकं वेत्ति विष्णुं,
नीलान्मेघान्विलोक्य स्वयमपि च हरिः कृष्ण इत्युत्सरन्ती।
सेयं दृष्ट्वा पशूनां निवहमपि स आगच्छतीत्येव गच्छे-
देवं वाला ममेयं सपदि वहुतमां मायिना मोहिताऽस्ति ॥९॥

यह जब संसार को त्याग कर भगवत् शरण हुए परम भागवतों को देखती है। तो कहती है कि अति विशाल संसार की रक्षा करने वाले भगवान् विष्णु ये ही हैं। नीले मेघोंको कृष्ण का स्वरूप समझकर-उनको पकड़ने के लिए ऊपर को उछलती है। गौओं को देखकर कहती है कि हमारे प्यारे गोपाल इन गौओं के पीछे आते हैं। इस प्रकार यह मेरी भोली बची को किसी मायावी नें बहुत ही मोह लिया है ॥९॥

मुग्धा सादृश्य दृष्टौ। परित इह तमेवानुचिन्त्यापि पश्येत्,
दूरादागच्छतीत्यप्यहह। ननु भवेत्स्वेदतश्चद्रुताङ्गी।
उच्छ्वासैस्साश्रुनेत्रा भवति च नितरां सीदतीवाह्वयेत्तं,
हे! कृष्णेति ब्रुवन्ती मदवशहृदया मत्सुता किन्नु कुर्याम् ॥१०॥

यह उस प्रभु के समान आकार वाले पदार्थों को देखकर चारों ओर उसी का ध्यान करके कहती है कि देखो! वे मेरे प्राणनाथ आते हैं। कह कर बहुत दूर तक दौड़ती है। और इस दौड़ धूप में पसीना आनेसे हाँप जाती है। कभी कभी लम्बे लम्बे श्वांस लेकर घबड़ाती हुई आंसू बहाकर उस प्रभुको बुलाती है। हे कृष्ण! आओ इस दासी को दरश दिखाओ कहती है। प्रभु के प्रेममें मदमाती यह मेरी पुत्री न जानें क्या-क्या करेगी ॥१०॥

पापध्वंसं शठारिमुर्निरयमनघस्तोतु मेवात्र कृष्णं,
सूक्तीसाहस्रसंख्या अवददिह शुभं ये पठन्त्येव तत्र ।
दिव्यानीमानि पद्यान्यपि दश किलते दिव्य वैकुण्ठमेत्य,
प्रध्वस्ताशेषपापा गुरुवरविनुता यान्ति साम्राज्यसिद्धम्॥११

आश्रितों के पाप को नाश करने वाले श्रीकृष्ण की स्तुति करने के लिये। पाप रहित शठकोपमुनि नें कल्याण कारक सुन्दर छन्द वाली सहस्रगीति को कहा। उसमें जो भक्तगण इन दिव्य दश श्लोकों को पढ़ेंगे वे सम्पूर्ण पापों से छूटकर बड़े बड़े गुरुवरोंसे पूजित होकर श्री-वैकुण्ठ को प्राप्तहोकर सर्वप्रकार की श्रेष्ठसिद्धी को प्राप्त हो जांयगे ॥११॥

इति श्री सहस्रगीतौ चतुर्थशतके चतुर्थदशकं समाप्तम् ।

अथश्री सहस्र गीतौ चतुर्थशतके पंचमदशकारंभः।

इस दशक में -पूर्वोक्त प्रकार से जब आल्वार प्रभुके दर्शनों के लिये अति व्याकुल हो रहे थे। तो प्रभु ने अपनी मन्दस्मित श्याम मूर्ति को दिखा कर उनको प्रसन्न कर दिया। इस प्रकार जब मुनि का मोह शान्त हो गया तो पार्षद गण सहित प्रभु का मंगला शासन करने लगे-यह कहा है।

दिव्यास्थानपदस्थितोऽपि, भुवनान्येतानि सप्तापि य-
स्स्वामी शास्ति निरङ्कुशश्च सुगुणैश्शान्त्या च दुर्वाजिहा।
तंस्वस्तीति पुनः पुनश्चकरतो वद्ध्वाञ्जलिं स्तोत्रत-
श्चानन्यास्मि कृती ! न सप्तजनिषु काप्यास्ति हानिस्तु मे॥१५

जो परम प्रभु दिव्य वैकुण्ठ में विराज मान होकर भी समस्त संसार का शासन (रक्षण) करते हैं। जिस का शासन करने वाला दूसरा कोई ईश्वर नहीं है। जो आप स्वयंशुभ गुण और शान्ति में एक अद्वितीय है। अश्व रूपी दुष्टकेशी का जो विनाश करने वाले हैं। उन प्रभु को हाथों की अंजली बांध कर स्तुति द्वारा प्रसन्न करके तथा बार बार स्वस्तिरस्तु (आपका मंगल हो) कहकर मैं कृतार्थ हो गया। अब मेरा सात जन्मों तक कुछ बिगड़ने वाला नहीं है।

पाठकगण आपको यहां पर यह शंका हुई होगी कि, 'स्वस्ति कह-कर आशीर्वाद आपस में से छोटे व्यक्ति को दिया जाता है । सर्वेश्वर को नगण्य एक जीव आशीर्वाद दे यह बात कैसे संभव हो सकती है । अतएव हम इस विषय में यहां कुछ सांप्रदायिकता से सम्बन्ध रखने वाली शास्त्रीय विवेचना लिखते हैं । संभव है श्रद्धालुओं का उस से मन संतोष हो जायगा ।

यह बात तो निर्विवाद है कि समस्त चेतन वर्ग ईश्वर का शेष है (क्षरात्मानौ वीशते देव एकः) श्वेता । इत्यादि श्रुति प्रमाण से सिद्ध है । शेष की सत्ता शेषी के अतिशय बढ़ाने में है । जो शेषी का कुछ अतिशय नहीं बढ़ाता वह शेषत्व कोटिच्युत हो जाता है। इसलिये शेष का कर्तव्य है कि वह शेषी की वृद्धि का इच्छुक होकर स्वरूपानुरूप उसका मंगलाशासन करै । यह अर्थ बहुत गुप्त और सांप्रदाय गम्य है अत विशेष रूप से किसी सदाचार्य से श्रवण करने से ही हृदयंगम होगा ॥ १ ॥

धत्ते यस्त्वसितेक्षणामुरसि तां पद्मालयां श्रीधरं
तं रक्ताम्बुजलोचनं ममकवेः पद्यैस्तु हृद्यैरहम् ।
सूरीणाधिदेवमच्युतमहो ! स्तुत्वा कृती भूतले
सर्वक्लेशविनाशकोऽस्मि च हेर्विष्णोर्मुखोल्लासतः ॥२॥

जो श्रीधर काजलवालेनयनों की इस कमल वासिनी' लक्ष्मी को धारण करते हैं । जो नित्य सूरियों के अविनाशी इष्ट देव है । जिस के रक्त कमल के समान नेत्र हैं । उस सर्व पाप हरण कर्ता विष्णु की अति रमणीय पद्यों से स्तुति करके मैं कृतार्थ हो गया । और उस प्रभु के मुखोल्लास (प्रसन्नाकृति) से संसार के सर्व प्रकार के क्लेशों को नाश करने की शक्ति मेरे में उत्पन्न हो गई है । यह मुझे बड़ा आश्चर्य है ।

नित्यानन्दसमृद्ध मच्युत महो ! माहात्म्य सीमातिगं,
पद्ममाद्यं सुरवृन्दसेव्यमनिशं स्तोतुं च गीतैर्मम ।

मालारूपधरैस्तु पद्यनिचयैर्हृद्यै रहं भाग्यवान् !
प्राप्यैनं परमां समृद्धिमभजं ह्यानन्दसिन्धोरहम् ॥ ३ ॥

जो अच्युत (अविनाशी) नित्य प्रति बढ़ते हुये आनन्द वाले हैं। जिस के माहात्म्य की सीमा ही नहीं है। सर्व देव गणों से सेवा करने योग्य उस पुण्डरीकाक्ष को मैं अपने माला रूप अति रमणीय पद्यों के गीतों से निरन्तर स्तुति करने के लिये प्राप्त होकर उस आनन्द सागर के प्रभाव से परम समृद्धि (बड़ा भारी उन्नति) को प्राप्त हो गया हूँ। क्या इस संसार में मेरे समान भाग्यशाली कोई दूसरा हो सकता है ॥ ३ ॥

नित्यं ये दृढभक्तियुक्तहृदयास्तेषां समस्ताघहं,
संश्लेषेण च तार्क्ष्यवाहनममुं श्रीचक्रपाणिं हरिम् ।
वाचा गातुमहं कृती विरचयन् मे पद्यमालामिमां !
किं किंवाऽद्य करोति मां मम विभुश्श्रीशोऽन्तरात्मास्वयम् ॥४॥

जो प्रभु नित्य ही अपने चरणों की दृढ़ भक्ति वाले भक्तों को स्वयं संश्लेष (दर्शन स्पर्शन भाषण) कर के उनके समस्त पापों को नाश कर देते हैं। चक्रपाणि गरुड़गामी उस हरि को अपनी वाणी से गान करने को पद्यों की माला समान रचना करके मैं प्रसन्न करना चाहता हूँ कि, वह सर्व व्यापक लक्ष्मी पति स्वयं मेरे हृदय में आकर बैठा है। आज न जाने वह मुझ से क्या क्या करवावेगा ॥ ४ ॥

सन्मार्गान्मम दर्शयंतमनघं देवाधिदेवं प्रभुं,
दिव्यार्थान्मम बोधयन्तमपि तं गीतागुरुं श्रीधरम् ।
पापव्याधिततिप्रशान्तविधये मे पद्यमालामिमां,
कृत्वा स्तौमिहि सन्ततं च ! परमानन्दं भजेऽहंततः ॥ ५ ॥

वह प्रभु मेरे हृदय में बैठ कर मेरे लिये सन्मार्ग के दर्शन कराता है। सम्पूर्ण देवों का भी जो देव है। जो सर्व पाप और दोषों से रहित है। जो मेरा निरुपाधिक स्वामी है। जिसने अर्जुन की मोह

शान्ति करने के लिये, दिव्य गीता का ज्ञान सुनाया था। जो लक्ष्मी पति मेरे लिये भी अनेक प्रकार के दिव्य अर्थों का ज्ञान करता है। मैं भी अपने पाप और रोग समूहों को नष्ट करने के लिये इस पद्य माला (सहस्र गीतिः) को करके उस प्रभु की स्तुति करता हूँ। इसी से निरन्तर परमानन्द मुझे मिलता रहता है

मेघश्यामलमूर्तिमञ्जनविधौ चूर्णाशरम्याम्बकं,
सूरीणामधिदेवमच्युतमहं स्तुत्वाऽद्य पद्यैर्मम ।
गीतैर्भोक्तुमयं कृती किल महान् धन्योऽस्मि ! किंवाऽधुना,
हन्त ! प्राप्यमितः परं च मम यत्पूर्णोऽस्मि भाग्यैरहम् ॥६॥

जो प्रभु मेघ के समान श्याम सुन्दर विग्रह वाला है। जिसके दोनों नेत्र सुर्मा को लगाने से शोभित हो रहे हैं। नित्य मुक्तों के जो सर्व श्रेष्ठ देव है। उसी अविनाशी को मेरे बनाये पद्यों से स्तुति करके, गान द्वारा अनुभव करने में कुशल मैं, बड़े धन्य भाग्य वाला हो गया हूँ। जब सम्पूर्ण प्रकार के भाग्यों से मैं परिपूर्ण हुआ हूँ। तो क्या इससे अधिक प्राप्त करने योग्य मेरे लिये कोई अन्य पदार्थ संसार में बाकी रह गया है।

जो बड़भागी प्रभुको प्रसन्न कर लेते हैं। उनको संसार के सभी पदार्थ सुलभ हो जाते हैं। महात्माओं का कथन है—

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो सुप्रसन्नो जनार्दनः ॥
जापै कृपा राम की होई, तापै कृपा करैं सबकोई ।

एकोऽसौ सततं समाधिकतरैर्हीनो हरिश्श्रीधरो,
लोकानां प्रभुरच्युतो गिरिधरो वर्षात्स्वयं रक्षकः ।
नाथं तं मम हृद्यपद्यकुसुमस्रग्भिर्हरिं भूषितं,
कर्तुं भाग्यमिदं चतस्य कृपया लब्धं ! न मेऽन्यस्पृहा ॥७॥

सर्व पाप हरण कर्ता जो लक्ष्मी पति सर्व श्रेष्ठ सर्वेश्वर अकेला ही है। जिसके समान और अधिक कोई व्यक्ति नहीं है। जो

लोकों का अविनाशी स्वामी हैं। इन्द्र के प्रकोप से व्रजको नष्ट करने के लिये की गई वर्षा से व्रज की रक्षा करनेके लिये जिसनें गोवर्द्धन पर्वत को अपने एक हाथ पै धारण किया था। उस मेरे स्वामीको। मेरे अति सुन्दर पद्मकुसुमों की माला बनाकर शृङ्गार करने का सौभाग्य मुझे उसकी दिव्य कृपा से जब प्राप्त हो गया तौ संसारके अन्य किसी पदार्थ को लेने की मेरी इच्छा नहीं है ॥७॥ -

अस्माकं परमः प्रियश्च सततं लक्ष्म्याश्च योऽसौ पति
भौमानां दिवि वासिनामपि हरिर्नाथश्च पद्मोढ़पात्।
तं स्तोतुँ मम सूक्तिहारततिभिर्भाग्यंहि मे वर्तते !
न स्यान्मे परमे पदेऽपि च समः कश्चित् स्वयं भाग्यवान्॥८॥

जो प्रभु लक्ष्मी का पति है। और हमारा परम प्रिय है। जो हरि भूर्लोक, भुवर्लोक स्वर्गलोक वासियों का भी स्वामी है। अति कोमल शीतल कमल पर जिसके चरणस्थापित होते हैं। उस प्रभुको मेरी सुन्दरवाणी (काव्य) का हार बनाकर स्तुति करने के लिये मेरा जब स्वयं भाग्योदय हुआ हो तौ परमपद में भी मेरे समान भाग्यवान् कोई नहीं होगा ॥८॥

स्वर्लोके परमे पदेऽपि च भुवि स्थानेषु भूमेरधो-
देशेष्वष्टदिशासु चाच्युतमसुं सर्वेश्वरं रक्षकम्।
अन्तर्गर्भविशालशंखविलसद्बाहुं स्तुवन्माधवं,
कुम्भोल्लासि परात्परं कवयिता सोऽहं कविर्निस्समः ॥९॥

जिस प्रभु का अति विशाल उदर वाले शंख से शोभायमान बाहु है। जो कुंभकन्य से अति प्रसन्न होने वाला है। जो ब्रह्मा शिवादि से श्रेष्ठ है। उस अविनाशी सर्वेश्वर सर्व रक्षक माधव को काव्य द्वारा स्तुति करने वाला कवि मेरे समान स्वर्गलोक परमपद और भूमि के नीचे बसने वाले स्थानों में तथा आठ दिशाओं में भी कहाँ है। नहीं मेरे समान काव्य रचने वाला तौ मैं ही हूँ दूसरा कोई नहीं हो सकता ॥९॥

भुक्त्वा चापि समुद्गिरन्तमपि तं चाक्रम्य पादेनच,
प्रोद्धृत्यापि शयानमेव मभिषिक्तालंङ्कृतस्वासनम्।
राज्ये चोत्सवसम्भ्रमान्वितममुं प्रत्यत्तचेष्टाकुलं,
स्तोम्येवं जगदीश्वरंद्र विडसद्दन्धैर्बुधानां प्रियैः ॥१०॥

जो प्रभु प्रलय समय में सर्व जगतको खाकर सृष्टिके समय फिर इसे उगल देते हैं। फिर उस जगत पर तामस प्रकृति वालों का अधिकार होने पर त्रिविक्रमरूपसे अपने पैरसे नापकर स्वाधीन कर लेते हैं। नष्ट होते हुए का वराह रूप से उद्धार करते हैं। इस जगत् का कल्याण चिन्तन करने को समुद्र में सोते हैं। रामावतार में राज्याभिषेक करा कर अपने सिंहासन पर विराजने से उस की शोभा बढ़ाकर उत्सव में आने वालों के सत्कार में अनेक चेष्टाओं से व्याकुल इस जगदीश्वर को मैं विद्वानों को अति प्रिय द्रविड भाषा के उत्तम पद्यों से इस प्रकार स्तुति करता हूँ ॥१०॥

वर्षैः सन्ततशीतले सुरुचिरे श्रीवेंकटाद्रौ प्रभुं,
सस्याढ्यैस्सुसमृद्धदिव्यकुरुकापुर्य्याश्शठारिः प्रभुः।
स्तोतुं चाहसहस्रपद्यसरणिं रम्यां महात्मा मुनि-
स्तत्रेदं दशकं भुवीह पठतां पद्मालयाऽघं हरेत् ॥११॥

वर्षा से अति शीतल और अनेक प्रकार के हरे खेतों की समृद्धि (बढ़वार) से अति रमणीय श्रीवेंकटाद्रि में विराजमान प्रभु की स्तुति करने के लिये कुरुकापुरी वासी महात्मा शठकोप मुनि ने अति रमणीय सहस्र पद्यपद्धति (श्रीसहस्रगीति) कही उसमें इस दशक को जो पढ़ेंगे उनके संपूर्ण पापों को लक्ष्मीजी नष्ट कर देंगी ॥११॥

इति श्री सहस्र गीतौ चतुर्थशतके पंचम दशकं समाप्तम्।



अथ श्रीसहस्रगीतौ चतुर्थशतके षष्ठदशकारम्भः

इस दशक में भगवद्विरहव्याकुल होकर आल्वार नायिकावस्थाको प्राप्त हो जाते हैं तब नायिका की माता उसकी मूर्च्छा दूर करने के लिये भून झाड़ने वालों को बुलाती है। उनके उपाय से जब दुःख शांत नहीं होता तो नायिका की सखी माता से कहती है कि प्रभुके नामों का स्मरण और उनके भक्तों की चरणरज ही इसके दुःख को दूर कर सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य औषध नहीं।

मातः पश्यनिदानमेव हि रुजोप्यस्या न विज्ञो वयं,
किं पश्याम चिकित्सकान् कथमिदं चेत्येव चिन्त्येत चेत्।
अस्या रोगनिदानमद्यहि वयं नीर्णीय विज्ञस्त्वियं,
युद्धे पंचजयावहस्य रमणी श्रीपार्थ सूतस्य हि ॥१॥

हे मातः! देख तो सही आज हमारी सखी को जो रोग हुआ है, उसके कारण का तो पता किसी चिकित्सक (वैद्य) से भी नहीं लगता है। और न यह हमसे अपना रोग नहीं कहती है। परन्तु अनेक विचार करने पर हमें यह निश्चय हुआ है कि पाँच पाण्डवों की युद्ध में विजय कराने के लिये जो अर्जुन का सारथी बना था। उसकी यह रमणी (पत्नी) बनना चाहती है। उस श्यामसुन्दरने ही इसके मन को हरण किया है। इसीलिये उदास मनसे यह उन्मत्त प्रलाप करती है॥१॥

मोहोऽयं हि रुजैव सम्भवति! यद्देवं महत्त्वाद्भुतं,
तत् क्षुद्रा नहि देवतास्तु भवतामस्यारुजः कारणम्।
भ्रान्तिमास्तु यथा शृणोति च तथा तच्छङ्खचक्रे स्वयं,
यूयं कीर्तयताद्य तत क्षणमियं मोहं त्यजेत् पश्यत ॥२॥

सखी फिर कहने लगी कि इस सखी को मोह और रोग जो बढ़ रहे हैं वे किसी बड़े देवता के प्रभाव से है। क्षुद्र देवता इसके रोग उत्पन्न नहीं कर सकते। आप लोग घबड़ाइये नहीं, इस मतवाली के पास जाकर प्रभु के शंख चक्रों का कीर्तन करो। जब यह शंख चक्रधारी प्रभु के नामों का श्रवण करेगी तो तत्काल इसकी मोह दशा (बेहोशी) तुम्हारे देखते देखते ही दूर हो जायगी ॥२॥

क्षुद्रोऽयं तु न हि क्रमोऽवत वत प्राप्तुं च बिम्बाधरा-
मेनामुत्पल लोचना महहा ! भीतात्वियं सीदति ।
देवं मत्तगजप्रणाशकममुं संकीर्त्य नाम्ना हरिं,
तत्पादाम्बुजरेणुभिश्च कुरुताद्यैनान्तु संजीविताम् ॥५॥

इस लाल होट वाली कमल नयन नायिका के दुःख दूर करने के लिये। यह क्षुद्र (भूतावेश से नाचने वाला) कोई क्रम (नियम) नहीं जानता है । देखो तो इस क्षुद्र (स्याने) को देख कर तो वह और भी भयभीत हो गई है। अरी माई ! मतवाले हाथी को मारने वाले हरि के नामों का कीर्तन करके और उसके चरणों की रजसे स्नान करा कर ही इसे जीवित करो। इसको जीवित करने का अन्य कोई उपाय नहीं है ॥५॥

यूयं हन्त ! वृथैव सन्ततमपि भ्रान्ताः किलास्यारुजं,
संवर्ध्यश्रमवत्य एव नहि सन्तापोऽस्ति शान्तोऽधुना ।
दिव्यं तन्मणिवर्णमायि भगवत्पादाब्ज भाजां सतां,
पादाम्भोजरजः प्रयोजयत भो ! नान्यद्भवेदौपधम् ॥६॥

हे माता ! आप तो व्यर्थ ही इस के रोग को दूर करने के लिये अनेक प्रकार के भ्रम जाल में पडकर परिश्रान्त हो रही हो। क्या भूता वेश वालों को नचाने से इसका रोग दूर हो जायगा ? नहीं देखो उससे तो इसका दुःख शान्त अभी नहीं हुआ। इसके रोग को दूर करने की औपध तो नीलमणी के समान वर्णवाले भगवान् के चरणों के भक्तों की चरणरज ही है। परम भागवतों के चरण रजोऽभिषेक को छोडकर दूसरी कोई औपधि इसके रोग को दूर नहीं कर सकती ॥६॥

अस्या औपधमेतदित्यपि वृथा यूयं सुरां चाजम
प्युदिश्यापि भुजादिचालनवशादावेशवश्या इव ।
नृत्यन्तः किमहो ? किमस्तितुफलं दृष्ट्वाऽत्रस्पन्दनं
व्रीडन्ते वत रासभस्य ? भजत श्रीशं श्रितान् श्रोत्रियान्॥७॥

हे माताओ ! आप यह न समझें कि मदिरा और बकरा बलि-दान देकर देवाविष्ट पुरुषों को हाथ पाँव फैलाकर नचवाना और वैशाख के महीने में गधा के समान उनके दाँतों को देख कर यह आशा करना कि दुःख सन्तप्त इस विरहिणी के दुःख दूर करने की यही औषध है। यह व्यर्थ की दुराशा मात्र है। इसकी औषध तो भग-वदाश्रित वेदपाठी विद्वान् ही है। वैदिक परम भागवतों का आशी-र्वाद और उनके श्रीपादतीर्थ ही इसके सर्व पाप तापों को नाश करेगा, अन्य नहीं ॥ ७ ॥

वेदार्थज्ञमुखात्प्रपद्य चरणाम्भोजद्वयं श्रीपते
स्सूरीणां मपिनायकस्य तु हरेद्रोगं किलास्याः क्षणात् ।
एवं हन्त ! न कुर्वते किलजना युष्मादृशा देवता
वाद्यैर्मद्ययुतार्पणैरुपचरन्त्येवेरयवज्ञा हिवः ॥ ८ ॥

वेदज्ञ सदाचार्य के द्वारा नित्य सूरियों के स्वामी लक्ष्मीपति के चरण कमलों की शरणागति ही इसके सम्पूर्ण रोगों को क्षण भर में समूल नष्ट कर देगी। इस प्रकार इस परमौषध को न करकें आपके समान लोग क्षुद्र देवतों को बाजे बजाकर मदिरा समर्पण करके उन की सेवा करते हैं, यह बडा नीच काम है। स्वरूप नाशक इस कार्य से हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ नहीं होगा ॥ ८ ॥

क्षुद्रैः कल्पितमेववाद्यनिचयं संशव्य च स्तोत्रतः
क्षुद्रावेश युतास्तु यूय मिति यद् द्रष्टुं न शक्यं मया ।
क्षेमं सप्तकुलान्वयादपि परं दिव्यौषधं प्राक्तनं
तच्चेदं कुरुतांऽघ्रिपङ्कजयुगं कृष्णस्य नत्वा सदा ॥ ९ ॥

नीचों द्वारा गाकर बजाये गये बाजों की बड़ी भारी प्रशंसा करकें क्षुद्र देवाविष्टों को तुम नचाती हो, यह नीच कर्म मेरे से तो नहीं देखा जाता। सर्व रोगों को समूल नष्ट करने वाली जो प्राचीन औषध है। जो सात पीढ़ियों तक का कल्याण करने वाली है। उसी औषध को करो वह यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण के दोनों चरण

कमल को प्रणाम करो। बस यह भगवत् शरण रूपी महौषध ही समस्त दोषों को दूर करदेगी ॥ ९ ॥

नान्येहेवमियं स्मरेदुपचरेत्कृष्णात्परं श्रीपते
यूयं स्वाभिमतं प्रजल्प्य च भुजान् स्वैरं प्रचाल्यापि वः ।
यत्नानेव वृथाश्रिताः किल परित्यज्येदमद्यागमै
र्वेद्यं द्वारवतीपतिं स्तुत नुतेस्सेयं परं नृत्यति ॥ १० ॥

यह विरहिणी तो लक्ष्मीपति कृष्ण को छोड़कर अन्य देव का स्मरण पूजन नहीं करेगी। आप लोग चाहे अपने मनमानी बात कह कर और अपने हाथों को नचाकर व्यर्थ के कामों को भले ही करो। परन्तु मेरी प्यारी यह सखी तो इन व्यर्थ कार्यों को छोड़ कर वेदवेद्य द्वारकापति श्रीकृष्ण की स्तुति करके नाचती है। इसी से इसके सर्व दु.ख दूर होगये हैं ॥ १० ॥

नत्वाश्री मणिवर्णमेव सततं नृत्येषु सक्तो हरिं
प्राप्य ध्वस्तसमस्तरोगसरणिः ख्यातश्शठारिर्मुनिः ।
दिव्यां चाह सहस्रपद्यसरणिं दुर्देवतावेशनुत्
तत्रेदं दशकं पठन्ति यदि ते निर्दुःखगन्धास्स्वयम् ॥११॥

नीलमणिवर्ण हरी को प्रणाम करके निरन्तर नृत्य में आशक्त हरि की शरण लेने से ही जिसके समस्त रोग मार्ग नष्ट होगये हैं। दुष्ट देवताओं के आवेश रूपी इन्द्रजाल को नष्ट करने वाले भक्त समाज प्रसिद्ध शठकोप मुनि ने दिव्य पद्यों वाली सहस्रगीति को कहा है। उसमें इस दशक को जो पढ़ेंगे, वे स्वयं सर्व दुःखगन्धों से छूटकर सुखी हो जाँयगे ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्रगीतौ चतुर्थशतके षष्ठदशकं समाप्तम् ।



अथश्री सहस्रगीतौ चतुर्थशतके सप्तमदशकारंभः।

इस दशकमे आल्वार यह कहते हैं कि प्रभो न तो आप मुझे आकर स्वीकार करते हो। और न इस दास को ही अपने पास ले जाते हो, यह महा पापरूपी दुःख मुझ से नहीं सहा जाता जल्दी से ही इस दास को स्वीकार करके कृतार्थ करिये।

लोकानामसि रक्षकस्त्वमनिशं ज्ञानस्वरूपो हरि
हे नारायण ! माधवेति सततं त्वामेव सङ्कीर्तयन्।
द्रष्टुं सुन्दरमूर्तिमेव हि तव श्रीनाथ कांक्षे सदा
नायासि त्वमहो न मां नयसि चेत् क्षुद्रस्य मेऽघं महत् ॥१॥

हे हरे ! आप दिव्यज्ञान स्वरूपी होकर समस्त लोकों की सदा रक्षा करने वाले हो। हे लक्ष्मीनाथ ! मैं अति क्षुद्र आपकी सुन्दर मूर्ति को हे नारायण ! हे माधव ! इत्यादि नामों को निरन्तर कीर्तन करके इस नाम कीर्तन के बल से ही देखना चाहता हूँ। परन्तु दीर्घ काल तक करुण क्रन्दन करने पर भी आप आकर अपने दर्शन नहीं देते हो। और न इस विरोधी शरीर को अलग करके इस दास को ही अपनी चरण सन्निधि में ले जाते हो। अति नीच स्वभाव वाले मेरे पापों की न जाने कब समाप्ति होगी ॥ १ ॥

मातुं भूमितलं हि वामनवपुस्त्वं मामुदाराशय,
स्वानन्दामृतवारिधौ च कुरुषे मग्नं महानित्यहम्।
एवं हन्त दिवानिशं च सततं त्वामेव सङ्कीर्तये,
मायामूर्तिरहो न मे नयनयोर्द्रष्टुं हि पात्रं भवान् ॥२॥

हे प्रभो ! इस भूमि को नापने के लिये आपने वामनरूप धारण किया था। परन्तु मेरे को तो आप अति उदार हृदय के बनकर महानन्द समुद्र में डुबो रहे हो। मैं भी इसी आनन्द सागर की ललित लहरों के आनन्द लूटने के लिये दिन रात निरन्तर आपका ही कीर्तन करता हूँ। परन्तु बड़ा आश्चर्य है कि अपनी इच्छा से अनेक मूर्ति धारण करने वाले आप अपनी श्याम सुन्दर मन्दस्मित मूर्ति के दर्शन देकर मेरे नेत्रों के पात्र नहीं बनते अर्थात् अपने पवित्र दर्शनों से

इस दास के नेत्रों को आनन्द युक्त नहीं करते हैं। प्रभु के दर्शनानन्द में एक बार पहले आल्वार कृतार्थ होते हैं। अब प्रभु ने उनको नाम स्मरण में तो निरन्तर लगा दिया परन्तु पूर्ववत्साक्षाद्दर्शन नहीं देते। और ये उस दिव्य-दर्शनानन्द को तृषित हैं। अतएव ऐसा कह रहे हैं ॥२॥

पादाभ्यां जगदाक्रमं रचयिता स्वामी च दामोदरो,
विख्यातोऽस्ति भवानिति स्वयमहं तद्घुष्यंचाद्राशयः।
पूर्णाश्रुर्यदिचास्मि मां न हि भवान् पापी किलासीत्य हो,
वाचं वक्ति ममास्ति पाप सरणिर्नित्या विनाश्या ततः ॥३॥

प्रभो! आपने अपनानिर्हेतुक वात्सल्यभाव दिखाने के लिये, अपने चरणों से जगत् को आक्रमण किया था। और वात्सल्य भावकी परमावधि दिखाने के लिए ही आप दामोदर (पेट में रस्सी बन्धे हुए) बने थे। यह तो बात प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार आपके वात्सल्य भाव की रटना लगा कर ही मैं आंसू बहा रहा हूँ। आप यदि मुझे अत्यन्त पापी समझ कर दर्शन नहीं देते तो एक बार आकर यह तो कह दो कि भाई तुम पापी हो। परन्तु आप तो ऐसा भी आकर नहीं कहते अस्तु मेरा यह पापपुञ्ज भी तो आपको ही नाश करना पड़ेगा॥३॥

ब्रह्मेन्द्रादिसुरव्रजैरपि भवान् भक्तैर्न दृश्योऽस्त्यहो,
माहात्म्यं तव तादृशं हि परमं स्वामिन् सुवर्णाकृते।
पश्चात्त्वमिहैव मे नयनयोर्दृश्यो भवेत्यप्यहं,
निर्लज्जो ननु वच्मि नीचहृदयः किं स्यात्फलं मेऽत्र वा ॥४॥

अहह प्रभो! मैं कितना निर्लज्ज हूँ और कितनी नीचता और धृष्टता करने को तुला हुआ हूँ। सुवर्ण के समान व्यामोहक विग्रह वाले! ब्रह्मशिवादि देवगण तथा उच्चकोटि के भक्तवर नारद सनकादिकों को भी जिसके दर्शन दुर्लभ हैं। इतना बड़ा सर्वोच्च तो आपका माहात्म्य है। हे पुण्डरीकाक्ष स्वामिन्! आप आकर मेरे नेत्रों के सामने दर्शन दीजिये। इस प्रकार अति नीच मैं कहता हूँ। तो इस मेरी अनधिकार चेष्टा का फल ही मेरे को क्या होगा।

मैं आपके सर्व महानैश्वर्य्य को जानता हुआ भी जो दर्शन की भिक्षा मांग रहा हूँ, उसका कारण केवल आपकी भक्तवात्सल्यता का विचार ही है, यह अभिप्राय है ॥४॥

स्वामिन्नाश्रित वत्सलोऽसिहि हरे श्रीचक्रपाणे भवान्
वीरो वारिधिमन्थनो ननु भुजैर्दिव्यैश्चतुर्भिस्तव ।
इत्येवं सततं सबाष्पनयनः प्राणैश्च शुष्कायितै-
राक्रन्दाम्यधुनैव सत्वरमहं द्रष्टुं हिमे चापलात् ॥५॥

जब आप ब्रह्मादि से भी दुराराध्य हैं तो मैं अपने स्वभाव चापल्य से, यह कहूँ कि हे हरे! आप स्वाश्रितों के वत्सल (प्यारे) हो। और उनके विरोधियों को नाश करने के लिये ही आपने चक्र भी अपने हाथ में लिया है। आपने स्वाश्रित देवगणों की प्रार्थना से उन्हें अजर अमर बनाने के लिए अमृत निकालने के लिए अपनी दिव्य चारों भुजाओं से धीर रूप होकर समुद्र मन्थन किया था। तौ क्या आज मेरी इस क्षुद्र प्रार्थना को पूरी न करेंगे। इस प्रकार निरन्तर आँसू वाले नेत्रों से और सूखे हुए प्राणों से अभी आपको देखने के लिए ही चिल्ला रहा हूँ ॥५॥

अन्तर्मे हृदयेऽपि चात्मनि बहिश्चापि स्वयं सन्ततं,
भास्वानेव भवानिति स्वयमहं ज्ञात्वाऽपि चान्तर्हृदि ।
द्रष्टुं त्वां बहुधाऽस्मि चापल वशो नेत्रद्वयेनेत्य हो,
मौढ्यं मे महदस्ति दुस्सहमिदं किं दुर्निवारं भवेत् ॥६॥

यद्यपि मैं इस बात को जानता हूँ कि आप मेरे हृदय और आत्मा के बाहर और भीतर स्वयं निरंतर प्रकाशमान हो रहे हो। तथापि मेरे भीतर हृदय में चपलताके कारण यह अभिलाषा है कि मैं अपने नेत्रों से भी आपकी दिव्यमूर्तिके दर्शन करूँ। प्रभो! यह कितनी बड़ी मूर्खता है। किन्तु अत्यन्त असह्य इस मूर्खता के दूर करनेका कोई उपाय भी तो नहीं है, किया क्या जाय?।

पूर्व गाथोक्त प्रकार से आल्वार प्रभु की दर्शनत्वरा में लगे हैं

कि प्रभुने कहा कि हम सर्वत्र व्यापक हैं । अतएव हमारे सर्व व्यापक रूप का अनुभव करके तुम सन्तोष करलो । व्यर्थ किसी की चिन्ता में पड़कर क्यों शरीर और प्राण सुखा रहे हो । इसके उत्तर में यह गाथा है । अर्थात् जिस सूक्ष्मरूप से आप सर्वत्र व्याप्त हैं उससे हमें संतोष नहीं होता । हमको आपकी स्थूल श्याम सुन्दर मूर्ति का ही दर्शन संतोष कारक होगा । ६॥

स्वामिन् दिव्यसुगन्धरम्यतुलसीमालाढ्य सर्वेश्वर,
त्वांदृष्ट्वाऽपि च चक्षुषा हृदि सदा निध्यायशान्तोऽन्तरा ।
एषोऽहं ममचान्तरात्मनि हरिं ज्ञानैक मूर्तिं परं ?
कृत्वा त्वां जनिमृत्युपाशसरणेर्मोहाच्च दूरीकृतः ॥७॥

हे स्वामिन् ! दिव्य सुगन्धित तुलसीकी अति सुन्दर मालाको धारण करने वाले सर्वेश्वर ! आपको नेत्रों से देखकर हृदय से ध्यान करके मेरा अन्तरात्मा शान्त हो गया है । आजमैं ज्ञान स्वरूप हरि की मूर्ति को अपने पवित्र हृदय में स्थापित करके, जन्म मृत्यु के पाशमार्ग से और अनादि काल के अज्ञान से छूटकर दूर हो गया हूँ ॥७॥

दृष्ट्वा त्वां तव पादपद्मयुगले हस्तैस्समर्प्याप्यमी,
भक्त्या सर्वदिशोपलभ्यकुसुमान्याराध्य च स्तोत्रतः ।
हृष्टास्सम्प्रति गीतनृत्यसहिता भक्ता वयं स्याम चे,
त्ये वं त्वं तुलसीस्रजाऽञ्चितविभो लोकेऽत्र नागच्छसि ॥८॥

प्रभो ! हम चाहते हैं कि आपके दर्शन करके फिर पड़े भक्ति भाव से सर्व दिशाओंमें उत्पन्न होने वाले पुष्पों को आपके चरण युगल में समर्पण करें । और इस प्रकार आपका स्तोत्रों से आराधन करके, प्रसन्न चित्त से भक्ति के सहित इस समय गान करें, नाचा करें, इस प्रकार अपने समय को व्यय करने में लग जायें । परन्तु प्रभो ! आप तुलसी की हरी सुगन्धित माला को धारण करके, इस लोक में नहीं आते हो । क्या प्रेमी भक्तों को विरह में तड़फाना ही आपका परम ध्येय है ॥८॥

अन्नंनैव ददामि जातु चिदहं पानीय मप्यर्थिने,
ज्ञातुँ नैव जयामि पंचकरणग्रामं न भक्त्या सदा ।
पुष्पैरर्चयितुं यते स्तुतिपरः पापी किलाज्ञोऽस्म्यहं,
द्रष्टुं चक्रधरं तथापि कुतुकी पश्याम्यहं क्वाच्युतम् ॥९॥

प्रभो ! आपकी प्रसन्नता के उद्देश्य से कभी किसी भिक्षुक को मैं अन्न जल का दान नहीं करता हूँ । पंच इन्द्रियों (नेत्र त्वचा घ्राण श्रोत्र रसना) को जीतना तो मैं जानता ही नहीं । इस प्रकार पाप कर्मरत मैं अज्ञानी सदा भक्ति के साथ अनेक प्रकार की स्तुति करके पुष्पों से आप का पूजन करने का ही प्रयत्न करता हूँ । तथा चक्र धारण करने वाले आपको देखने की मेरी बड़ी लालसा भी है । परन्तु अविनाशी उस आपके दर्शन को मैं कहाँ पाऊँगा ॥९॥

स्वामिन् चक्रधरेति चार्तहृदयो नम्रश्च साश्रुस्सदा,
त्वामन्विष्य विषादवानहमहो पापी न पश्यामि हि ।
दिव्यज्ञाननिधिं हरिं मुररिपुं वेदैकवेद्यं किल,
त्वामालिंग्य कृती भवामि मनसा मज्ज्ञान दृष्ट्या भजन् ॥१०॥

हे स्वामिन् ! हे चक्रधारी ! इस प्रकार कहके दुखी हृदय से आँसू बहाकर प्रणाम करके तुमको मैं ढूँढते ढूँढते थक गया, परन्तु इस पापी ने तुमको नहीं देख पाया । मेरे मनमें यह अभिलाषा बनी रही कि दिव्य ज्ञान के भण्डार हरि मुरदैत्य को मारने वाले समस्त वेदों से अकेले ही प्रतिपादित होने वाले आपको आलिंगन करके कृतार्थ हो जाऊँ । और ज्ञान दृष्टि द्वारा तो आपकी सेवा करता ही रहा ॥१०॥

भक्त्याऽसौ दृढ भावबन्धभरितस्स्तोतुं सरोजाम्बकं,
रम्यश्रीकुरुकेश्वरश्शठरिपुः पद्यावलीं द्राविणीं ।
दिव्यां हि व्यतनोत्सहस्रगणितां तत्रापि येनर्तनै-
स्तच्चेदं दशकं पठन्ति भुविते वैकुण्ठमेवाप्नुयुः ॥११॥

भक्ति के दृढ़ भावों से भरे हुए कुरुकापुरी के अधिपति शठकोप मुनि ने कमललोचन भगवान् की स्तुति करने को द्रविड़पद्यमयी सहस्रगीति को बनाया है। इसमें जो पुरुष नृत्य पूर्वक इस दशक को पढ़ेंगे वे अवश्य ही वैकुण्ठलोक को प्राप्त हो जायेंगे ॥११॥

इति श्री सहस्र गीतौ चतुर्थशतके सप्तम दशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ चतुर्थशतके अष्टमदशकारम्भः

इस दशक में पूर्वोक्त प्रकार से प्रभुके मिलने की त्वरा में आल्वार करुण क्रन्दन करके व्याकुल हो रहे थे। परन्तु प्रभुने आकर उन्हें दर्शन नहीं दिया। तो उन्होंने समझा कि संसार का संबन्ध रहने से ही प्रभुने मेरी उपेक्षा (त्याग) की है इसलिए संसार के अन्य सम्बन्धों को नितान्त त्याग देना ही उचित है। यह प्रतिपादन किया है।

ईशानो वृषभध्वजोऽपि चतुरास्योऽपि स्वयं श्रीरपि,
स्वस्वस्थानमिति प्रियं वपुरहो ! यस्याश्रितास्तस्य तु ।
रक्षोवृन्दविनाशकस्य च हेरनोंचेत्प्रियं किं फलं,
सौंदर्येण महोज्ज्वलेन मणिवच्चास्माकमङ्गेषु वा ॥१॥

जो प्रभु स्वाश्रितों के विरोधी राक्षस कुल का नाश करने वाले हैं। जिसके दिव्य मंगल विग्रह को यह कह करके कि यह दिव्य शरीर तो हमारा अति प्रिय है। वृषभध्वज महादेव और चारमुखके ब्रह्माजी तथा लक्ष्मीजी भी अत्यन्त प्रेमके साथ उसको अपना २ स्थान समझ कर आश्रय लेते हैं। उस हरि का हमारा यह शरीर प्रेमास्पद न हुआ तो। हमारे अति उज्ज्वलसौन्दर्य तथा मणिके समान सर्वोच्च अङ्गों (मुख कर चरणादि) की शोभा से क्या फल है। हरि प्रेम विहीन ये सब निष्फल हैं। इसका स्पष्ट अर्थ श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी के पदों से इस प्रकार समझना चाहिये।

सोइ सुकृती शुचि सांचो जाहि राम तुम रीझे ।
गणिका गृद्ध वधिक हरि पुर गये ले करसी प्रयाग कब सीझे ॥
कबहुँ न डग्यो निगम मगते पग नृप जगजानि जिते दुःख पाये ।
गज धौ कौन दीक्षित जाके सुमिरत लै सुनाम वाहन तजि धाये ॥

सुर नर विप्र विहाय बड़े कुल गोकुल जन्म गोप गृह लीन्हों ।
बायों दियो विभव कुरुपति को भोजन जाइ विदुर घर कीन्हों ॥
मानत भलहिभलो भक्तन ते कछुक रीति पारथहि जनाई ।
तुलसी सहज सनेह राम वश और सबै जलकी चिकनाई ॥

यस्यो रस्यनिशं वसत्यहह ! सा नित्योज्वलश्रीरपि,
श्रीदेवी कमलातु यस्य च भुजौ वृत्तौ शुभौ पीवरौ ।
यश्चक्रं करतो विभर्त्यरिहरं तेनास्मि सेवाविधौ,
नित्यं चापि नियोजिता ! मम मनस्तस्याप्रियं निष्फलं ॥२॥

अहह जिस प्रभु के वक्षस्थलमें अति उज्वल शोभा वाली श्रीकमलादेवी निरंतरवास करती हैं। जिसके मोटे मोटे गोल भुजा बड़े ही सुन्दर हैं। जो प्रभु स्वाश्रितों के शत्रुओं के प्राण हरण करने के लिये चक्रधारण करते हैं। उस प्रभुने अपनी सेवा करने में हमको निरन्तर लगा दिया है। यदि अबभी हमने अपने मनसे उस प्रभुका सर्व-विध प्रिय नहीं किया तो हमारा यह नर जन्म ही निष्फल है ॥२॥

वत्सप्रीतियुतान्तु मातरमभूद्दुष्टाऽनुकृत्य स्वयं,
मायापूतनिरूपिणी विषमयस्तन्या पुरा यातु ताम् ।
हन्तुर्ज्ञाननिधेश्शिशोर्दृढ भुजस्यानन्त शय्याभृतः,
कृष्णस्याप्रियमेव यत्किलततः स्त्रीत्वात्फलं किंमम ॥३॥

जिस प्रभुने बच्चेपे अति प्रेम करने वाली माता की नकल करके स्तनों से विष लगाकर आई हुई माया रूप धारिणी पूतना को पहले मारा था। जो बालरूप धर कर भी ज्ञानका भण्डार है। जिसकी पर्वत के समान बलशाली भुजाएँ हैं। जो अनन्त (श्रीशेषजी) की शय्या के ऊपर शयन करते हैं। उस प्रभुके चरणों का हृदय में प्रेम नहीं आया, तो स्त्री होने से भी क्या फल है । अर्थात् स्त्री पुत्रादिक सब व्यर्थ है ॥३॥

स्त्रीसाद्गुण्ययुतां सुबाहुयुगलां नीलां शुभां सुस्तनीं
भोक्तुं यो वृषसप्तकं प्रमथयन् हृष्टो विचर्णाम्बरः ।

विभ्राणोऽपि चदुग्धपात्रमपि योदण्डं च घण्टामणिं
तस्येदं यदि नप्रियं ममतनोर्वर्णाच्छुभात्किं फलम् ॥ ४ ॥

जो प्रभु स्त्रियों के सर्व शुभ लक्षण युक्त तथा अति सुन्दर बाहु और स्तनवाली नीलादेवी का सम्भोग करने की इच्छा से सात वृषभों (साडों) को विमर्दन करके प्रसन्न हुए थे। जो नन्द के आँगन में विना वस्त्र के नंगे ही विचरण करते थे। फिर गोपाल बन कर दुग्धपात्र (गो दुहने के लिये) दण्ड (गौ रोकने के लिये) घण्टामणि (गौ के गले में बाँधने के लिये) धारण करता है। उस प्रभु की प्रिय सेवा इस शरीर से न हुई तो शुभ वर्ण (सुन्दर गोरा दर्शनीय रङ्ग) पाने से क्या फल है। अर्थात् सुन्दर शरीर पाकर प्रभु की प्रसन्नता के लिये उसका सर्वविध कैंकर्य नहीं किया तो, वह व्यर्थ ही है। इस गाथा में आल्वारने भगवान् कृष्ण के बालरूप की सेवा की प्रार्थना की है ॥ ४ ॥

पूर्णां पल्लवशोभयाऽपि च पृथक्कारागृहस्थां च तां
विख्यातां शुकभाषितां पुनरपि प्राप्तुं च रक्षोऽधिपम्।
हत्वा तन्नगरे प्रदह्य तुलसी सौगन्ध्य मौले हरे
भूसाम्राज्यभृतः प्रियं न यदि तज्ज्ञानं च मे निष्फलम्॥५॥

जिस प्रभुने चम्पक वृक्ष के पल्लवों के समान शरीर शोभा वाली और रावण के घर में कारागृह (जेलखाने) में रहने वाली तथा तोते के समान मधुरभाषिणी श्रीजनक नन्दिनी को प्राप्त करने के लिये राक्षसराज रावण के नगर लंका को जलाकर रावण को मारा था। और जिसने समस्त भूमण्डल का साम्राज्य शासन किया था। सुगन्धित तुलसी को मस्तक पर धारण करने वाले उस प्रभुका यदि हमने अपने ज्ञान से प्रिय कैंकर्य नहीं किया तो वह ज्ञान नितान्त व्यर्थ है।

इस गाथा में आल्वार ने चक्रवर्ती श्रीदशरथ नन्दन राजाधिराज जानकीपति श्रीरामचन्द्र भगवान् की सेवा करने का भक्तजनों को उपदेश दिया है ॥ ५ ॥

ज्ञानोपेक्षितहीनभूतलभुवां सर्वानुपायान् हरि-
र्दिव्यज्ञाननिधिश्शुभानुपदिशन् यो दिव्यमूर्तिः पुरा ।
आसीद्वामनरूपधृन्नधरणीं यो वंचनादग्रहीत्
तन्त्रज्ञस्य न तस्य चेत् प्रियमहो लावण्यतः किं फलम् ॥६॥

जिस हरि ने प्रथम सृष्टि की आदि में ज्ञानादि साधनहीन इस भूतल में दिव्य ज्ञान के निधि दिव्यमूर्तिरूप धारण करके दिव्य कल्याणकारक उपायों का उपदेश दिया था। जिस प्रभुने वामनरूप धारण करके वञ्चकना से पृथिवी को बलि से छीन लिया था। जो प्रभु सम्पूर्ण शास्त्र और देश कालोचित समस्त उपायों को भले प्रकार जानता है। उस प्रभु का प्रिय न हुआ तो उस सुन्दरता से क्या फल है अर्थात् वह व्यर्थ है ॥ ६ ॥

स्वाभाव्यान् मणिनीलवर्ण सुतनुर्दीप्तोज्ज्वलश्रीधर
स्सिंहोऽभूच हिरण्यकासुरमहावक्षोविदार्य प्रियः ।
भक्तानामपि शंखचक्रभृदसौ रक्षार्थमेवाच्युत
स्तस्येदं यदि न प्रियं वलयतः किं स्यात्फलं मे करे ॥७॥

जो प्रभु स्वभाव से ही नीलमणी के समान वर्ण वाले सुन्दर शरीर वाले हैं। जिसकी अति प्रकाशमान उज्ज्वल शोभा है। वही प्रभु नृसिंह रूप होकर हिरण्यकश्यप के अति विशाल वक्षस्थल को विदारण करके देवों के प्रिय भये थे, और भक्तों की रक्षा करने के लिये वह अविनाशी स्वयं शंख चक्रों को धारण करते हैं। सुवर्ण कङ्कण युक्त इन हाथों से उस प्रभु का प्रिय कैङ्कर्य नहीं किया तो ये व्यर्थ ही हैं ॥ ७ ॥

दिव्यध्मानसुपाँचजन्य मुखतश्चासीद्रिपूणां हृदि
प्रज्वालोऽस्य भयानलः किल पुरा भूम्यास्तु भारापहम् ।
ब्रह्मेन्द्रादिशिवादयोऽपितमिमं नत्वा स्वयं तुष्टुवु-
र्यद्यस्यास्ति नतु प्रियासुरुचिराकाँची च मे स्याद्वृथा ॥८॥

जिस प्रभुने भूमण्डल के भार को उतारने के लिये महाभारत संग्राम में दिव्य रथ पर बैठकर अर्जुनका उत्साह बढ़ाने के लिये अपने मुख से जिस समय पाँचजन्य शङ्ख बजाया था, तो उस समय शत्रुओंके हृदय में भयानक अग्निज्वर उत्पन्न होगया था। उस समय ब्रह्मा शिवादिकों ने स्वयं प्रणाम करके आपकी स्तुति करी थी। उस प्रभु का प्रिय कैङ्कर्य नहीं किया तो अति सुन्दर-रत्न जड़ित सुवर्ण की काञ्ची (कौंधनी) धारण करना हम लोगों का व्यर्थ हो है ॥८॥

कांचीदामलसत्तनुश्च मनुजा साऽभूदुषा च स्नुषा
कृष्णस्येति सुकीर्त्तिशौर्यशरधिर्बाणासुरो वीर्यवान् ।
छित्वा बाहुपरम्परामपि हरिस्तस्यास्त्यसौ योगभाङ्
निद्रावानिव शेषतल्प इह मे कायो वृथाऽस्याप्रियः ॥ ९ ॥

काञ्चीदाम (कौंधनी की लड़) से शोभायमान कमर वाली बाणासुर की पुत्री ऊषा श्रीकृष्णकी स्नुषा (पौत्र वधू) है इस प्रकारकी कीर्ति और शूरवीरता का जो प्रभु प्रधान कारण है। बाणासुर बड़ा बलवान् था। यह हरि उस बाणासुर की हजारों भुजाओं को काट कर अपने व्यूह रूप से शेषजी की शय्या पर योग निद्रा का सेवन करते हैं। इस प्रभुका इस शरीर से प्रिय कैङ्कर्य नहीं किया तो वह शरीर व्यर्थ ही है ॥ ९ ॥

नित्यं येतु शरीरपोषणपरास्तांश्चासुरान् खण्डयन्
भित्वा पर्वतसन्निभानपि हरिर्हृष्टोऽभवन्माधवः ।
तं पार्श्वे श्रितवान् हरश्च जटयागङ्गाधरो भक्तित
स्तस्यायं यदि नप्रियो ऽस्ति तु हरेरात्माऽपि मे स्याद्वृथा॥१०॥

तामसी प्रकृति वाले अधार्मिक, परलोक को न मानकर केवल अपने शरीर को ही पुष्ट करके पर्वत के समान अहंकार से उन्नत रहने वाले, असुर दलों का खण्डन करके जो लक्ष्मीपति अत्यन्त हर्षित हुए थे। श्रीशिवजी अपनी जटामें श्रीगङ्गाजीको धारण करके बड़ी भक्ति से जिस प्रभुके पास में आश्रय पाते हैं। उस हरि को यदि यह मेरा आत्मा प्रिय नहीं हुआ तो यह आत्मा व्यर्थ ही है।

इस दशक का अर्थ संक्षिप्त रूप से निम्न लिखित प्रकार से है।

न देहं न प्राणान्न च सुखमशेषाभिलषितं।
न चात्मानं नान्यत् किमपि तव शेषत्वविभवात्॥
बहिर्भूतं नाथ क्षणमपि सहे यातु शतधा।
विनाशं तत्सत्यं मधुमथन विज्ञापनमिदम्॥ स्तो० २०

न देहं-संसार के सुख भोगने में समर्थ भी देह भगवद्भक्ति विमुख हमें नहीं चाहिये। न प्राणान्-प्राणों की रक्षा के लिये ही देह सम्बन्ध आवश्यक है। प्रभु विमुख प्राण भी हमें नहीं चाहिये। प्राणों का आदर सुख भोगने के लिये है। अतएव प्रभु से विरुद्ध सुख भी हमें नहीं चाहिए। सुख सम्पादन करने के लिए अन्य आत्मादि पदार्थ हम चाहते हैं किन्तु प्रभु से विमुख हमारे स्त्री पुत्र राज्य धनादिक सौ सौ टुकड़े होकर आज ही इस धरा के असंख्य परमाणुओं में विलीन हो जाँय वे हमको नहीं चाहिये।

इसको महात्मा तुलसीदासजी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है कि-

जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो छांड़िये कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कन्त व्रजबनितन, भयो मुदमंगलकारी॥
नाते नेह राम सों मनियत सुहृद सुसेसव्य जहालों।
अञ्जन कहा आंखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहालों॥
तुलसी सो सब भांति परमहित पूज्य प्राणते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो॥ १०॥

आत्मानस्सकलाश्च यस्य वपुषि श्रीशस्य सन्धारिता
स्तं कृष्णं नवनीत दुग्ध दधिभुक्त्यासक्तचित्तं हरिम्।
स्तोतुं श्रीकुरुकेश्वरश्शठरिपुर्दिव्यं सहस्रं जगौ!
तत्रेदं दशकं पठन्ति यदिते धाम प्रयान्त्यव्ययम्॥ ११॥

जिस लक्ष्मीपतिने अपने शरीर में समस्त आत्माओंको धारण कर लिया है। व्रजके माखन दही दूध खानेमें जिसका मन बड़ा

आसक्त है । उसी कृष्ण की स्तुति करने के लिए कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनि ने दिव्य सहस्रगीतिको कहा है । उस में इस दशकको जो पढ़ेंगे वे अविनाशी धाम (वैकुण्ठ) को प्राप्त हो जाँयगे ॥११॥

इति श्री सहस्रगीतौ चतुर्थशतके अष्टमदशक समाप्तम् ।

अथश्री सहस्रगीतौ चतुर्थशतके नवमदशकारंभः ।

इस दशक में पूर्वोक्त प्रकार से भगवद्विमुखों का संग आल्वारको असह्य होगया इसी लिये संसार से सम्बन्ध रखने वाले भौतिक शरीर से छुडाकर अपनी आत्माको स्वीकार करने की प्रभुसे प्रार्थना करते हैं ।

प्रत्यर्थिस्मितपूर्वकाश्च विविधाः क्लेशा अमी भूतले
स्निग्धानां बहुदुःखहेतव इति ज्ञात्वा वयं त्वां श्रिताः ।
कारुण्याम्बुनिधे ! समुद्र मथन ! त्वत्पादपद्मद्वये
मामद्यैव नियोज्य मे कुरुतनोर्विश्लेषमात्यन्तिकम् ॥१॥

हे कृपा समुद्र ! इस भूमितल में हमारी विपत्तियों को देखकर शत्रुवर्ग हँसी उड़ाते हैं, और उस विपत्ति को देखकर मित्रोंके हृदय में बड़ा दुःख होता है । इस प्रकार सुखशून्य दुःखबहुल इस असार संसार से उकताकर ही हमने आपकी शरण ली है। समुद्रको मथ कर निकले अमृत से स्वाश्रित देवों को अजर अमर बनाने वाले प्रभो ! मुझे आज ही अपने चरण युगलों में मिलाकर इस मेरे पाँच भौतिक शरीर का मेरे आत्मा से सदा के लिये अत्यन्त विश्लेष (दूर) कर दीजिये बस यही मेरी प्रार्थना है ॥ १ ॥

मृत्युश्चापि हठाद्भवेदिह धनध्वंसोऽपि च ज्ञातयो
बन्धूनां निवहास्तलातलि पतन्त्येव प्रलापाकुलाः ।
हा ! हा ! हन्त ! जगत्क्लिेदृशमहो किं स्यान्न वेद्मि स्वयं
मां शेषं तव शेषनाथ कथमप्याहूय धन्यं कुरु ॥ २ ॥

अहह प्रभो ! हठ करके हमारी मृत्यु अभी हो जाय। हमारी जाति वाले और हमारा धन सर्व नाश हो जाय। सगे सम्बन्धिगण विलाप कर करके रसातल में चले जाँय। हाय प्रभो इसी प्रकार इस जगत् में और न जाने क्या क्या हो जाय। हे शेषजी के ऊपर सोने वाले स्वामी मैं आपका सर्व प्रकार शेष (दास) हूँ। अतएव मुझे तो आप शीघ्र ही बुलाकर अपने दिव्य धाम में बैठाकर धन्य भाग्य वाला करदीजिये यही मेरी महती प्रार्थना है ॥ २ ॥

प्रशास्त्यं च कुलीनतामपि भुवि ज्ञात्यादि वन्धूनपि
श्रीसौभाग्यमपि स्त्रियं च तरुणीं प्रासादमप्युन्नतम् ।
त्यक्तुं ये विलपन्ति मृत्युसमये दृष्ट्वा न चैतान् सहे !
सौन्दर्याम्बुनिधे न मां त्यज पुरेवाहूय दास्ये कुरु ॥ ३ ॥

हे प्रभो जो प्राणी मृत्युपाश में बंधकर अपनी प्रतिष्ठाको और उत्तम कुल में जन्म होने को तथा प्रतिष्ठा प्राप्त जाति के बन्धुओं को, सम्पत्ति को, शरीर सुन्दरता को, नवयौवना स्त्री को, गगनचुम्बी प्रासादों (महलों) को छोड़ने में विलाप करते हैं। उन क्षुद्र पुरुषों को देखकर मेरा हृदय अति व्याकुल हो जाता है। हे सुन्दरता के भण्डार इस प्रकार दुर्दशा भुगाने के लिये मुझे मत त्यागिये। इस दास को तो सर्व प्रथम बुलाकर अपनी दास्यवृत्ति मे लगा दीजिये ॥३॥

नित्यारूढसमृद्धसम्पदमपि स्वस्याग्निकल्पां स्वयं
दृष्ट्वाप्यस्ति धनातुरोऽत्र तमसा किं लोक यात्राविधम् ।
औदार्याम्बुनिधे हरे मणिनिभस्वाङ्ग स्वपादद्वये
नित्यं योजयितुं च मान्तु कृपया दासं जनं स्वीकुरु ॥४॥

अहह प्रभो ! लोकका कैसा विलक्षण स्वभाव है कि जो मनुष्य को भस्म करने के लिए अग्नि के समान है। उस नित्य बढ़ती हुई सम्पत्तिको देखकर भी तमोगुण के आवेशमें आकर अति तृष्णा के वशीभूत होकर प्राणी धन सञ्चित करने के लिए आतुर (जल्दबाज) हो रहे हैं। हे उदा[illegible] नीलमणीके समान

विग्रह वाले ! आप निर्हेतुक कृपा करके अपने चरण युगलोंमें मुझ दासको तो विलीन करके स्वीकार कर लीजिये ॥ ४ ॥

पृथ्वीं वारिधिसंवृतां हि मनुजा आश्रित्य तिष्ठन्त्यमी,
सर्वेचात्र हि संचरन्ति जननव्याध्याधिमृत्यार्तिभिः ।
क्रूरास्सन्ति च रौरवादिनरका एवं हि यात्रा नृणां,
दास्ये मां मणिवर्ण ! ते कुरु सदा मा मोहय श्रीधर ॥५॥

समुद्रसे घिरी पृथ्वीका आश्रय लेकर ये सब मनुष्य रहते हैं । और जन्मव्याधि जरामरण सभी के पीछे लगे हुए हैं । इसके उपरान्त महाभयानक रौरवादिक नर्क भी भोगने पड़ते हैं । इसी प्रकार मनुष्यकी इस लोक में यात्रा होती है । मणिके वर्ण वाले श्याम-सुन्दर मुझे इस घोर दु खदायी संसारमें मत फँसाओ । इस संसारके सम्बन्धको समूल नष्ट करके अपने दास भावही में मेरे को तो लगा लो ॥५॥

क्षुद्राः क्षोभमपीह बन्धनमपि भ्रष्टा नृणां पीडनं,
हा हा हन्त वधं च कुर्वत इमे स्वस्वोदरार्थं खलाः ।
धर्मंनैव विदुर्जगत्यहह किं यात्रेदृशी ? तेऽस्म्यहं,
दासोऽघी तुलसीस्रगन्वित ! सुधासिन्धो ! वृणुष्वाद्य माम् ॥६॥

अहह प्रभो ! इस संसारका कैसा भयानक कठोर वर्ताव है । कि इस अपने पापी पेटकी पूर्ति करने के लिये ही दुष्ट क्षुद्र हृदय वाले नर पशु सन्मार्ग से भ्रष्ट होकर निरपराधी सरल स्वभाव वाले प्राणियोंको बाँधकर पीड़ा पहुँचाते हैं । हाय दया रहित हृदय वाले उनका वध करके उनके रक्त से भीगे हुए उनका सर्वस्व खाकर अपनी तोंद फुलाते हैं । ऐसे पुरुष धर्माचरणका नाम तो स्वप्न में भी लेना नहीं जानते । हाय यह कैसी भयंकर लोककी चाल है । मैं अति पापी आप-का दास हूँ । तुलसी की माला से पूजित हे सुधा समुद्र ! इस दास-को तो आजही इस संसार से निकाल कर स्वीकार कर लीजिये । बस यही प्रार्थना है ॥६॥

भक्तः श्रीकुरुकेश्वरश्शठरिपुः प्रोचे सहस्रं शुभं,
तत्रेदं दशकं च तत्पदयुगं सम्प्रापयेत् प्राप्नुत ॥ ११ ॥

सुन्दर केश वाले सम्पूर्ण जगत् के रक्षक उस नारायण की जो सर्व श्रेष्ठ ज्योति स्वरूप है, स्तुति करते हुए उसके चरणों में जिनका मन आसक्त हो गया है। ऐसे कुरुकापुरी के स्वामी भक्तवर शठकोप मुनि ने कल्याण कारक सहस्र गीति को कहा। उसमें इस दशक को जो पढ़ेंगे वे उस प्रभु के चरण कमल को प्राप्त हो जायेंगे ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्र गीतौ चतुर्थशतके नवम दशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ चतुर्थशतके दशमदशकारम्भः

इस दशकमे जो मनुष्य अनेक क्षुद्र देवताओं की भक्ति करने पर भी दुःख रहित नहीं हुए उनको देख कर आलवार को बड़ी दया आई। अतएव उनके हित के लिये सर्वेश्वर सर्व दुःख निवर्तक श्रीमन्नारायणका परत्व प्रति पादन करते हैं।

देवाश्चापि सदा न सन्ति भुवनान्यात्मान एवं तथा,
सर्वं नास्ति तदा चतुर्मुखमुखान् देवांश्च लोकान् सृजन् ।
जीवांश्चाप्ययमादिनाथ इहहि श्रीरत्नसौधावृते,
भात्येवं कुरुकापुरे किमितरद्दैवन्तु मृग्यं च वः ॥ १ ॥

जिस समय प्रलयकाल में लोक और लोकों में बसने वाले देव मनुष्यादिक प्राणी वर्ग नहीं थे। तथा चन्द्र सूर्यादि नक्षत्र और पृथ्वी आदि तत्व भी नहीं थे। सर्व शून्य अन्धकार में प्रकृति की मौनावस्था में सन्नाटा छाया हुआ था। उस समय ब्रह्मादिक देव गण और संपूर्ण लोकों में बसने वाले असंख्य जीवों की सृष्टि जिसने की है। वही आदिनाथ भगवान् रत्नजटित शिखरों से ढके हुए कुरुका नगरमें आकर सर्व साधारण की दृष्टिके समक्ष प्रकाशित हो रहा है।

भक्तगण अत्यन्त सुलभ होकर आपके ही घरमें आकर अचल रूप से रहने वाले इस परमात्माको छोड़कर किसी दूसरे देवताको अपने कल्याणके लिए आपको ढूढ़ने की क्या आवश्यकता है। नहीं आपके सर्व मनोर्थोंको यह अर्चा रूपी आदिनाथ ही पूरे कर देंगे ॥१॥

युष्माकं किल दैवतं च सकलं युष्मांश्च पूर्वं सृजन्,
नित्यानन्तगुणाम्बुराशिरयमेवास्त्यादिनाथो हरिः ।
अस्येदं किल सन्निधान मखिलैर्लोकैर्भवद्भिस्सदा,
स्तोतव्यं कुरुकापुरं मणिमयं गानैश्च नृत्तैश्शुभैः ॥२॥

हे चेतनो ! आपके इष्टदेव शिव, सूर्य, गणपति, दुर्गादिक, देव गणोंको और आपकोभी जिस प्रभुने पहले रचा था। जो नित्य अनन्त गुणोंका समुद्र है। वही प्रभु यह आदिनाथरूप होकर विराजमान है। इस आदिनाथ का वासस्थान मणियों से जड़ा हुआ कुरुकापुरी का दिव्य देश ही आप लोगोंको और समस्त कल्याणेच्छु भक्तगणोंको गान और नृत्य करकें स्तुति करने योग्य है।

यद्यपि पुराणादि ग्रन्थोंमें शिव सूर्य गणेश, दुर्गादि देवोंको भी सर्व श्रेष्ठ बताया है। परन्तु सात्विक बुद्धि द्वारा जब हम वेदादि शास्त्रोंका यथार्थ अध्ययन करके उनका पुनः सिंहावलोकन करते हैं तो, यह बात स्पष्ट रूपसे ज्ञात हो जाती है कि सर्वश्रेष्ठ देव एक नारायण ही है। जराजन्ममरणादिकी फाँसी से छुड़ाकर अखण्ड नित्यानन्द मोक्ष उसकीही उपासनासे मिलती है। अन्य देवकी उपासनासे नहीं॥२॥

देवानप्यखिलानशेषभुवनं सृष्ट्वा स्वयं भक्षयन्,
गुप्त्वा चोद्गिरतीह माति च समुद्धर्ताऽस्ति लोका न् पुनः।
एवं हन्त विलोक्य शिरथ नहि यद्वैश्च वन्द्योहरि-
स्स्वाम्यास्ते कुरुकापुरे किमपरं देवं भवेद् ब्रूत भोः ॥३॥

जो आदिनाथ भगवान्-समस्त लोक और उनमें वास करने वाले देवादि प्राणी वर्गों को रचकर अन्त में सबको अपने पेटमें धर कर-रक्षा करते हैं। और प्रलय समाप्त हो जाने पर फिर सबको निकाल कर बाहर बसा देते हैं। और जो प्रभु चराचरको अपनी चरण छायामें लेनेके लिये नापभी लेते हैं। तथा अनेक प्रकारकी आपत्तियों से बचाकर जो लोकका उद्धार करते हैं। ब्रह्माशिवादिक जिसकी वन्दना अपनी विपत्ति दूर करने के लिये करते हैं। इस प्रकारकी उस

लोकेऽस्मिन्नखिलात्मकोऽस्ति हि भवानेव स्वयं सञ्चरन्,
स्थित्वा चास्ति न किंचिदन्य दहह त्वत्संश्रितं मां कुरु ।
आहूय स्वयमेव मां जनिजराव्याध्याधि हीनं कुरु,
श्रीमन्क्लेशभरार्दितेत्र जगति त्वं मां न त स्थापयेः ॥७॥

प्रभो ! इस लोक में आप सर्वत्र व्यापक हो रहे हैं। इस जगत् में चर अथवा अचर कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसमें आप व्याप्त न हों। हे श्रीमन् मुझे आप स्वयं अपना दास बनाने के लिए बुलाकर जन्म जरामरण दुःखोंसे हीन कर दीजिये, और असंख्य क्लेशों से भरे हुए इस जगत् में आप मुझे स्थापित मत करिये।

हम सांसारिक तापत्रय संतप्त चेतनोंमें आपके पास आनेकी शक्ति नहीं है। अतः आप ही हमें बुलाकर निर्हेतुक कृपासे दास बना कर स्वीकार कर लीजिए ऐसा कहा है ॥७॥

विश्वं सर्वमपि प्रकाश्य जठरे कृत्वाऽपि चोद्गीर्य च,
प्रोद्भाव्यापि पृथिव्यवग्निपवनाकाशान् बहिःस्थापयन्।
देवादीनपि तत्र चाण्डनिलयान् विभ्राजसे त्वं हरे !
प्राप्तुं ते परमं पदं पदयुगे ते मां कदा योजयेः ? ॥८॥

प्रभो ! सम्पूर्ण विश्वकी आप रचना करके ज्ञान द्वारा इसका प्रकाश करते हो। फिर प्रलयके समय में सबको पेटमें कर लेते हो। फिर बाहर निकाल कर इस विश्वको स्थूल जन्म देकरके पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनको अण्डभित्तिरूप से बाहर स्थापित कर देते हो। इस प्रकार ब्रह्माण्डोंमें वास कराने वाले देवगणोंको स्थापन करके आप सर्वोपरि विराजमान हो रहे हैं। आप अपने चरण युगलों-को प्राप्त करने के लिये उनसे आप मुझे कब मिलायेंगे । यही तीव्र लालसा लगी है ॥८॥

भोग्ये त्वच्चरणारविन्दयुगले त्वं योजयस्याश्रितान्,
प्राज्ञैर्देवगणैरपि स्वयतनैर्गम्यो न हि त्वं हरिः ।

स्वामिन् नागशयाद्य वेद्मि हृदयं तेऽहं चदासो जनो,
मां चानन्यपरं विधाय तव पादाब्जे किलायोजयः ॥९॥

प्रभो! अति भोग्य आपके चरणारविन्दों में आप अपनी निर्हेतुक कृपा से अपने आश्रितों (भक्तों) को लगा देते हो। विना आपकी कृपाकी सहायताके ज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्माशिवादिक देवगण अपने किये उद्योगों से आपको प्राप्त नहीं हो सकते। स्वामिन्! मैं आपका दास हूँ। अतएव आपके मनकी बात को मैं भले प्रकार जानता हूँ। हे शेष शायिन्! आज मुझे अपना अनन्यदास बनाकर अपने चरणों में मिला लीजिये।

शुद्ध भाव वाला भक्तही प्रभुको यथार्थ जान सकता है अन्य नहीं,

मायां न सेवे भद्रन्ते न वृथा धर्ममाचरे। महाभारते आरण्ये।
शुद्धभावं गतो यस्माच्छास्त्राद्वेद्मि जनार्दनम् ॥
जौ पै दुष्ट हृदय सो होई। मोरें सन्मुख आव कि सोई ॥
निर्मल मन जन सो मोहिंपावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा॥९॥

दृष्ट्वा कर्ण्य परिस्पृशन्नपि किलाघ्रायापि भुक्त्वेन्द्रियै-
र्नाना भोग्यसुखं त्यजन्नपि च तात्मानुभूतिं त्यजन्।
श्रीदेवीं रमणीयभूषणयुतां त्वां चाप्रमेयं हरिं,
दृष्ट्वा मे पुरुषार्थमप्रतिभटं प्राप्तोऽस्मितेऽङ्घ्रिद्वयम् ॥१०॥

प्रभो! इस संसार में अनेक प्रकार के भोग सुखों को (देखने योग्य को देखा, सुनने योग्य को सुना, छूने योग्य को छुआ, सूंघने योग्य को सूंघा,) इन्द्रियों से भोग कर छोड़ दिया। इन्द्रिय सुखको छोड़ने के पीछे आत्मानुभवको भी (सुख प्राप्ति की आशा से) छोड़ दिया। अति मनोहर भूषणवाली श्रीदेवी को तथा सर्व श्रेष्ठ आप हरि का दर्शन करके ही मैं सर्वोत्तम पुरुषार्थ रूप आपके चरण-युगलों को प्राप्त हुआ हूँ ॥१०॥

सर्वेषां जगतां शरण्यमपि तं नारायणंके शवं,
ज्योतिश्चापि परं स्तुवन्नपि च तत्पदाब्जसक्ताशयः।

प्रभुकी महिमाको देखकर क्या आप यह नहीं जानते कि वही सर्वका स्वामी कुरुकापुर में आकर स्थित है ? क्या आप बता सकते हैं कि इमसे बड़ा भी कोई देव है ? ॥३॥

ख्यातस्यापि शिवस्य तस्य च विधेरन्यात्मनां चाप्यहो,
नाथोऽसौ हि कपालमोक्षचरिते दृश्यं किलैतत्तु वः ।
तेजोधाम्नि च रम्यवप्रकुरुकापुर्यां चकास्तीश्वर,
स्तस्मिन्दोषलवब्रुवामपि फलं किं वास्त्यहो लिङ्गिनाम्॥४॥

पुराण प्रसिद्ध वैभवयुक्त शिव और उनके पिता ब्रह्माजी तथा अन्य गणेशादि देवगणोंका वह विष्णु स्वामी है। यह बात शिवजी के कपाल मोक्ष चरितसे स्पष्ट जानी जासकती है। वही साक्षान्नारायण चमकती हुई दीवाल वाले परकोटासे घिरी कुरुकापुरीमें विराजमान हैं। उस निर्दोष सर्वेश्वरमें भी कुछ दोष कहने वाले लिङ्गायतों को क्या फल प्राप्त होगा इसका पता नहीं।

एक समय किसी कारणवश ब्रह्मा और शिवजीमें लड़ाई हो गई, तो क्रुद्ध होकर शिवजीनें अपने पिता ब्रह्माका शिर काट लिया कटा हुआ शिर शिवजीके हाथसे चिपटगया। इस प्रकार ब्रह्महत्या और पितृहत्या लगनेसे और सिर का कपाल हाथमें चिपट जानेसे शिवजी बड़े घबड़ाये। उस कपालको छुड़ानेके सभी यत्न (तीर्थ यात्रा यज्ञ दानादि प्रायश्चित) शिवजीने किये परन्तु, वह कपाल उनके हाथसे न छूटा। अन्तमें हारकर श्रीमन्नारायणकी शरणमें जाकर प्रार्थना की तो उनकी कृपासे और सर्वपापहर हरिके दर्शन करनेसे वह कपाल स्वप्नलब्ध धनके समान बहुतही शीघ्र शिवजीके हाथसे छूट कर आकाशमें विलीन होगया। औरभगवच्चरणोदकके अभिषेकसे शिवजी दोनो हत्याओंसे छूटकर शुद्ध हो गये।

उक्त प्रसंग कई पुराणोंमे आया है। वहां शिवजीने स्वयं पार्वती जी से इस प्रकार कहा है कि—

"तत्रनाराण: श्रीमान्मया भिक्षां प्रयाचितः ।
विष्णुप्रसादात्सुश्रोणि कपालं तत्सहस्रधा ॥
स्फुटितं बहुधा यातं स्वप्नलब्धधनं यथा"।

शिवजीको ही सर्वश्रेष्ठ मानने वालोंको ध्यान देना चाहिए कि जो अपनेही दुःखको दूर करनेके लिए दूसरेसे भिक्षा मांगते फिरते हैं। वे दूसरेका कष्ट दूर करदें यह बात असंभव है। अतएव सर्वपाप नाशक और सर्वदेव श्रेष्ठ नारायण ही है ॥४॥

लैङ्गाश्चापि पुराणवादिन इमे यूयं च ते श्रामणा
श्शाक्याद्यास्सहसा च वादनिरता या देवतास्ताश्च वः।
सर्वात्माऽपि स एव विश्व वपुषाऽस्त्युद्व्रीहिकेदारतो
रम्येऽस्मिन् कुरुकापुरे गुणनिधिर्मिथ्यान हि स्तूयताम् ॥५॥

तामस पुराण को मानने वाले लिङ्गायत। पुराणों को न मानकर मनगढ़न्त सिद्धान्तसे चौबीस तीर्थङ्करोंकी कल्पना करने वाले श्रमण (शरावगी) तर्कवाद में निपुण सर्व मिथ्या कहने वाले बौद्धो! आप लोगोंके देवता और आपकी अन्तरात्मारूपसे वह हमारा विश्वरूपी स्वामी श्रीनारायण ही प्रकाशित हो रहा है। वही सर्व कल्याण गुणोंका निधान सर्व श्रेष्ठ प्रभु धानके खेतोंसे शोभायमान इस कुरुका नगरमें विराजमान है। अतएव अन्य देवोंकी मिथ्या स्तुतिको छोड़कर इस प्रभुकी आप लोग सत्य स्तुति करो।

यों तो (सर्व देव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति) इस प्रमाण से देव मात्रकी स्तुति परमात्माकी ही स्तुति है। किन्तु देवों द्वारा मिथ्या स्तुति न करके साक्षात् प्रभुकी स्तुति ही सत्य स्तुति है ॥५॥

स्तुत्वाऽन्यामपि देवतान्तु भजतो युष्मान् वहिष्कृत्यथ
स्त्वेवं तत्र च भक्तियुक्तहृदयान् कुर्यादिदं मायया।
मुक्तिश्चेत्तु भवादृशां जगदहो शास्त्रातिगं स्यादिति
व्रीह्यब्जैः कुरुकापुरेऽनि भरिते भात्येष हि त्वर्यताम् ॥६॥

हे ईश्वर भक्तिहीन पुरुषो! आप अन्य देवोंकी स्तुति करके उनकी सेवा करते हो, तो भी वे प्रभु अपनी इच्छासे उस देवता की सेवासे हटाकर तुमको अपने चरणोंकी भक्ति वाले बनादेंगे। तभी तुम्हारा कल्याण हो सकेगा, अन्यथा नहीं। यदि मिथ्या वादमें रत आप लोगोंकी मुक्ति होना मानलिया जाय तो समस्त

संसार ही शास्त्र विमुख हो जायगा । इसीलिये हमारा उपदेश है कि धान और कमलों से संयुक्त कुरुकापुर में विराजमान होने-वाले प्रभु की शरण जाने में जल्दी करो ।

देव अनेक तथा उनके लोक भी अनेक फिर मोक्ष होके कहाँ जाँयगे। सब देव भी समान नहीं हैं । तामस भैरवादि से राजस दुर्गा सरस्वती आदि श्रेष्ठ हैं । राजस से सात्विक शिव सूर्यादि श्रेष्ठ हैं, सात्विकों में शुद्ध सत्वमूर्ति नारायण श्रेष्ठ हैं । सम्पूर्ण देवगण उसी की मायामें बँधे हैं । अतएव मायापतिको ही सर्व प्रकारसे सेवन करके प्रसन्न करना चाहिये ॥ ६ ॥

धावन्तोऽपि च भूय एव बहुधा नानाजनीः प्राप्यचा-
प्याश्रित्येतरदैवतं च विविधैर्गानैश्च नृत्यादिभिः ।
यूयं प्राप्तफलाः किलाद्य सुरवृन्देड्यस्य तार्क्ष्यंशितुः-
श्रीविष्णोः कुरुकापुरेऽत्र भजनं स्यादादिमूर्तेर्वरम् ॥७॥

हे मनुष्यो ! इस संसारमें दौड़ लगाते लगाते अनेक जन्मों को पाकर अनेक देवताओंका आश्रय लेकर उनको अनेक प्रकारके गान और नृत्य से प्रसन्न करके उनके द्वारा आप लोगों ने कुछ फल प्राप्त किया है, परन्तु सम्पूर्ण देवगण ही जिसकी स्तुति में लगे रहते हैं । उस गरुड़ध्वज प्रभु विष्णु आदि की मूर्तिका भजनही कल्याण कारक होगा ।

अनेक देवों की उपासना करके उन देवोंके लोकको गये फिर उस देवका नाश होने पर वहाँसे लौट कर फिर भूमिमें गिरे तब तो करा हुआ सब मिट्टीमें मिल जायगा । इसी लिये हमारा उपदेश है कि नित्य अविनाशी पद पानेके लिये भगवान् आदि नाथमूर्ति का सेवन करो ॥ ७ ॥

दास्यार्त्तं शिवमाश्रितः किल मुनिर्योऽसौ मृकण्ड्वात्मज
स्तेनाभूत्परिरक्षितश्च तदिदं नारायणानुग्रहात् ।
फुल्लोत्फुल्लसुगन्धसूनविलसत्सत्केतकीभूषिते
भाति श्रीकुरुकापुरे प्रभुरसावाद्यः किमन्यैस्स्तुतैः ॥ ८ ॥

मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय मुनि जो शिवजीकी कृपासे चिरजीवी होगये। उनको शिवजीने कालसे बचा लिया यह कथा शिव पुराणमें प्रसिद्ध है। इसलिये शिवजीकी उपासना भी मनुष्यका कल्याण कर सकती है। ऐसा विचार करने वालोंके लिए आलवार उपदेश देते हैं कि मार्कण्डेय ऋषिको जो कुछ प्राप्त है वही सब नारायणकी कृपासे हुआ है। यह बात भागवत स्कन्द १२ अध्याय ८ | ९ | १० में स्पष्टरूप से सिद्ध की गई है।

अतएव सर्व देवगणोंको शक्तिबलादि प्रदान करने वाले भगवान् आदिनाथ जो आकर फूले हुए पुष्पोंसे शोभायमान केवड़ेके वृक्षों से शोभित कुरुकापुर में विराजमान हो रहे हैं, वे ही सबके आद्य पुरुष हैं उन्हींकी स्तुति करनी चाहिये। अन्य देवों की स्तुति से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है ॥ ८ ॥

शब्दाडम्बरपण्मतातिसमयैर्दुष्टैः कुदृष्ट्यादिभिः
शक्यो नैवहि मातु मस्ति च हरि यस्त्वादिनाथाह्वयः ।
तस्येदं शुभसन्निधानमतुलं शीताम्बुधारावृतं
रम्यं श्रीकुरुकापुरं हृदि सदा ध्येयं हि मोक्षार्थिभिः ॥९॥

अनेक प्रकारके शब्दोंके आडम्बर (जाल) रच कर संसार को भ्रम में डालने वाले कुदृष्टियों (मीमांसक, नैयायिक, सांख्य, योगी, कणाद, शंकर) के छै दर्शनोंके तर्कोंसे जिस आदिनाथ हरि का यथार्थ निर्णय करना असम्भव है। उसी प्रभुका स्थान जिसमें शीतल जलकी धारा चारों ओर से बह रही है। अति रमणीय उस कुरुकापुरका ही ध्यान मोक्ष चाहने वाले भक्तोंको अहर्निश करना चाहिए।

संसार में प्रचलित छै दर्शन आपस में एक दूसरेके खण्डन करने को तुले हुए हैं। अतएव परस्पर सङ्घर्ष जनित चकाचौंधमें वे ईश्वर का यथार्थ निर्णय नहीं कर सकते। ईश्वरके यथार्थ ज्ञानका उपाय तो सात्विकी श्रद्धासे उपासित सदाचार्योपदिष्ट वैदिक ज्ञान ही है ॥ ९ ॥

देवास्तेऽप्यखिलास्समस्त भुवनान्यन्यानि चास्य प्रभो
दिव्यामूर्तिरिति प्रसिद्धविभवैर्भाति स्वयं सेव्यताम् ।
सोऽयं श्री कुरुकापुरे सुरुचिरे व्रीहीक्षुकाण्डैरपि
क्षेत्रैरेव लसत्यहोवटुतनुर्यः कुम्भलीलाश्रयः ॥ १० ॥

जिस प्रभुकी समस्त लोक और समस्त देवगण मूर्ति हैं। जिसकी मूर्ति दिव्य वैभवसे प्रकाशमान हो रही है। जिस बाल स्वरूपी प्रभुको कुम्भनृत्य अतीव प्रिय है। वही प्रभु धान और ईखके खेतोंसे अति सुन्दर कुरुकापुर क्षेत्रमें विराजमान हो रहे हैं। आत्माका सर्व प्रकार कल्याण चाहने वालोंको उसीकी सेवा करनी चाहिए ॥ १० ॥

भाति श्रीकुरुकापुरेऽत्र वचसा तं चादिनाथं भजन्
नित्योद्यद्बकुलावलीं हृदि वहन् मारश्शठारिर्मुनिः ।
उत्साहात्किल तत्कृते तु दशकं चैतत्सहस्रे विदु-
र्ये तेषां न पुनर्भवोऽस्ति परमं हस्तेऽस्ति दिव्यं पदम् ॥११॥

जो प्रभु नवप्रफुल्लितबकुल (मोरसली) की मालाको हृदय में धारण करके यहाँ कुरुकापुर में विराजमान हैं। उस आदिनाथकी वाणीसे सेवा करने के विचार से मारनाम वाले शठकोपमुनिने बड़े उत्साह से सहस्रगीतीको किया। उसमें इस दशकको जो जानलेंगे उनका संसारमें फिर जन्म नहीं होगा, वैकुण्ठकी मोक्ष लक्ष्मी उनके हस्तगत होजायगी ॥ ११ ॥

इति श्रीमद्वेदवेदाङ्गाद्यखिलशास्त्रनिष्णात पराशरगोत्रावतंस श्रीमाधवाचार्य चरणाश्रित सत्संप्रदायाचार्य मथुरागलतामठाधीश्वर पण्डितस्वामी श्रीराङ्कुशाचार्य शास्त्रिविरचित विद्वन्मोदतरङ्गिणी भाषाटीका सहित श्री सहस्रगीतौ चतुर्थ शतकं समाप्तम् ।



अथश्री सहस्रगीतौ पंचमशतके प्रथमदशकारंभः ।

इस दशकमें आल्वार पूर्वोक्त प्रकारसे परत्व लक्षण युक्त परेश्वरका कहां पर अनुभव किया जाय इस शंकाको दूर करनेके लिये उसके अनुभवकी विधि और स्थान बताते हैं ।

हस्ते नोदधृतचक्र ! नीलमणिवर्णेत्येवमिथ्योक्तिभि-
स्तुत्वा त्वामहमस्मि बाह्यविषयेष्वेवात्र सक्तस्सदा ।
एवं कृत्रिमबुद्धिरप्यहह ! सम्प्राप्तोऽस्मि सत्यं फलं,
भाग्यं वारयितुं प्रभुः क इह ! किं कृष्णासिगन्तुं प्रभुः ॥१॥

हे प्रभो मैं "हाथ में चक्र उठाने वाले !" हे नीलमणि वर्ण, इत्यादि झूंठी बातों से आपकी स्तुति करके बाह्यविषयों (फूल चन्दन आदि) में ही सदा आसक्त हो रहा हूँ । इस प्रकार भक्तों की नक़ल का स्वांग रचने वाला मैं हूँ । तो भी इस नकल में असल फल मुझे मिल गया । अहह ! फलते हुए भाग्यको रोकने की शक्ति किसमें है ? क्या प्रभो ! अब आप इस दासको छोड़कर अन्यत्र जानेकी भी शक्ति रखते हो ?

जो प्राणी प्रथम झूठी ही भक्ति प्रभुकी करने लग जाते हैं तो परमदयालु प्रभु कृपा करके अपनी सच्ची भक्ति भी दे देते हैं ॥१॥

हे युग्मार्जुन मध्यग प्रियमणे मे दिव्यमध्वात्मक,
श्रीनाथामृतरूप भागिति बहु प्रेमोक्तिभिस्तं स्तुवन् ।
मिथ्याहं नटनैश्च हन्त ! फलभाङ्मय्येव नाथो मम,
स्वैरं भांति धराद्युलोकपरमव्योमादिभिश्चाखिलैः ॥२॥

हे यमलार्जुनके मध्य में जाने वाले । हे मेरे प्यारे मणि ! मेरे लिए तो आप दिव्य मधुर अमृतके समान हो । हे लक्ष्मीनाथ ! अमृतके समान अति भोग्यरूपको धारण करने वाले । इस प्रकार बहुतसी प्रेमोक्तियों से स्तुति करते हुए ही मुझे झूठी नाटक रचना करने से ही सत्य फल प्राप्त हो गया । पृथ्वी और आकाश तथा स्वर्ग लोकसे

भी विशाल रूप वाला मेरा स्वामी तो मेरे ही हृदयके भीतर अपनी इच्छासे प्रकाशमान हो रहा है ॥२॥

क्षुद्रेष्वेव किलेतरेषु विषयेष्वासीन्मतिर्मे हरे !
मिथ्याऽहं नटनैरुदारमणिवर्णोत्येव च त्वां स्तुवन् ।
सर्वज्ञस्य च वञ्चकोऽभवमहो तं दुर्दशां सन्त्यजन्,
धन्योऽहं तवदर्शनेनहि सुधाम्भोधीन्द्र नान्यद्भजे ॥ ३ ॥

हे हरे ! मेरी मति तो क्षुद्र विषयों (स्रकचन्दन वनितादि) में ही आसक्त हो रही है । परन्तु हे उदार ! हे मणिवर्ण, इत्यादि नाम लेकर स्तुति करता हुआ मैं भक्तिका झूठाही नाटक रच रहा हूँ । अहह प्रभो यह मेरी कितनी बड़ी धृष्टता है, कि सर्वज्ञसे भी वञ्चना (ठग विद्या) करनेमें नहीं चूकता । किन्तु धन्य है मेरे भाग्य और आपकी निर्हेतुक इस कृपाको कि इस वञ्चनासे ही संसार कृत दुर्दशासे मैं मुक्त होकर आपके दर्शनसे धन्यवादका पात्र बन गया । अमृतके समुद्र रूप अब आपको छोड़ अन्यकी सेवा करना मैं उचित नहीं समझता हूँ ॥३॥

किं काङ्क्षेऽद्य विना भवन्तमिति च स्तोत्रं मृषाते स्वयं,
कुर्वन् वंचक आसमद्य मनसि स्थैर्येण चाश्रुस्रवैः ।
नात्मानं हि निवारयामि विषयान्मद्दुष्टिमालिन्यहा,
त्वं मामाह्वय कृष्ण नान्यशरणोऽस्मीत्येव सत्यं ब्रुवे ॥४॥

हे प्रभो ! आपको छोड़कर मैं अब किसकी इच्छा करूं । इस प्रकार आपकी स्तुति झूठे ही मनसे करता हुआ वंचक (ठग) हो गया हूँ । और अबभी दृढ़ मनसे इन अपने दुष्टकर्मोंपर पश्चातापके आँसू बहाकर, विषयों से अपने मनको रोकने की चेष्टा नहीं करता हूँ । प्रभो मैं अनन्य गति होकर आपकी शरण हूँ । यह बात नितान्त सत्य है । कृपा करके आपही मेरे मनकी मलिनताको नष्ट करके इस दासको बुला कर अपने चरणोंमें लगा लीजिये यही इस अकिंचन दासकी प्रार्थना है ॥ ४ ॥

कृष्णं त्वां प्रभुमच्युतं दिवि महासूरीन्द्रसेव्यं शुभं,
माणिक्यं मधुरामृतं च मनसा प्राप्यापि न प्राप्नुयाम् ।
मध्येमामिह देहबन्धकलितं कृत्वा महापातकैः
पाशैर्मां व्रणपीड़ितं च परित स्तिष्ठन् वहिर्मां न्यथा ॥५॥

हे प्रभो ! आपको हे कृष्ण, हे प्रभो ! हे अच्युत ! वैकुण्ठ में नित्य सूरियोंसे सेवमान कल्याणकारक नीलमणिवर्ण अमृतसे अधिक मधुर आपको प्राप्त होकर भी मनसे प्राप्त न हो सका । मेरेको देह बन्धनमें पाप रूपी फांसीसे बाँधकर चारों ओर से अनेक प्रकार के व्रणों (घावों) से पीड़ित करके बाहर ही प्रकृतिने रख दिया है । इस दुस्तरसंकटफाँसीसे मुक्त होना आपकी कृपाके विना कठिन है ।

अनादि दुष्कर्मोंके फल स्वरूप ऐसा देह मिला है कि इसे बाहर का विषयानुभव ही अच्छा लगता है । अमृतरूप अन्तर्हृदय में जो परमात्मा बैठा है, उसका ध्यान तो यह मनसे करता ही नहीं, फिर कल्याण कैसे हो । अतएव प्रभुसे निर्हेतुक कृपा करने की प्रार्थना की है ॥ ५ ॥

सर्वत्रापि च मां निवद्ध्य हि वर्हिर्द्वन्द्वादिभिः पातकै–
स्सन्तप्तं च शरीरसन्ततिरहो हन्त ! व्याधात्तां दशाम् ।
अद्यातीतचतुर्भुजं मणिनिभं बिम्बाधरं त्वां हरिं
पद्माक्षं शुभचक्रपाणिमतुलं दृष्ट्वाऽस्मि धन्यः पुमान् ॥६॥

हे प्रभो हमको मिलने वाले इस शरीरने सर्वत्र ही रागद्वेष जनित पातकोंसे बाँधकर हमें बहुत ही दुःख सन्तप्त कर रक्खा है । शरीर सम्बन्धसे जो हमारी दुर्दशा होती आई है, उसे आज अति क्रमण करके चारभुजाधारी नीलमणिके समान वर्ण वाले, लाल ओठ वाले कमलदललोचन सुन्दर चक्रधारी सर्व श्रेष्ठसर्वपाप हरण कर्ता आपको देखकर मैंने अपने पुरुषजन्मको धन्यवादके योग्य बना लिया है ॥ ६ ॥

चक्री स प्रभुरिन्दिरापतिरहोसूरीन्द्रनाथः क्वचा ?
क्वाहं हस्तिमहार्तिनाशनकरे त्येवं किलोद्घोषयन् ।
तद्भक्तिं परमां गतोऽस्मि सुदृढ़ां सत्यां स नाथो मयि
प्रीतश्चास्ति विधेरनुग्रहबलात्स्यात्सद्गतिश्चाघिनाम् ॥७॥

अहह ! नित्यमुक्त परिचरित चरणकमल लक्ष्मीपति चक्रधारी प्रभु कहाँ ? अति दीन हीन पतित मैं कहाँ ? अर्थात् नित्यसूरियों के भी ध्यानमें जो कठिनतासे आता है । वह प्रभु अति तुच्छ मेरी प्रार्थनाको कैसे सुन सकता है । ऐसा विचार करके मैं निराशाका अन्धकार देख रहा था, किन्तु जब प्रभुका गजेन्द्रमोक्षणचरित स्मरण हुआ तो निराशा हटकर उसके स्मरणका साहस मुझे पड़ा ।

जो प्रभु हाथी सरीखे पशुओंकी प्रार्थना सुनकर उनके दुःख को नष्ट कर देते हैं, तो मेरी मनुष्यकी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे । इसी को जनता में उद्घोषित करता हुआ मैं उस प्रभूकी परमभक्तिका दृढ़ता के साथ साधन करके सनाथ होगया हूँ । भाग्यके अनुकूल होनेसे वह प्रभु भी मेरे ऊपर प्रसन्न है । अब मुझे विश्वास है कि पापियोंकी सद्गति प्रभुके चरणोंकी भक्तिके प्रभावसे अवश्य ही होजायगी ॥ ७ ॥

दिव्यास्सूरिगणाश्च भक्तनिवहा भूम्यां यमेवाच्युतं
सम्प्राप्ताश्शरणं सभाति हृदये दासस्य मे सुस्थिरः ।
रम्या मे तरुणीगणाश्च सुहृमद्भाग्यं सुतास्सद्गुणा-
माता चापि पिता स एव च मम श्रीशः किलेतः परम् ॥८॥

जिस प्रभुके दिव्य लोकमें नित्यसूरिगण शरण होकर नित्य अखण्ड आनन्दको भोगते हैं । और भूमी में भक्तगण उसकी शरण होकर संसार समुद्र को तर जाते हैं । वही प्रभु दासवृत्ति करने वाले मेरे हृदय में दृढ़ासन लगाकर विराजमान हो रहा है । अब से आगे मेरे लिये तो वही प्रभु नवयौवना स्त्री तथा अन्य बन्धुवर्ग हैं । और महाभाग्योदय भी वही है । सद्गुण वाले पुत्र और माता, पिता भी मे । वही लक्ष्मीपति ही है ।

जैसे प्रभुने निर्हेतुक कृपा करके मेरे भीतर दृढ आसन जमाया है। तो मैं भी उसका अनुभवानन्द लेनेके लिए संसारके झूठे नाते छोड़कर सर्व प्रकार सच्चे नाते उस प्रभुसे ही जोड़कर इस नरजन्म को कृतार्थ करलूं। यह अभिप्राय है॥२।

कोवा मेऽस्ति सहाय इत्यहमहो संसारपाथोनिधौ,
मग्नः पोत इवाम्बुधौ च सुमहाकल्लोलमालाकुले।
आसं कम्पित एव तत्र च मयि प्रीत्याऽऽविरासीद्धरिः
शङ्खं चक्रमुदारदिव्यवपुषा बिभ्रद्दयावारिधिः॥६॥

अहह! काम क्रोधादिकी अनिर्वचलविशालतरंगोंसे व्याप्त अपार अथाह इस संसार समुद्रमें मैं डूब रहा था। कम्पायमान शरीर और अधीर हृदयसे कह रहा था कि हाय इस असहाय अवस्था में कौन मेरा सहायक हो सकता है। हाय आज मेरी दशा समुद्रमें डूबते हुए जहाजसे भी बुरी हो रही है। इस प्रकार मैं करुणक्रन्दन करहो रहा था कि एकाएक दयासमुद्रभगवान्हरि उदारता दिखाने वाले दिव्य शरीरसे शंखचक्र धारण करके प्रगट हुए। और मेरे ऊपर प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे संसार सागरसे पार कर दिया॥६॥

मीनात्मा कमठाकृतिश्च नरसिंहात्मा स्वयं वामनो,
भूत्वा चापि वने वराहवपुषा भावी च कल्कीः पुनः।
एवं नीलपयोदवर्ण इह मां दास्ये तु धृत्वा हरिं,
र्भास्वानित्यपि मद्वचो हृतमना सर्वात्मको मेऽभवत्॥१०॥

हे प्रभो! मैं आपका दास हूँ। इतना कहते ही प्रसन्नतासे आपने प्रगट होकर निर्हेतुक कृपा करके इस दासको स्वीकार करके सर्व प्रकार आपही हो गये। मेरे ही उद्धार के लिए तो आपने मीन-रूप, कच्छपरूप, नरसिंहरूप, वामनरूप, वराहरूप धारण करे हैं। और भविष्यमें कल्कीरूप भी धारण करेंगे। इस प्रकार नीलमेघसदृश वर्णवाले उस हरिनें मुझे अपनी दासतामें बाँध लिया है। और कहां तक कहूँ मेरी वाणी उसे ऐसी प्रिय लगती है कि उसमें इस

प्रभुका मन इतना लुभा गया है कि उसे सुननेके लिये वह मेरे हृदय में आकर बैठ गया है ॥१०॥

कृष्णं नील पयोद वर्णमपितं नाथं सरोजाम्बकं,
स्तोतुं श्रीकुरुकेश्वरश्शठ रिपुस्साहस्रमाहाद्भुतम् ।
दिव्यं द्राविणमुत्तमं च दशकं तत्रेदमत्यादरा,
ये भक्त्या तु पठन्ति ते किल हरेः पादाम्बुजं प्राप्नुयुः ॥११॥

नील मेघ समान वर्णवाले कमललोचन कृष्णकी स्तुति करनेके लिए कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनिनें दिव्य द्रविडमयी अद्भुतसहस्र गीतिको कहा है । उसमें इस दशकको जो आदर सहित पढ़ेंगे । वे अवश्यही भगवत चरणोंको प्राप्त हो जायेंगे ॥११॥

इति श्री सहस्रगीतौ पंचमशतके प्रथमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ पंचमशतके द्वितीयदशकारम्भः

इस दशकमें आल्वार अनन्य वैष्णव हो गये ऐसा समझकर कि हमारा साथी एक भूलोक में भी है नित्य मुक्तगण उनके दर्शन करने को आये उन्हें देखकर आल्वार उनका मंगला शासन करते हैं। श्रीवैष्णोंके प्रभावसे ही कलियुग नष्ट होकर सतयुगका रूप धारण कर लेता है। ऐसा प्रतिपादन करते हैं।

स्वस्ति स्वस्ति भवत्वनारतमपि स्वस्त्यस्तु नित्यं सतां,
विष्णोस्सद्गुणसागरस्य सुगुणान् गायन्ति नृत्यन्तिते ।
भूम्यामत्र महाशयास्तु परितः पापं प्रणष्टं स्वयं,
नैव स्यादिह नारकं नच यमो नश्येत्कलिः पश्यत ॥१॥

जो बड़भागीपुरुष इस भूमण्डल पर कल्याणगुण सागर विष्णु भगवान्‌की शरण होकर उनके उत्तमगुणोंको गाकर नृत्य करते हैं। उनका अनादिकालका पाप स्वयं नष्ट हो जाता है। वे नर्क और यमराजको तो स्वप्नमें भी नहीं देखते। उन सज्जनोंके दर्शनमात्रसे ही कलियुग जनित पाप ताप नष्ट हो जाते हैं। ऐसे सज्जन ही इस धरातल में रहें और उनका बारम्बार निरन्तर कल्याण हो यही हम भक्तवत्सल परमात्मासे प्रार्थना करते हैं।

इस गाथाका गूढ़ाशय इस प्रकार समझना चाहिये । श्रीनाथ मुनिजी जिस समय अर्चावतारस्वरूपी- परांकुशमुनिसे श्रीसहस्रगीतिका अर्थ अध्ययन कर रहे थे । तब इस गाथाके द्वारा उन्होंने यह बतलाया कि भविष्यमें हमारी परम्परा में (श्रीरामानुजाचार्य) नामके सज्जन होंगे । जिनके उपदिष्ट भागवतधर्मसे कलियुग नष्ट हो जायगा श्रीपराँकुश मुनिकी इस प्रकार भविष्यवाणी सुनकर फिर नाथ मुनिने प्रार्थनाकी कि भगवन् आप त्रिकालज्ञ हैं, अतएव उस होने वाले आचार्यवरके रूपका भी मुझे दर्शन करा दें तो बड़ी कृपा होगी । पराँकुशमुनिने उनकी वह प्रार्थना स्वीकार करके उनको स्वप्नमें त्रिदण्ड काषायाम्बर धारण किये आजानुबाहु कमललोचन मन्दस्मित तरूपसे दर्शन देकर कहने लगे यही मेरा भविष्यदाचार्य (श्रीरामानुजाचार्य) रूप है इसीके प्रतापसे कलिके विकराल पापोंसे तर कर लोग वैकुण्ठ को जायंगे । इसमें सन्देह नहीं है । इसी विषयको पुष्ट यह प्राचीन श्लोक भी भले प्रकार से करता है कि

पःस्वपकाले करुणा करसन्भविष्यदाचार्यवरस्वरुपम्,
संदर्शयामास महानुभावस्तं कारिसूनुं शरणं प्रपद्ये ।

वैष्णवधर्मकामहत्व श्री विष्णुपुराणके तृतीयअंशमें विशेष रूपसे लिखा है ।

भक्ता भूमितलेऽत्र दिव्यतुलसीमालांचितं माधवं,
गायन्त्येव हि नर्तनैश्च परितस्सञ्चारशीला अपि ।
दृष्टं दृष्टमिदं हि दृष्टमतुलं भोग्यं समृद्धं पदं,
तं नन्तुं च पुनः पुनः प्रचयितुँ भक्तास्समागच्छत ॥२॥

अये भक्तगणों ! आइये हम और आप सब मिल कर हरिके उन भक्तोंके दर्शन करके और उनको प्रणाम कर कें अपना जन्म सफल करें । जो भक्तेवर इस भूमितलमें दिव्य तुलसीकी मालासे पूजित भगवान् लक्ष्मी पतिके गुण गान करके प्रेमोन्मत्त होकर नृत्य करते हुए चारों ओर विचरण करते हैं । उन दिव्यभक्तोंका कैसा मनोहर दर्शन है । इससे बढ़कर भोग्य (देखने सुनने योग्य) और

कोई वस्तु संसारमें हो सकती है क्या ? अहह हमारे हृदयमें इनमें प्रणाम करके इन्हीं भक्तोंके मार्गको संसारमें प्रचार करने की तीव्र अभिलाषा है । भगवद्भक्तोंका स्वभाव होना है कि किसी व्यक्तिको भजन करते देखते हैं तो उनके हृदयमें बछड़े को देख कर गौके थनोंमें दूधके समान आनन्दकी लहरें उमड़ पडती हैं ॥ २ ॥

शीलव्यत्ययकारि तत् कलियुगं नष्टं स्वयं सूरय,
स्सर्वेंचात्र भुवि प्रविश्य च महद्दिव्यं युगं संश्रिताः ।
प्रख्यातं कृतमेव मोदभरिता नीलाब्दवर्णं हरिं,
तं नाथं गुणसागरं हि परितो गायन्ति भक्ता भुवि ॥३॥

अहह भक्तवरो ! अब इस धरातलमें भक्तिके उमड़ते हुए प्रवाहमें मनुष्योंकी बुद्धिको धर्म-विपरीत करनेवाले कलियुगदेव जो स सपरिवार बह गये । और प्रसिद्ध सतयुगका प्रारम्भ समझ कर दिव्य सुरिगण इस भूतल पर आकर मनुष्य शरीरमें प्रविष्ट होकर आनन्द विभोर होकर नीलमेघ समान श्याम सुन्दर सर्वगुण सागर अपने स्वामी श्रीहरिकेगुणोंको चारों ओर गा रहे हैं ।

भगवद्भक्तिके प्रभावसे हृदयमें सात्विकता आजाने पर कलियुगका परिवार काम क्रोध लोभादि स्वयं नष्ट हो जाते हैं । और सतयुगके सहायक क्षमा आर्जव संतोपदयादि गुणोंकी वृद्धि हो जाती है फिर ईश्वरके अतिरिक्त सर्व पदार्थ विरोधीस्वरूप दीखने लगते हैं । इसी कारण प्राणीको भक्त-गोष्ठीमें प्रेम हो कर नर जन्मको सफल करनेका अवसर मिलता है ।

सर्वत्र प्रततां च दुर्मततर्ति चोन्मूलयन्तो यथा,
तेऽमी भक्तगणस्तथाऽब्धिशयनं नाथं स्तुवन्तो हरिम् ।
सर्वत्रापि भवन्ति हन्त ! शयितास्तत्रोपविष्टाः स्थिता-
गीतैस्तैर्विविधैश्चान्ति परितो नृत्तैश्च नाट्यान्विता ॥४॥

प्रभुके भक्तोंकी कैसी विलक्षण शक्ति है कि इस भूतल पर सर्वत्र फैले हुए दुष्टमतोंको जड़से उखाड़कर ये भक्तगण समुद्रशायी अपने स्वामी श्रीहरिकी स्तुतिकरतेहुए ही सर्वत्र शयन और आसन भोजनादिक व्यवहार करते हैं। तथा अनेक प्रकारके गान नृत्यादि अनेक भगवत्सम्बन्धी नाट्यकला दिखाकर संसारको पवित्र करते हुए विचरण करते हैं।

भक्तिके विरोधी दुष्टमत संसारमें बहुत हैं, जैसे चार्वाक जैन बौद्धादिक उनका जब तक खण्डन नहीं किया जायगा तब तक भक्तिमार्ग सुरक्षित नहीं रह सकता। अतएव दुष्टमतों का निराकरण करना भी अत्यावश्यक है। भक्ति विरोधी मतोंका खण्डन श्रीरामानुजाचार्य स्वामीने श्रीभाष्यके द्वितीय अध्यायमें बड़े विस्तारसे किया है। इसलिये हम उसको यहाँ विस्तार भयसे नहीं लिख सकते ॥४॥

तत्त्वंभाति हि पश्यतो ममशुभं त्वेकं परं सर्वतो
वैकुण्ठस्य हरेस्तु भक्तनिवहा आश्चर्यवृत्तास्त्वम् ।
हत्वा चाप्य सुरांस्तु वो भुविभवान् पापान् विपर्यासतः
कालंचात्रहि भेदयन्ति भवतां नात्रस्थितिस्स्याध्रुवम् ॥५॥

अये साधकवर्ग ! मैंने अपनी बुद्धिसे विचार करने पर यह एक सार बात निश्चित करी है कि भगवान्‌विष्णुके भक्तगणोंमें आश्चर्यकारक वह विलक्षण शक्ति है कि वे भक्तिके विरोधी असुर वर्गोंको मार कर समयकी स्थिति भी भक्तोंके अनुकूल बना देते हैं। और यदि काल भी आपके विपरीत हो तो उस कालको भी जीत करके आपकी स्थितिको यहाँसे उठाकर दिव्य वैकुण्ठमें पहुँचा देंगे।

जिस प्रकार महाराज ध्रु व कालको जीतकर इस मनुष्य शरीर से ही ध्रु वलोकमें चले गये। इसी प्रकार प्रत्येक सच्चे हरि भक्तमें कालको जीतनेकी शक्ती रहती है। उनके प्रभावके समक्ष काल की कोई शक्ति नहीं कि उनके विरुद्ध कुछ कर सके ॥ ५ ॥

हत्वा प्राणविनाशकाः किल महाव्याधिश्च वैरी क्षुधा
चेति क्रूरगणाभुवीति हि हरेश्श्रीचक्रपाणेर्विभोः ।

भक्तास्तद्गुणगाननृत्तसहितास्सर्वत्र संचारिणो
दृश्यन्ते चपलास्तु यूयमपि तान्नत्वास्त चोज्जीविताः ॥६॥

हे पुरुषो ! आप लोग प्राण हरण करने वाले नानारोग और भूख प्याससे क्यों दुःखी हो रहे हो ? तुम चक्रपाणि श्रीहरिके भक्तगण प्रभुके गुणोंको गाकर नाचते हुए सर्वत्र ही विचरते हैं । और वे परदुःख निवारणार्थ सदाही चपलतासे तैयार रहते हैं । अतएव आपलोग भी उन्हीं हरि भक्तोंकी शरणमें जाकर उनको प्रणाम करो । वे भक्तवर अवश्य ही संसारके सर्व दुःखोंसे छुड़ाकर तुम्हारा उद्धार कर देंगे ॥ ६ ॥

युष्माकं हृदयं प्रविश्य सुदृढ़ा या देवतास्ता अपि
श्रीशं प्राप्य फलप्रदास्तदिह साक्षास्ते मृकण्डवात्मजः ।
दृष्ट्वैवं वत निश्चितेहि मलिनं माऽस्त्वेव चित्तंतु वः
कृष्णान्नैव परन्तु दैवमखिलं तद्विग्रहेष्वर्प्यताम् ॥ ७ ॥

हे पुरुषो ! आप लोगोंके मनमें इष्टदेवरूपसे घुसकर दृढ़तासे बैठे देवता भी उस लक्ष्मीपतिकी चरणशरण द्वारा ही आपको वाञ्छित फल देते हैं, क्योंकि इस विषयमें मार्कण्डेय मुनिही हमारी ओर से साक्षी है । इस बातको सुनकर आप यह समझकर कि यह हमारे उपास्य इष्टदेवको छोटा बताकर उसकी निन्दा करते हैं, मलिन मन न करें, क्योंकि संसारमें श्रीकृष्णसे बड़ा कोई देव नहीं है, यह बात श्रुति स्मृति प्रमाणसे सिद्ध है । अत सम्पूर्णदेव उसी कृष्ण के विग्रह (शरीर) में वसते हैं, ऐसा दृढ़ निश्चय रखना आप लोगों का परम कर्तव्य है ।

भगवान् श्रीकृष्णके शरीरमें सर्वदेव वसते हैं। इसमें प्रमाण गीता११-१३

तत्रैकस्थं जगत्सर्वं प्रविभक्तमनेकधाः ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥

उस समय अर्जुनने देवदेव कृष्णके शरीरमें अनेक प्रकारसे विभक्त इस जगत्को एकही स्थानमें देखा ॥ ७ ॥

कर्त्तव्या मपि कृत्यसन्ततिममी देवा भजन्तु स्वयं
चाराध्या जगतीतिमूर्तिसरणिं स्वीयां हरिस्स्थापन् ।
देवानामधिदेव एव जयति श्रीवत्सवक्षाश्च तं
गीतैर्नृत्तयुता भजन्ति विमलास्तान्प्राप्यधन्यास्स्तभोः ॥८॥

हे मनुष्यो ! उस हमारे प्रभुने ही नानाश्रेणीके साधकोंकी भेंटपूजा लेकर उनके मनोरथोंको पूरा करनेके लिये अपनी अनेक देवरूपी मूर्त्तियाँ स्थापित कर रक्खी हैं । और स्वमूर्तिरूप देव द्वारा सबकी पूजाको ग्रहण करने वाला देवाधिदेव वह स्वयं है । यह बात अनेक प्रमाणोंसे निश्चित होगई है कि सर्वश्रेष्ठ देव वही है । जिसके वक्षस्थलमें श्रीवत्सका चिन्ह हो, उस परात्पर प्रभुको जो नृत्ययुक्त गीतसे सेवा करते हैं, सर्वदोषमुक्तउनमहात्माओंकी शरण जाकर आप लोगभी धन्यवादके पात्र बन जाइये ॥ ८ ॥

वेदस्थामपि सूक्तिसन्ततिममी वाचा पठन्ति स्वयं
शुद्धां भक्तियुताश्च धूपकुसुमैर्दीपैश्च गन्धोदकैः ।
आराध्याच्युतमेव दास्यनिरताः केचिच्चयोगान्विता
दृश्यन्ते भुवितान् प्रणम्य भवत प्राप्यनिहोज्झिविताः ॥६॥

साधकगण ! जो हरिभक्त परमभक्ति सहित अपनी वाणीसे वेदोंके सुन्दर शुद्ध सूक्तोंका पाठ स्वयं करते हैं । और अविनाशी उस प्रभुकी गन्धोदक पुष्प धूपोंसे पूजा करके उसी प्रभुके दासभावमें निरन्तर लगे रहते हैं । तथा कोई कोई उस प्रभुकी उपासना अष्टाङ्ग योग (यम १ नियम २ आसन ३ प्राणायाम ४ प्रत्याहार ५ ध्यान ६ धारणा ७ समाधि ८) द्वारा करते हैं । इस प्रकारके भक्त जहाँ कहीं दीख पड़ें वहाँ पर ही उनको भूमिमें पड़कर प्रणाम करके अपनी आत्माका उद्धार करना चाहिये । इससे अधिक पाने योग्यफल दूसरा कोई नहीं है ॥ ६ ॥

रुद्रश्चापि चतुर्मुखश्शतमखश्चान्येऽपि देवाःस्वयं,
कृष्णं श्रीशमिमं प्रपद्य शरणं लोकेषु सर्वत्र च ।

प्राप्तास्सम्पदमुत्तमां किल तथा हे चञ्चलास्तं हरिं,
यूयं च प्रणमेत चेत्कलियुगं नैवास्ति कुत्रापि वः ॥१०॥

अये चंचल चित्त वाले भक्तो! श्रीरुद्रजी, श्री ब्रह्म देवजी, इन्द्र देव, तथा प्रभावशाली अन्य देवगण भी लक्ष्मीपति श्रीकृष्णकी शरण प्राप्त होकर ही सवत्र लोकोंमें उनकी कृपासे उत्तम संपत्तिको पाये हैं। यदि आप लोग भी अपने चित्तको दृढ़ बनाकर उस हरिकी शरणमें जाकर प्रणामादिसे उसका पूजन करें तो यह धर्मध्वंस करने वाला कलियुग संसारमें कहीं पर भी दृष्टिगोचर न होगा। अर्थात् भगवद्भक्तिके प्रभावसे कलियुग विलीन होकर सदा सतयुग देखने को आप लोगोंके लिये मिलेगा ॥१०॥

भक्तानां न भवेद्यथा कलियुगं त्राता तथा श्रीहरिः
कृष्णो भाति दयानिधिश्च परमं ज्योतिश्च मायी प्रभुः।
स्तोतुं तं शठजित्सहस्रमवदत्कारीशसूनुर्मुनि
माराख्यास्तदिदं चतत्र दशकं दोषच्छिदन्तर्हृदि ॥११॥

भक्तोंके ऊपर जिस प्रकार कलियुगका प्रभाव न हो सकै, उसी प्रकार रक्षा करने वाले अनेक मायामय चरित्रोंको करने वाले। दया समुद्रसर्वश्रेष्ठ ज्योतिःस्वरूप हमारे स्वामी कृष्ण सर्वोपरि, विराजमान हैं। उन्हींकी स्तुति करनेको कारिमार (कारि-कुमार) से प्रसिद्ध शठकोपमुनिने सहस्रगीति कही, उसमें इस दशकको जो पढ़ेंगे उनके हृदयके समस्त दोष (काम क्रोध लोभादिक) नष्ट हो जायेंगे ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्रगीतौ पंचम शतके द्वितीयदशकं समाप्तम्।



अथश्री सहस्रगीतौ पंचमशतके तृतीयदशकारंभः

इस दशक में वह परमप्रभु सुन्दरतासे स्वभावसे श्रेष्ठतासे सर्व प्रकारसे मनमें प्रेम उत्पन्न करते हैं। अतएव बन्धुओंका स्नेह जातिकाभय, लोकापवादके छोड़कर सर्वप्रकारसे प्रभुमे लगजाओ इसबातको एक विरहिणीप्रेमिकाके रूपकमें कहते हैं

माणिक्याद्रिमुं मम हरिं बिम्बाधरं श्रीधरं,
ज्योतिर्निर्मलमादिमूर्तिमनघं सौशील्यवारान्निधिम्।
अन्विष्यानिशमस्मि हन्त नितरां भ्रान्ता स्वयंकर्शिता,
किंमे स्यात्सखि निन्दनैकमनसां जल्पैर्जनानां भुवि ॥१॥

अरी सखी! मैं तो सर्वदोषरहित ज्योतिस्वरूप ... के समान सुन्दरवर्णवाले और लालहोठोंवाले श्रीधर अतिशोभाय मान सर्वपापवर्जित आदिमूर्तिस्वरूप सौशील्यगुणके समुः चित्तको हरण करनेवाले इस हरिको दिन रात ढूंढकर निरन्तर समान होकर दुवली हो गई हूँ। परन्तु अभी तक उस प्रभुके न हुए और संसारीलोग मेरी अनेक प्रकारसे निन्दा करके न कंया क्या कह रहे हैं। परन्तु मुझे इन मूर्खोंके प्रलापसे क्या काम मुझे तो उस श्यामसुन्दरके दर्शन ही चाहिए।

दक्षिण देशमें यह रीति है कि किसी कारणवश यदि पुरुष स्त्री-का परित्याग करदे और स्त्रीके अनेक प्रकार से अनुनय विनय करनेसे भी न मानै तो, वह स्त्री अपमानित और अप्रसन्न होकर पुराने फटे वस्त्रों से उसपुरुष का पुतला बनाती है और (अमुककी स्त्री) ऐसा उस पुतले की छाती पर नाम लिखकर कंगलेका भेष बनाकर ग्राममें फिरती है। और इस पकार अपने चरित्रोंसे उस परित्याग करने वाले पतिकी अपकीर्ति का ढिंडोरा सर्वत्र पीटती फिरती है। इस कार्यको उसदेशकी भाषामें (मड्लग्रहण) कहते हैं।

इस दशक में भी प्रभुने जब आल्वारको दर्शन नहीं दिये तो उन्होंने अपनेको प्रभुसे अपमानित समझकर विरहिणी प्रेमिकाके आवेशमें आकर उनको बलात्कारसे प्राप्त करने के लिये

जिसने कर दिया था । उसने आज मुझे अपनी रूपमाधुरीसे खरीद कर अपने वशमें कर लिया है । अब मुझे बारंबार उसकी गुणावली का ही वर्णन करना पड़ रहा है । प्राणप्यारी सखी ! उस प्रभुके गुण चिन्तनको छोड़कर मुझे और कुछ अच्छा ही नहीं लगता । अब लोक निन्दा मेरा क्या करेगी ? ॥ ३ ॥

लोकानां परिवाद दोहदभरान्मातुर्वं चश्चोदकं,
धारारूपमिदं प्रकल्प्य नितरामुप्त्वा च कामात्मकम् ।
बीजं क्षेत्रसमे मनस्यतिरां संध्यं नानाविधा,
माशां पूरयिताऽम्बुदः किमिह मे कृष्णोऽस्ति निन्द्यस्सखि ॥४॥

सखी आज तो मैं अपने मनको खेत बनाकर उसमें लोक निन्दा रूपी खाद डालकर माताके वचनरूपी धारा जलसे उसको सींचूगी । और उसमें मनोरथरूपी बीज बोकर उसे बढ़ाऊंगी । उसमें अनेक प्रकारके आशारूपी फलोंको सफल बनानेके लिए कृष्ण मेघ कृपा करेंगे क्या ? अर्थात् सखीसे पूछते हैं कि इस हमारे हृदय खेतमें लोक निन्दारूपी खाद और माताके वाक्यरूपी जलकी सहायता से उत्पन्न हुआ जो मनोरथ उसकी सफल होनेकी आशारूपी बेलको अपनी श्यामघनसुन्दरमूर्ति दिखाकर श्रीकृष्ण क्या सफल कर देंगे ? ॥४॥

क्षिप्रं कार्यकरोऽस्त्ययं दृढमतिस्सर्वेश्वरश्श्रीधरो,
लोकानां वशकृच्च वंचकतमस्सर्वात्मचेतोऽतिगः ।
सौन्दर्येण च मोहनोऽयमिति मे चित्तं तमेवाश्रितं,
किं कुर्यां सखि सुन्दरीह जननी वाचाऽद्य किंमे भवेत् ॥५॥

यह बहुत ही शीघ्र आश्रितोंके दृढ़ मति वाला लक्ष्मी पति यह बहुत ही शीघ्र आश्रितोंके कार्यको करने वाला है । वह अनेक वंचना करके लोकोंको अपने वशमें कर लेता है । वह किसीके भी ध्यानमें नहीं आता । यह अपनी अद्भुत सुन्दरता दिखा कर जनसाधारणको मोहजालमें डाल देता है । मेरे चित्तको भी उसने ऐसा मोह लिया है कि उसके

अतिरिक्त दूसरा मुझे अब अच्छा ही नहीं लगता । अरी सखी मेरी माता जो मुझे इस कार्यसे हटकर शान्तिसे बैठनेका उपदेश देती है । उसका मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । अब क्या किया जाय अरी सखी इस बातको तूही बता दे ? ॥ ५ ॥

हे सख्यः प्रथमस्य सूरि सरणेश्श्रीद्वारकाधीशितुः,
पाशेऽहं कलितास्म्यहो मणिनिभःश्रीवासुदेवात्मजः।
आशामाऽस्तु ततोऽत्र मां प्रतितुवः किं मातृ कृत्याद्भवेत्,
किं स्यात्पौरजनप्रवाद वचनात् सर्वं वृथा भाति मे ॥६॥

हे सखियो ! जो प्रभु नित्य मुक्तोंका प्रथम पूज्य है । द्वारकामें जिसने राज्य किया था । नीलमणि सदृश जिसका दिव्यविग्रह है । उस वासुदेवकी फाँसीमें मैं अब फंस गई हूँ । इसलिए तुम अब मेरे जीवनकी आशा मत करो । इसमें मेरी माताके किए हुए उपाय भी व्यर्थ हैं । और पुरवासी लोग जो अनेक प्रकारका मुझे लांछन लगा रहे हैं । ये सब मुझे व्यर्थ ही जान पड़ता है ।

यह जाल इतना जटिल और दुस्तर है कि उस प्रभुके अतिरिक्त किसीका साहस नहीं है कि इस जालमेंपड़े हुएको मुक्त कर सके। इस विषयमें गजेन्द्रमोक्ष और द्रौपदीलज्जारक्षणादि अनेक उदाहरण हैं।

पाशैर्मां च निबद्ध्य मेऽत्र हृदयं जित्वा स्वयं वारिधौ,
यश्शेते स्म मम प्रभुस्तमतुलं श्रीचक्रपाणिं हरिम् ।
दृष्ट्वाऽऽवां सखि चक्षुषैव मुदितौ पश्यत्सु नारीजने,
स्वं निन्दन तत्परेषु शिरसा किं तं च वन्देवहि ॥७॥

अरी सखी यह हमारा प्रभु हमको मोह फांसीमें बाँध कर और हमारे चित्तको जीतकर अपनेवशमें करके जो समुद्रमें सोता है । उस सर्वश्रेष्ठ चक्रपाणि हरिके दर्शन नेत्रोंसे करके हम तुम दोनों प्रसन्नहो जायेंगी । हमारी निन्दा करने वाली समस्त स्त्रियोंके देखते हुए भी क्या हम उस प्रभुको मस्तक नवाकर प्रणाम करेंगी । अवश्यही लोक

लाजको खोकर व्रजरमणियोंके समान तन, मन, धन उस श्याम-सुन्दर पै वार देंगी ॥७॥

पीत्वा स्तन्यमहोनिहत्य च महामायां तु तां पूतनां,
चूर्णीकृत्य च तं खलन्तु शकटंनिर्मूल्यवृत्तार्जुनौ ।
वक्त्रं चापि विदार्य हे सखि बकस्यासीद्गजं योजयन्,
तं पश्येम कदा वयन्तु जननी लज्जावहास्ससस्मितम् ॥८॥

अरी सखी ! हम लोगोंने माताको लजाने वाला कार्य तौ किया ही है । परन्तु अनेक मायावाली पूतनाको दूध पीनेके बहानेसे ही जिस प्रभुने मार डाला था । और पगकी एक ठोकरसे शकाटासुरका चूर्ण जिसने किया था । यमलार्जुन वृक्षोंको जड़में से उखाड़कर उनको जिसने मुक्त कियाथा । जिस प्रभुने बकासुरको उसका मुख फाड़-कर मारा था । जिस प्रभुने दशहज़ारगजके बलवाले कुवलयापीडको जीतकर पछाड़ा था । मन्द मुसकान करनेवाले उस प्रभुके कब दर्शन होंगे । इस प्रकारकी हमारी अभिलाषा क्या पूरी होगी ? ॥८॥

हृत्वा मे सकलां त्रपां च विनतिं चेतोऽपि भव्यं मम,
श्रीशस्सूरिवरप्रभुर्दिविमहानास्ते हि भव्यं सखि ।
सत्यं त्वां हि शपे समस्त जगतां प्रख्यापयामि स्वयं,
तं मे वंचकमद्य सर्वविधिभिर्धृष्टा त्व वद्या वहा ॥९॥

' वह दयाहीन निर्लज्ज मेरा स्वामी तौ मेरी लज्जा, नम्रता और शुद्ध भव्यमनको हरण करके नित्यमुक्तोंके बीचमें लक्ष्मीकापति बन कर दिव्य वैकुण्ठमें जाकर बैठा है । सखी ! मैं आज तेरी शपथ करती हूँ, और कहती हूँ कि मैं अब उस वञ्चककी वञ्चनाको समस्त संसारमें अनेक प्रकारके लाञ्छन लगाकर प्रसिद्ध करूंगी । अर्थात् मडलग्रहण करूँगी जिससे मेरी दशा देखकर सब लोग उस प्रभुको बुरा कहेंगे । संभव है वह, शिशुपालके समान अनिष्ठ करने वालोंसे ही प्रसन्न होता हो ॥९॥

लज्जां चापि विहायवीथिसरणिष्वेनन्तु नारीजना,
स्सर्वेहन्त ! विनिन्द्य वंचक महोकान्तं शपेयुर्यथा ।
सत्यं हन्त ! यथा भवेयमपि चावद्यश्रया निस्त्रपा,
धर्तुं श्रीतुलसीस्रजं ममविभोः कान्तस्य वै चक्रिणः ॥१०॥

अरी सखी ! मैं आज उस प्रभुसे मिलकर उसके कण्ठमें तुलसी की माला अपने हाथोंसे धारण करानेके लिए बड़ी लालायित होरही हूँ। इसलिए अपनी लज्जाको छोड़कर ग्रामकी गली गलीमें उसकी अपनी कीर्ति फैलानेको ऐसी निन्दा करूँगी कि जिससे मेरी वञ्चना करनेवाले उस स्वामीको संपूर्ण स्त्री समाज शाप देगा (कोशैगा) इस प्रकार निर्लज्ज होकरमैं ऐसाकरके उस धूर्तकी संसारमें अपकीर्ति फैला कर कलंकित करूंगी। यदि वह सीधेमार्गसे आकरमेरी अभिलाषा को पूरी न करैगा तो। पाठकगण ! प्रभु, अपनी परमकृपा करके जिन भक्तोंको परमाभक्ति देते हैं उन परमभक्तोंकी वही दशा होजाती है जोकि पतिकी प्रेमपात्री एक नायिकाकी होतीहै वही दशा आल्वरकी हुई है। हमनेजो प्रथम गाथामें मडलग्रहण लिखाथा उसकी पुष्टि इस गाथा से होती है ॥१०॥

गम्भीराम्बुधिवर्णमच्युतममुं कृष्णं प्रभुं श्रीधरं,
स्तोतुं श्रीकुरुकापुर प्रभु रहो दिव्यां शठारिर्जगौ ।
साहस्रात्मक रम्य पद्यसरणिंत्वन्तादि रूपां शुभां,
तत्रेदं दशकं पठन्ति भुवि ये तेषां पदं स्यात्परम् ॥११॥

गंभीर समुद्रके समान वर्णवाले अच्युत श्रीधरकृष्ण इस प्रभुकी स्तुति करने के लिए कुरुकापुरीके स्वामी श्रीशठकोपमुनिने दिव्य सहस्र पद्यवाली सहस्रगीतिको कहा है। उसमें जो पुरुषइस दशकको पढ़ेंगे, वे परमपदको प्राप्त होकर सुखी हो जावेंगे ॥११॥

अथ श्रीसहस्रगीतौ पंचमशतके चतुर्थदशकारम्भः

इस दशक में आल्वार पूर्वोक्तप्रकारसे जब यह साधक उस प्रभुकी प्राप्तित्वरा में सब-कुछ करके हार जाता है, और प्रभु प्राप्ति नहीं होते तो उस समय अधीर होकर जीवनसे निराश होकर करुणाक्रन्दन करके जीवनयात्रा पूरी करनाही उसका कर्तव्य रह जाता है। उसीका वर्णन विरहिणीके रूपकमें आल्वार करते हैं।

सुप्ताः पौरजनाः किलाद्य सकलास्सर्वत्र रात्रिस्त्वियं,
गाढ़ान्धंतम एव भाति सलिलान्यद्य प्रशान्तानि हि।
दीर्घा रात्रिरियं दिवानिशमपि व्याप्ता जगद्रक्षको,
विष्णुश्शेषशयीन मामयमुपैत्याः कोऽद्य मे रक्षकः ॥१॥

हा! पुरवासी लोग सब सो गये। सर्वत्र रात्रिके व्याप्त हो जानेसे काला २ अन्धकार ही दीख पड़ता है। जलका कलकल रव भी प्रशान्त हो रहा है। यह रात्री भी मेरे लिये बहुत बड़ी हो गई है। जान पड़ता है कि इस रात्रिने दिनको भी खा लिया है। मेरे जीवनाधार शेषशायीविष्णु तो मेरे पास ही नहीं आते हाय! अब मेरी रक्षा कौन करेगा? ।

पूर्वोक्त प्रकारसे मडल ग्रहण करनेमें दिन तो सुखसे बीत गया अब रात्री आई जिन सखियोंके साथ कुछ मनो विनोद होता था वे सब सो गईं अकेले दुःखी प्राणीको समय काटना कठिन हो जाता है। अतएव वह उस समय अतिविलाप करके ही कुछ समय बिताता है। इसीका वर्णन इस दशकमें आल्वार कर रहे हैं ॥ १ ॥

अब्धि भूमितलं किलाद्य गगनं सर्वं च रात्रिस्त्वियं,
व्याप्यतीव तमोमयीच विकृता दीर्घाऽस्त्यहो सर्वतः।
कृष्णो नीलमणिप्रभुस्तु नहि मामायात्यहो पापिनीं,
हे चित्तत्वमपीह तद्वशतया नैवानुकूलं मम ॥२॥

ओहो! आज यह रात्री समुद्र, भूमितल, गगनतल सर्वत्र ही व्याप्त होकर अन्धकार की सघनतासे बड़ी और भयंकर जान पड़ती है। हाय मुझ पापिनीके पास नीलमणि वर्ण मेरास्वामी कृष्ण

तो आता ही नहीं, अब किस प्रकार प्राण धारण किये जाँय । अरे मेरे मन! तुमभी तो आज उसीके वशमें होकर मेरी इच्छाके विपरीत कार्य कर रहा है । अर्थात् उस निर्दयी प्रभुका नाम मैं नहीं लेना चाहती परन्तु यह दुष्ट चंचल मन तो उसकी चिन्तामें मुझे बेचैन कर रहा है ।

मैंने सोचा था कि वे प्रभु नहीं मिलें तो न सही मनमें धैर्य धरके ही समय टालो । परन्तु मन तो उसकी स्मृतिमें बड़ा ही अधीर होकर स्वयं दुखी होकर मुझे अति दुःखिनी बना रहा है । इससे अधिक और पाप क्या होगा अतः अपनेको पापिनी कहा है ।

हे मच्चित्त ! नमेऽनुकूलविधया भासि त्वमप्यद्य हा,
रात्रिश्चाद्य युगायते निरवधिश्शाङ्गी तु नायाति माम् ।
काकुत्स्थो हरिरच्युतः प्रबलदुष्कर्मावृता हन्त हा,
नारीजन्मवशा त्वहं न किल मे पश्यामि रीतिं मृते ॥ ३ ॥

अरे मेरे चित्त ! अब तू भी अनुकूल नहीं रहता । और यह रात्री तो युगकेसमान हो गई है । इसका तो छोर ही नहीं आता । काकुत्स्थ इक्ष्वाकु वंशमें जन्म लेने वाला अविनाशी, शाङ्ग धनुषका धारण करने वाला वह हरि तो मेरे पास आता ही नहीं । हाय ! प्रबल पापोंने मुझे अब चारों ओर से घेर लिया है । अत्यन्त परतन्त्रताकी बेड़ीमें बँधे इस नारीजन्मके कारण मुझे इस जीवनको समाप्त करने का मार्ग बताने वाला भी तो कोई नहीं है ॥ ३ ॥

द्रष्टुं नैव सहेऽप्यदुःखममितं नारीजनानामिति,
क्वापिश्रीदिन कृच्चलीन इह मे दृश्यो न नीलाम्बुदः ।
पद्माक्षो हरिरच्युतोऽप्यवनि जिद्बिम्बाधरो वामनः,
कोंवा हन्त मनोऽतिगां च महतीं चिन्तारुजं मे हरेत् ॥४॥

हाय ! स्त्री-जन्ममें होने वाले दुःखोंको अब मेरेमें सहनेकी शक्ती भीनहीं है । ओहो ! यह देखो सर्व दुःखहारी ये सूर्य भगवान् भी अस्त हो गए । परन्तु नीलघनश्यामकमललोचनअविनाशीहरि लाल ओष्ठवाले जिन्होंने वामनरूप धरकर भूमीको जीता था, उस प्रभुके

दर्शन अभी तक नहीं हुए। हाय! किसीकी समझमें सहसा न आने वाली इस मेरी चिन्ताव्याधिको कौन हरण करेगा? ॥ ४ ॥

किं मेस्यादिति नैव हन्त जननी वर्गास्सखीनां गणाः,
पृच्छन्त्यद्य निशासु दीर्घसमयास्वेतेहि सुप्ताः स्वयम् ।
नीलाम्भोदतनुर्हरिर्मम विभुः कृष्णोऽद्य नायात्यहो,
पापिन्या मम नाम शेषमयति को वाऽद्य मामुद्धरेत् ॥५॥

अहह! अबतो मेरीमाता और ये सखी कोई भी बात नहीं पूछती हैं कि:—अरी तेरेको क्या दुःख है? हाय अति विशाल रूपवाली इस रात्री में, येसब तो स्वयं सोरही हैं, और नीलघनश्याम मेरा स्वामी कृष्ण वह मेरे पास आता ही नहीं। हा! आज मुझ पापिनका जीवन समाप्त होकर नाम मात्र ही शेष रहना चाहता है। अब इस विपत्तिसे मेरा उद्धार करने वाला संसारमें कौन है?।

पश्चान्मामनुयाति कामरुगियं चित्तं तु सम्पीड्य मे,
रात्रिर्मे पुरतोऽस्ति कल्पसदृशी चक्षुस्तिरोधायमे ।
चक्री मे प्रभुरद्य मां न समुपैत्याः कोऽद्य सर्वात्मना
ऽप्येवं निर्गतिकं तु पालयति मे जीवं दशायामिह ॥ ६ ॥

आज मेरे आगे एककल्प (चारहजारयुग) के समान यह रात्री मेरे नेत्रोंको अन्धेरा कर रही है। और मेरे चित्तको अत्यन्त पीड़ा देने वाली कामव्याधि मेरे पीछे ही फिरती है। चक्रधारण करने वाला मेरा स्वामी तो अब मेरे पास आता ही नहीं। इस प्रकार सर्व भाँति से अगति और निस्सहाय दशामें पड़े हुए इस मेरे जीवनको कौन रक्षा करेगा? ॥ ६ ॥

कोवा स्यादिह रक्षिता मम निशा सेयं हि दीर्घा स्वयं,
भात्येवाद्यतु कल्पवत्स तु हरिर्नायाति मां मत्प्रियः ।
दीप्तश्वेतसुशंखचक्र भृदहो पापानि मेदाहका,
न्येवं तापकराणि हन्त किमहो कुर्य्यामहं देवताः ॥७॥

(आकाशकी ओर दृष्टि पसारकर देवोंके प्रति कहते कि)

मेरे लिए यह रात्री तो कल्पके समान प्रतीत हो रही है । और मेरे प्राण प्रिय हरि श्वेतशंख और चक्रको धारण करने वाले मेरे पास आते ही नहीं । और पूर्वकृत पापपुंज अनेक प्रकारके सन्ताप देकर मुझे जलायें देते हैं । निद्रा रहित देवगणो ! क्या आप बताने की कृपा करेंगे कि इस विपत्तिको तरनेके लिए मुझे अब क्या करना चाहिये ?

संसारको सोता देखकर विचार हुआ कि इस समय देवगणतो जगे हुए हैं । अतः उनसे ही अपनी विपत्तिको दूर करनेका उपाय पूछना चाहिये ॥७॥

देवा किं करवाणि रात्रिरधुना मे सप्तकल्पायते,
प्राणान्मे कृशयत्यहो बहुतमामग्रे भवन्ती स्वयम् ।
नायात्येव मम प्रभुःप्रियतमः कृष्णस्तुचक्री हरी,
मामान्विष्य हि चन्द्रिकाऽपि दहति ज्वालामयी भाति मे ॥८॥

हे देवगणों ! आज रात्रि तो मेरे लिये सात युगोंके समान बड़ी होगई है । और इस रात्रीने मेरे आगे अपना स्वरूप बढ़ाकर मेरे प्राणों को अति दुर्बल बना दिया है । चक्रधारण करने वाले हरि मेरे प्राण प्यारे कृष्ण तो आतेही नहीं । हाय यह चन्द्रमाकी चाँदनी भी मुझे ढूंढकर जलाती है । मुझे ऐसा जान पड़ताहै कि यह चाँदनी नहीं है । किन्तु चारों ओरसे प्रज्वलित अग्निज्वाला ही फैल रही है ॥ ८ ॥

सेयं हन्त निशा हि सान्द्रतमसा सीता हिमेनावृता
ऽप्येवं माँ दहति स्वयं दहनवन्नायापि दृश्यो रथः ।
भानोरुत्तमतेजसा मम विभुः कृष्णस्तु नायात्यहो,
पद्माक्षः किल भाग्य वानिह महत्कोमेऽद्य दुःखं हरेत् ॥९॥

ओहो ! यह रात्री तो घोर अन्धकारसे घिरी हुई है । और हिम भी बड़े जोरसे पड़रहा है । परन्तु अतिशीतलता युक्तभी यह रात्री मुझे अग्निके समान जलारही है । इस दुःखकी निवृत्ति करनेवाला सूर्यका रथभी अभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ । और न कमललोचन मेरा स्वामी

कृष्णही मेरे पास आया। क्या संसारमें ऐसा भाग्यवान् कोई है, जो मेरे इस महान् दुःखको हरण करे? ॥९॥

सन्तप्ता यदहं द्रवीकृततनुस्सेयं च रात्रिस्तथा,
ह्याकाशे तुहिनद्रवै रुपगता भात्येव दीर्घा स्वयम्।
लोकान्पादतलेन यः प्रभुरहो चक्राम पूर्वं हरि,
र्नायात्येव स इत्यपीह न वदत्येवं हि सुप्तं जगत् ॥१०॥

विरह दुःखसे जैसे मैं पतली हो गई हूँ। इसी प्रकार यह रात्री भी पाला पड़ने के रूपमें पतली होकर बहती हुई मेरे सामने आकर बहुत ही बड़ी प्रतीत होरही है। जिस हरिने पूर्वसमयमें अपने पादतलसे समस्तलोकोंको नापा था। वह प्रभु मेरे पास नहीं आता। अरे! इस समय यहभी तो कोई नहीं कहता कि वह प्रभु नहीं आयेंगे सम्पूर्ण जगत् ही इस समय सोरहा है ॥१०॥

क्षीराब्धौ शयितं च योगशयनं नाथं हरिं श्रीधरं,
स्तोतुं श्रीकुरुकापुरप्रभुरयं चक्रे शठारिर्मुनिः।
साहस्रं शुभमुत्तमं सुरुचिरं त्वन्तादि रूपं सुधि-
स्तत्रेदं दशकं शरीरविरहे दिव्यं पदं प्रापयेत् ॥११॥

जो प्रभु क्षीरसमुद्रमें योगनिद्रासे शयन करतेहैं। उसी लक्ष्मीपति श्रीहरिकी स्तुति करनेके लिए कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनिने अतिरमणीयसहस्रगीतिको बनाया है। उसमें इस दशकको जो पढ़ेंगे उनको देहावसानमें दिव्यपद(वैकुण्ठ)अवश्य प्राप्त होजायगा ॥११॥

इति श्री सहस्रगीतौ पंचमशतके चतुर्थदशकं समाप्तम्।



अथश्री सहस्रगीतौ पंचमशतके पंचमदशकारंभः।

इस दशकमें आल्वार कुरंगनगरीस्थ भगवान्के सौन्दर्य्यको देखकर इतने आशक्त होगये कि फिर तो देहगेहकी भी सुध भूलगये। और सांसारिक प्रपञ्च उनको बुरे लगने लगगये। यह वर्णन करते हैं।

मां किं निन्दथ यूयमद्य जननी वर्गा! प्रियं सुन्दरं,
दृष्ट्वा पूर्णममुं कुरङ्गनगरीनाथं कुलेन्द्रं च नः।
चित्तं मे ननु शङ्खचक्रयुगले बिम्बाधरे श्रीहरे,
नेत्रांभोजयुगे च सक्तमनिशं तैरेव याति स्वयम् ॥१॥

हे माताओ! आज आप मेरेको भला बुरा क्यों कहरही हो? कुरंगनगरीमें वासकरने वाले पूर्णपुरुषोत्तमके मैंने जबसे दर्शनकिये हैं, तभीसे उस हमारे कुलदेवहरिके शंखचक्र और उसके लालहोठ तथा नेत्रकमलोंमें मेरा चित्त आशक्त होगयाहै। अब प्रभुके सुन्दर अंग और आयुध, भूषणोंको छोडकर मेरा चित्त अन्यत्र कहीं लगताही नहीं। इसलिए आप लोगोंका मेरी निन्दा करना व्यर्थ है।

इसगाथामें कुरंगनगरीशब्द द्रविडके (तिरुक्कुरुङ्गुडी) शब्दका अर्थ है। यह दिव्यदेश श्रीतोताद्रिसे पश्चिमदिशामें ४ कोस पर स्थित है ॥१॥

मन्निन्दान्तु विहाय मेऽद्य मनसा यूयं चभो पश्यत,
श्रीशं पूर्णममुं कुरङ्गनगरीनाथं हिदृष्ट्वा मम।
सर्वत्रापि पुरश्चकास्ति सततं यज्ञोपवीतं शुभं,
विष्णोस्तस्य च कुण्डलं भुजयुगे श्रीवत्सभूषादिकम् ॥२॥

हे माताओ! आप मेरी निन्दा करनातो मनमें से छोड़ दो, और कुरंगनगरीमें वास करनेवाले मेरेस्वामीपूर्णपुरुषोत्तमके दर्शन करो। देखो इसका सुन्दर निर्मलयज्ञोपवीत कैसी शोभा देरहा है। और उस विष्णुके कुण्डल तथा चारोंभुजा और श्रीवत्स आदि भूषणकैसे शोभा दे रहे हैं ॥२॥

स्तब्धा तिष्ठति च भ्रमान्धहृदया शैथिल्यवश्या स्वयं
चेत्येवं किल मान्तु निन्दथ जनन्योऽद्ययितै रुन्नतैः ।
प्रासादैर्भरितां कुरङ्ग नगरीं शास्तुर्हरेर्दर्शनात्
पश्चाच्छार्ङ्गगदासिचक्रजलजान्येवाग्रतो मे सदा ॥ ३ ॥

हे माताओ ! आपजो मुझे कहती हो कि यह तौ यौवनोन्मत्तहो अकड़कर खड़ी रहती है, और कभी कभी ऐसी बेसुध होजाती है कि इसका सब शरीर ही शिथिल (प्राणहीन) होजाता है । न जानें इसका मन कहाँ रहता है । ऐसा जो तुम कहती हो यह सत्य है, परन्तु मैं करूँ क्या ? पर्वतके समान उन्नत प्रासादों (महलों) से भरी हुई कुरंगनगरीके स्वामी श्रीहरिके दर्शन जबसे मैंने किये हैं, तबसे उसके शार्ङ्गधनुष गदा, खड्ग चक्र शङ्ख ये सब मेरे आगे मुझे दीखते हैं । अर्थात् ये बलात्कारसे मेरा चित्त अपनी ओर खींचकर व्याकुल कर देते हैं ॥ ३ ॥

नैपावाष्पवियुक्तनेत्रयुगलेत्येवं हि मां मातरो
यूयं चापि विनिन्दथ प्रियममुं दृष्ट्वाऽस्मि मुग्धा हरिम् ।
श्रीशं दिव्यकुरंगरम्यनगरीनाथं हितस्मादहो
दिव्यस्रङ्मुकुटाङ्गपट्टवसनं दामादि पार्श्वे मम ॥ ४ ॥

हे माताओ ! न जाने यह किसकी चिन्तामें रोती ही रहती है । इसके नेत्रोंमें से आँसू सूखते ही नहीं । ऐसा जो तुम बारबार कह कर मेरी निन्दा करती हो, सो ठीक नहीं । देखो कुरंगनगरीके सुन्दर स्वामी श्रीहरिको देखकर मैं पागल सरीखी होगई हूँ । जबसे मैंने उस मनोहारीशोभाधाममूर्तिके दर्शन करे हैं, तबसे उसकी दिव्यवनमाला, मुकुट, बाजू, पीताम्बर और कटिसूत्र ये सब ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो मेरे पास ही आकर आगे चमक रहे हों ॥४॥

पार्श्वं पश्यति चास्ति हन्त शिथिलेत्येवं हि मां मातरो
यूयं निन्दथ दिव्यकीर्तिमनघं दृष्ट्वा हरिं श्रीधरम् ।

मुग्धाऽहं हि कुरंगरम्यनगरीनाथं ममात्मन्यहो
तस्याऽऽस्ते ह्यधरोऽपि बिम्बसदृशो भ्रूयुग्मनेत्राम्बुजम् ॥५॥

हे माताओ ! और जो आप यह कहकर मेरी निन्दा करती हो कि यह सदा अपने पासके चारोंओर देखकर एकाएक मूर्छित होकर बेसुध होजाती है, तो इसमें मेरा क्या वश है । क्योंकि कुरंगनगरीनाथको देखकर ही मेरी यह दशा हुई है । दिव्यकीर्तिवाले शोभा धाम उस हरिको आज मैं सर्वत्र देख रही हूँ। उसका लालहोठ धनुष के समान टेढ़ी भौंहें कमल समान नेत्र तो मेरे मनमें ऐसे बस गये हैं कि वे एक क्षणभर भी दूर नहीं होते ॥ ५ ॥

अस्माकं कुलपांसनीयमिति मां माता स्वयं वारय
त्येव श्रीहरिदर्शनादहमहो मुग्धाऽस्मि दृष्ट्वा च तम् ।
श्रीशं दिव्यकुरंगरम्यनगरीनाथं ममास्ते हृदि
श्रीनासाऽक्षियुगाधरांगरुचिभिस्साकं चतुर्बाहुभिः ॥६॥

हे माताओ ! आप जो मेरे से कहती हो कि तू हमारे कुलमें कलङ्करूपिणी है । और उस प्रभुका स्मरण करनेका जो निषेध करती हो, तो इसको छोड़ना मेरे वशकी बात नहीं है । मैं उस कुरंगनगरीके स्वामीको देखकरही पागल होगई हूँ। वह अति शोभा सम्पन्न प्रभु सुन्दर नासिका मनोहर नेत्र लालहोठ गोल गोल मोटी चारभुजा सुवर्णके समान गौर और चमकीली शरीरकान्तिवाला मेरे हृदयमें आकर बैठा है । उसनेही मुझे पागल बना दिया है ॥६॥

अस्माकं हि कुलस्य हन्त कुरुते सेयं कलङ्कं त्विति
द्रष्टुं तं किल नावकाशमधुना माता ददात्यत्र मे ।
धन्याऽहं हि कुरंगरम्यनगरीनाथस्य सन्दर्शना–
न्मय्येवास्ति स तेजसां निधिरहो दिव्याकृतिश्चक्रधृत् ॥७॥

हा ! यह मेरी माता तो यह कह करके कि इसने तो हमारे कुलमें कलङ्क उत्पन्न कर दिया, मुझे देखनाही नहीं चाहती बात

करना और समझाकर धैर्य बँधाना तो दूर रहा। अहह! मैं तो आज कुरंगनरीनाथके दर्शनकरके धन्यवादके योग्य होगई हूँ। ओहो! चक्रको धारणकरनेवाला दिव्य तेजका भण्डार दिव्यमंगलविग्रहसहित वह प्रभुतो आकर मेरे हृदयहीमें विराजमान होगया है। अब मेरे समान धन्यभागी संसारमें कौन होगा? ॥७॥

हस्ते हन्त करोति वक्त्रममलं शैथिल्यवश्यात्वियं,
चेत्येवं किलमान्तु निन्दथ जनन्योऽद्यापि यूयं वृथा।
दृष्ट्वाहं हि कुरङ्गरम्यनगरीनाथं वशाऽस्यैव य,
द्दिव्यं लोचनपद्मकेशकटिबाह्वाद्यं पुरो भाति मे ॥८॥

ओहो! यहतो हाथ पर माथाधरकर किसीकी चिन्तामेंही व्याकुल रहती है। इसने कुलको दागलगा दिया। ऐसा कहकर हे माताओ जो तुम मेरी निन्दा करती हो, यह बात आपकी सब व्यर्थहै। मैंने तो जबसे सुन्दरमूर्तिवालेकुरंगनगरीनाथको देखा है। तभीसे इसके वश में हो गईहूँ। अबभी उस प्रभुके दिव्यकमललोचन घुंघरालेबाल मनोहर कटितट, गोल २ मोटी २ भुजायें मेरे सामने प्रकाशमान हो रही हैं।॥८॥

अग्रे त्वं कथमद्य भासि च नृणामित्येव निन्दन्ति मां,
तेऽमीहन्त! सखो जनाश्चजननी वर्गा भवन्तोऽधुना।
दृष्ट्वा रम्यकुरङ्गदिव्यनगरीनाथं हि धन्याऽस्मि मे,
चित्तं नत्यजतीक्षु दुग्ध मधुरो भूपान्वितो मौलिभृत् ॥९॥

अये मान्य सखियो! तथा पूज्य माताओ! तुम मेरेसे यह कहती हो, कि अरी तू सब मनुष्योंके आगे निर्लज्जहोकर पागलसी फिरती है तुझे लज्जा नहीं आती। ऐसा कहकर जो मेरीनिन्दा करती हो। वह सब व्यर्थ है। मैं तो कुरंगनगरीके दिव्यस्वामीको देखकर धन्य भाग्य हो गई हूँ। दिव्य मुकुट और दिव्य भूषणोंसे शोभायमान उस प्रभुको मेरा मन छोड़ना ही नहीं चाहता। और यह प्रभु मुझे ईख, और दूधसे भी अधिक मधुरस्वादिष्ट प्रतीत होरहा है॥९॥

सेयं कामवशेति मान्तु जननी तद्दर्शनाद्वारय
त्येवं हन्त कुरुंगदिव्यनगरीनाथं हि दृष्ट्वाऽस्म्यहम् ।
देवैस्सूरिवैरश्च सेव्यमतुलं तेजोमयं तद्वपुः
चित्ते मे सततं चकास्ति तदिदं वेद्यं हि नान्यैरहो ॥१०॥

हा ! यह तो ज्वानीकी दिवानी कामके वशमें होकर न जाने क्या अनर्थ कर डालेगी, ऐसा कह कर मेरी माता मुझे उस प्रभुके दर्शनोंसे रोकती है । किन्तु सम्पूर्ण देवगण और नित्यसूरिवृन्द जिसकी सेवा करते हैं । जो सर्वश्रेष्ठ तेजोमयविग्रह वाला है । कुरंगनगरीके उस दिव्य स्वामीको देखकर ही मैं कामातुर और पागल भई हूँ । उस प्रभुकी अति शोभायमान मूर्ति मेरे चित्तचत्वर में निरन्तर चमकती रहती है । इस आनन्दको पानेका सौभाग्य मुझे छोड़कर संसारमें क्या किसी अन्यको मिल सकता है ? ॥ १० ॥

ज्ञातुं दुश्शकमच्युतं हि जगतां नाथं हरिं श्रीधरं
स्तोतुं चक्रधरं च दिव्य कुरुकापुर्य्याश्शठारिर्विभुः ।
साहस्रं शुभदिव्यपद्यकुसुमावल्यात्मकं व्यातनोत्
तत्रेदं दशकं कुरंगपुरगं ज्ञात्वा जना वैष्णवाः ॥ ११ ॥

बिना भक्तिके जिसको जानना बहुतही कठिन है जो समस्त जगत्का अविनाशी स्वामी है । उसी चक्रधारी सर्वशोभाधामहरिकी स्तुति करनेके लिये दिव्य कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनिने दिव्यपद्यों वाली सहस्रगीतिको (जो भगवच्चरणोंमें पुष्पाञ्जलीके समान है) बनाया । उसमें कुरंगपुरीवासी प्रभुकी स्तुति करने वाले इस दशकको जो पाठ अथवा अर्थसे जान लेंगे वे मनुष्य विष्णुकी कृपाके पात्र अवश्य बनेंगे ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्रगीतौ पंचमशतके पंचमदशकं समाप्तम् ।

* श्रीमते शठकोपायनमः *

अथ श्रीसहस्रगीतौ पंचमशतके षष्ठदशकारम्भः

इस दशकमें अपने बियोगमें आल्वारको अतिदुखी देखकर प्रभु उनके हृदयमें आकर बिराज गये। उस प्रभुके दर्शनानन्दमें वे अपनेको भूलकर तन्मय होगये और फिर देखने वालोंसे यह कहकर कि मैं ही ईश्वर हूँ, प्रभुका अभेदरूपसे अनुभव करने लग गये।

पृथ्वीं पयोनिधि वृतामहमेव कृत्वा, पृथ्वी पयोनिधिवृताऽप्यमस्मि सत्यम्
पृथ्वीं पयोनिधिवृतां यदहं गृहीत्वा, पृथ्वीं पयोनिधिवृतां धृतवत्यहं हि।
पृथ्वीं पयोनिधिवृतामहमेव भुक्त्वा, वर्ते किलेति जगदीश्वरसम्प्रविष्टा
सेयं सुता मम कथं भवतीहलोके, युष्मान् वदानि कथमद्य चरित्रमस्याः॥ १॥

अहह! समुद्रसे घिरी हुई इस पृथ्वीको मैंने ही रचा था, समुद्रसे घिरी हुई पृथ्वीमें भी मैं ही व्याप्त हो रहा हूँ, यह बात नितान्त सत्य है। समुद्रसे घिरी पृथ्वीको मैं लेकर समुद्रसे घिरी पृथ्वीको मैंने ही धारण किया था।

समुद्रसे घिरी पृथ्वीको मैं ही खाकर फिर अकेला रह जाता हूँ। इस प्रकार ईश्वरके आवेशमें आकर कहनेवाली मेरी यह पुत्री इस लोकमें अब भला क्यों रहेगी। हे विद्वानो! मैं आपके आगे अब और इसके चरित्रोंको कैसे कहूँ। इस प्रकार दर्शकोंसे नायिका की माता कहती है।

पाठकगण! इस गाथाको पढ़कर सम्भव है कि आपको यह सन्देह होजाय कि दास्यवृत्तिमें रत भेदोपासना करने वाले आल्वारको ऐसी अद्वैत भावना क्यों हुई। अतएव इस विषयमें हम कुछ शब्द लिखते हैं।

प्रभुके भक्त दो प्रकारके होते हैं। भेदोपासक और अभेदोपासक साधारणभक्त प्रथम भेदोपासनामें प्रवृत्त होकर ही अभेदोपासनाका अधिकारी होता है। यथा

तवास्मीति भजत्येकस्त्वमेवास्मीति चापरः।
इति किञ्चिद्विशेषेऽपि परिणामः समो द्वयोः॥

भक्तकी प्रथमश्रेणीकी भावना यही होती है कि मैं आपका दास हूँ। परन्तु वही भावना दीर्घ कालके अभ्याससे, मैं ही हूँ, इस प्रकारकी होजाती है। इसी प्रकार का उपासक-

"अन्तर्बहिर्यदा देवं देवभक्तः प्रपश्यति ।-
दासोऽहं भावयन्नेव दाकारं विस्मरत्यसौ" ॥

जब बाहर भीतर सर्वत्र अपने इष्टदेवको देखता है, तो उसके दर्शनानन्दसे वह दासोऽहं के दाकारको भूलकर केवल (सोऽहं) का ही अनुभव करने लगता है।

दासोऽहमिति मे बुद्धिपुरासीत् परमात्मनि ।
दाशब्दोऽपहृतस्तेन गोपीवस्त्रापहारिणा ॥

यह लोकदृष्ट बात है कि जिस व्यक्तिसे अत्यन्त प्रेम होजाता है, उससे फिर किसी बातका पर्दा नहीं रखते । तो प्रियतम परमात्मा भी भक्त और अपनेको भिन्न बताने वाले दाकारको हटाकर केवल सोऽहं को ही रहने देते हैं।

इसी बातको भगवान् श्रीभाष्यकारने भी श्रीभाष्यके-

आत्मेति तूपगच्छन्तिग्राहयन्ति च ब्रह्मसूत्र ४।१।२

इस आत्मत्वोपासनाधिकरणमें "त्वंवा अहमस्मि भगवो देवते अहं वैत्वमसि" (वराहोपनिषत् अध्याय २ मन्त्र ३४) इस श्रुतिका समर्थन करते हुए यह सिद्ध किया है कि ब्रह्मकी उपासना (अहं ब्रह्मास्मि) इत्यादि रूपसे ही करनी चाहिये। मुक्तोंकी प्रायः ऐसी ही भावना देखनेमें भी आती है,ऐतरेयोपनिषद्में वामदेवकी,श्रीविष्णु पुराणमें प्रह्लादकी । यह विषय बहुत गहन है, इसलिये मैं इतनाही कहकर "यह गुण साधनतें नहिं होई। प्रभुकी कृपा पाव कोई कोई" समाप्त करता हूँ ॥ १ ॥

विद्यासु चास्म्यनवधिः किलसीमभूमि, विद्यात्मिकाऽपि सकला त्वहमेव सत्यम् ।
विद्यां खिलाहमखिलां स्वयमेव कृत्वा, विद्यामहार्णमखिलामहमेव चान्ते ॥
विद्यासु सारतमम्यहमस्मि सत्यं, चेत्येव वक्ति तनया मम सम्प्रविष्टा ।
विद्येश्वरेण हरिणा कथ मद्य युष्मान्, विद्याश्रयान् किमिति वच्मि कथामिहास्याः ॥२॥

अहह ! आज सर्व विद्याओंके अधिष्ठाता उस हरिके आवेशमें आकर यह मेरी पुत्री यही कहती है कि समस्त विद्याओंकी सीमाका घर मैं ही हूँ । सर्वविद्यारूपभी मैं ही हूँ । सम्पूर्ण विद्याओंको स्वयं मैंने ही बनाया है, और अन्त में सर्व विद्याओंको मैं ही समेटके खाजा-

ऊँगा, सर्व विद्याका सत्यसारभी मैं ही हूँ। हे विद्वानो आज आप महानुभावोंके आगे इसके अन्य चरित्रोंको मैं कहाँ तक वर्णन करूं ॥२॥

दृश्या किलास्मि पृथ्वी सकलाऽहमेव दृश्यं किलाहमखिलं गगनं स्वयं तत्।
दृश्ये ऽपेहन्त दहने ऽयहमेव चोष्णो दृश्योऽपि वायुरखिले ऽस्म्यहमेव सत्यम् ॥
दृश्योऽपि वारिनिधिरस्म्यह मेघ,सर्वश्चेत्येववक्ति तनया मम सम्प्रविष्टा।
दृश्येन चाम्बुनिधिवर्णयुतेन तेनेत्येवंविमद्यचरितं नु वदानिवोऽस्याः ॥ ३ ॥

हे विद्वानो! आज इस पुत्रीके चरित्रोंको मैं कहाँ तक कहूँ। यह तो समुद्रके समान नीलवर्ण उस हरिके आवेशमें आकर कहती है कि देखने योग्य सम्पूर्ण पृथिवी मैं ही हूँ। और दृष्टिमें आने वाला यह समस्त आकाशभी मैं ही स्वयं हूँ। उष्णताधर्मवाला होकर दीखने वाला अग्नि मैं ही हूँ। यह सत्य है कि दीखने वाला सम्पूर्ण वायु भी मैं ही हूँ। तथा दीखने वाला समस्त समुद्र भी मैं ही हूँ।

कृत्यं च सर्वमेहमेव हिवर्तमानं कृत्यं च भावि सकलं त्वहमेव सत्यम्।
कृत्यं च भूतमखिलं त्वहमेव सत्य कृत्यावलेश्च फलभुक्स्वयमेवचास्मि ॥
कर्मावलींचसकलामहमेवकृत्वा वर्ते किलेति तनया मम वक्ति मुग्धा।
श्रीपुण्डरीकनयनेन हि सम्प्रविष्टा वृत्तं कथं वतवदानि च कोमलाङ्ग्याः ॥ ४ ॥

हे पण्डितगणो! यह मेरी पुत्री कमललोचनहरिके आवेशमें आकर बेहोशीसे, कहती है कि वर्तमानकालका कर्तव्य मैं ही हूँ। और भविष्यकालका कर्मभी मैं ही हूँ। अतीतसमयका सत्य कर्तव्य भी मैं ही हूँ। समस्त कर्मोंका फल भोगने वाला स्वयं मैं ही हूँ। सर्व कर्मोंको रचकर भी मैं ही रहता हूँ। इस प्रकार कहने वाली कोमलाङ्गी पुत्रीका और क्या चरित्र आप लोगोंसे कहूँ ॥ ४ ॥

आज्ञां प्रचार्य पृथ्वीं परिपालयामि स्वैरं गिरिं तमचलं समधारयं प्राक्।
सर्वासुरावलिमहं न्यहनं पुरातां तान पाण्डवानपि च तन्त्रगिराऽप्यरक्षम् ॥
संकल्पसिद्धिविधये जलधिं प्रमथ्य स्वाभीष्टभागहमितीह सुताद्य वक्ति।
सेयं ममाम्बुधिनिभेन हि सम्प्रविष्टा किं वाऽत्र वच्मि तनयां प्रति रेऽम्बुजाक्षीम् ॥५॥

अहह! कमलनयना यह मेरी पुत्री समुद्र समान सर्वगुणपूर्ण हरिके आवेशमें आकर आज कहती है, कि सर्वत्र अपनी आज्ञाका प्रचार करके मैं ही पृथ्वीका पालन करता हूँ। पहले अपनी ही इच्छासे उस पर्वतको मैंने धारण किया था। पहले समस्त असुर दलोंको मैंने ही मारा था। उन पांच पाण्डवोंकी रक्षा भी अपने

स्वभाव चातुर्थ से मैंने ही करी थी। लक्ष्मीके मिलने के संकल्पको सिद्ध करनेके लिये मैंने समुद्रको मथन करके अपना मनोरथ सिद्ध किया था। ऐसा कहने वाली पुत्रीका चरित्र आप लोगोंको मैं क्या क्या सुनाऊं ॥ ५ ॥

> गोवर्द्धनोद्धरणकृत् स्वयमेव चाहं सप्तर्षभानपि विनाश्य जगत्प्रसिद्धा,
> क्षेत्रेपु वत्स निवहानपि चारयन्ती ; सर्वानहं पशुगणानपि तानरक्षम्।
> गोपालबालनिवहाधिपतां गताऽहं रित्यन्येव वक्ति तनया मम सम्प्रविष्टा।
> देवेश्वरेण खलु तेन कथं वदेयं शीलन्तु वोऽद्य ललिताङ्गय इहोत्पलाक्ष्याः ॥ ६ ॥

यह मेरी पुत्री देवाधीश उस प्रभुके आवेशमें कहती है कि मैंही स्वयं गोवर्द्धनको उद्धार करने वाला हूँ। सात साँड़ोंको दमन करके जगत प्रसिद्ध मैं ही हूँ। हरे खेतों में मैंने ही पहले बछड़े चराये थे। और उन पशुओंकी सर्व प्रकारसे मैंने रक्षा करी थी। सर्व गोपबालकों का स्वामी मैंही बना था। इस प्रकार कहने वाली कोमलांगी कमल नयना इसके स्वभावको मैं कहाँतक आप लोगोंको कहूँ ॥ ६ ॥

> नैवात्र बान्धवजना मम सन्ति लोके सर्वेऽत्र बाँधवजना मम सन्ति लोके।
> सर्वान्करोमि ममबन्धुजनान् किलाहं मामाश्रितानपि फलैकरतांस्त्यजामि ॥
> मामेव संश्रितवतामहमस्मि बन्धुरित्येव वक्ति तनया मम सम्प्रविष्टा।
> माया मयेन हरिणा किलनिस्समेनं किं वो वदामि वचसा वचनं कृशाङ्ग्याः ॥७॥

सर्व श्रेष्ठ मायामय हरिके आवेशमें आकर यह मेरी पुत्री कहती है कि, इस लोकमें मेरा बन्धु जन कोई नहीं है। और ज्ञान दृष्टिसे सभी मेरे बन्धु हैं। बन्धुजनों को मैंही उत्पन्न करता हूँ। किसी फल सिद्धिके लिये जो मेरा आश्रय लेते हैं उनको मैं त्याग देता हूँ। बिना प्रयोजन जो मेरा आश्रय लेते हैं उनको मैं बन्धुभावसे ही स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार कहने वाली कृशशरीर को इसके अन्य वाक्योंको मैं कहां तक कहूँ ॥ ७ ॥

> सोऽपि त्रिनेत्र उदितःस्वयमस्मि चेशस्सोऽपि स्वयं किल चतुर्मुख एवचास्मि।
> देवादचते स्वयमहं जगति प्रसिद्धा देवेश्वरेऽपि विदितःस्वयमेव चाहम् ॥
> तेऽपि स्वयं च मुनयः प्रथिताः किनाहं त्वित्येव वक्ति तनया मम सम्प्रविष्टा।
> नीलाम्बुदाभवपुषा हरिणाऽत्र किंवा युष्मान्वदानि चरितं मम कोमलाङ्ग्याः ॥ ८ ॥

आज नीलघनश्याम श्रीहरिके आवेशमें आकर यह मेरी पुत्री कहती है कि त्रिनेत्रधारी रुद्र रूपसे मैं ही उत्पन्न हुआ हूँ। और वह चतुर्मुख ब्रह्माजीके रूप में भी मैं ही हूँ। और संसार प्रसिद्ध गणेश दुर्गा आदि देवगण मेरे ही रूप हैं। सर्व देवोंका स्वामी इन्द्र भी मैंही हूँ। लोक प्रसिद्ध भृगुवशिष्ठादि मुनि मेरे ही रूप में हैं। इस प्रकार कहने वाली कोमलशरीर वाली इस पुत्रीका चरित्र और क्या क्या आप विद्वानों को सुनाऊं ॥ ८ ॥

कर्मादिदोषरहिता स्वयमस्मिचाहं सर्वात्मकर्मसरणिः स्वयमस्मि चाहम् ।
दुष्कर्मराशिजननोस्त्वयमेव चाहं दुष्कर्मवन्यततिमोक्षकरी च सोऽहम् ॥
दुष्टाश्रितामहमनाशय मेव लंकामित्येव वक्ति तनयामम सम्प्रविष्टा ।
तार्क्ष्यध्वजेन हरिणा खलु किं वदेयं वेषान्निहात्र भुवि वोवत मेलताङ्ग्याः ॥ ९ ॥

यह मेरी पुत्री गरुडध्वज हरिके आवेशमें आकर अनेक वेष धरती हुई कहती है कि मैं स्वयं समस्त कर्मोंके दोषसे रहित हूँ। सर्व प्रकारके कर्मोंका मार्ग बताने वाला मैं ही हूँ। दुष्ट कर्म समुदाय को उत्पन्न करने वाला स्वयं मैं ही हूँ। दुष्टोंके निवास स्थान लंकाका नाश मैंने ही किया था। इस प्रकार कहने वाली लताके समान पतले शरीरकी इस पुत्रीके चरित्रों और वेषोंको मैं कहांतक आप लोगोंके लिये बताऊं ॥ ९ ॥

भोग्यं स्वयं दिविपदां पदमप्यहं हि क्लेशास्पदं च नरक स्त्वहमेव चास्मि ।
मोक्षोऽप्यनन्तसुखदः परमोऽहमेव स्वांशोऽहमि सकला अपि जीववर्गाः ॥
सर्वस्य मूलमपि चास्म्यहमेव चाद्य इत्येव वक्ति तनया मम सम्प्रविष्टा ।
दिव्याम्बुदाभवपुषा हरिणा किलाहं किं वोऽत्र वाच्मि तनयां प्रतिमे सुकेशीम् ॥१०॥

नीलमेघकेसमान सुन्दरशरीरवाले हरिके आवेशमें आकर यह मेरी पुत्री कहती है, कि सुन्दर सुख भोग प्राप्त कराने वाला स्वर्ग मैं ही हूँ। और कठोर क्लेशका स्थान नरक भी मैं ही हूँ। सर्वाधिक अनन्तसुख देने वाला मोक्ष पदभी मेरा ही स्वरूप है। और संसारके समस्त जीववर्ग मेरे ही अंश रूप हैं और सर्ववस्तु समुदाय का आदि कारण मैं ही हूँ। इस प्रकार कहने वाली सुन्दरघुंघराले केशोंकी इस पुत्रीको मैं क्या कह कर समझाऊं ॥ १० ॥

लक्ष्म्या प्रियं च पतिमच्युतमत्र भूम्याः नीलाप्रियं च हरिमेव हृदि प्रपद्य ।
स्तोतु शठारिरतनो त्कुरुकापुरेशो दिव्यां सहस्रगुमपद्यततिं हि हृद्याम् ।
तत्रान्तरङ्ग हरिकिङ्कर वृत्तिबोधि श्रेयः पठन्ति भुवि ये दशकं त्विदं ते ।
लोकेऽत्र भाग्यमपि भोग्यतमं प्रपन्नाश्श्रीशस्य भक्तनिवहानपि पूजयन्ति ॥ ११ ॥

लक्ष्मीके अविनाशी पतिको और नीला देवीके प्राणवल्लभ को हृदय में शरणागति करके और उन्हींको स्तुति करनेके लिये कुरुका-पुरी के स्वामी शठकोपमुनिने हृदयको हरण करने वाली दिव्य सहस्र पद्यों की सहस्र गीतिको बनाया। उसमें परमात्माके अभ्यन्तर के कार्य (आराधना) की विधि बताने वाले कल्याणरूप इस दशकको जो पढ़ेंगे। वे इस लोकमें भाग्योदयको प्राप्त होकर अनेक भोगोंको भोग कर लक्ष्मीपतिके भक्तों (नित्य मुक्तों) के पूजक हो जावेंगे। अर्थात् दिव्य वैकुण्ठ में जाकर नित्यमुक्तोंका सम्मान प्राप्त करते हुए वहां निवास करेंगे ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्रगीतौ पंचमशतके षष्ठदशकं समाप्तम्।



अथश्री सहस्रगीतौ पंचमशतके सप्तमदशकारंभः।

इस दशक मे आल्वार यह कहते हैं कि—प्रभो न तो मेरा कोई रक्षक है और न आत्माके कल्याणका कोई साधन मेरे पास है। अतएव निर्हेतुक कृपा करके आप ही इस दासको स्वीकार करलें बस यही प्रार्थना है।

नाहं कर्मविदांवरो न च हरे श्रीज्ञानयोगान्वितो,
विष्णो ! त्वद्विरहं तथाऽपि न सहे जातु स्वयं श्रीपते ।
स्वामिन् शेषशयः प्रकाशिततनो श्रीपंकजव्रीहिभि,
र्दीप्रे श्रीवरमंगलाह्वयपुरे नैवास्मि तेऽहं बहिः ॥ १ ॥

हे मेरे नाथ न तो मैं सत्कर्मका अनुष्ठान करता हूँ। और न मुझे तत्वज्ञान (अर्थ पंचक ज्ञान) ही यथार्थ रूपसे है। और आपको प्रसन्न करने के लिये अष्टांगयोगभी मैं नहीं जानता, तथापि हे लक्ष्मीपते ! सर्व व्यापक आपका विरह मुझसे किसी प्रकार नहीं सहा जाता। सुन्दर धानके खेतों और विकसे हुए कमलोंसे शोभाय मान् श्रीवरमंगलपुर नामके नगरमें प्रगट होकर शेषशय्या पर शयन

करने वाले प्रभो मैं आपके चरणोंको छोडकर बाहरी किसी अन्यका आश्रय लेना नहीं चाहता ।

अर्थ न धर्म न कामरुचि, गति न चहौं निर्वान ।
जन्म-जन्म सियारामपद, यह वरदान न आन ॥
कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभीके प्रिय दाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिं राम ॥
एक भरोसो एक बल, मानि एक विश्वास ।
नाथ तुम्हारे चरण की, शरण पड़ा ये दास ॥

नाहं तत्र भवामिनात्र च भवाम्याशा वशोऽहं तव
प्राप्त्यै नैव भवामि कुत्रचिदपि श्रीमान् हरे मे प्रभो ।
लंकाध्वंसक चन्द्रसङ्गिमणिसौधावल्युपेते वसन्
दिव्ये श्रीवरमङ्गलाह्वयपुरे चक्रिन् प्रसन्नो भव ॥ २ ॥

हे श्रीमन् ! मैंने आपके चरण प्राप्तिकी आशासे ही परलोकमें प्राप्त होने वाली मुक्तिका और इस लोकमें प्राप्त होने वाले भोगोंका भी त्याग किया है । लङ्कानगरका नाश करने वाले प्रभो ! तथापि आप की प्राप्ति मुझे अभी नहीं हुई । हे हरे ! चन्द्रमण्डलको चुम्बन करने वाली अति उन्नत शिखरोंकी पंक्तियोंसे युक्त दिव्यश्रीवरमङ्गलनामके पुरमें शङ्ख चक्र धारण करके वास करने वाले अबतो प्रसन्न होकर इस दासके बेड़ेको पार लगाकर उद्धार कर दीजिये ।

प्रभुके मिलनेकी आशासे मैंने संसारसम्बन्ध छोड़दिया अतएव संसारीभी नहीं रहा । और सर्वस्व त्याग करनेपरभी प्रभु न मिले इसीलिये मुक्तभी नहीं हुआ । न संसारी और न मुक्त इस प्रकारकी दुर्दशारूप इस मध्यकोदशामें तड़फतेहुए इस दीनहीनअनाथका आप उद्धार करलें यही विनम्रप्रार्थना है ॥ २ ॥

(धर्म सनेह उभय मति घेरी । भई गति साँप छछुन्दर केरी ॥)

हे तार्क्ष्यध्वज चक्रभृच्च परमव्योमेश्वर श्रीधरः
त्वंनीलाम्बुदसन्निभोऽसि कृतवान् सन्तं ह्यसन्तं हिमाम् ।
कैंकर्यं परिगृह्य मे विजयसे दिव्ये चतुर्वेदविद्
वासे श्रीवरमङ्गलाहवयपुरे नाहं कृतज्ञस्त्वयि ॥ ३ ॥

हे गरुड़ध्वज ! सुदर्शन चक्रको धारण करने वाले वैकुण्ठनाथ लक्ष्मीनायक आप नीलघनश्यामसुन्दर हो । मैं पहले असत् (आत्म ज्ञानशून्य) था, परन्तु आपने कृपा करके मुझे सत् (आत्मज्ञान युक्त) बना दिया । और इस प्रकार आपने अपनी सेवा करनेकी योग्यता इस दासको प्रदान करके मेरे सर्वविध कैङ्कर्य (सेवाकार्य) को स्वीकार करके चारों वेदोंके पाठकरने वाले ब्राह्मणगण जिसमें सदा वास करते हैं । उस वरमंगलनामके नगरमे वास करने वाले आपकी सेवा करनेकी विधि मै यथावत् नहीं जानता हूँ ।

सर्व वेद शास्त्रोंसे यह बात सिद्ध है कि जब तक यह चेतन ईश्वर स्वरूपको यथार्थ नहीं जानता तब तक असत् (मिथ्या) रहता है । और जब इसको ईश्वरस्वरूपका ज्ञान होजाता है, तब सत् (सत्यरूप) होजाता है । इसी कारण असतको सत् बनाना कहा है ॥ ३ ॥

संघीभूतशतारिसैन्यमथनस्त्वं पाण्डवान् पंच तान्
मायायोधनकृत्प्रपाल्य च रिपून् धूलीकृतांश्चाकरोः ।
स्वामिन् भूमि समुद्धृतिं च कृतवांस्त्वं वैदिकाराधितो
दिव्ये श्रीवरमङ्गलाह्वयपुरे भासि क्ववा त्वां भजे ॥ ४ ॥

जिस प्रभुने निजाश्रित पाण्डवोंकी रक्षा करके उनके शत्रुओंकी इकट्ठी हुई सौ कौरवोंकी सेनाको मायायुद्ध (कुटिलताकी लड़ाई) करके धूलमें मिला दिया । और प्रजाकी रक्षा करनेके लिये आपने पृथ्वीका उद्धार किया था । हे स्वामिन् ! श्रीवरमंगलनामके नगरमे प्रकाशमान आपकी वेदोक्त कर्म द्वारा (वेद मन्त्रोंके द्वारा) वेदपाठी गण आराधना करते हैं । ऐसे अति सुलभ आपकी मैं अन्यत्र कहां सेवा कर सकता हूँ ।

न तो मैं वेदज्ञ हूँ और न वैदिक कर्म हो करने वाला हूँ । परन्तु आपको बुलाना चाहता हूँ । अब किया क्या जाय ? उस उपायको भी आपही बताइये । आप आश्रितोंके ऊपर अति कृपा करते हैं । अतः मेरे ऊपरभी कृपा करिये ॥ ४ ॥

त्वत्प्राप्त्यै किमहं च साधनपरस्स्यां त्वं हि मायाविनां
मध्ये कृत्रिमचेष्टितोऽम्बुदनिभस्स्वामिन्नभूः ख्यातिमाम्।
लोकेऽस्मिन् कृतकृत्यतामुपगतैस्सेव्ये च दिव्ये वसन्
शेषी श्रीवरमंगलाह्वयपुरे दृष्टं मयाऽपि स्वयम् ॥ ५ ॥

हे प्रभो! आपकी प्राप्तिके लिये मैं क्या साधन करूँ। हे श्याम सुन्दर सम्पूर्ण मायावियोंमें आप अनेक दिखावटी लीलाओंको करके प्रसिद्ध हुए हैं। इस लोकमें सर्व प्रकारके आत्मकल्याणके कार्योंको करके कृतकृत्य हुए महानुभावोंसे सेवित दिव्यश्रीवरमंगलनामके पुरमें वास करके भी मैंने आपको अपने शेषी(स्वामी)के रूपमें देखाहै॥५॥

वाराहो धरणी समुद्धरणकृत्त्वं मे ऽसि नाथो हरे
कृष्ण त्वं ममदास्यमेतदखिलं माणिक्यवर्णावृणोः।
सूरीन्द्राधिप सद्रसालमधुरे सेव्योऽस्यहो शीतले
दिव्ये श्रीवरमंगले निवसतां मां पश्य दिव्याचल ॥ ६ ॥

हे मेरे नाथ! पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये आपने वाराह रूप धारण किया था। हे माणिक्यवर्ण कृष्ण! आपने इस मेरी समस्त दास्यवृत्तिको स्वीकार किया है। यद्यपि परमपदमें नित्यमुक्त गण सर्वदा सर्वकालमें आपकी सेवामें तत्पर रहते हैं। तो भी उत्तम श्रेणीके मधु भरे हुए आमके वृक्षोंसे शीतल और मनोहर दिव्य श्रीवरमंगलनामके नगरमें वास करने वाले महात्माओंसे सेवा करने योग्य अविनाशी दिव्यरूपको धारण करने वाले आप मेरे ऊपर कृपा की दृष्टि कीजिये ॥ ६ ॥

आगत्यात्र हृदीह मे वससि भो देवाधिदेवाच्युत
श्रीशस्त्वं जगतां प्रसूरपि पिता लोकान् किलाभक्षयः।
सेव्यस्त्वं किल वैदिकैस्सुचरितै निस्सीमकीर्ति हरे!
दिव्ये श्रीवरमंगलाह्वयपुरे मां न त्यजेर्जातुचित् ॥७॥

हे देवाधिदेव! अविनाशी लक्ष्मीनाथ आप सब संसारको

उत्पन्न करने वाले और सर्वप्रकारके रक्षक हो। आपने समस्त लोकोंको प्रलयका समय आने पर खा लिया था। सीमारहित दिव्ययशवाले प्रभो! वेदानुकूल सुन्दर आचारण करने वाले सज्जनगण आपकी सेवा करते हैं। इसी सेवाको स्वीकार करनेके लिये ही आप श्रीवर-मंगलनामके पुरमें आकर बसे हैं। प्रभो! दयाकर अब इस दीन दासको कभी नहीं त्यागना ॥ ७ ॥

विश्लेपाय ममेन्द्रियाणि च सृजन् पंचापि मायामया,
न्येवं किं कुरुपे च मज्जयसि किं दुस्सङ्गमोहाम्बुधौ।
भास्वद्धी मणिसौधराजिरुचिरे दिव्ये स्वयं भ्राजसे,
नाथ श्रीवरमङ्गलाह्वयपुरे गुप्तो वकध्वंसकः ॥ ८ ॥

हे प्रभो! आपने अपने चरणोंसे मुझे दूर करनेके लिए ही अनेक दोप युक्त मेरी पंचेन्द्रियोंको रचा है। इस प्रकारका कार्य करके क्या आप इस दासको दुष्टसंगरूपी महासमुद्रमें डुबो रहे हो? हे नाथ! बकासुरका विध्वंस करने वाले आप सर्व प्रकार से सुरक्षित होकर प्रकाशमान् मणिमय छत्तोंसे शोभित दिव्य श्रीवरमंगलपुरमें स्वयं प्रकाश मान हो रहे हो।

जैसे आपने आश्रितोंको अभय दान करनेके लिये विरोधी बकासुरका नाश किया था। उसी प्रकार मेरे विरोधी इन्द्रियगणोंकी दुष्ट प्रवृतिको नष्ट करके उनको अपने चरणोंकी ओर खींच लीजिये ॥८॥

श्रीमन् हे वकवक्त्रदारकविभो द्वन्दार्जुनध्वंसकः
स्वामिन् सप्तवृपभभंजक तव प्रे द्याऽस्मि मायिन् गुणान्।
दुर्ज्ञेयानिह विस्मितोऽस्मि महसा माणिक्यनीलोऽस्यहो,
दिव्ये श्रीवरमंगले श्रुतिविदां वासे कृपां मे कुरु ॥९॥

हे श्रीमन्! बकासुरके मुखका विदारण करने वाले, यमलार्जुन को विध्वंस करने वाले प्रभो! सात साँड़ोंका नाश करने वाले मेरे स्वामी! अपनी शरीरकान्तिसे नीलमणिकी तुलना करने वाले अनेक माया रचने वाले कठिनतासे जानने योग्यगुणोंके आश्रय आपके

वेदवक्ताओंके निवास स्थल दिव्य श्रीवरमंगलनामके पुरमें देख कर मैं आश्चर्य समुद्रमें मग्न हो गया हूँ ॥ ९ ॥

त्वत्पदाम्बुजयुग्ममेव शरणं कृत्वाऽसि मे रक्षक
स्तेऽहं नास्मि किलोपचारकृदहो वश्यो ममात्माऽपिते ।
श्रीहीक्ष्वादिफलाश्रये च रुचिरे दिव्यं स्वयं शीतले,
भास्वन् श्रीवरमंगले विजयसे देवेशमौल्युज्वल ॥१०॥

हे प्रभो यद्यपि मैंने आपको प्रसन्न करने का कोई उपचार नहीं किया । तथापि आपने अपने चरण युगलोंकी शरण में इस दासको ले कर आप रक्षक बने हो । और मेरा आत्मा भी आपके ही वशमें है । हे समस्त देवों के उज्वल शिर मुकुट ! धान और ईख तथा अनेक फलोंके आश्रयसे अति मनोहर और शीतल श्रीवरमंगल नगरमें स्वयं प्रकाशमान होकर सर्वश्रेष्ठ होकर विराजमान हो रहे हो ।

इस दशकमें श्रीवरमंगल शब्द जो आया है उस श्रीवरमंगलको दक्षिणी भाषामें वानमामलै, और संस्कृतमें श्री तोताद्रि कहते हैं ॥१०॥

देवेशाच्युत हे त्रिविक्रम हरे नारायण श्रीधर,
स्वामिन्नित्ययमुत्तमं हि कुरुकापुर्य्याश्शठारिः प्रभुः ।
स्तोतुं चाह सहस्रमत्रदशकं चेदं विदुर्ये भुवि,
प्राप्यं श्रीवरमंगलं प्रति पुरं ते सूरि भोग्या दिवि ॥११॥

हे देवेश ! हे अच्युत ! हे त्रिविक्रम ! हे हरे ! हे नारायण ! हे श्रीधर ! हे स्वामिन् ! इस प्रकार प्राप्ति करने योग्य श्रीवरमंगल नामके पुरमें वास करने वाले प्रभुकी स्तुति करनेके लिये कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनिने सहस्र गीतिको कहा है, उसमें इस दशकको जो पुरुष भूमण्डलमें जान लेंगे । वे परमपदमें नित्य मुक्तोंके बहुमानके पात्र बनेंगे ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्र गीतौ पंचमशतके सप्तमदशकं समाप्तम् ।



अथ श्रीसहस्रगीतौ पंचमशतके अष्ठमदशकारम्भः

इस दशकमें पूर्वोक्त प्रकारसे श्रीवरमंगलाधीशकी प्रार्थनासे जब आल्वार के हृदयके मनोरथ सिद्ध न हुए तो उनकी सफलता के लिये कुम्भपुरीवासी परमात्माकी सन्निधिमें आर्त हृदयसे प्रपत्ति करके प्रार्थना करने लगे हैं।

स्वामिन् पूर्णामृत त्वत्पदकमलयुगे भक्तिहर्षप्रकर्षा-
न्नित्यं सत्यंद्रुतं स्यान्ममवपुरखिलं संस्रवत्येव दास्यात्।
श्रीमत्यां कुम्भपूर्यां सुरुचिरबहुलव्रीहिसंवीजितायां,
दिव्यालङ्कारशैय्यामधिशयितमिदं तेऽद्यरूपं हि दृष्टम् ॥१॥

हे स्वामिन्! अमृतसे पूर्ण आपके चरणकमलयुगलमें उत्पन्न हुई भक्तिसे जनित हर्षकी प्रचुरतासे और दास्यभावसे मेरा यह संपूर्ण शरीर ही निरन्तर पिघल कर बहा जाता है। प्रभो आज मैंने सुन्दरताकी अधिकतासे मनोहरधानोंसे लहराती हुई संपत्तिवाली कुंभपुरीमें दिव्य भूषणोंसे भूषित शय्या पर सोते हुए आपके रूपको देखा है। इस गाथामें कुंभपुरी शब्द जो आया है, उसको द्रविड भाषामें (तिरुकुडन्दै) कहते हैं तथा संस्कृतमें (कुंभकोणम्) नाम से प्रसिद्ध है ॥१॥

मन्नाथ त्वं शुभांगो मम पतिरखिलानन्तरूपोऽसि दिव्य,
श्रीमद्रम्याकृतिः श्रीवृषभ शुभमहाम्भोजसौम्याम्बुराशौ।
श्रीमत्यां कुंभपूर्यां मधुभरितसरोजाक्ष निद्रासि नाथ,
त्वद्भक्तोऽहं किमद्य स्वयमिहकरवै ब्रूहि विष्णो दयालो ॥२॥

हे मेरे नाथ! आप सर्वदा सुन्दर विग्रहसे अनन्तरूप होकर भी मेरे स्वामी हो। अति सुन्दर शरीर वाले होकर लक्ष्मीके पति हो। हे नाथ! मधुसे भरे हुए कमलके समान नेत्रोंसे अतिरमणीय कमलोंसे शोभायमान जलाशयोंसे युक्त श्रीमती कुंभपुरीमें निद्रा ले रहे हो। और मैं आपका भक्त शरणमें आया हूँ। अतएव दयाकर के बताइये तो सही कि मैं स्वयं आपकी सेवा किस प्रकार करूं? शयनावस्थामें प्रभुके नेत्र कमल मुँदे थे, उनको देखे बिना चित्तमें आनंद नहीं आया। अतएव स्वामी का दृष्टिप्रसाद चाहते हैं ॥२॥

किंवा कुर्यां ममाद्य स्वयमनवरतः कोऽस्ति किंवा करोपि
त्वत्सान्निध्याद्विनाऽहं न किमपि च कुतोऽप्यर्थये वांछितं मे ।
श्रीमत्यां कुम्भपुर्यामतिदृढवलयैरावृतायां शयान !
त्वत्पादाब्जेतु भक्त्या कुरु मम भरितान् वासरानप्यशेषान्॥३॥

प्रभो! मैं स्वयं क्या करूं और मेरा विश्वमें निरन्तर सुहृदही कौन है। और होते हुए भी वे मेरा उपकारही क्या करेंगे ? । आपकी सन्निधिमें कैङ्कर्यके बिना किसीसे भी मैं अपनी इच्छित वस्तु कुछ नहीं माँगता अत्यन्त दृढ प्राकार (परकोटा) से घिरी हुई श्रीमतीकुम्भपुरीमें शयन करने वाले प्रभो! मेरा सम्पूर्णसमय आपके चरणकमलोंकी भक्तिसे भरा हुआही व्यतीतहो, ऐसी कृपा आप कर दीजिये बस यही इस दासकी महती प्रार्थना है।

जो जीवन बीत गया उसके लिये तो कोई बात ही नहीं, परन्तु भविष्यमें इसदासका जितना जीवनकाल है, वह सब आपके चरणोंका अवलम्बन लेकरही व्यतीत हो ऐसा इसदासको करदीजिये यह भाव है ॥ ३ ॥

माहात्म्यं तेऽस्त्यपारं विशदमतिजुषां दिव्यदृष्टेरतीतं
निस्सीमं सर्वलोकात्मकनिजवपुषा दिव्यमूर्ते विभासि ।
कुर्वेऽहं कुम्भपूर्यां सुमहितभगवद्भक्तवर्गाश्रितायां
सुप्तं त्वां द्रष्टुकामो गगनमपि विलोक्यांजलिं क्रन्दनं च ॥४॥

प्रभो! आपका अपारमाहात्म्य अतिउच्चमेधावाले ब्रह्मादिकों की दिव्य दृष्टिसे भी दूर है। निखिलब्रह्माण्डोंको अपने शरीरमें रखने वाले दिव्य मूर्तिधारी आपका वैभव सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। लोकमें सर्वजनपूज्य भगवद्भक्तवर्गों से आश्रित कुम्भपुरीमें शयन करनेवाले आपको देखनेकी इच्छासे गगनतलकी ओर दृष्टि लगाकर बार बार हाथ जोड़ताहूँ और चिल्लाता हूँ।

समस्त चराचर विश्वमें परिपूर्णरूपसे प्राप्तहोकरभी आप कुम्भकोणमें

विशेषरूपसे प्रगट हुए हो । तथापि यथेष्ट अनुभवके न होनेसे अति दुःखी हूँ । इस कारण गगनतलको देखकर विलाप करना कहा है ॥ ४ ॥

क्रन्दाम्येवर्चियामि स्वयमहमनिशं नर्तनैश्चापि गानै
श्श्रान्तोऽस्मि त्वां दिदृक्षुर्मम कलुषभरात्पार्श्वतोलज्जितस्याम् ।
रम्यायां कुम्भपुर्यां सुरुचिरमहितक्षेत्रसस्यावृतायां
पद्माक्ष त्वां शयानं श्रितमिमसधुना तारय त्वं हरे माम् ॥५॥

प्रभो ! नृत्य और गान द्वारा निरन्तर मैं स्वयं आपकी सेवा करता हूँ । इतना करने पर भी जब आपके दिव्यदर्शन नहीं होते तो आपकी प्राप्तिके लिए करुणक्रन्दनभी करता हूँ । प्रभो मैं स्वकृत पाप के भारसे पीड़ित होकर लज्जित होता हूँ । और अपनी दोनों बगलों को देखता हूँ । इस प्रकार आपके देखनेकी इच्छा करते करते ही थक गया हूँ । हे हरे ! अति सुन्दर उत्तम खेतोंसे घिरी हुई अति रमणीय कुम्भपुरीमें शयन करने वाले आपके चरणोंका आश्रय लेने वाले इस दासको अनेक पापमय अति दुस्तर संसारसागरसे तार दीजिए ॥ ५ ॥

सूरीन्द्रः कुम्भपूर्यां वसति किल भवान् भाग्यवद्भिःसुसेव्यः
श्रोत्रस्यात्यन्तभोग्यामृतनिधिरुचितं सत्फलं मानसस्य ।
सिंहश्रेष्ठ त्वदीयं पदयुगलमहं प्राप्तुमप्यर्ह एवं
दुष्टाशाघोरकूपे निपतित इतियन्मे कदावोद्धृतिस्स्यात ॥६॥

प्रभो ! आपतो नित्यसूरियोंके स्वामी होकरभी भाग्यशाली पुरुषोंकी सेवा ग्रहण करनेके लिए, कर्णोंको अत्यन्त आनन्ददायी अमृतरूप गुणोंके भण्डार तथा मनके अनुभव करनेके लिए उत्तम फल स्वरूप होकर कुम्भपुरीमें निवास करते हो । हे श्रेष्ठ सिंहस्वरूप ! मैं आपके चरण युगलकी प्राप्ति करनेको योग्यतावाला होकरभी दुष्ट वस्तुओंकी प्राप्तिकी आशारूपी भयंकर कूपमें पड़ा हुआ हूँ । इस प्रकारकी दुर्दशासे मेरा कब उद्धार होगा ? । मैं इन दुष्ट इन्द्रियोंके विषयोंकी पूर्ण करनेकी आशामें अनादिकालसे लगा हुआ हूँ । इसी कारण मैं अपने उद्धारका उपाय नहीं जानता कृपा करके मेरे अनादि

पापोंको नष्ट करके अपने चरणोंकी प्राप्तिका उपाय आपही बता दीजिये। अर्थात् मेरे उद्धारका उपाय आपही सोचकर निश्चय कर दीजिये ॥ ६ ॥

सिंहेन्द्र त्वं सुरम्यं कनकमयमहाज्योतिरेवासि सत्यं
पद्माक्षो नीलमेघो रिपुकुलदहनस्त्वं प्रवालाद्रिरेव ।
स्वामी मेत्वं चतुर्बाह्वनुगुण विभवस्त्वत्कृपामेऽस्ति दास्ये
श्रीश त्वं कुम्भपुर्यां विलससि न सहे हन्त मुक्तिं प्रदेहि ॥७॥

हे सिंहश्रेष्ठ ! आप अति सुन्दर सुवर्णकी सत्यज्योतिस्वरूप हो। कमललोचन और नीलमेघसमान सुन्दर हो। मूंगाके पर्वतके समान रक्तकान्तियुक्त चारभुजा वाले हो। शत्रुसमूहोंको भस्म करनेके लिए अग्निस्वरूप हो। आपका ऐश्वर्यभी आपके ही अनुगुण सर्वाधिक है। इस प्रकारसे आप कुम्भकोणमें विराजमान् हो रहे हो। मैं अब बिना आपकी चरण प्राप्तिके जीवित नहीं रह सकता। अतएव इसदासके ऊपर कृपा करके अति शीघ्रही आपकी प्राप्ति करानेवाली मुक्तिको मुझे दीजिये ॥ ७ ॥

मायी त्वं चक्रपाणिर्विलससि भगवन् कुम्भपुर्यां शयानः
किं दुःखं नाशयेमें किमुत न च तथा नास्ति चान्यागति में ।
देहान्मत्प्राणयाने नभवतु पतनं मे मुरारे पदाब्जं
भद्रं ते मे शरण्यं वितरतु च भवान् नित्यसेव्यं च भोग्यम् ॥८॥

प्रभो ! आप अनेक मायामय चरित्रोंको करने वाले चक्रको हाथमें धारण करके कुम्भकोणमें शयन करते हुए विराजरहे हो। आप मेरे दुःखोंका नाश करें चाहे न करें, परन्तु मैं अपने दुःख अन्य किसीसे दूर नहीं करवाना चाहता। हे मुरारे ! जब देहमें से मेरे प्राण निकलने लगें तब मेरे मनमें से आपके चरणोंका स्मरण दूर न हो। और प्राणिवर्गके सर्वविधरक्षक सर्वभोग्य आप अपनी चरण सेवा इसदासको प्रदान करो बस यही महती प्रार्थना दासकी है।

अन्तकालमें प्राण निकलें तबतक आपके चरणोंमें मेरी श्रद्धा

दृढ़ बनी रहे,ऐसा आपही कीजिये। क्योंकि सर्वप्रकारकी विपत्तियोंसे छुड़ानेकी (अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः) यह प्रतिज्ञा आपहीने की है, उस प्रतिज्ञाको सफल बनानेके लिए अब यह अवसर आपको मिला है ॥ ८ ॥

त्वत्पादाब्जप्रणम्रं कुरु मयि कृपया मां च देवाधिदेव
श्रीमानस्यादिमूर्तिस्सुरुचि मणिभृत्कुम्भपुर्यां शयानः।
निश्शंकं लोकशस्योऽस्यपि तवगमनं रम्यगम्भीरभावं
द्रष्टुं मे ऽस्त्यद्य कांक्षा त्यज तव शयनं देहि मे दृष्टिभाग्यम् ॥९॥

हे देवाधिदेव! मेरे ऊपर कृपा करके मुझे आप अपने चरणोंमें प्रणाम करने वाला करदीजिए। प्रभो आप सर्वश्रेष्ठ सम्पत्तिशाली हो। इस जगत्के आदिकारणमूर्ति हो। अतिरुचिर मणिको धारण करके कुम्भकोणमें शयन कर रहे हो। बिना सन्देहके समस्त संसार आपकी प्रशंसा करता है, यह बात तो ठीक ही है।

प्रभो! मेरी अभिलाषा तो गम्भीरतायुक्त (सिंह, वृषभ, गजेन्द्र, सदृश) आपकी चालको देखनेके लिए लगी हुई है। अतः कृपा करके आप अपने शयनको छोड़कर मेरे ऊपरभी अपना दृष्टिकोण डालिए ॥ ९ ॥

मायामूर्तिस्त्वदृश्योऽस्यपि मम हृदये भासि माधुर्यपूर्णः
सत्यं पूर्णामृतात्मा सकलकलुषसन्तापहन्ताऽन्तरात्मा।
मन्नाथः कुम्भपुर्यां विलसितविभवस्त्वं मुरारे कथंवा
त्वत्पादाब्जं प्रपन्नोऽप्यहह भवभयाम्भोधिमग्नो भवेयम् ॥१०॥

हे प्रभो! आप चर्मचक्षुओंसे अदृश्य होते हुएभी अपनी इच्छासे मूर्तिरूप होजाते हो। और मेरे हृदयमें तो माधुर्यरूप होकर प्रकाशमान हो रहे हो। सत्यस्वरूप, अमृतसे पूर्ण स्वरूप, वाले होकर सर्व प्रकारके पापोंको नाश करने वाले मेरी अन्तरात्मामें रहने वाले मेरे स्वामी मुरारी! आप कुम्भकोणमें अति वैभवके साथ विराजमान् हो रहे हो।

अहह प्रभो ! जब मैंने आपके दिव्यचरणोंकी शरण लेली तब फिर अनेकभयोंकेभण्डार इस भवसागरमें मैं कैसे डूब सकता हूँ ?

इस भावको किसी भक्तने अपने प्रेम भरे पदोंमें कैसा अच्छा दिखाया है कि—

हुआ अचर्थ मैं कृता महाराज ।
दिया चरण आश्रय ग़रीब को धन्य ग़रीब निवाज ॥
घूमा नभ जल थल पृथ्वी में धरे नित नये साज ।
मिली न शान्ति कहीं प्रभु ऐसी जैसी मुझको आज ॥
विविधरूप पूजा मैंने की कितने देव समाज ।
कितने धनी उदार मनाये हुआ न मेरा काज ॥
दुःख समुद्र में डूब रहा था मेरा मग्न जहाज ।
चरण किनारा मिला अचानक छूटा दुख का राज ॥ हुआ० ॥१०॥

कृष्णस्यैवांघ्रियुग्मं शरणमनुकलं पूतनाप्राणहन्तुः
सम्प्राप्यासौ शठारिमुनिरिह कुरुकापत्तनेशः कवीन्द्रः ।
वेणुक्वाणातिरम्ये दशकमिदमपि प्राह दिव्यं सहस्रे
ये जानन्तीदमार्याः प्रतिहतकलुषास्ते मृगाक्षीप्रियास्स्युः ॥ ११

पूतनाके प्राणोंको हरण करने वाले इस कृष्णके चरणयुगलकी निरन्तर शरणमें रहने वाले कुरुकापुरके स्वामी कवियोंमें श्रेष्ठ शठकोपमुनिने वंशीध्वनिके साथ गानेमें अति मनोहर लगने वाली सहस्रगीतिमें इस दशकको कहा है । जो श्रेष्ठ पुरुष इस दशकको जानेंगे, उनके सर्व प्रकारके पाप नष्ट हो जायेंगे। और वे फिर मृगाक्षी (अप्सरा-अथवा लक्ष्मीजी) के अत्यन्त प्रिय होकर नित्यानन्दको भोगेंगे ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्रगीतौ पचमशतके अष्टमदशक समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ पंचमशतके नवमदशकारम्भः

इस दशकमें आल्वार परमात्माको सर्वश्रेष्ठपुरुष जानकर एक नायिकाके आवेशमें अपने प्रियतमको देखनेके लिये श्रीसंवृद्धपुरमें जानेका विचार करतेथे कि इतनेही में उनको किसी सखीने रोका, अतएव सखीके वचनका उत्तर देते हुए श्रीसंवृद्धपुरस्थ सर्वेश्वरके चरणप्राप्तिकी अभिलाषा प्रगट करते हैं।

हे सख्यो मृगलोचनाः प्रियतमाः पापास्म्यहं सन्ततं
व्योमव्यापकसत्फलक्रमुकतश्श्रीमल्लिकासौरभात् ।
श्रीसंवृद्धिपुरं च कास्ति भरितं नित्यं मधुस्यन्दिभि
र्वृन्दैस्तत्र हरे पदाब्जयुगलं दास्यात्कदा प्राप्नुयाम् ॥१॥

मृगके समान सुन्दरनेत्रोंवाली प्राणप्यारी सखियो ! मैंने न जाने कितने बड़े २ पाप किये हैं कि जिनके फलसे आज प्रभुके दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं। देखो तो सही ये श्रीसंवृद्धपुर आकाशको छूने वाले उत्तम फलोंसे युक्त सुपारीके वृक्षोंसे और खिले हुई चमेलीके पुष्पोंकी सुगन्धिसे तथा मदचुवाते हुए वृन्दोंसे कैसा शोभाको प्राप्त हो रहा है। क्या कभी मैंभी उस श्रीसंवृद्धपुरमें अनेक प्रकारका दास्य कैङ्कर्य करनेके लिए श्रीहरिके चरण युगलको प्राप्त हो जाऊँगी ?।

श्रीसंवृद्धपुरको द्रविड़ भाषामें (तिरुवल्लवाल) कहते हैं। यह पुर मलयवाड़ देशमें इसी नामसे प्रसिद्ध है ॥ १ ॥

हे सख्यो मम वारणात्किमिह वस्सिद्धं सुवर्णात्मकाः
पुन्नागा अपिमाधवी च वकुलास्ते यत्र तत्सौरभैः ।
युक्तो दक्षिणमारुतस्तु परितो यत्रास्ति तत्र स्वयं
श्रीसंवृद्धपुरेऽङ्घ्रिपङ्कजरजो विष्णोः कदावाप्नुमः ॥ २ ॥

हे सखियो ! आप लोगोंको श्रीसंवृद्धपुरको जानेसे मुझे रोकनेमें क्या फल मिलेगा ? क्योंकि मेरी तो यह बड़ी तीव्र अभिलाषा है कि सुवर्णके रंगवाले पुन्नाग (नागकेशर) और माधवी तथा वकुल (मोरशिली) के पुष्पोंकी सुगन्धिसे युक्त दक्षिणका पवन जहाँ पर चारों ओरसे बहता रहता है, उस श्रीसंवृद्धपुरमें वास करने वाले श्रीविष्णुकी चरण रजको मैं स्वयं कब प्राप्त करूँगी ॥ २ ॥

हे सख्यः कुसुमार्द्रकेशभरिता विश्लेषदुःखार्दितां
मां वेदध्वनिरुच्चकैः प्रचलितो यत्र स्वयं कर्शयेत् ।
श्रीसम्वृद्धिपुरे तु तत्र परितो होमादिधूमावृते
पादाब्जे मम नायकस्य कलये नित्यं कदाऽहं हरेः ॥ ३ ॥

भगवत् प्रसादी पुष्पोंसे सुगन्धित हो रहे हैं केश जिन्होंके ऐसी हे मेरी सखियो उस प्रभुके वियोग दुखसे अत्यन्त दुखिनी मेरे को श्रीसंवृद्धपुरमें चारों ओरसे गड़गड़ाती हुई वेदोंकी ध्वनि स्वयं आकर्षित (खींच) कर रही है। और चारों ओरसे घटा बाँधकर उठे हुए होमके धुआँ से ढके हुए उस श्रीसंवृद्धपुरमें अपने स्वामी श्रीहरीके चरणकमलोंके मैं कब दर्शन करूंगी यह मेरी अभिलाषा नित्य ही बढ़ती जा रही है।

सखी लोग अपने सिरके केशोंको पुष्पोंसे शृङ्गार करनेमें लगी हुई हैं। और ब्राह्मण लोग वेदध्वनि द्वारा प्रभुके गुणगानमें मस्त हैं। परन्तु भगवत्सेवाकी धूप और होमका धुआँ जहाँ सर्व प्रकारके रोग और पापोंको भगाता है, उस श्रीसंवृद्धपुरमें प्रभुके चरणकमलोंकी सेवा करूँ मेरी तो यही नित्य अभिलाषा है ॥ ३ ॥

हे सख्य किमिहाद्य मान्तु सततं खिन्नां निवार्य स्वयं
युष्माभिः क्रियते नवक्रमुकतरश्रीनारिकेलादिभिः ।
संयुक्तैः कदलीवनैश्च पनसैस्सौधोपरिच्छायया
श्रीसंवृद्धिपुरेतु शेषशयनो मां क्रीतवान् नायकः ॥ ४ ॥

हे सखियो ! उस प्रभुके दर्शनोंकी चिन्तासे अति दुखिनी मुझको रोककर आप लोग क्या करोगी? हरे हरे सुपारी और नारियल, केला, कटहल आदिके सुन्दर लहराते हुए वृक्षोंसे छाई हुई हैं छतें जिसकी ऐसे श्रीसंवृद्धपुरमें शेषशैय्या पर सोने वाले इस त्रिलोकीनायकने मुझे अपनी रूपमाधुरीके मूल्यसे खरीद लिया है। अतएव उसके चरणोंकी सेवाके बिना मेरेको क्षणभरभी रहना अति कठिन है। इस कार्यसे आप लोगोंका मुझे रोकना व्यर्थ है ॥ ४ ॥

हे सख्यो मम सुप्रियाः क्रतुततेधूमावलीर्भिनभो
देशोयत्रे विभाति संवृततमो नित्यं श्रमध्वंसिनि ।
श्रीसंवृद्धिपुरे तु तत्र रुचिरं दिव्यं फलं चेत्तुपत्
सारं चापि घनं सुधारसमहो पश्यामि तेजः कदा ॥५॥

हे प्राणप्यारी मेरी सखियो ! मेरे चित्तमें यह चिन्ता बड़ी तीव्र गतिसे बढ़ रही है कि जहाँ पर अनेक यज्ञोंके करनेसे उठे हुए धुआँसे आकाश मण्डलमें अन्धकार छा रहा है। सर्व प्रकारके परिश्रमोंको नष्ट करने वाले उस श्रीसंवृद्धपुरमें विराजमान् तेजमूर्ति परमप्रभुके मैं कब दर्शन करूँगी। जो प्रभु मेरे लिए केला और आमके फलोंसे भी अति मधुर तथा रुचिकर है, जिसकी मधुरताके सामने खाँड़ मिश्री और अमृतका रसभी फीका पड़ जाता है ॥५॥

गायद्भृंगतरंगसंगविलसन्मंदानिलोद्वीजितै
र्वृन्दैर्नित्यमनोरमे बहुतमामत्युन्नतैश्शोभने ।
श्रीसंवृद्धिपुरे वटोर्ममहरेश्श्रीवामनस्याद्भुतं
पादाब्जद्वयमच्युतस्य तुकदा पश्यामि सख्यः कृशा ॥६॥

हे सखियो ! उस चित्तचोर की चिन्तामें दुबली भई मेरी बड़ी अभिलाषा है कि मैं गान करते हुए भौंरोंके समूहोंसे शोभायमान और शीतल दक्षिणपवनसे कँपाये गये और बहुत ऊंचे २ वृक्षोंकी शोभासे मनोहर शोभाको धारण करने वाले श्रीसंवृद्धपुरमें विराजमान अति विचित्र वामन ब्रह्मचारीका रूप धारण करने वाले अविनाशी हरिके चरणकमलोंके कब दर्शन करूँगी ॥ ६ ॥

कासारेषु समुद्रशोभिषु लसत्पाथोजनीलोत्पले
र्नारीणां वदनाक्षियुग्मसरणिर्यत्राभिभूता ःभवेत् ।
श्रीसंवृद्धिपुरे च तत्र जगतां नाथं हरिं रक्षकं
हे सख्यः किममी भजेम शरणं तत्पादपद्माश्रयाः ॥ ७ ॥

हे सखियो ! जिस श्रीसंवृद्धपुरमें समुद्रके समान अति विशाल

और निर्मल तालाबों में प्रकाशमान नीलकमलोंसे स्त्रियोंके मुख और दोनों नेत्रोंकी शोभा तिरष्कृत हो जाती है। उस श्रीसंवृद्धपुरमें समस्त जगतके स्वामी और रक्षक हरिके चरणोंका समाश्रयण करके उनकी निरन्तर सेवा करने का समय मुझे कब मिलेगा मैं इसकी चिन्ता में दिन रात लगी हूँ ॥ ७ ॥

सर्वत्रोचलितेक्षुकाण्डनिचयव्रीह्यादि संशोभितैः
केदारैस्सरसीतटेषु भरिते दिव्ये महात्माश्रये।
श्रीसंवृद्धपुरे प्रभोः पदयुगं लोकाक्रमव्यापृतं
हे स्सख्यःसततं भजेम किममी श्रान्ता वयं श्रीहरेः ॥ ८ ॥

हे सखियो! संसारके अनेक प्रकारके परिश्रमोंसे थके हुए हम सब स्थानों पर उगे हुए ईखके वृक्ष और धानसे शोभायमान सरोवर तटके खेतोंसे युक्त, (भरा हुआ) और अनेक दिव्य महात्माओंके आश्रमोंसे शोभायमान श्रीसंवृद्धपुरमें विराजमान अपने प्रभु श्रीहरिके तीनों लोकको नापनेमें व्यग्र होने वाले चरणकमलोंकी सेवा कब करेंगी।

शीतानोकहपण्डचारिमधुपश्रेणीरवैश्शोभने,
श्रीसंवृद्धिपुरे तु वेणुनिनदैर्वीणारवैश्चक्रिणः।
श्रीविष्णोः करुणाकदाऽऽति शिथिलामास्माकहस्तावली-
भूषां पूर्णतमां करोति सततं तत्पादसेवाभरात् ॥ ६ ॥

हे सखियो! अनेक प्रकार के पल्लव पुष्पादिकोंसे शीतलवृक्षों पर विचरने वाले भ्रमरोंकी ध्वनि और वीणा और वेणुके अति मधुर मनोहर शब्दोंसे शोभायमान श्रीसंवृद्धपुरमें चक्रधारीश्रीविष्णुकी निरन्तर चरणकमलों की सेवासे उत्पन्न हुई दया अत्यन्त शिथिल हुए हमारे हाथके भूषणोंको कब पूरा करेगी।

जिस प्रकार विरहिणी नायिकाका शरीरप्रियतमकी चिन्तामें, घुलकर दुर्बल हो जाता है इसी कारण उसके हाथके भूषण भी ढीले हो जाते हैं। और फिर उस प्रियतमके मुखदर्शनके हर्षसे उत्पन्न हुई पुष्टतासे वे भूषण पूरे हो जाते हैं। इसी प्रकार विरहिणीका अनुभव करके दुर्बल हुए अपने शरीर

को प्रभुके चरणकमलों की सेवासे होने वाली उनकी कृपा द्वारा पुष्टि होने का अनुभव आल्वारने किया है ॥ ९ ॥

नित्यं चाप्युकारकोऽस्त्ययमिति द्यावापृथिव्योरमुं,
शंसन्त्येव हि तत्रदिव्यनगरे भक्तोत्तमाः स्सात्त्विकाः।
साहस्रैः कृपया वसन्ति सततं श्रीभाग्यवृद्ध्याह्वये,
दिष्ट्या तंतु भजेम नामशतकैस्सख्योऽद्य नारायणम् ॥१०

हे सखियो! जिस प्रभुको श्रीसंवृद्धपुरमें स्वर्ग और पृथ्वीमें वास करने वाले सत्वगुणप्रचुरमहात्मागण यह कह कर कि वह प्रभु नित्य ही हम लोगोंके अनेक उपकारों को करने वाला है उसकी स्तुति करते हैं। और प्रभुकी पूर्ण कृपा होने से किये हुये सत्कर्मोंके फल भोगनेके लिये हजारों की संख्यामें महात्मागण जहाँ वास करते हैं, उस श्रीसंवृद्धिपुरमें वास करते हुए श्रीमन्नारायण की हम लोग सहस्रनामोंद्वारा सेवा करते हैं इससे बढ़कर हमारा कल्याण कारक धन्यभाग और क्या होगा? ॥ १० ॥

नाथं नामसहस्रशोभितममुं पदाब्जभक्त्या स्वयं,
स्तोतुं क्षेमकरश्शठारिरकरोत्साहस्रपद्यावलीं।
दिव्यं श्रीकुरुकापुरप्रभुरसौ तत्राद्य धन्याविदु
श्श्रीसंवृद्धिपुरंप्रतीह दशकं ये तेऽत्र जाता अपि ॥ ११

सहस्रोंनामोंसे शोभित इस प्रभुके चरणारविन्दोंकी भक्तिसे स्वयं स्तुति करनेके लिये कुरुकापुरीके स्वामी श्रीशठकोपमुनिने कल्याण करने वाली सहस्र पद्यरूप सहस्रगीतिको कहा है उसमें श्री संवृद्धपुरवासी परमात्माकी सेवाको बताने वाले इस दशक को जो जान लेंगे उन्हीं पुरुषोंका जन्म इस भूमण्डलमें धन्यवादके योग्य है और सफल है ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्र गीतौ पंचमशतके नवमदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ पंचमशतके दशमदशकारंभः ।

इस दशकमे स्वयं असमर्थरूपमे रहने वाले अर्च्यावतारकी उपासनाको छोड़कर विभवरूपकी उपासना करनेमे उनके गुणानुभव द्वारा चित्तको स्थिर करनेका उपाय आल्वार बताते हैं ।

विष्णोर्जन्म चरित्रमत्र भुवि संवृद्धेक्रमश्चाद्भुतः
पंचभ्यो विजयप्रदानसरणिर्युद्धे च सा भारते ।
सर्वं मे हृदि सम्प्रविश्य सततं जीवं द्रवीकृत्य मे
भुङ्क्ते हन्त ! कदा भजाम्युपगतं त्वां दिव्य तेजो निधे ॥१॥

हमारे प्रभु विष्णुके भूमण्डलमें जन्मचरित्र और अनेक प्रकारसे बढ़नेके विचित्र क्रम (नियम) महाभारत संग्राममें पाँच पाण्डवोंको विजय प्रदान करनेके उपाय ये सबही मेरे मनमें घुसकर उस जीवको पिघलाकर खाते हैं । अहह ! हे दिव्य तेजोनिधे ! हमारे सब प्रकारके कष्टोंको दूर करनेके लिये हमारे पासमें अवतार धरकर आये हुए आपकी सेवा हम कब करेंगे ॥ १ ॥

उद्वाहोक्तिमहो निशम्य वृषभध्वंसश्चते श्रीहरे
मायाकेशिनिषूदनं च तरुणीसङ्गोऽपि रासे तव ।
नैवं ते चरितं तदेतदद इत्यप्यस्ति वाचोवशं
सर्वं मां शिथिलीकरोति जगतां मूलं कदा त्वां भजे ॥२॥

हे प्रभो ! आपने कृष्णावतारमें यह बात सुनी थी कि सात साँड़ोंको एक समयमें दमन करने वालेही नीलादेवीके साथ विवाह कर सकेंगे, तो तत्काल ही आपने सात साँड़ोंका दमन करके नीलादेवीके साथ विवाह किया था । और सज्जनोंको दुःख देने वाले केशीदैत्यको नष्ट किया था । तथा रासमें व्रजवासियोंकी स्त्रियोंके साथभी क्रीड़ा की थी । इस प्रकार विधि शिवादिकोंकी वाणीसे भी वर्णन न हो सकने वाले आपके चरित्रोंका स्मरण मुझे शिथिलकर देता है । समस्त जगतके आदि कारण हे हरे ! मैं आपके चरणोंका भजन करने लगूँ वह शुभ दिन कब होगा ? ॥ २ ॥

पुष्पालङ्कृतकेशपाश विलसन्मायास्तनापीतित
स्ने बाल्ये चरितं च दुष्ट शकटध्वंसोऽपि पादेन ते ।
आज्यादेरपिचौर्यभुक्तिसमये मातुश्च दंडं करे,
दृष्ट्वा तेऽक्षियुगं भयाश्रुभरितं मान्तु द्रवीकुर्वते ॥ ३ ॥

हे प्रभो पुष्पोंके शृंगारसे शोभायमान केशवाली राक्षसीके प्राणोंको दूध पीनेके बहानेसे आपने हरण किया था। और बाल्यकालकी स्व-भाव चपलतासे फेंकते हुए पैरकी ठोकरसे शकटासुरका आपने ही नाश किया था। जिस समय अपने घरमें ही आपने माखनको चुरा कर खाया था इसी कारण क्रुद्ध हुई आपकी माता यशोदाने आपको मारनेके लिये डंडा उठाया था। उस समय मैय्याके मारनेके डरसे आपके दोनों आँखोंसे आँसुओंकीधारा बहने लगी थी। प्रभो यह आपका अद्भुत चरित्र मेरे मन और जीवनको पिघला देता है।

इसी भाव को भागवतमें भी कुन्तीने करुणाभरे अपनेस्वरमें इस प्रकार वर्णन किया है।

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दामतावद्याते दशाश्रुकलिलांछनसंभ्रमाक्षम्।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सामांविमोहयति भीरपियद्बिभेति ॥

प्रभो माखन चुराकर खानेके अपराधमें यशोदाने आपको मारनेके लिये जो डंडा उठाया था उसे देख कर रोते हुए नीचे को मुंह आपने किया था। और भयके मारे व्याकुल हुए थे। जिसके नाम स्मरण से काल भी भय खाता है उस सर्वशक्तिमान् आपकी यह दशा मुझे व्याकुल कर रही है ॥ २ ॥

धृत्वा कृत्रिमवेषमेवच पुरं तच्च प्रविश्य स्वयं,
रुद्रस्य प्रबलासुरप्रमथनं तद्द्वारतस्तस्य च ।
ते देहे वसतिश्च सर्वविदिता गंगाधरस्याप्यहो,
सर्वं ते चरितं प्रविश्य हृदयं मां चाद्भुतं चाश्नुते ॥ ४ ॥

हे प्रभो! असुरोंको मोह जालमें डालनेकेलिए नकली ब्राह्मणका भेष बनाकर और उन असुरोंकेनगरोंमें जाकर अनेक उपायोंसे

उनको वैदिकधर्म से विमुख करनेकेलिये ही आपने बौद्धरूप धारण किया था और त्रिपुरा सुरको जलानेके लिये महादेवके हृदयमें आपही बैठ उनके द्वारा आपही ने त्रिपुरासुर को जलाया था। और आपने अपने दिव्यशरीरमें गंगाधर महादेवको निवासस्थान भी प्रदान किया है। इस प्रकारके मायामय आपके अनेकचरित्र मेरे हृदयमें घुस कर उसको व्याकुल कर रहे हैं ॥ ४ ॥

इन्द्रायेति च गोपवृद्धकलितं चान्नं स्वयं भुक्तवां
स्त्वं वर्षाद्गिरिधारणेन कृतवान् गोगोपसंरक्षणम् ।
सृष्ट्वा भूमिमिमां स्वयं च सकलामश्नन्क्रमेणोद्गिर-
न्नाक्रम्योद्धृतवा निवाहत इदं स्मृत्वा द्रुतं मे मनः ॥५॥

प्रभो ! वृन्दावनमें गोपवृद्धों द्वारा इन्द्रके लिये तैयार किये गये अनेक प्रकारके पक्वान्नको गोवर्द्धन रूप धारण करके आपने ही खाया था। और इस कार्यसे रुष्ट हुए इन्द्रकी आज्ञासे मेघों द्वारा की गई वर्षासे गोवर्द्धनको धारण करके गौ और गोपोंकी आपने ही रक्षा की थी। इस भूमिको स्वयं रचकर प्रलयके समय खा लेते हो और सृष्टिका समय आने पर उगलकर बाहर बसा देते हो। और सृष्टिके मध्यमें भी त्रिविक्रम रूप धारण करके इसको नापते हो। और वाराहरूपधारणकर इसका उद्धार करके आलिंगन करते हो। इस प्रकारके एक से एक विचित्र आपके चरित्रों को स्मरण करके मेरा मन मोमके समान ढीला हो जाता है ॥ ५ ॥

शक्याश्चिन्तयितुं च न स्थितिसमावेशोपवेशाश्च ते,
रूपं नैकविधं तवेह सकलां मायां स्मरेयं तव ।
त्वां स्मर्तुं बत शक्नुयां कथमहं तेजोनिधे पापिन-
स्साधूपायमहो वदाय कृपया मे लोकसंरक्षक ॥ ६ ॥

हे तेजके भण्डार ! अनेक रूपोंको धारण करने वाले आपका बैठना सोना और खड़ा होने आदिकार्योंका विचार करना हमारी

शक्तिके बाहरकी बात है। हम जो भी कुछ देखसकते हैं अथवा विचार कर सकते हैं, वह तो सब आपकी माया है, हे लोकोंकी रक्षा करने वाले! आज कृपा करके ऐसा सुन्दर, और सरल उपाय अत्यन्त पापिष्ठ मेरे लिएभी बताइये, कि जिससे आपको यथार्थरूपसे स्मरण करनेकी शक्ति मुझे प्राप्त होजाय।

वैंकटगिरि पर खड़े, कुम्भकोंणम्में बैठे और श्रीरङ्गजीमें सोये हुए हैं, अथवा परमपदमें बैठे क्षीरसागरमें सोये वामन होके खड़े हुएहैं इस प्रकार आपके मायामयरूप और चरित्रोंका हम ज्यों ज्यों स्मरण करते हैं त्यों त्यों ही वे हमें अपार दीखते हैं। आपने अनेक भक्तोंके ऊपर कृपा करके अपने यथार्थरूपको दिखाकर उनको स्वीकार कियाहै। इसी प्रकार मेरे ऊपरभी कृपाकरके अपने यथार्थरूपको बता दीजिए, यही मेरी आपसे प्रार्थना है ॥ ६ ॥

चित्ते मे ऽवभासि नैव तु बहिस्ते रूपसन्दर्शनं
तेजो भाति तमोयुतं किमहह त्वं दृष्टि वश्यो न मे।
त्वद्व्यापारमिहाखिलं हृदि कथं वेद्मि स्वयं हे प्रभो
रूपं ते कृपयाऽद्य दर्शय मम श्रीनीलरत्नप्रभ ॥ ७ ॥

हे प्रभो! आप प्रकृतिसे परे रहते हुएभी उज्ज्वल तेज वाले हो और मैं एक प्रकृति मलीन हूँ तथापि जैसा मैं आपके रूपका दर्शन अपने हृदयमें करता हूँ वैसा दर्शन मुझे हृदयके बाहर इस संसारमें नहीं दीखता। अनेक प्रकारके चरित्रोंको करने वाले प्रभो! क्या आप मेरी दृष्टिके सामने प्रत्यक्ष होकर दर्शन दोगे? नीलरत्नके समान कान्ति वाले प्रभो! आपकी अनेक लीलाओंको मैं अपने हृदयमें किस प्रकार यथार्थरूपसे जान सकता हूँ?। अतएव कृपाकरके अनेक आश्चर्य भरे चरित्रोंको करने वाले उस रूपको मेरे नेत्रोंके सामने दिखा दीजिए।

सर्वत्र अदृश्य रहते हुए भी आप भक्तोंके लिए प्रत्यक्ष होजाते हैं। समस्त जीवोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे रहते हुएभी भक्तोंके लिए विशेषरूपसे दर्शन देते हो वैसे ही दर्शन मैं भी चाहता हूँ ॥७॥

दिव्यं ते शयनं च नाभिकमलात् सृष्टं चतुर्वक्त्रम
प्यन्तर्यामितया प्रविश्य सकलं सृष्ट्यादिकर्मापि ते ।
निस्सीमं तव नायकत्वमसमं श्रुत्वा द्रवीभूय मे
चेतो हन्त ममाश्रुपूरसरणैर्मूलं हि कुर्यां किमु ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! शेषशैय्यापर शयनकरके नाभि कमलसे ब्रह्माको उत्पन्न करके और ब्रह्माजीके हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे विराजकर उनके द्वारा सृष्टिकर्मको करना और सर्वश्रेष्ठ ईश्वरत्व आदिको बताने वाले अनेक पराक्रमयुक्त आपके कार्योंको करने को सुनकर मेरा चित्त पिघलकर बहने लगता है। और वह प्रवाह नेत्रोंद्वारा निकलकर आँसुओंका रूप धरकर मेरे नेत्रोंको ढक लेता है। इस प्रकारकी अवस्थामें अब मैं क्या करूँ उस कर्त्तव्यको आप कृपा करके बताइये ॥८

भूमिं च त्रिपदां तवार्थितवतश्चित्रं चरित्रं च तत्
सर्व्वाम्भोधिधराद्यु लोकसरणिं चाक्रम्य पद्भ्यां तव ।
प्राधान्यं च निरङ्कुशं तव हरेराकर्ण्य चेतो मम
श्रीशाद्य द्रवरूपतास्रवति वै पापी कदा त्वां भजे ॥ ९ ॥

हे प्रभो ! आपने वामनरूप धारण करके अपने पैरोंसे नापकर तीन पग पृथ्वीको ही राजा बलिसे माँगा था। और फिर उसी रूपको अति विशाल बनाकर समुद्र पर्वतादियुक्त समस्त पृथ्वीको तथा आकाश मण्डलको भी अपने पैरोंसे नापा था। इस प्रकारके सर्वस्वतन्त्र आपके प्रभुत्वको सुनकर मेरा चित्त पिघलकर बहता है। हे लक्ष्मीपते ! मैं पापी आपके इसप्रकारके अनन्तअखण्डऐश्वर्यवाले स्वरूपकी सेवा करूँ ऐसा अवसर क्या आप प्रदान करेंगे ? ॥ ९ ॥

त्वं देवासुरसङ्गतोऽब्धिमथनं कृत्वा सुधां देवता–
भोज्यामेव कथं विचित्रचरितस्तत्रासुरान् वञ्चयन् ।
आसीर्हन्त तदेतदद्य सकलं चित्तं प्रविश्यात्र मे
त्वात्मानं द्रवयत्यहो कथमहं त्वां शेषशायिन् भजे ॥

हे प्रभो! आपने देवता और असुरोंके साथ मिलकर समुद्रका मंथन किया था। उस समुद्रमन्थनसे निकले हुए अमृतको अति विचित्र मोहनीरूप धारण करके और असुरोंको धोखा देकर देवताओं को कैसे पिलाया। इस प्रकार आपके भक्तवत्सलतादिक सम्पूर्ण चरित्र मेरे चित्तमें घुसकर मेरे आत्मा (मन) को द्रवीभूत कर रहे हैं। शेषके ऊपर शयन करने वाले मैं आपका भजन किस प्रकार करूं यह तो बताइये।

समुद्र मन्थनमें यद्यपि देवता और असुरोंने परिश्रम समानही किया था, तथापि ईश्वरपर भरोसा करने वाले देवताओंको ही उसका फल मिला। और दैत्य उस फलसे वंचित रहे। किसी भी कर्मकी सफलता बिना ईश्वरकी सहायताके अपने परिश्रमसे होना असम्भव है। यही शिक्षा हमको समुद्रमन्थन चरित्रसे मिलती है।

अस्मन्नायकमेव नागशयनं तत्पादपद्माश्रयः
प्राप्तुं श्रीशठजित्सहस्रगणितां पद्यावलीं चाकरोत्।
हृद्यां श्रीकुरुकापुरप्रभुरसावन्तादिरूपां मुनि
स्तत्रेदं दशकं विचिन्त्य मनुजा वैकुण्ठ्यसौख्याश्रयाः ॥११॥

शेषके ऊपर शयन करने वाले इस हमारे स्वामीके चरणकमलोंका आश्रय लेकर और उनको प्राप्त होनेके लिए कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनिने अन्तादिरूप (पिछली गाथाके अन्त्य अक्षरको अगली गाथाके आदिमें जोड़ देनेको अन्तादि कहते हैं) हज़ारपद्योंवाली मनोहर सहस्रगीतिको कहा है, उसमें इस दशकका जो मनुष्य विचार करेंगे वे वैकुण्ठके दिव्य सुखोंके भागी अवश्य बनेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीमद्वेदवेदाङ्गाद्यखिलशास्त्रनिष्णात पाराशरगोत्रावतंस श्रीमन्माधवाचार्य चरणाश्रित सत्सम्प्रदायाचार्य मधुरामलतामठाधीश्वर पण्डस्वामी श्रीपरांकुशाचार्य शास्त्रि विरचित विद्वन्मोदतरङ्गिणी भाषाटीका सहितं श्रीसहस्रगीते.
पंचमशतकं समाप्तम्।



* श्रीमते शठकोपाय नमः *

अथ श्रीसहस्रगीतौ षष्टशतके प्रथमदशकारम्भः

इस दशकमें पूर्वोक्त प्रकार से विभवरूप प्रभुका कालान्तर में होने मे मिलना कठिन समझ कर फिर भी अति सुलभ अर्च्यावतारका ही अनुभव करने के लिये अपने सहायक भक्तोंको पक्षियों का रूपक बनाकर उनको उपदेश देते हैं। अर्थात् मधुकृत पुरवासी प्रभुके मिलने का सन्देश सारस आदि पक्षियों द्वारा भेजना कहा है।

यूयं हे कुरुका उपेत्य सततं चाहार सम्मार्गणा,
स्सम्यग्व्रीहिसमृद्ध सस्यनिचये श्रीचक्रपाणिं हरिम्।
रम्ये श्रीमधुकृत्पुरे मम विभुं दृष्ट्वा ममेमां दशां,
पापिन्यास्तु मुहुः कृताञ्जलि पुटा आवेद्यधन्यास्स्थ भोः ॥१॥

हे सारस पक्षियो! निरन्तर आहारकी खोजमें लगे हुए आप लोग उत्तम धानोंकी खेतियों से घिरे हुए श्रीमधुकृत्पुरमें जाकर चक्रको धारण करने वाले मेरे स्वामी हरिके पवित्र दर्शन करके उस प्रभु से अति पापिनी मेरी इस दुखदाई दशाको हाथ जोड़कर बारम्बार प्रभुके चरणोंमें निवेदन कर दो तो मैं आप लोगोंको अपनी अन्तरात्मासे अनेक धन्यवाद दूँगी।

भक्तोंका स्वभाव होता है कि वे बिना भगवानको साक्षात् किये प्राण धारण नहीं कर सकते। परन्तु अवतार दशामें प्रभुका सदा साक्षात् होना दुर्लभ है। अतएव अर्च्यावतारका ही साक्षात् दर्शन करना सर्वदा सुलभ है। संसारके अनेक विघ्नबाधाओंके कारण किसी प्रकार दिव्य देशमें जाकर प्रभुकी सेवा न बनसके तो अपने सहायक भक्तगणों द्वारा ही प्रभुकेपास प्रार्थना भेजना भक्तोंका कर्त्तव्य है। परन्तु भोगोंके अभिलाषियोंको प्रभुकी सन्निधिमें लौकिक भोगोंकी भी किसी प्रकार कमी नहीं है अतएव लौकिक और पारलौकिक भोगोंके लिए भी प्रभुकी आराधना करना आत्माको कल्याण कारक है। वहाँ पर भी (अंजलिः परमामुद्राक्षिप्रं देव प्रसादिनी) इस प्रमाणसे हाथ जोड़ करके प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करना प्रभुको प्रसन्न करनेका एक अव्यर्थ उपाय है। इसी बातको इस दशकमें आलवार बताते हैं ॥ १ ॥

त्वं मे श्यामल नारपक्षिवर ते कान्ता मनुप्रेमत-
श्चाहारानुचर श्रुतिध्वनिमये यज्ञादिकोलाहलैः ।
रम्ये श्रीमधुकृत्पुरे मम विभुं श्रीशं जगद्रक्षकं,
दृष्ट्वा साञ्जलिरङ्घ्रिपद्मयुगले दीनां दशां मे वद ॥२॥

हे श्याम रंगके वत्तक ! तुमतो पक्षियोंमें श्रेष्ठ हो और अपनी स्त्रीके पीछे प्रेमसे चुगेको खोजमें फिरते रहते हो। अनेक वेदोंकी मधुरध्वनि तथा यज्ञोंमें जुटे हुए मनुष्योंके कोलाहलसे अत्यन्त रमणीय श्रीमधुकृतपुरमें बसने वाले संसारके रक्षक मेरेस्वामी लक्ष्मी पतिके पास जाकर उनके दर्शन करके हाथ जोड़ करके उनके दोनों चरणकमलोंमें इस मेरी दीन दशाको कहदो।

एक दूतको भेजा उससे मनमें सन्तोष न हुआ फिर दूसरे प्रेमी जोड़ा को देखकर मनमें आया कि यह दूत संदेश भेजने योग्य है क्योंकि यह प्रेमकी व्यथाको ठीक ठीक जानता है। इसलिए वत्तक जोड़ा (भगद् प्रेम में मग्न भक्तोंकी जोड़ा) द्वारा प्रभुसे अपना दुख निवेदन करते हैं॥ २ ॥

यूयं पक्षिगणा उपेत्य परितः केदारसंचारिणो
रम्ये श्रीमधुकृत्पुरे मम विभुं श्रीचक्रपाणिं हरिम् ।
दृष्ट्वा तं परमं प्रणम्य कृपया बिम्बाधरं ब्रूत भो
दीनाया मम दुर्दशां भृशमिमां विश्लेषदुःखात्मिकाम् ॥३॥

हरे हरे खेतोंके चारों ओर विचरण करने वाले पक्षिगण आप लोग अति रमणीय मधुकृतपुरमें वास करने वाले हाथमें चक्रधारी मेरे स्वामी लाल होठों वाले श्रीहरिके दर्शन करके उस सर्वेश्वरको प्रणाम करके निरन्तर दुख भोगने वाली उस प्रभुके वियोगसे हुई मेरी इस दुर्दशाको कृपा करके अवश्य कहना।

प्रथमगाथामें एक सारसको दूत बनाया द्वितोयमें वत्तकजोड़ाको भेजा और जब इससे भी सन्तोष न हुआ तब इस गाथामें बहुतसे पक्षियों (भागवतों) को अपने दूत बना कर प्रभुकी सन्निधिमें अपना दुख निवेदन करनेके लिए भेजते हैं॥ ३ ॥

भो भो हंसगणाः प्रियासहचराः कान्तं मम श्रीधरं
रम्ये श्रीमधुकृत्पुरे श्रुतिरवैस्सौम्ये वसन्तं हरिम् ।
दृष्ट्वाऽम्भोधिनिभं प्रभुं मम विभुं कृष्णं प्रियं ब्रूत तं
काचित्त्वद्विरहातुराऽतिशिथिला शोकद्रुतेत्येव माम् ॥४॥

प्राणप्यारी पत्नियोंके साथ विचरने वाले हंसो वेदध्वनिसे अति सुन्दर मधुकृत्पुरमें वास करने वाले मेरे स्वामी लक्ष्मीपति समुद्रके समान अति निर्मल और गम्भीर रूपवाले तथा सर्वव्यापक मेरे प्राण प्यारे श्रीकृष्णके दर्शन करके मेरी ओरसे कहना कि कोई एक नायिका आपके विरह दुखसे दुखित होकर अत्यन्त शिथिल होकर बड़े शोकसे द्रवीभूत हो रही है ।

पूर्वकी तीनगाथाओंमें साधारण भागवतोंके द्वारा प्रभुके पास सन्देश भेज कर दुख निवृत्तिमें सन्देह हुआ । इसीलिए हंसके समान सारासारविवेकचतुर परमभागवतोंको दूत बनाकर प्रभुके पास भेज रहे हैं ॥ ४ ॥

मधुकृत्पुरमलयाल देशमें तिरुवण्वण्डूरि नामसे प्रसिद्ध है ।

संश्लेपातिशयप्रियाः प्रियतमासक्ताश्च हंसाः प्रियं
रम्ये श्रीमधुकृत्पुरे मम विभुं दृष्ट्वा च कृत्वाञ्जलिम् ।
दिव्यश्रीतुलसीस्रगंचितशिरोमौलिं हरिं सादरं
स्तोत्रैर्युक्ततमैर्ममाप्यनुगुणैर्यूयं भृशं शंसत ॥ ५ ॥

आपसमें आलिंगन करना है परम प्रिय जिन्होंको और प्रियतमापत्नियोंमें सदाही आसक्त रहने वाले हंसो ! अत्यन्त रमणीय मधुकृत्पुरमें मेरे प्यारे स्वामी दिव्य श्रीतुलसीकी मालासे शोभित मस्तकवाले श्रीहरिके दर्शन करके और परमादरके साथ हाथ जोड़कर प्रभुके वैभवके अनुगुण स्तुति मेरी ओरसे आप लोग बारम्बार करना ।

संश्लेषदशामें तीन प्रकारकी स्थिति नायिका की होती है ।
(१) प्रणयरोषः (२) विज्ञापनम् (३) संश्लेषः । इस प्रकार

तीनों स्थितियों को जानने वाले आप लोग श्रीमधुकृतपुरमें गए तो अद्भुत नारायणके दर्शन करके वहाँ से नहीं आसकोगे परन्तु हमारा भी स्मरण वहाँ नहीं भूलना ॥ ५ ॥

पुन्नागाश्रयिणस्तु यूयमधुना हे कोकिला स्वस्ति वः
किंचित्प्रार्थ्यमिदं मयास्ति कदलीषण्डा दिभिर्भूषिते ।
रम्ये श्रीमधुकृत्पुरे मम विभुं वीरं हरिं चक्रिणं,
देवेशं त्ववलोक्य चानयत मे मोहान्तकं तद्वचः ॥ ६ ॥

पुन्नाग वृक्षके ऊपर मधुरध्वनि करने वाले कोकिलगणों तुम्हारा कल्याण हो । मैं कुछ थोड़ी प्रार्थना आप लोगोंसे यह करनी चाहती हूँ कि केलाओं की वाटिकाओं से भूषित अति रमणीय श्रीमधुकृत्पुरमें पराक्रमशाली चक्रधारण करने वाले देवादिदेव मेरेस्वामी श्रीहरि के दर्शन करके किसी भी उपायसे मेरी व्याकुलता को दूर करनेके लिये उसे यहाँ ले आओ ॥ ६ ॥

सौम्य श्रीशुक दिव्यसूनभरितैर्वृक्षैस्स्वयं शोभिते,
रम्ये श्रीमधुकृत्पुरे मम विभोश्श्यामं वपुः श्रीपतेः ।
वक्त्रं रक्तसरोजवच्च नयनं तत्पादपाणि तथा,
दृष्ट्वा शङ्खसुदर्शनौ तदुचितौ किं चिन्मदर्थे वद ॥७॥

अति सुन्दर शुक (तोते) तू अनेक प्रकारके दिव्यपुष्पोंसे लदे हुए वृक्षोंसे शोभायमान श्रीमधुकृत्पुरमें बसने वाले मेरे प्रभुको जिसका श्यामवर्ण है । लालकमलके समान जिसके मुख और नेत्र तथा पैर और हाथ हैं । उस लक्ष्मीपतिके दर्शन करके और उसके धारण करने योग्य शंखचक्रों को देख कर थोड़ी सी प्रार्थना मेरी दुःख निवृत्ति के लिए भी कर देना ।

शुक तुम तो उस प्रभुके दर्शन करके कृतार्थ होगे ही परन्तु मेरी प्रार्थना भी थोड़ी सी उसके कानों में अवश्य डाल देना । किसी भी प्रकारसे कोई प्रार्थना उस प्रभुके कानमें पड़े तो हमारे दुःखका अन्त अवश्य हो जायेगा ॥ ७ ॥

हे पूर्वे द्विज दिव्यपुष्पभरितैः पुन्नागवृक्षादिभि-
श्चित्रे श्रीमधुकृतपुरे मम विभोः नेत्रे विशाले हरेः ।
दिव्यंतन्मकुटं चतुर्भुजगिरीन् नीलाम्बुदश्यामलं,
दृष्ट्वा तं मम किंचिदुत्तरमिहानीयोपकारं कुरु ॥ ८ ॥

हे टिटिहरी (पूर्वे) दिव्य पुष्पों से भरे हुए पुन्नाग आदिक अनेक वृक्षोंसे आश्चर्य कारक श्रीमधुकृतपुरमें वास करने वाले मेरे स्वामी हरिके जिसके नेत्र बड़े विशाल हैं उसका मुकट बड़ाही दिव्य और मनको हरण करने वाला है । पहाड़ के समान अति विस्तृत और अति दृढ़ उसकी चार भुजाएँ हैं । नील मेघके समान उसका श्याम सुन्दर शरीर है । इस प्रकारके उस प्रभुके दर्शन करके मेरा दुःख भरा सन्देश सुनाकर उसका कुछ थोड़ा उत्तर मेरे पास लाकर उपकार करो ।

जिस प्रकार भगवान् रामचन्द्रके लक्षणोंको हनुमानजी से श्री जनकनन्दिनी ने सुनकर यह विश्वास किया था कि यह प्रभुका सच्चा दूत है, इसीप्रकार प्रभुके चिन्ह बताकर टिटहरीको दूत बनाकर भेज रहे हैं ॥ ८ ॥

हं हंसा कुसुमेशयाः प्रभुममुं कृष्णं हरिं मायिनं
दृष्ट्वा श्रीमधुकृत्पुरे भृशमुपश्शङ्खारवोद्घोषिते ।
श्रीशं तं विनयात्प्रणम्य नितरां पापाकुलां मां प्रति
ब्रूतोक्ति कृपया तु यूयमुचितामेकान्तकाले हरेः ॥ ९ ॥

कमल पुष्पोंके ऊपर शयनकरने वाले हे हंसो ! प्रातःकालके समय निरन्तर होने वाली शङ्खध्वनिसे गूंजते हुए श्रीमधुकृतपुरमें वास करने वाले मायाकृति शोभाधाम मेरे प्रभु श्रीकृष्ण हरिको एकान्त समयमें प्रणाम करके उससे मेरा दुख निवेदन करके आपलोग निरन्तर अपने किये हुए ही पापोंसे व्याकुल हुई मेरे लिये उस प्रभुका कोई सन्देशा लाकर तो कहो ? ॥ ९ ॥

यूयं भो मधुपास्सुगन्धभरिताः किंचित्तु याचे स्वयं
युष्मानेव विशेषतः सुविमले पम्पाजलोदक्तटे ।

आप जाइये। हमारा मन और बुद्धिको आपने ही चुराये हैं। इसीलिए हमारी यह दशा हुई है। यदि हमारे मन और बुद्धि हमारे ही आधीन होंगी तो हमें इस प्रकारका कष्ट न उठाना पड़ेगा ॥ १॥

हे पूर्ण व्रज दूरतस्तमधुना ते नेत्रपद्मद्वयं,
रम्यं स्मेरमुखं वयं नहि हरे धन्यास्त्वयं वीक्षितुम्।
प्रेयस्यस्तव सन्ति भाग्यभरितास्तापिञ्छकेशोऽन्यत-
स्तासान्तु श्रुतिगोचरं पशुगणैस्त्वं वेणुनादं कुरु॥ २॥

हे पूर्ण पुरुषोत्तम अब आप मुझसे दूर चले जाइये। हमारे धन्य भाग्य ऐसे कहाँ हैं कि आपके सुन्दर नेत्र कमलोंके तथा मंदमुसकाने करते हुए मुखके हमें दर्शन मिलें। और आपकी प्राण प्यारी बड़े लम्बे और सुन्दर केशवाली बड़भागिनी दूसरे स्थानमें हैं। अतएव गौवों को चराते हुए मधुर मुरलीकी माधुरी तान उन्हीं स्त्रियोंको जाकर सुनाओ।

आपका सौंदर्य हमें व्याकुल करता है। और वियोग दुख भोगने के लिए ही हमने जन्म धारण किया है। जिनको आप संयोग सुख देना चाहें उन्हींके घरोंमें गौचारणके बहानेसे जाकर उनको अपनी बंशीकी माधुरी तान सुनाकर अपने मायाजालमें डालो। अब मैं तुम्हारे माया जालमें फसने वाली नहीं हूँ॥ २॥

भो भोः कृत्रिमपूर्ण याहि वद ते वाचं हरे कृत्रिमां,
त्वन्मायाद्यनभिज्ञसन्निधितले मे भाति सर्वं च ते।
सौदर्यं प्रतिकूलमेप नयने बिम्बाधरे श्रीपते,
विस्तीर्णाम्बुधिमन्थसुन्दरभुजा नार्यः प्रियास्तेऽद्य काः॥३॥

हे बनावटी प्रेम दिखाने वाले हरे! आप मेरे पाससे चले जाइये, मेरे सामने आपकी माया नहीं लगेगी। जो तुम्हारी मायाओं को नहीं जानती है। उन्ही प्रेमिकाओं के पास जाकर दिखावटी मीठी मीठी बातें बनाना। आपकी सुन्दरता मेरे नेत्रोंमें दुख देती है। लक्ष्मीपति आपके कमल समान सुन्द नेत्र और बिम्बाफलके

मेरे हृदयको जलाये देते हैं । अति विस्तृन समुद्रको मंथन करने वाली आपकी भुजाओं की आलिंगन आशातो मुझे व्याकुल कर रही है । आपके लिए कौनसी स्त्री अत्यन्त प्यारी है,बस उसीके पास जाइये । मुझे तो पूर्ण अनुभव है कि आपका संयोग ही दुखका मूल है । आपने तो अपने नेत्रोंका अनुभव लक्ष्मीको दिया भुजाओं का अनुभव देवताओंको दिया वेही आपके कृपा पात्र थे । हममें तो आपकी कृपाके पात्र बनने की योग्यता ही नहीं है अतएव कपट भरे आपसे मैं प्रेम करना नही चाहती ॥ ३ ॥

सुप्तस्त्वं वटपत्रके किल पुरा भुक्त्वा च लोकानिमान्,
मायां ते न विदन्ति हन्त दिविषद्वर्गाश्च विज्ञः कथम् ।
शक्तस्त्वं पशुपासने हि ललना लीलास्थले सैकते,
किं वाग्भिस्तव कृत्रिमाभिरधुना सर्वं च विज्ञो वयम् ॥ ४ ॥

हे नाथ ! पहले आप समस्तलोकोंको खाकर छोटेसे वटके पर सोये थे । आपकी मायाको जब स्वर्गवास करने वाले ज्ञानियों में श्रेष्ट ब्रह्मरुद्रादिक भी नहीं जान सकते तो हम अबला और अबुद्धि स्त्री कैसे जान सकती हैं । आपने अनेक लीलावती उन गोपियोंको अपने जालमें फँसानेके लिए ही तो गौचारणका स्वांग रचा था । अब आप झूठी झूठी बनावटी बातें जो बना रहे हैं, उससे क्या लाभ है । मैं तुम्हारे सर्व प्रकारके कपटमायाजालोंको अच्छी रीतिसे जानती हूँ ।

भगवान् श्रीकृष्णका व्रजमें निवास एक प्रतिष्ठित घरमें था जहाँ सैकड़ों दास दासियाँ नित्यप्रतिकार्य किया करते थे । अतएव स्वयं ही गौचरानेको वनमें जाना उचित नही हो सकता । अतएव यह गोचारण चरित्र भी कुछ रहस्य मय जान पड़ता है । इसी रहस्यको आलवार बत लाते हैं कि आपका गोचारण नाटक केवल उन भक्त वर गोपियों के लिए था जो कि आपके पास में आकर सेवाकी अधिकारिणी नहीं थीं ।

रम्ये श्रीमधुकृत्पुरे मम विभुं दृष्ट्वा च रक्षः पुरी
ध्वंसोत्साहिनमच्युतं वदत मां चैकामिमां जीविताम् ॥ १०

हे भौंराओ ! आप लोग तो सुगन्ध भारसे भरे हुए हो मैं तुमसे थोड़ीसी प्रार्थना विशेषरूपसे करना चाहती हूँ, कि अत्यन्त निर्मल पम्पा सरोवरके उत्तर तट पर अति रमणीय श्रीमधुकृत्पुरमें वास करने वाले तथा राक्षसकी पुरी लङ्काके नाश करनेमें उत्साह दिखाने वाले अविनाशी मेरे स्वामीके दर्शन करके कहो कि आपके विरहमें वह अकेली ही जीवित है।

प्रभुका विरह प्राणीमात्रके लिये प्राणनाशक हो जाता है, जैसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें

(विषये ते महाराज रामव्यसनकर्षिता ।
अपि वृक्षाः परिम्लानाः सपुष्पांकुरकोरका ॥
उपतप्तोदकानद्यः पल्वलानि सरांसि च ।)

पुष्प और पल्लव तथा नदी और सरोवर आदिक भी दुखसे क्षुभित हो गये थे। फिर चेतनों की तो कहना ही क्या है, परन्तु मैं ही एक कठोर हृदयकी हूँ जो प्रभुके वियोग में भी प्राण धारण कर रही हूँ। इस कठोरताका और इस धृष्टताका क्षमा पूर्वक प्रभुसे निवेदन करना ॥ १० ॥

श्रीशं वामनमच्युतं सुविलसद्यज्ञोपवीताञ्चितं
भूयाच्चां प्रति वंचकं शठरिपुस्तत्पादपद्माश्रयः ।
स्तोतुं श्रीकुरुकापुरप्रभुरसौ साहस्रमाहात्र च
ज्ञात्वेदं मधुकृत्पुरानुदशकं धन्या दिवि स्युर्जनाः ॥११॥

भूमिकी भिक्षा माँगनेमें वंचना करने वाले वामनरूप अति [illegible]ल और शुद्ध यज्ञोपवीतको धारण करने वाले अविनाशी लक्ष्मी[illegible]के चरणोंका आश्रय लेने वाले कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनिने [illegible]स प्रभुकी स्तुति करनेके लिये सहस्रगीति कही। उसमें मधुकृत्पुर[illegible]सी प्रभुकी सेवाको बताने वाले इस दशकको जो पढ़ेंगे वे वैकुण्ठमें [illegible]कर धन्यवादके पात्र बनेंगे।

इति श्री सहस्रगीती पञ्चशतके प्रथमदशकं समाप्तम् ।

अथश्रीसहस्रगीतौ षष्टशतके द्वितीयदशकारम्भः

इस दशक में पूर्वोक्त प्रकार से हंसादि पक्षियों से अपनी करुण कथा प्रभुसे निवेदन करने के लिये नायिकाके आवेशमें आल्वार कह रहे थे कि उनके विरहव्यथाको दूर करने के लिये प्रभुने आकर दर्शन दिये प्रभुको देख कर प्रणयरोषमें आकर उनको अनेक उपालम्भ देने लगे हैं।

> अग्रं ते रमणी जनस्य तु तडिन्मध्यस्य च त्वत्प्रिय,
> स्यैवं दुष्टविचेष्टितं तव कथं वच्मीति शंकाऽस्ति मे।
> लङ्कावप्रविनशकोऽसि भगवन् मायी भवान् वेद्यहं,
> चेष्टां ते किमतः फलं व्रज विभो दत्वा च मे कन्तुकम् ॥१॥

हे प्रभो! विजलीके समान अति चंचल चाल वाली तरुण रमणियोंके आगे आपकी अनेक प्रकारकी बुरी चेष्टाओं को देख कर मुझे शंका होती है। और आपके, इन दुश्चरित्रोंको कहने में मुझे लज्जाभी आती है। इस प्रकार भलीभांति मैं जानती हूँ कि आपने एक चंचल चित्त वाली स्त्रीके प्रेमवश होकर ही लंका दुर्गका विनाश किया था। अनेक मायाओंको रचकर भोले प्राणियोंको अपने जाल में फँसाने वाले आपसे अब अधिक कहने से क्या लाभ है। अब मेरी गेंद और आरसी जो आपने चुराली है उसको मुझे देकर और आप चले जाइये मैं आपसे अधिक प्रेम नहीं करना चाहती।

प्रभु जिसके ऊपर परमकृपा करते हैं उनको अपनी माधुरी मूर्तिको दिखाकर उसके मन और बुद्धिको चुरा लेते हैं। ऐसे बड़भागी भक्तको इस संसारमें ईश्वरके सिवा और कुछ नहीं दीखता और वह मन बुद्धि शून्य होकर एकनायिकाका अनुकरण करने लगता है। यही दशा हमारे आल्वारकी भी हुई है। इसी कारण भक्त वत्सल प्रभु भी उनके पास आकर अपने दर्शनोंसे उनके विरह दुख को दूर करने लगे। प्रभुके दर्शनानन्दसे हुई उन्मत्त दशामें आल्वार को (अहमन्नाद) कहने वाले मुक्तोंके समान स्वस्वामी भावका ज्ञान न रहा। और प्रणयरोषमें आकर उपालम्भ (उलाहना) देने लगे कि हमारी चुराई हुई वस्तु गेंद (मन) आरसी (बुद्धि) को देकर

मिथ्यापूर्णं तवाप्तकृत्रिमवचो माऽस्त्वत्र तु श्रीहरे !
चक्रिन् कैतवमस्ति सर्वविदितं ते भूतले वा दिवि ।
किंचिद्वच्मि तवाद्य तच्छृणु तव प्रेष्ठास्तरुण्यस्स्वयं
सन्तप्ता मधुभाषिताः किल ततो लीलां शुकैर्मे त्यज ॥५॥

हे श्रीहरे ! आप मेरे आगे मिथ्यापूर्ण बनावटी बात मत बनाओ, चक्रको धारण करने वाले आपकी कपटताको स्वर्ग और भूमिमें वास करने वाले सब जानते हैं। सुनो मैं तुमसे एक बात कहती हूँ कि तुम्हारी प्राणप्यारी मधुरभाषण करने वाली नवयौवना स्त्रियाँ तुम्हारे मिलने के लिये तरस रही हैं। इसलिए मेरे तोता और मैंनासे खेलना छोड़कर उन्हीं प्राण प्यारियोंके पास जाओ।

जब आप हमसे ही प्रेम तोड़ते हो तो हमारे आश्रितोंके ऊपर प्रेम क्यों करते हो, क्योंकि हमारे आश्रितभी आपके प्रेमबन्धनमें पड़कर हमारी सीही दुर्दशाको भोगेंगे। इसलिये हम और हमारे आश्रितोंसे आप अलग रहिये ॥ ५ ॥

अस्माकं परिगृह्य पुत्तलिमिमां किं वाऽसि मुग्धोऽधुना
किं ते कार्यमितः पुरैव चरितं विद्मो वयं ते हरे ।
अस्माकं न किल क्षमार्हमिदमस्त्यास्ते तव प्रेयसी
गोष्ठी तेऽनुगुणा त्रिलोकमहिता माऽस्मानुपे हि स्वयम् ॥६॥

हे हरे ! आप मेरे आगे मोहन चातुरीको दिखाकर और हमारे चित्रपटको हरण करके क्यों लड़कपन करते हो। इससे भला तुमको क्या लाभ होगा ? मैं तो पहिलेसे ही तुम्हारे चरित्रोंको जानती हूँ, आपके मनोरंजन करने वाली सर्वश्रेष्ठ और स्वरूपके अनुरूप प्राण प्यारियोंकी मण्डली अन्यस्थानोंमें हैं। अतएव तुम हमारे पास मत आओ।

अपनी प्रियवस्तु एक समय अपने से दूर होजाती तो कुछ दिन उसका शोक करके फिर चित्तमें शान्ति आजाती है। यदि प्रिय वस्तु बार बार आती जाती रहे तो उसके संयोग वियोगमें चित्त हर्षशोकसे प्रत्येक समय व्याकुल रहेगा। इसीलिये आचार्यने इसगाथामें कहा है

कि हमारे पास आये हो तो अब अन्यत्र मत जाओ। और हमसे भी अधिकप्यारे भक्तोंके पास जाते हो तो फिर हमारे पास न आना ॥६॥

अस्माकं करतोऽद्य पुत्तलिहृतिर्नैवोचिता ते हरे,
भुक्त्वा वारिधिमग्नमेवचजगत्संरक्ष्य शुद्धोऽसिहि ।
दोषाऽद्य ।कल दोष एव तव चाप्यस्मासु लीलां च ते,
श्रुत्वा दण्डधरा भवन्ति करुणाहीना हि न स्सोदराः ॥७॥

हे हरे ! हमारे हाथमें से जो आप हमारी गुड़ियाओंको छीन ते हो यह बात अच्छी नहीं है। आपने तो इस संसारको पहले खा लिया था और फिर समुद्रमें डूबे हुए इसका उद्धार करके रक्षा की थी तो भी आप शुद्ध हैं। परन्तु हमारे साथमें जो आप दुष्टकर्म कर रहे हैं यह दोष तो किसी प्रकार भी शुद्ध होना असंभव है। और इस प्रकार की लीला को ये हमारे भाई सुन लेंगे तो वे निर्दय होकर अवश्य ही आप और मुझको भी दंड देंगे।

संसारमें से इस चेतनको निकाल कर वैष्णव प्रेमी बनाना और फिर उसको अपनी माधुरी मूर्तिके दर्शनसे वंचित रखना यह कोई न्याय कार्य नहीं है। ऐसा आप न करें ? यदि संसारियोंको यह पता लग जाय कि यह भगवत् प्रेमी हो रहा है तो ये अनेक प्रकारके विघ्न डालकर भगवत् विमुख करदेंगे। इसलिए भक्तोंके चित्तको छोड़ कर आप अन्यत्र नजाँय यही प्रार्थना आल्वारने इस गाथामें की है॥७॥

सर्वांस्त्वंचिदचिद्गणानपि भृशं सम्मेलयन् भेदयन्,
भासि ज्ञाननिधिश्च मूर्त उदितो भास्वानभिन्नःस्वयम् ।
पूर्णः कीर्तिपयोनिधिः किल सखीवर्गैर्वयं चोदिता,
लीलायामिह वारिताश्च भवता किं ब्रूयुरन्ये जनाः ॥८॥

हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण चित्वर्ग (जीवसमूह) अचित् वर्ग (प्रकृति और प्राकृतिक संघात) का निरन्तर सम्मेलन और विश्ले·

षण करते हुए अपार ज्ञानके भंडार रूप मूर्ति धारण करके प्रकाश मान हो रहे हो। सूर्यके समान प्रकाशरूपसे चराचरमें व्याप्त होते हुए भी आप चराचर से भिन्न नहीं हो। और स्वयं कीर्ति रूपी जलके अगाध और परिपूर्ण समुद्र हो। आपके साथ लीला रस भोगने के लिए हमको हमारी सखियों ने आज्ञा दी थी किन्तु आपने उस लीला रससे हमें दूर कर दिया है। इस प्रकार रंगमें भंग करने वाले आपको लोग क्या कहेंगे हमें यह बड़ी चिन्ता है ॥ ८ ॥

प्रीत्याऽन्तर्हृदयं द्रवीकृतमिदं भूयात्कटाक्षैस्तव,
श्रीपद्माक्ष वशीकृता वयममी भूयास्म चेति त्वया ।
अस्माकं हि विनाशितं सुरुचिरं लीलागृहं चौदनं,
पादेनैव तवाद्य हन्त न हि तद्दृष्टं त्वया सस्मितम् ॥९॥

हे कमललोचन आपके प्रेम कटाक्षसे पिघला हुआ यह हमारा अन्तर आत्मा हो जाय यही हमारी अभिलाषा है। और हम भी आपके ही वशमें सर्व प्रकारसे हो जाँय इसका प्रयत्न भी आपको ही करना होगा। किन्तु हमारे अतिदीनोंका घर और हमारा भोजन आपने पैरोंसे भी नहीं ठुकराया। और न मन्दमुसकान करते हुए दृष्टिसे उसको देखा ही। फिर हम आपमें किस प्रकार भक्त वत्सलता का विश्वास करें ॥ ९ ॥

भास्वद्दिव्यकिरीट ! भो ! परशुभृत् प्रध्वंसयन् दुर्नृपान्,
प्रख्यातोऽसि यदेकविंशति जयैः ! पूर्वं जगत्सृष्टिकृत् ।
आद्यत्वं किल गोपवंशमखिलं चोज्जीवयन् भास्यहो !
नीलश्रीमणिवर्ण ! तेऽद्य चरितैर्गोप्यो वयं कर्शिताः ॥१०॥

हे प्रभो ! अत्यन्त प्रकाशमान किरीटको धारण करने वाले आपने प्रथम सम्पूर्ण जगतकी सृष्टि करी थी। और फिर उसी सृष्टीमें उत्पन्न होने वाले दुष्टराजाओंका दमन करने के लिए आपने परशुराम रूप धारण किया था। वहाँ इक्कीसवार क्षत्रियोंका नाश करके विजयीवीर की ख्याति प्राप्त की थी। और अब आप सम्पूर्ण गोपवंशका निश्चित रूप

से उद्धार करने को कृष्ण रूपसे प्रकाशित हो रहे हो। नीलमणिके समान वर्ण वाले स्वामिन् आज आपके चरित्रों को देखकर और सुन कर हम गोपी अत्यन्त ही दुखी हो रही हैं ॥ १० ॥

गोप्यां तन्नवनीतचौर्यकथने सत्यां स्वयं मातरि,
श्रीकृष्णं विलपन्तमेव च रुषा स्तोतुं शठारिमुनिः
साहस्रं कुरुकापुरप्रभुरसावाहोत्तमं द्राविणं,
तत्रेदं दशकं शुभन्तु पठतां नैवास्त्यलभ्यं शुभम् ॥ ११ ॥

भगवान् कृष्णको माता गोपी (यशोदा) उनको यह कहकर कि तैने मेरे माखन की चोरी की है तुझे पीटूंगी। डंडा लेकर क्रोधके साथ धमका रही थी इस धमकी से डर कर वे भी विलापकर रहे थे। ऐसे कृष्णकी ही स्तुति करनेके लिए कुरुकापुरके वासी शठकोपमुनिने द्राविड़काव्योंमें उत्तम सहस्र गीतिको कहा। उसमें कल्याण कारक इस दशकको जो पढ़ेंगे वे सर्व प्रकारके कल्याणों के भाजन अवश्य बनेंगे ॥ ८ ॥

इति श्री सहस्रगीतौ षष्ठशतके द्वितीय दशकं समाप्तम् ।



अथश्रीसहस्रगीतौ षष्टशतके तृतीयदशकारम्भः

इस दशकमें परत्व शौलभ्यत्व गुणविशिष्ठ ईश्वरका इसलीलाविभूति में अनेक विरुद्ध धर्मोंके रूपमें अनुभव करते हुए। उसकी प्राप्तिका उपाय श्री दिव्यपुरी नायक की चरण सेवा ही आत्म कल्याण कारक है यह कहा है—

श्रीसङ्कोचधनाढ्यते च नरके स्वर्गे च वैरातिसौ,
हार्दे चापि विषामृते च सकलं भूत्वा स्वयं व्यापकः ।
स्वामी नः परमेश्वरो मम विभुर्यो भाति पश्यामि तं,
श्रीसम्पूर्ण कुलाश्रेय तु नगरे श्री दिव्यपुर्याह्वये ॥१॥

सर्वेश्वर हमारा स्वामी ही इस संसारमें दारिद्र्य और धनाढ्यता स्वर्ग और नरक शत्रुता और मित्रता विष तथा अमृत रूप होकर स्वयं समस्त वस्तुमें व्यापक होकर प्रकाशमान हो रहा है। उसी

प्रभुका मैं अनेक सम्पत्तियों से पूर्ण गृहोंके आश्रय वाले श्री दिव्यपुरी नामके नगरमें दर्शन करता हूँ।

संसारमें वर्तमान विभिन्न पदार्थों में अनेक धर्मोंका रूप धारण कर व्याप्त होने वाला सर्वेश्वर ही मूर्ति रूप होकर निर्हेतुक कृपा करके हमारा उद्धार करनेके लिए श्रीदिव्यपुरीमें विराजमान हुआ है। अतः ऐसे परमकृपालुकी चरण सेवा आत्म कल्याणके लिए अवश्यही करनी चाहिये ॥ १ ॥

श्रीदिव्यपुरी चौलदेशमें "तिरुविण्णकर" नामसे प्रसिद्ध है।

दृश्यं यत्सुखदुःखरूपमखिलं चिन्ता प्रशान्त्यात्मकं
शीतोष्णं च मिथो विरुद्धमपि यत्कोपप्रसादात्मकम्।
तत्सर्वं स्वयमेव योऽस्ति भगवान् दृश्योन चादर्णोहरि
स्तस्येदं नगरं शुभं मम विभोश्श्रीदिव्यपुर्याह्वयम् ॥२॥

जो प्रभु आपसमें विरुद्ध रहने वाले अनेक धर्मोंका रूप होकर संसारमें दृष्टिगोचर हो रहा है। जैसे सुख और दुःख चिन्ता और शान्ति शीत और गर्मी क्रोध और प्रसन्नता रूप होकर संसारमें प्रकाशित हो रहा है, जिसको कोई भी अपने चर्मचक्षुओंसे नहीं देख सकता, उसी सर्वव्यापक प्रभुका निवास स्थान दिव्यपुरी नामका नगर प्राणियोंके आत्मकल्याणके लिये है ॥ २ ॥

सर्वं यन्नगरात्मकं च सकलं ग्रामात्मकं यत्स्वयं
ज्ञानं मौढ्यमपि स्वयं निरवधि ज्योतिस्तथाऽन्धंतमः।
भूलोकस्सुरलोक इत्यपि च यश्श्री दिव्यपूर्यां हरिः
भाति श्रीहरिरस्य कीर्तिरतुला नान्यत्तु पुण्यं भवेत् ॥३॥

जो प्रभु नगररूपसे तथा ग्रामरूपसे तथा ज्ञान और मूर्खतारूपसे तथा निरवधिक तेज और सघन अन्धकाररूपसे तथा भूलोक और सुरलोकरूपसे स्वयं सर्वरूप होकर प्रकाशमान हो रहा है। और जो प्रभु श्रीदिव्यपुरीमें साक्षात् विराजमान है। इस हरिकी कीर्तिके स्मरणके बिना अन्य वस्तु पुण्यरूप नहीं हो सकती। अर्थात् इस हरिकी कीर्तिका निरन्तर गान करनाही सम्पूर्ण पुण्यफलोंको देने वाला है ॥ ३ ॥

पुण्यं पापमिदं च सङ्गविरहौ तत्तत्स्मृतिर्विस्मृतिः
सत्यं चानृतरूपमेनदखिलं भूत्वाऽपि न स्यात्तथा ।
योऽसौ श्रीपतिरच्युतो मम विभुश्श्रीदिव्यपुर्यां हरिः
कृष्णस्यास्य कृपाभजध्वमतुलां किं स्यादिदं कैतवम् ॥४॥

जो हरि पुण्य और पाप, संगम और विरह स्मरण और विस्मरण, सत्य और मिथ्या समस्तरूप होकरभी लक्ष्मीका अविनाशी पति है, वही मेरा स्वामी श्रीहरि श्रीदिव्यपुरीमें आकर विराजमान हुआ है, इस दिव्यपुरी वासी कृष्णकी ही सर्वश्रेष्ठ कृपा का भजन करना चाहिये। जो प्राणी इसकी कृपाका अवलम्बन छोड़कर अन्याश्रित होते हैं, इससे अधिक कुटिलता (धोखेबाजी) क्या होगी ॥४॥

कौटिल्यं च तथाऽऽर्जवं च सकलं नीलत्वधावल्यके
सत्यासत्यमयं च यौवनजरे नूत्नं च जीर्णं च यत् ।
तत्सर्वं स्वयमेव यो मम विभुश्श्रीदिव्यपुर्यां हरि
स्तस्योद्यानमिदं जगत्त्रयमहो ! ब्रह्मादिदेवाश्रितम् ॥५॥

जो हरि कुटिलता (टेढ़ापन) तथा आर्जव (सीधापन) नीलापन और सफेदपन सत्य और असत्य यौवन और बुढ़ापा नया और पुराना जो भी कुछ संसारमें है, उन सब वस्तुओंके रूपमें संसारमें प्रकाशमान है। उसी प्रभुका यह जगत्त्रय (तीनों लोक) जिसमें ब्रह्मासे आदि लेकर समस्त मनुष्य, देव, पशु, पक्षि आदि प्राणी वास करते हैं, क्रीड़ोद्यान (खेलने का बगीचा) है। अर्थात् इस संसारको प्रभुने अपने क्रीड़ास्थल के लिये ही रचा है ॥ ५ ॥

यह संसार भगवान्का क्रीड़ोद्यान है, इसी बातको भागवतमें भी श्रीशुकदेवजीने इस प्रकार प्रतिपादन किया है कि—

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतन्ते स्वाम्यन्तु तत्र कुधियोऽपरईश कुर्युः।
कर्त्तुः प्रभो स्तवकिमस्यत आवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्त्तृवादाः॥

प्रभो ! यह संसार आपने अपनी क्रीड़ा करनेके लिये बनाया है, किन्तु इसमें रहने वाले प्राणीही इसपर अपना स्वामित्व जमा लेते हैं

और फिर वे आपकी सेवा सुश्रूषाको भूल जाते हैं, ऐसे अहंकारियोंके मद्को आप नष्ट करके अपना प्रभुत्व दिखलाते हो। भा०१कं०८अ०२२

त्रैलोक्यं सकलं च यो न च तथा रोगोऽपिवैरं स्वयं
लक्ष्मीश्चापि सरोजदिव्यभवनाज्येष्ठाऽप्यलक्ष्मीः स्वयम् ।
स्तोत्रं निन्दनमप्ययं स्वयमहो ? श्रीदिव्य पुर्यां हरि
र्भाति श्रीपतिरच्युतोऽप्यघिनि मे ज्योतिः परं मानसे ॥६॥

जो प्रभु समस्त त्रैलोक्यमें प्रेम और वैर दिव्यकमलके ऊपर वास करने वाली लक्ष्मीरूप तथा ज्येष्ठा नामकी अलक्ष्मीरूपभी वही है। और स्तुति निन्दारूपभी वह स्वयं है। अहह ! वही अविनाशी लक्ष्मीपति श्रीदिव्यपुरीमें वास करता है, जो अत्यन्त पापी मेरे मनमें भी दिव्यज्योति स्वरूपसे प्रकाशमान हो रहा है ॥ ६ ॥

ज्योश्चापि परं स्वयं हि मलिनं चेदं जगद्भास्वरं
सर्वत्रापि च गुप्तमप्यचलमप्येवं हि मायात्मकम् ।
दैवाद्यैरपि सेविते हि नगरे श्रीदिव्यपुर्याह्वये
भांति श्रीपतिरस्य पादयुगलं सेव्यं ! न चान्यन्नृणाम् ॥७॥

जो प्रभु सर्वश्रेष्ठ ज्योति स्वरूप है। और जो स्वयं ही मलीन और प्रकाशमानरूपसे तथा गुप्त और प्रगटरूपसे अनेक मायामय चरित्र करता है, वही लक्ष्मीपति अनेक देवोंसे सेवित श्रीदिव्यपुरी नामके नगरमें विराजमान हो रहा है, इसी प्रभुके चरण युगलोंकी सेवा सर्व मनुष्योंको अन्याश्रय छोड़कर अपने कल्याणके लिए अवश्य करनी चाहिए ॥ ७ ॥

देवानां चशरण्यमप्रतिहतं ! सर्वासुराणां रिपु
र्हन्ता चापि जगत्त्रयस्य शरणं श्रीदिव्यपुर्यां हरिः
एवं दक्षिणदिक्प्रकाशिशरणं श्रीदिव्यपुर्यां हरिः !
कृष्णो मे प्रभु रस्ति ! मेऽस्ति शरणं नित्यं च सेव्यो मम॥८

जो प्रभु देवताओंका कभी नहीं चूकने वाला सर्व प्रकारका

रक्षक है । तथा समस्त असुरोंको शत्रु रूप होकर मारने वाला है । और जो सर्व प्रकार से तीनों लोकोंकी रक्षा करता है और जो सेवा करने योग्य (राम कृष्णादि मूर्ति) तथा सेवा करने के अयोग्य (बुद्ध महामोहादि) रूप धारण कर लेता हैं । दक्षिण दिशा में प्रकाशमान श्रीदिव्यपुरी में रक्षक रूपसे विराजमान है । जो कृष्ण रूप हरि वही मेरे स्वामी और मेरे रक्षक हैं और उन्हींकी सेवामें निरंतर करूंगा ॥ ८ ॥

योऽसौ मेऽस्ति पिता च मेऽस्ति जननी धात्री च सौवर्णभाः
स्वामी रत्नमहोज्वलस्स्वयमसौ मुक्तामयो मे प्रभु ।
प्रकारैश्च हिरण्मयै विलसिते श्रीदिव्यपुर्याह्वये,
सोऽयं मे नगरे स्वपादकमलच्छायां शरण्यामदात् ॥ ९ ॥

जो प्रभु मेरा पिता है और मेरा पालन करने वाली माता भी है । स्वर्ण के समान जिसके शरीर की कान्ति और रत्नके समान उज्वल है । और मोतीके समान जो शीतल और स्वच्छ है । वही मेरा प्रभु सुवर्णके परकोटासे घिरे हुए श्री दिव्यपुरी नामके नगर में विराज मान है । इसी प्रभुने मेरे लिये सर्व प्रकारकी विपत्तियों से रक्षा करने वाली अपने चरण कमलकी छायाको प्रदान किया है ॥ ९ ॥

छायाऽपि श्रमहारिणी सहि हरिस्तापावहश्चातपो,
प्रोऽणुश्चापि महान् विभाति सपदि ह्रस्वोऽपि दीर्घोस्ति यः।
एवं भाति चराचरं च न तथा ! श्रीदिव्यपुर्यां हरिः
प्राप्यं तत्पदयुग्ममेव शरणं ! नान्यद्भवेत्पश्यत ॥ १० ॥

जो हरि सर्व श्रमोंको दूर करने वाले छाया रूपसे तथा सर्व - प्रकार के सन्तापोंको देने वाले आतप (धूप) रूपसे तथा बहुत सूक्ष्म और अति महान् रूपसे और ह्रस्व (छोटा) दीर्घ (लम्बा) रूपसे प्रकाशित हो रहा है । इस प्रकार चराचर रूप संसारमें प्रकाश मान होने वाले प्रभु ही श्री दिव्यपुरीमें विराजमान है । उसके दर्शन करने वालोंको उनके चरणों की शरणके बिना अन्य कोई वस्तु प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं रहती ॥ १ ॥

लोकाः पश्यत चाद्भुतं तु तदिदं प्रत्यक्षमेवेति च,
श्रीशं सर्वजगत्प्रमातृनरणं स्तोतुं शठारिर्मुनिः ।
साहस्रं कुरुकापुरप्रभुरसा वाहाच्युता ज्ञात्मकं,
ज्ञात्वा दिव्यपुरं प्रतीहदशकं स्युस्सूरि सेव्या नराः ॥ ११॥

हे पुरुषो ! आपके नेत्रोंके सामने आने वाले आश्चर्य कारक अनेक पदार्थों को श्री प्रभुके रूपमें ही देखो इस प्रकार की (संसारको नापने वाला है चरण जिसका) उस लक्ष्मी पतिकी स्तुति करने के लिए कुरुकापुरके स्वामी शठकोपमुनिने सहस्रगीतिको कहा है। उसमें ईश्वरकी आज्ञा रूप श्री दिव्यपुरकी प्रशंसा करने वाले इस दशकको जो जानेंगे वे नित्य मुक्तोंकी सेवाके पात्र बन जायँगे ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्रगीतौ षष्ठशतके तृतीयदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ षष्टशतके चतुर्थदशकारंभः ।

इस दशकमें आल्वार अहर्निश श्री कृष्णके नाना प्रकारके गुण चरित्रों का प्रेम से अनुभव करके मेरे मनोरथ पूरे हो गये अब मेरेको किसी प्रकारकी कमी नहीं है, इस बातको कहते हैं और श्री कृष्णकी लीलाओंका वर्णन करते हैं ।

गोपीभिः किलरासगोष्ठ्यभिरतिगोर्वर्द्धनोद्धारणं,
पूर्णाम्भस्यपि कालियस्य सरसि स्वाङ्घ्रिद्वयान्मर्दनम् ।
एवं सर्वविधं च नागशयनस्यात्यद्भुतं चेष्टितं,
संचिन्त्यैव दिवानिशं प्रमुदितोऽस्म्यद्यानवाप्तं न मे ॥१॥

अहह ! इस शेषशायीके चरित्र जो कि गोपियोंके साथ रास गोष्ठीमें रमण करना तथा गौ और गोवोंकी रक्षा करने के लिए गोवर्धन पर्वत को धारण करना और गम्भीर जलमें वास करने वाले कालीय नामके सर्पका अपने दोनों चरणों से मर्दन करना । इस प्रकार सर्व विधिसे अत्यन्त आश्चर्य कारक लीलाओं का दिन रात चिन्तन करके ही मुझे आनन्द प्राप्त होता है । आज कोई भी पदार्थ मुझे दुर्लभ प्रतीत नहीं होता ॥ १ ॥

गीतं हृद्यतमं तु वेणुमुखतो गायन् पशून् घासयन्,
मुग्धाक्षीं कुसुमस्रगञ्चिततनुं नीलां समाश्लिष्य यः ।
मायाचेष्टितमद्भुतं व्यरचत्तस्याद्य वृत्तं स्मरन्,
मोदेऽहं द्रुतचित्त एव सततं लोके समः को मम ? ॥२॥

वंशीके द्वारा हृदयको आकर्षण करने वाले गीतको गाते और और पशुओं को चराते हुए भी जो प्रभु फूलोंकी मालासे भूषित शरीर वाली मछलीके समान चंचल नेत्र वाली नीला देवीसे आलिंगन करके जिसने अनेक प्रकारके मायाजाल को रचा था। उसी प्रभुके चरित्रको स्मरण करके मैं पिघले हुए मनसे निरन्तर आनन्द को प्राप्त हो रहा हूँ। इस संसारमें मेरे समान बड़भागी कौन है ॥ २ ॥

मल्लानामपि मर्दनं पशुगणैर्गत्वा च तद्घासनं,
दीर्घोत्तुंगकरस्य चापि करिणस्सम्मर्दनं वैरिणः ।
एवं चेष्टितसन्ततिं च विविधां स्मृत्वा परज्योतिषः
सङ्कीर्त्यापि च नित्यमस्मि सुचिरं तुष्टो न मे स्यादन्यथा ॥३॥

उस प्रभुके बड़े बड़े पर्वत समान कठोर काय मल्लोंका मर्दन करना और गौओंके साथ वनमें जाकर उनको चराना तथा प्राण हरने के लिए क्रोधके साथ शत्रुरूप से आते हुए हाथीकी लम्बी और उठी हुई सूंडको तोड़ना। इस प्रकार की परंज्योति स्वरूप उसकी अनेक प्रकारकी लीलाओं का स्मरण करके तथा निरन्तर दीर्घकालतक कीर्तन करके मैं बड़ा ही प्रसन्न होता हूँ। इस प्रकार वर्तते हुए यदि दुख दोष भरे संसारमें मुझे अधिक समय तक रहना पड़े तो भी कुछ कष्ट नहीं होगा ॥ ३ ॥

बन्धप्राप्तिमुलूखलेऽस्य तु हरे र्भव्यत्वमप्यस्य तां,
हन्तुं स्तन्यविषस्य पानमपि तन्मायात्मिकां पूतनाम् ।
मायाभृच्छकटस्य भंजनमपि श्रीकृष्णचेष्टावलिं,
स्मृत्वा मे मन एवमेव सततं तुष्टं ! किमीहेऽपरम् ॥ ४ ॥

हरिकी लीला उलूखल (ऊखल) के साथ बँध जाने रूप भव्यता (भक्तवत्सलता) तथा अनेक माया करने वाली पूतनाको मारनेके लिये विष भरे उसके दूधको पीना। तथा मायाधारी शकटासुरका मर्दन करना इत्यादिक उस कृष्णकी लीलाओंका स्मरण करके मेरा मन निरन्तर बड़ाहीं प्रसन्न होता है, इससे अधिक और मुझे क्या चाहिये॥४॥

दैवैरर्थित एव जन्मभृदिह क्षीरार्णवादर्थितो
मात्रा यस्तमसि स्वयं यदविशद्गोपाङ्गणं श्रीहरिः।
पुष्टस्तत्र हि गुप्त एव च रिपुं कंसं यथा चावधीत्
सर्वं कृत्रिमचेष्टितं तु तदिदं वच्मीह किं मे भयम् ॥५॥

जिसप्रभुने देवताओंकी प्रार्थनाको स्वीकार करके ही क्षीरसमुद्रसे व्रजमें, आकर घोरान्धकारसे घिरे हुए गृहमें जन्म धारण किया था। और उसी दिन मथुराको छोड़कर गोकुलमें नन्दगोपके घरमें चले गये थे। और वहाँ छिप करके ही बड़े हुए थे। तथा बड़े होकरके छिप करके ही कंसको भी मारा था। इस प्रकारके उसके लीला चरित्रोंको निरन्तर कीर्तन करने वाले मुझको अब शत्रुओं (इन्द्रियों) का भय कहाँ है ॥ ५ ॥

युद्धे तस्य बकस्य दारणमपि ख्यातं वृषध्वंसनं
चोत्तुङ्गार्जुनवृक्षयुग्ममथनं त्रैविक्रमं चेष्टितम्।
एवं कृत्रिमचेष्टितावलिमिमां नाथस्य मे श्रीहरे
स्तोतुं हन्त दिवानिशं किल कृती सोऽहं न चिन्ताऽस्तिमे॥६॥

उस मेरे स्वामी श्रीहरिके चरित्रोंको जो कि युद्धमें बकासुरको चीरकर मारना। तथा वृषभासुरका विध्वंस करना। तथा बहुत ऊँचे यमलार्जुन वृक्षोंको तोड़ना और समस्त लोकोंको तीन पगोंमें नाप कर पराक्रम दिखाना। इत्यादि लीला चरित्रोंको दिन रात स्तुति करनेमें मैं बड़ाही कुशल हूँ, अब मुझे चिन्ताही किस बात की है ॥ ६ ॥

जातो दुःखयुते च मानुषकुले नानातनूर्धारयन्
स्वेच्छातश्चरिपून् प्रहत्य नितरां कोपप्रशान्तिं वहन्।

दिव्यश्रीतुलसीं किरीटकलितां मालां च धत्ते हरि
र्वक्षस्येनमहं स्मरामि सततं कस्स्यात्समो मे भुवि ॥७॥

अनेक दुःखोंके भारसे दबे हुए मनुष्यकुलमें जन्म लेकर तथा अपनी इच्छासे पशु पक्षि आदिकोंके अनेक शरीरोंको धारण करते हुए शत्रुओंको मारकरही क्रोधशान्तिको धारण करने वाले। तथा किरीटके ऊपर लगी हुई दिव्यश्रीतुलसीकी मालाको धारण करके वक्षस्थलमें भी जो हरि तुलसीकी मालाको धारण करता है, मैं इसी हरिका स्मरण निरन्तर करता हूँ, अतएव मेरे समान धन्य भाग्य संसारमें किसके हैं ॥ ७ ॥

द्यावाभूमितलातिविस्मयकरं मायामयं योधनं
बाणस्यापि सहस्रबाहुमथनं भूमेश्चमानं तथा ।
श्रीमद्वामनरूपिणोऽपि च हरेर्नाथस्य मे चेष्टितं
संचिन्त्यास्मि कृती हृदीह विविधं क्षोभो न मे मानसे ॥८॥

इस मेरे स्वामी श्रीहरिकी लीला जो कि आकाश और भूमण्डलको आश्चर्यमें डालने वाला मायामय युद्ध करके बाणासुरके हजार हाथोंको काटकर उसके मदको धूलमें मिलाना। तथा अति सुन्दर वामनरूप धरके पृथ्वीकी भीख माँगनेके बहानेसे समस्त पृथ्वीको तीन पैरमें ही नाप लेना। इत्यादिक लीलाओंको हृदयमें चिन्तवन करके ही मैं कृतकृत्य होगया हूँ। अब मेरे मनमें किसी प्रकारका दुख नहीं है ॥ ८ ॥

सप्ताम्भोधिततिं च सप्त च गिरीन् लोकांश्चसप्त स्वयं
योऽतीत्यापि रथं नयन्नतितरां मायाक्रियां चाकरोत् ।
यश्चक्रं च बिभर्ति दक्षिणकरे वामे तु शङ्खं च तं
स्तोतुं श्यामलवर्णमस्मि हि कृती कस्स्यात्समो मे भुवि॥९॥

सप्त समुद्र और सप्त पर्वत तथा सप्तलोकोंका अतिक्रमण (लाँघ) करके रथको ले जाकर अघटित घटनाको अर्जुनके लिए जिसने अपनी इच्छासे दिखाया था। जो दक्षिण हाथमें चक्र और वाम हाथमें शंखको

धारण करताहै। उसी श्यामसुन्दर हरिकी स्तुति करनेको मैं बड़ा चतुर हूँ। इस कारण मेरे समान भाग्यशाली भूमण्डलमें कौन है ॥ ६ ॥

पृथ्वीभारविनाशनाय समरे तस्मिन् पुरा भारते
मायाचेष्टितमद्भुतं बहुविधं कृत्वा चमूनाशनम्।
एवं यः कृतकृत्य एव च पुनर्धाम स्वकीयं ययौ
ज्योतिस्तं परमं प्रणम्य कृतिनः किं मेऽस्तिनाथोऽपरः ॥१०॥

पहले महाभारत संग्राममें पृथ्वीके भारको उतारनेके लिए आश्चर्यकारक अनेक प्रकारकी माया चेष्टा (धोखेबाजी) करके सेनाओंका जिसने नाश किया था। इस प्रकार देवताओंके और मनुष्योंके हितके लिये अनेक कार्य करके फिर अपने दिव्य धामको जो चले गये थे, सर्वश्रेष्ठ उस दिव्यज्योतिको ही प्रणाम करके मैं कृत-कृत्य होगया हूँ, अब मुझे अपना रक्षक दूसरा ढूंढनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १० ॥

सप्तानां जगतां च नायकमणिर्यस्सप्तलोकीं स्वयं
भुक्त्वोद्गीर्य च तन्मयोऽपि न तथा तं केशवं श्रीपतिम्।
स्तोतुं श्रीकुरुकापुरप्रभुरसौ दिव्यं शठारिर्जगौ
साहस्रं तदिदं करोति दशकं भक्ताननन्याश्रयान् ॥११॥

जो प्रभु सात लोकोंके स्वामियोंका भी स्वामी है, जो स्वयं सात लोकोंका भक्षण करके फिर उनको उगल देता है। और उन सात लोकोंमें अन्तर्यामी रूपसे जो व्याप्त हो रहा है। जो सबसे भिन्नभी है। सुन्दर केश वाले उस लक्ष्मीपतिकी स्तुति करनेके लिये ही कुरुकापुरके स्वामी शठकोपमुनिनें दिव्यसहस्रगीतिको कहा है, उसमें यह दशक मनुष्योंको परमात्माके अनन्य भक्त अवश्य बनायेगा ॥११॥

इति श्रीसहस्रगीतौ षष्ठशतके चतुर्थदशक समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ षष्टशतके पञ्चमदशकारम्भः

इस दशकमें पूर्वोक्त प्रकारसे प्रभुके चरित्रोंका स्मरण करके तन्मयताको प्राप्त होकर आल्वार उनको दुष्प्राप्य जानकर विरहिणी नायिकाकी दशाको प्राप्त होगये और उस दशाका वर्णन नायिकाकी सखीके वाक्यों द्वारा करने लगे हैं।

ध्यायन्तीं वरधन्विमङ्गलपुरं श्रीरत्नसौधांचितं
तामेतां प्रतिमुञ्चताद्य सकलामाशां जनन्योऽनघाः।
सेयं कीर्तयतीह तस्य विमलेश्रीशंख चक्रे हरे
नेत्राम्भोजयुगं सबाष्पनयना स्थित्वा मुहुर्जल्पति ॥ १ ॥

हे शुद्ध सरल हृदयकी माताओ! आज यह हमारी सखी उत्तम रत्नोंकी छतोंसे शोभित वरधन्विमंगलपुरवासी हरिका ध्यान करती है। और उस प्रभुके शङ्ख चक्रका कीर्तन करती है। और नेत्रोंसे बार बार आँसुओंकी धारा बहाकर बैठ करके बारम्बार उस हरिके नेत्र कमलोंका स्मरण करती है। और न जाने क्या क्या प्रलाप करती है। इस लिये इससे किसी प्रकारकी भी सांसारिक कार्य करनेकी आशा रखना छोड़ देना चाहिए।

बालिकाकी माता उसे प्रभुके दर्शन करानेके लिए वरधन्विमंगल पुर दिव्यदेशमें ले जाती है, बालिका प्रभुके अलौकिक और अद्भुत सौन्दर्यको देखकर तन मनकी सुधि भूलकर उसीमें आसक्त होजाती है। फिर किसी प्रकार समझाके माता उस बालिकाको अपने घर लाती है,परन्तु उस बालिकाका चित्त प्रभुके सौन्दर्यने ऐसा चुराया है कि वह दिन रात उस प्रभुकी चिन्तासे ही बेचैन है, उसका चित्त सांसारिक किसी कार्य में नहीं लगता, तब माता उसको अनेक उपायों द्वारा सांसारिक कार्योंमें लगाना चाहती है, किन्तु माताके सम्पूर्ण उपाय व्यर्थ हो जाते हैं, परन्तु फिर भी माता अपने कार्य करनेसे पीछे नहीं हटती। माताकी इस व्यर्थ चेष्टाको देखकर बालिकाकी अन्य सखी मातासे कहती है कि अब इसको समझाना बुझाना व्यर्थ है, अबतो यह सर्व प्रकारसे परमप्रभुकी होगई है। अब यह संसारमें नहीं रह सकती है।

पाठकगण! ऊपर कहे हुए रूपकको ही लेकर शठकोपमुनिने इस दशककी रचनाकी है। जिसका वास्तविक अभिप्राय इस प्रकार जानना चाहिये कि संसार विषयिणी (कर्म श्रद्धा युक्त) बुद्धि की माता है और विवेकात्मिका प्रज्ञाही बालिका है। मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा उसकी सखी हैं। जब कर्मश्रद्धाके द्वारा विवेकात्मिका प्रज्ञा परमात्माका साक्षात्कार कर लेती है, तो फिर कर्मश्रद्धाका कोई प्रभुत्व नहीं रह जाता है। उस समय उसकी सखी सहायक हो करके कर्मश्रद्धाको हटाकर ईश्वरानुभवमें ही लग जानेके लिए प्रोत्साहन देती है, और उनके प्रोत्साहनसे विवेकात्मिका प्रज्ञा ईश्वरके साक्षात्कारमें निरन्तर लगकर साधको कृतकृत्य बना देती है, यही इस दशकका वास्तविक अर्थ है।

वरधन्विमङ्गलपुर पाँड्यदेशमें "तोल्लैविल्लिमङ्गलम्" नाम से प्रसिद्ध है, इसीको कोई कोई विलपुत्तूर नामसे भी कहते हैं यह नगर ताम्रपर्णी नदीके किनारे पर बसा हुआ है ॥ १ ॥

यूयं श्रीवरधन्विमङ्गलपुरं प्रत्न प्रविश्यानया
श्रीदिव्योत्सवघोषभूषितमिमां दिव्यामृतोक्तिं प्रति।
आशावर्जितमानसास्त यदियं भ्रान्ता च संस्मृत्य तं
देवानामधिदेवमेव सततं साश्रुद्रुताङ्गा स्वयम् ॥ २ ॥

हे माताओ! आप लोग अनेक प्रकारके उत्सवोंकी हर्षध्वनिसे शोभायमान अति प्राचीन श्रीवरधन्विमंगलपुरको इस हमारी सखीको साथ ले गई थीं। और उस दिव्यदेशमें घुमकर दिव्यामृतके इसको दर्शन कराये थे, उस दिव्य अमृतको स्मरण करके ही यह पागल होगई है, अब सर्वप्रकारकी आशा इससे हटा लेनी चाहिए, क्योंकि यह तो देवोंके अधिदेव दिव्यामृत स्वरूप उस प्रभुका निरन्तर स्मरणके आँसू बहाकर अपने शरीरको द्रवीभूत (पतला) बना रही है ॥२॥

दिव्यश्रीवरधन्विमंगलपुरे नानातरुणां गणै
र्यूयं तान्तु सरोवरैरपिवृते रम्ये च नीत्वा स्वयम्।

श्लाघ्यश्रीशुभवाच्यमप्य हह ! तां दूरे त्वकार्ष्ठऽव्यसा,
बाष्पार्द्राब्धिशयं त्रिविक्रममपि स्मृत्वा च गोपालकम् ॥३॥

हे माताओ ! आप लोगों ही ने स्वयं इस हमारी सखीको अनेक प्रकार के वृक्ष गणोंसे तथा नाना भाँतिके सरोवरोंसे अति रमणीय श्रीवरधान्विमंगलपुरमें लेजा कर और अत्यन्त प्रशंसनीय सुन्दर वाणीको सुना कर इसको दूर कर दिया है। अहह ! अब यह क्षीर समुद्र शायिको तथा त्रिविक्रम भगवान्को और गोपाल स्वरूपी कृष्ण भगवानको स्मरण करके ही आँसुओंके बहाने से भीगी जा रही ही है। अब इससे संसारमें कैसे रहा जायेगा ॥ ३ ॥

नित्यं वेदचतुष्टयं श्रितवतामावासभूतं शुभं,
सेयं श्रीवरधान्तिमङ्गलपुरं दृष्ट्वाऽद्य धाष्ट्यान्विता ।
यूयं पश्यत मातरस्सततमप्येषा स्मरन्ती मुदा,
कृष्णं वारिधिवर्णमेव शिथिला नैवाद्य वश्या भवेत् ॥४॥

हे मातओ ! आप लोग इस हमारी सखीकी दशा तो देखो। यह चारों वेदोंके पाठ करने वाले ब्राह्मणोंके आवास स्थानोंसे नित्य ही शोभा देने वाले वरधन्विमंगलपुरको देख कर ही अति धृष्ट (बड़ीधीठ) हो गई है। और जबसे निरन्तर ही बड़े आनन्दसे समुद्र के समान वर्ण वाले कृष्णका स्मरण करती हुई शिथिल हो गई है। अब यह किसी प्रकार भी आपके वश होकर आज्ञामें नहीं चलेगी ॥ ४ ॥

नीत्वैतांवरधन्विमङ्गलपुरं दीप्राननां कोमलां,
यूयं वारिजलोचनं त्वकुरुत प्रेक्षास्पदं चोज्वलम् ।
सेयं तद्दिवसात्प्रभृत्यह ह हा बाष्पार्द्रनेत्रा भृशं,
मोहान्धा हृदि दिव्यरूपनिरता बद्धांजलिस्तद्दिशे ॥५॥

हे माताओ ! आप लोगोंने ही कोमलांगी प्रकाशमान मुख वाली इसको वरधन्वि मंगलपुरमें लेजाकर और उसको अत्युज्वल शरीर वाले कमल लोचन प्रभुको दिखाया था। सो यह उसी दिनसे लेकर निरन्तर ही अश्रुओंसे नेत्रोंको भिजाये रखती है। और अपने

हृदयमें किसी दिव्य रूपके दर्शनमें लगकर प्रेमसे व्याकुल हो जाती है। और वारम्वार वरधन्विमंगलपुरकी ओर हाथ जोड़ कर प्रणाम करती है ॥ ५ ॥

सर्वत्रापि किलेक्षुकाण्डसरणिं श्रीहत्यादि पद्मावलीं,
दृष्ट्वेयं वरधन्विमङ्गलपुरे श्रीताम्रपर्णीतटे।
नान्यत्पश्यति कुत्र चिच्च सततं तस्यैव नामान्य हो,
संकीर्त्यास्ति मुदान्विता मणिनिभांगस्याद्य वै मातरः।

हे माताओ! इस सखीने जबसे श्रीताम्रपर्णीके तट पर विराजमान वरधन्विमंगलपुरमें ईखोंके खेत और धानोंके खेत तथा कमलों के सरोवरोंको देखा है। तब से यह अन्यत्र और कुछ नहीं देखती। और निरन्तर मणिके समान उज्वल शरीर वाले उस प्रभुके नामों को ही वारम्वार बड़े आनन्दके साथ कीर्तन करती है। इस दशामें इससे संसारिक कार्य कैसे हो सकते हैं ॥ ६ ॥

सेयं रम्यमयूरसुन्दरमृगी सौदर्य मौग्ध्यान्विता,
नान्यच्छ्रीवरधन्विमंगलपुरं प्रत्नं विनाऽऽकर्णयेत्।
वश्या नैव हि नः किमीदृशमहो भाग्यं पुरा चार्जितं,
किंवा मायि चरित्रमेतदनिशं तच्चिह्ननामोक्तयः ॥७॥

हे माताओं! मोरके समान सुन्दर बोली बोलने वाली और मृग के समान सुन्दर चंचल नेत्र वाली यह सखी श्रीवरधन्विमंगलपुर वासी प्रभुकी सुन्दरता पर इतनी आसक्त हो गई है कि उसके विना अब दूसरी हमारी कोई बात नहीं सुनती। हमने उस प्रभुके नाम और चिन्ह जो भी कुछ इसको पहले सिखाये थे उन्हींको दिन रात रटती है। यह पूर्व जन्मार्जित भाग्योंका फल है। अथवा उस प्रभुकी ही अघटित घटना वाली मायाका प्रभाव है। यह समझमें नहीं आता। क्योंकि हम तो जैसेके तैसे ही रहे और यह हमारी सिखाई हुई वालिका उस प्रभुमें ही लग कर हमसे श्रेष्ठ हो गई है ॥ ७ ॥

वेदैर्यज्ञगणैःश्रिया च भरितं श्रीताम्रपर्णीतटे
चोदीच्ये वरधन्विमङ्गलपुरं यस्मिन् दिने साऽभजत् ।
तत्कालप्रभृति स्वयं शिथिलितस्वाङ्गा विशालाम्बका
संकीर्त्यास्त्यरविन्दलोचनमहो नित्यं द्रुतस्वाशया ॥ ८ ॥

हे माताओ ! विशाल नेत्र वाली इससखीने श्रीताम्रपर्णीके उत्तर तट पर बसे हुए और वेदपाठियोंकी मधुरध्वनि तथा अनेक यज्ञोंकी शोभासे शोभित वरधन्विमंगलपुरको जिस दिनसे देखा है, उस दिनसे लेकर इसके सब हाथ पाँव ढोले पड़ गये हैं । उस कमलदल-लोचन प्रभुका ही शुभ कीर्तन करके इसका मन नित्य ही व्याकुल रहता है ॥ ८ ॥

नित्यं साश्रुभरा हृदि भ्रमवशा वाचि स्वयं चापला
जल्पन्ती च तरूनपि द्रवयति ध्यात्वा मणींद्रप्रभम् ।
आहूयापि च केशिवक्त्रदलनस्यावासभूतं शुभं
सेयं श्रीवरधन्विमंगलपुरं संकीर्त्य बद्धाञ्जलिः ॥ ९ ॥

अहह ! यह तो नित्य ही नेत्रोंसे आँसू टपकाती है, मनमें पागल सरीखी हो रही है । और बोलनेमें चपल हो रही है । और जड़ों वृक्षोंको भी दया करने योग्य ऐसे हा मणिमणे ! कहकर चिल्लाती है । केशोदैत्यके मुखको विदारण करने वाले वरधन्विमंगलपुरमें नित्य ही वास करने वाले उस प्रभुका संकीर्तन करके ही और उसको बुलाकर बारम्बार हाथ जोड़ती है ॥ ९ ॥

नीला किं धरणी किमु स्वयमियं श्रीरेव वा जन्मतः
किं किं वाद्भुतमस्य मुग्धचरितं स्मृत्वाऽऽह्वयत्येव तम् ,
तद्वासं वरधन्विमंगलपुरं प्रत च मूर्धानम
न्त्येवेयं सततं च तत्पुरमहानामश्रुतिं चिन्तयेत् ॥ १ ॥

हे माताओ ! यह नीलादेवी है अथवा भूदेवी है अथवा स्वयं लक्ष्मीजीने ही आकर यहाँ जन्म लिया है । आश्चर्यमें डालने वाले

इसके विचित्र चरित्रोंको देखकर हमें आश्चर्य होता है, कि यह उस प्रभुके मनके व्याकुल करने वाले चरित्रको स्मरण करके उसको बुलाती है। पुराण प्रसिद्ध उस प्रभुका निवास स्थान वरधन्विमंगलपुर को मस्तकसे प्रणाम करती है। और उस वरधन्विमंगलपुरके नामोंका ही बारम्बार चिन्तवन करती है, इसलिये हमारी समझमें नहीं आता कि यह कौन अलौकिक व्यक्ति है ॥ १० ॥

श्रीशं वाङ्मनसक्रियाभिरनिशं देवाधिदेवं हरिं
मातां चापि पितेत्ययं शठरिपुस्स्तोतुं सहस्रं जगौ।
मौनी श्रीवरधन्विमंगलपुरं प्रत्नं प्रतीदं शुभं
ज्ञात्वा तद्दशकं रमापतिपदाम्भोजाश्रयाः स्युर्जनाः ॥११॥

देवोंके देव लक्ष्मीपति हरिको माता और पिता कहकर मन वचन कर्मसे निरन्तर स्तुति करनेके लिए (मौन रहने वाले) शठकोप-मुनिने सहस्रगीतिको कहा। उस सहस्रगीतिमें वरधन्विमंगलपुरकी सेवाको श्रेष्ठ बताने वाला यह दशक है, इसको जो यथार्थ जान लेंगे वे प्राणी लक्ष्मीपतिके चरणकमलके भक्त अवश्य बन जायेंगे ॥११॥

इति श्री सहस्रगीतौ पञ्चशतके पञ्चमदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ षष्ठशतके षष्ठदशकारंभः।

इस दशकमें पूर्वोक्त प्रकारसे परमात्माका निरन्तर अनुभव करनेसे आल्वारको देहादिका ध्यान न रहनेसे वे शिथिल होगये तो उसके सम्बन्धी वस्त्र भूषणादिक तथा बन्धुवर्ग सब अलग होगये। इसी दशाका वर्णन माताकी वाणीके रूपमें करते हैं।

श्रीशाय लोकगणामानकृते च नीला
म्भोदाभ दिव्यवपुषे जलजाम्बकाय।
सेयं सुता मम मधुस्रविरम्यपुष्पा
प्रादात्करस्य वलयं शुभगन्धिकेशी ॥ १ ॥

समस्त लोकोंको अपने चरणोंसे नापने वाले नीलमेघके समान दिव्यविग्रह वाले कमललोचन लक्ष्मीपतिकी प्राप्तिके लिये मद चुचाने

वाले सुन्दर पुष्पोंसे सुगन्धित केशवाली इस मेरी पुत्रीने अपने हाथकी शङ्खकी चूड़ी भी त्याग दी है। ऐसा माता कहती है नायिका से नायक किसी कारणवश जब दूर हो जाता है और नायिकाके अनेक उद्योग करने पर भी जब वह मिलता नहीं है, तो नायिका रुष्ट होकर अपने भूषणोंको शरीरसे अलग कर देती है। और वह विरहिणीके रूपमें बिना भूषणोंके ही साधारण वस्त्रोंसे रहकर दिन बिताती है। प्रभुके वियोगमें यही दशा श्रीशठकोपनायिकाकी हुई है, उसीका वर्णन माता कर रही है।

भक्ति प्रपत्ति द्वारा प्रभुका समाश्रयण करके जब साधक परमप्रभुके अनुभवमें तन्मय हो जाता है। और फिर इस अनुभवमें साधकके भूषणरूप भक्तिप्रपत्ति भी उससे छूट जाती है, वे ही इस नायिकाकी चूड़ियोंके स्थानापन्न हैं ॥ १ ॥

शङ्खं च चापमसि चक्रगदाश्च धर्त्रे
बिम्बाधराय सरसीरूहलोचनाय।
सौलभ्यरम्य तुलसीधरशीर्षकाय
सेयं ह्यदात्स्वशुभरूपयुतां च शोभाम् २ ॥

शङ्ख चक्र और धनुष खड्ग चक्र गदा इस प्रकार पंचायुधोंको धारण करने वाले लाल होंठों वाले कमलदललोचन सुलभतासे प्राप्त होने वाले अति सुन्दर तुलसीको मस्तक पर धारण करने वाले परमप्रभुके लिए इस मेरी पुत्रीने अपना रूप और शरीरकी शोभा यह सब निवेदन करदी है ॥ २ ॥

नीलाम्बुदाभमपि लोकगणाशिनं तं
बालं हरिं सपदि वंचकमप्रमेयम्।
श्रीचक्रपाणिमनुचिन्त्य सुता ममेयं
चास्ते स्वगौरवभरं च शुभं त्यजन्ती ॥ ३ ॥

नीलमेघके समान विग्रह धारण करने वाले प्रलयके समय समस्त लोकोंको खाकर बालरूपसे रहने वाले वंचना करनेमें सर्वोपरि

चतुर श्रीचक्रको हाथमें धारण करने वाले सर्वश्रेष्ठ उस प्रभुकी चिन्तामें इस मेरी पुत्रीने अपनी समस्त सुन्दर मान मर्यादाको भी छोड़ दिया है ॥ ३ ॥

ज्ञानादिवैभवयुतं च चतुर्मुखं तं
सृष्ट्वा धरामपि च मानमुखाद्विधृत्य ।
दौत्यं च पाण्डवकृते वहते सुतेयं
मे विष्णवे स्वगुणशीलमपि त्यजन्ती ॥ ४ ॥

जिस विष्णुने ज्ञानशक्ति आदि वैभवसे युक्त चार मुख वाले ब्रह्माजी की सृष्टिकी थी। और जिसने इस पृथ्वीको भी अपने चरणोंसे नापा था। तथा पाण्डवोंकी रक्षा करनेके लिये दूतका कार्यभी किया था, उस विष्णुके लिये ही इस मेरी पुत्रीने अपने लज्जा और शील ये सब त्याग दिये हैं ॥ ४ ॥

वेदार्थवक्तु रपितस्य परस्य पुंसः
पृथ्वीं वराह वपुषोद्धरतो मुरारेः ।
देवेशितुर्जलधिशायिन एव वश्या
सेयं स्रगंचिततनुस्स्वमतिं त्यजन्ती ॥ ५ ॥

जो परमप्रभु सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मादि देवताओंको वेदार्थका उपदेश देते हैं। और वराहका शरीर धारण करके पृथ्वीका उद्धार करते हैं। तथा मुर दैत्यको मारकर देवताओंके ऊपर शासन करते हैं। तथा भक्तोंकी प्रार्थना सुननेके लिये जो क्षीरसागरमें शयन करते हैं। उस प्रभुके ही वशमें होकर उसीके लिये फूलोंका शृङ्गार करने वाली इस मेरी पुत्रीने अपनी बुद्धि समर्पण करदी है ॥ ५ ॥

श्रीकल्पवृक्षसमबाहुमुदारतेजो
मालाभिराम कनकाद्रिनिभस्वमौलिम् ।
रम्याब्जहस्तमपि तं प्रति कोमलांगी
सेयं सुता मम निजां च तनुं त्यजन्ती ॥ ६ ॥

अहह ! यह मेरी पुत्री श्रीकल्पवृक्षके समान है भुजा जिसकी और सर्वाधिक तेज वाला है शरीर जिसका पुष्प मालाओंसे अलंकृत सुमेरुके समान है मस्तक जिसका अति सुन्दर कमलोंको हस्तोंमें धारण करने वाले उस प्रभुकी प्राप्तिके लिये ही अति कोमलांगी यह अपने जीवनका बलिदान कर रही है ॥ ६ ॥

दिव्यैश्च भूषणगणैरमितैर्लसन्तं
श्रीशेषशायिनमिहाम्बुजपाणिपादम्
कृष्णं प्रभुं प्रतिसुता मम कोमलेयं
लावण्यमप्यहह ! भाति निजं त्यजन्ती ॥ ७ ॥

अहह ! कोमलांगी यह मेरी पुत्री असंख्य दिव्य भूषणोंसे प्रकाशमान् श्रीशेषजीके ऊपर शयन करने वाले कमलके समान अति कोमल कर चरण वाले श्रीकृष्ण प्रभुके ही निमित्त अपनी सुन्दरताको नष्ट करती हुई अपना प्रकाश कर रही है ॥ ७ ॥

कुन्दाख्य वृक्ष शकटासुर पूतनादि
ध्वंसं विरच्य वशयन्तमिमां सुतां मे ।
तं प्रत्यनन्तगुणमच्युतमुत्तमाङ्गी
सेयं त्यजत्यहह ! सुन्दरतां सुकेशी ॥ ८ ॥

अहह ! सुन्दर केशोंको धारण करने वाली और अत्यन्त सुन्दर अंगों वाली यह मेरी पुत्री यमलार्जुन वृक्ष और सकटासुर और पूतना आदिके नाशको करने वाले और अनेक प्रकारकी लीलाओंको दिखाकर मेरी पुत्रीको वशमें करने वाले अनन्तगुणवाले अविनाशी हरिके ही निमित्त अपनी सुन्दरताको नष्ट कर रही है ॥ ८ ॥

सौन्दर्यशोभिनममुं प्रति वामनं श्री
काकुत्स्थमद्भुतगुणं महसां निधानम् ।
संचिन्त्य मेऽद्य तनया कुचकुड्मलाढ्या
सेयं त्यजत्यह ! हन्त ! निजं सुरूपम् ॥ ९ ॥

स्तनोंकी कलियोंसे युक्त यह मेरी पुत्री सुन्दरतासे शोभायमान वामनरूपधारी और आश्चर्यकारक गुण युक्त श्रीरामचन्द्ररूप तेजोंके भण्डार उस प्रभुको भले प्रकार चिन्तवन करके आज अपने सुन्दर रूपको नष्ट कर रही है, यह बड़ा भारी दुख मेरे हृदयमें चुभ रहा है॥९॥

दिव्यकिरीटविलसत्तुलसीसमेतं
श्रीमल्लजिद्भुजविभूषितमप्रमेयम् ।
नित्यं च मायिनमनन्तपदार्थरूपं
स्मृत्वाऽद्य तं त्यजति सेयमिह स्वमानम् ॥ १० ॥

प्रकाशमान किरीटके ऊपर चमकती हुई तुलसीको धारण करनेवाले बड़े बड़े मल्लोंको जीतने वाली भुजाओंसे भूषित अनेक मायाओंको रचने वाले अनन्त पदार्थोंमें नित्यरूपसे व्याप्त होकर रहने वाले उस प्रभुका स्मरण करके ही यह मेरी पुत्री अपनी मान मर्यादाका नाश कर रही है ॥ १० ॥

अत्यन्त रम्यतरुशोभित वेंकटाद्रि
नाथं स्तुवन् हि कुरुकापुरराट्छठारिः ।
दिव्यप्रबन्धमिममाह सहस्रमाढ्यं
ते सूरिभोगभरिता दशकं विदुर्ये ॥ ११ ॥

अत्यन्त सुन्दर वृक्षोंसे शोभायमान वेंकटाद्रिके नाथकी स्तुति करते हुऐ कुरुकापुरीके राजा शठकोपमुनिने सहस्रगाथाओंसे भरा हुआ दिव्य प्रबन्ध कहा है, उसमें इस दशकको जो जानलेंगे वे नित्यमुक्तोंके योग्य भोगोंके भोगनेके अधिकारी होजायेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ षष्ठशतके षष्ठदशकं समाप्तम् ।



अथ श्रीसहस्रगीतौ षष्टशतके सप्तमदशकारम्भः

इस दशकमें पूर्वोक्त प्रकार से ईश्वर के अनुभवानन्द में मग्न होकर आल्वार मूर्छाको प्राप्त हो गये। कुछ समय के अनन्तर उनकी वह मूर्छा हट गई और सांसारिक समस्त पदार्थों में उस श्यामसुन्दर प्रभुकी दिव्य मूर्ति के दर्शन करने लगे। इस दशा को माता के वाक्यों के रूपक में श्रीकोल्लूरपुर को जाना कहते हैं।

भोज्यं पेयमपीह भाति किल मे ताम्बूलवीटी च स,
श्रीकृष्णः प्रभुरेव सर्वमिति यत्साश्रुस्तदीयान् गुणान्।
भूम्यामत्र तु तत्पुरीं च कथयन्त्येव स्वयं मे सुता,
श्रीकोल्लूरिति तत्पुरं सुविदितं नूनं प्रविष्टाऽधुना ॥१॥

यह मेरी पुत्री यह कह कर कि भोजनके योग्य अन्न और पीने के योग्य जल चवानेके योग्यताम्बूल ये सर्व रूपी वह मेरा स्वामी कृष्ण ही हैं। आंसुओं की धारा बहाकर उसके गुणोंका गान करती है। और इस भूमण्डलमें उस प्रभुका निवासस्थान श्रीकोल्लूरपुर है ऐसा कहती है और उसने इस बातका निश्चय कर लिया है कि मैं संसार प्रसिद्ध श्रीकोल्लूरपुर में अवश्यही जाऊँगी। अतः अब वह अवश्य वहाँ चली गई है।

तिरुकोल्लूर नामका नगर पाँडयदेशमें इसी नामसे प्रसिद्ध है ॥१॥

तन्नामानि च तत्स्रजोऽपि च भुवि ग्रामाश्चदेशास्स्वयं,
लोकाश्चाप्यखिला ब्रुवन्त्विति किलस्त्रीत्वं त्यजन्ती निजम्।
श्रीकोल्लूरिति तत्पुरं मम सुता सस्यादिपूर्णं गता,
किं वाऽऽयाति पुनश्च हन्त वदत प्रेष्ठाश्च तत्पक्षिणः ॥२॥

उस प्रभुके नाम और उसकी प्रसादीमाला और उसके निवास करनेके स्थल देश वा ग्राम अथवा भगवत्सम्बन्धी समस्त लोकोंको ही अपना कहती हुई और अपने स्त्री स्वभावको छोड़कर अनेक हरे हरे खेतोंसे परिपूर्ण श्रीकोल्लूरपुर को मेरी पुत्री चली गई है। उसके प्यारे तोता मैंनाओ क्या तुम बताओगे कि वह फिर लौटकर आयेगी या नहीं।

अपना सर्वस्व तृणके समान छोड़कर जो सज्जन प्रभु परायण हो

जातेहैं वे उस प्रभुकी गुणशिखरिणी (श्रीखंड) का आस्वादन लेकर सांसारिक भोगोंकी कीचड़में नहीं पड़ते हैं। इसी रहस्यको जानकर माताके मनमें नायिकाके आने न आनेका सन्देह उत्पन्न हुआ ॥२॥

नानापक्षिगणाशुकादय इमे लीलार्थकाः कन्तुका,
पुष्पाद्याश्रयभाजनानि सकलं श्रीशस्य नामानि हि।
एवं कीर्त्तनतत्परा ममसुता गत्वा पुरीं पावनीं,
श्रीकोल्लूरिति तां किलाश्रु भरिता स्यात् किन्नु कुर्यादहो॥३॥

वह मेरी पुत्री अनेक प्रकारके शुकसारिकादि पक्षीगण तथा क्रीड़ाका साधन कन्दुक (गेंद) और फूलोंके रखनेकी पिटारी ये सब उस लक्ष्मीकान्त के ही नाम और रूप हैं। इस प्रकार उस प्रभुके नामो का कीर्तन करती हुई आँसुओं से भरे हुए नेत्रोंसे अति पवित्र श्रीकोलूरनामके पुरमें जाकर न जाने क्या करेंगी इस बातको सोचकर मेरे चित्तमे बड़ी बेचैनी हो रही है ॥३॥

श्रीकोल्लूरिति तां पुरीं मुररिपोस्सम्पत्समृद्धामियं,
पुत्री मे सुकुमारमुग्धहरणी गन्तुं हि सक्ताऽभवत्।
किं निन्दन्ति पुरस्त्रियश्च परितस्सेयंतु वेलातिगे,
त्याहोस्विद्धत सद्गुणेति नितरां शंसन्ति जल्पप्रियाः ॥४॥

अत्यन्त सुकुमार शरीरवाली और हरिणी के समान सुन्दरनेत्र वाली यह मेरी पुत्री अनेक सम्पत्तियोंसे सम्पन्न भगवान्मुरारी की श्रीकोलूरनामकी पुरीको जानेके लिए समर्थ हो गई। इस बातको सुन कर अयेपुर वासिनी स्त्रियो ! तुम लोग यह कह कर कि उसने कुलकी मर्यादाको तोड़ दिया निन्दा कररही हो अथवा उसके उत्तम गुणों को विचारकर प्रशंसा कर रही हो इससे आप लोगोंको क्या लाभ है।

नायिका अत्यन्त सुकुमारी है वह अति दूरवर्ती कोल्लूरपूरमें नहीं जा सकती। परन्तु उस प्रभुके चरणोंके मिलनेकी आशाने उसके शरीर में विद्युच्छक्ति का काम करके साहस उत्पन्न किया है। मार्गमें अनेक परिचित ग्रामोंकी स्त्रियों ने भी उसको बहुत कुछ भला बुरा कहा

किन्तु उन निन्दा प्रशंसा मय वाक्योंको न सुनकर तिरुकोलूरपुरमें जानेका दृढ़ निश्चय करके नहीं रुकी ॥ ४ ॥

शैथिल्यान्मनसस्स्वयन्तु चपला सेयं सुता मे ऽद्यतां
श्रीकोल्लूरपुरीं गतैव सकलां लीलां त्यजन्ती निजान् ।
तत्रत्यानि सरांसि सस्यभरितां क्षेत्रावलीं श्रीपते
देवागारमियं विलोक्य मुदिता भूयात् किलाद्य स्वयम् ॥५॥

अहह ! इस मेरी पुत्रीको आज तिरुकोलूर जानेकी थकावटसे उसके मनमें कुछ शिथिलता आई होगी, परन्तु अति चंचल चित्त वाली अपने सर्व प्रकारके खेलोंको छोड़कर श्रीकोल्लूरपुरमें चली गई। उस कोल्लूरपुरमें कमलोंसे शोभित सरोवरोंको और हरे हरे धानोंसे युक्त खेतोंको देखकर और अनेक प्रकारोंसे शोभित लक्ष्मीपतिके मन्दिरको देखकर अवश्यही वह अपने चित्तमें प्रसन्न हो जायेगी ॥५॥

विश्लिष्टा च सुता ममाद्य हरिणी मुग्धा तु गत्वा पुरीं
श्रीकोल्लूरितिताभवाच्यतिलकप्रायां शुभां श्रीपतेः ।
दृष्ट्वा दिव्यविलोचनद्वयमियं विम्बाधरं च स्वयं
वाष्पार्द्रायतलोचना प्रतिकलं सम्मोहिता स्यादहो ॥६॥

ओहो ! बाल हरिणीके समान भोले स्वभाव वाली मेरी पुत्री आज मुझसे अलग होकर दक्षिण दिशाको शोभा देनेके लिए तिलकके समान श्रीकोलूर नामकी लक्ष्मीपतिकी पुरीमें जाकर और वहाँ उस प्रभुके दिव्य दोनों नेत्रोंके तथा लाल होटोंके दर्शन करके अपने विशाल नेत्रोंको आँसुओंसे भिगोकर क्षण क्षणमें मूर्छाको प्राप्त होवेगी ॥ ६ ॥

सेयं साश्रुविलोचना भ्रमवशा चित्तं च नक्तंन्दिवं
श्रीशेत्याह्वयति स्वयं च चलति श्रान्ताऽप्यसम्पद्य ताम् ।
श्रीकोल्लूरिति तां पुरीं कथमहो ! विष्णोरियं प्राप्नुयात्
कान्तं तं प्रति मोहिता मम सुता तस्मिन्शयानं पुरे ॥७॥

वह मेरी पुत्री नेत्रोंमें आँसू भरके और अपने चित्तमें पागल सरीखी होकर रात्रि दिन हे श्रीश ! ऐसा कहकर उस प्रभुको बुलाने में ही थक जाती थी। अब वह स्वयं सम्पत्तियोंसेयुक्त विष्णुकी उस कोल्लूरपुरीको कैसे पहुँचेगी। उस कोल्लूरपुरमें शयन करने वाले अपने स्वामीको देखनेकी अभिलाषासे व्याकुल हुई किस प्रकार वहाँ रह सकेगी ॥ ७ ॥

पद्मायाः प्रिय वल्लभस्य तु हरेश्श्रीशस्य विष्णोः पुरीं
श्रीकोल्लूरितितां विशेत्किमु सुता मे भ्रान्तिवश्या स्वयम्।
मां त्यक्त्वाऽद्य महार्तिखिन्नहृदया श्रान्तास्वहस्तं कटि-
स्थानेहन्त निवेश्य वाष्पभरितस्वाक्षिद्वया भामिनी ॥८॥

शोभायमान शरीर वाली यह मेरी पुत्री पागलपनमें आकर और विरह वेदनासे दुःखित हृदय वाली मार्ग चलनेसे थकी हुई अपने हाथको कमर पर लगाकर और दोनों आँखोंमें आँसुओंको भरकर मुझे छोड़कर गई है। तो क्या वह स्वयं लक्ष्मीके प्राणवल्लभ श्रीहरि विष्णुकी पुरी श्रीकोल्लूरमें घुस सकेगी ॥ ८ ॥

भोग्यं रम्यपदार्थजातमखिलं कृष्णाय संकल्पये
द्यादिव्याभरणा किलार्द्रहृदया सन्त्यज्य सर्वं त्विदम्।
पौरस्त्रीपरिवादजल्पविवशा विस्मृत्यसर्वांश्च नः
श्रीकोल्लूरुपुरं गता ममसुता सर्वांस्तृणी कृत्यनः ॥ ६ ॥

जो मेरी पुत्री अति सुन्दर सम्पूर्ण पदार्थोंको कृष्णके लिये ही अर्पण किया करती थी। वह आज दिव्य आभरणोंको धारण करके शोकसे व्याकुल हृदय होकर अपनी सम्पूर्ण प्रियवस्तुओंको छोड़ करके पुरवासिन स्त्रियोंके निन्दा भरे वाक्योंसे विवश होकर हम सबको भूलकर और तृणके समान परित्याग करके श्रीकोलूरपुरमें चली गई है ॥६॥

भोः देवाः कथमद्य चिन्त्यमिह मे सेयं सुता श्रीहरिं,
लोकेशं त्वरविन्दलोचनममुं नेपञ्च जातु त्यजेत्।

श्रीकोल्लूपुरमद्य तस्यहिगता द्रागेव मुग्धामृगी;
नैवेयं किल चिन्तयेन्निजकुलस्येदं कलङ्कायितम् ॥१०॥

हे देवताओ ! मेरे लिए अत्यन्त चिन्ता जनक कार्य करने वाली यह मेरी पुत्री समस्त लोकोंके ईश्वर कमलदल लोचन श्रीहरिको एक क्षणभी नहीं छोड़ेगी। बाल मृगीके समान अत्यन्त भोले स्वभाव वाली उस लक्ष्मीपतिके श्रीकोल्लूरपुरको ही जल्दी से चली गई। अपने कुलमें कलंक लगाने वाले इस कर्त्तव्यकी वह कुछभी चिन्ता नहीं करेगी ॥१०॥

निक्षेपं मधुसूदनं निजमहानिध्यात्मकं श्रीहरिं,
स्तोतुं श्रीकुरुकापुरप्रभुरसौ मौनी शठारिः कविः।
साहस्रं परमं जगौ च तदिदं ये ये पठन्ति स्वयं,
श्रीकोल्लूरुपुरं विचिन्त्य दशकं ते दिव्यधामेश्वराः॥११॥

धरोहरके रूपमें धरे हुए महानिधिके समान मधुसूदन श्रीहरिकी स्तुति करनेके लिए कुरुकापुरके स्वामी मौन रहने वाले शठकोप कविने सर्वोत्तम सहस्रगीति को कहा है। उसमें श्रीकोल्लूरपर का विचार करके कहे हुए इस दशकका जो पाठ करेंगे वे दिव्यवैकुण्ठ के स्वामी अवश्य बनेंगे ॥११॥

इति श्रीसहस्रगीतौ षष्ठशतके सप्तमदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ षष्ठशतके अष्टमदशकारम्भः।

इस दशकमें पूर्व दशकोक्त प्रकारसे आल्वार प्रभुकेदर्शनोंकी त्वरामें लगे हुए थे किन्तु प्रभुने आकर उनको दर्शन नहीं दिया इसलिए उस प्रभुके पास अपना सन्देश भेजने के लिये पक्षिगणोंको अपना दूत बना कर भेजने का वृत्तान्त कहा है।

यूयं स्नेह परास्तु पक्षिनिवहाः! पापिन्यहं प्रार्थये,
युष्मान् किंचिदिदं पुराऽखिलजगत्स्रष्टा पयोदाकृतिः
कृष्णं तं मम नायकं प्रभुमिमां मेदुर्दशां ब्रूत भो!
युष्माकं परमेपदेऽपि भुवि च स्यादाधिराज्यं ततः ॥१॥

त्यक्त्वा चित्तहरो ममाञ्जनयनस्ताद्‌र्यादिरूढो गत-
स्तंदृष्ट्वा वदत कच्चित् किमुचितं तेऽस्तीति सत्कल्पकम् ॥५॥

मेरे हाथसे खाकर पुष्ट हुए मेरे तोताओ ! मैं आज तुम से कुछ कहना चाहती हूँ । उसको सावधानी से सुनो । शोभाके धाम कमल लोचन प्रभु गरुड़पर चढ़कर आकर मुझ पापिनि के चित्तको हरण करके चले गये हैं । कल्पवृक्षके समान आश्रितोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाले उस प्रभुके दर्शन करके उससे कहो कि आपके लिए क्या कभी ऐसा करना उचित है ! ॥५॥

मत्पुष्टाः प्रियपक्षिणः सुरुचिरं यज्ञोपवीतं वहन्,
वक्षस्यस्ति ममप्रभुः प्रियतमः कृष्णस्वपादस्थिताम् ।
दिव्यां तां तुलसीं ददाति नहि मद्भिन्नान् प्रतीदं वच-
शिक्षां प्राप्यमया च तत्र वदत श्रीशं प्रतिकापि तम् ॥६॥

मेरे हाथसे खाकर पुष्ट हुई मैनाओ ! मैं जो तुमको सिखा रही हूँ उसी प्रकार उस लक्ष्मीपतिके पास जाकर जो मेरे बनाये हुए अति मनोहर यज्ञोपवीतको वक्षस्थमें धारण करता हैं। और जो कृष्ण मेरा अत्यन्त प्राणप्यारा है । और जो अपने चरणों की प्रसादी दिव्य तुलसीको मेरे को छोड़कर किसी दूसरे को कभी नहीं देता। उससे यह कहना कि वह आपकी प्रेम पात्री आपकी प्रसादी के लिए बहुत ही तरस रही है ॥६॥

रम्यश्रीशकुन प्रभं च विलसत्पद्माम्बकं मायिनं,
माहात्म्याच्चिदचिच्छरीरकममुं श्रीचक्रपाणिं हरिम् ।
केशिघ्नं मधुसूदनं प्रति वचो यूयं ममोक्त्वा स्वयं,
पुत्तल्यः किमु वारयेत तनुलावण्यादिनाशं च मे ॥ ७ ॥

हे पुतलियो ! क्या तुम मेरे कहे हुए सन्देशको अलसीके फूलके समान नीलकान्ति वाले अति सुन्दर कमललोचन अनेक माया चरित्र करने वाले अपने माहात्म्यसे (विलक्षण तेजसे) चित्) जीवसमूह) अचित् (प्रकृति समूह) के अन्तर्यामी होकर रहने वाले तथा हाथमें

चक्रको धारण करने वाले केशी और मधु दैत्यको नाश करने वाले प्रभुको सुनाकर और उसका हर्ष सम्वाद लाकर नष्ट होती हुई मेरी शरीर की सुन्दरताको बचा लोगी क्या ?

वेगेनासम ! पाण्डरद्विज ! महापापिन्यहं कर्शिता,
वैवर्ण्यं गमिताऽस्मि कल्पशतकैरेतैरतीतैरियम् ।
श्रीशं निर्मलनीलमौलिमनघं सूरीन्द्रनाथं हरिं,
दृष्ट्वा त्वं वद नान्य वस्तु तमृते पश्यामि सेयं त्विति ॥८॥

बड़े जोरसे उड़ने वाले श्वेतवर्णके सारस ! अति पापिनी मैं कृश होकर कान्तिहीन हो गई हूँ । और इस प्रकार उस प्रभुके वियोगमें ही जलते हुए मुझे सैकड़ों कल्प बीत गये । और अब कहां तक यह असह्य दुःख सहा जाय । तुम अति स्वच्छ नीलमणिके मुकुटको धारण करने वाले नित्य मुक्तोंके स्वामी श्रीहरिके पास जाओ और उनके दर्शन करके कहो कि प्रभो आपके बिना वह नायिका किसी अन्य वस्तुको देखना ही नहीं चाहती ॥ ८ ॥

विचीनामुपरिप्लवैर्यदशनं यूयं बलाका गणाः !
संचारेषु विचिन्त्य तुष्टहृदया युष्मान् विनाऽन्यन्न मे ।
पापिन्याश्शरणं ततोऽसित पयोदाभं च कृष्णं हरिं,
तं सूरीन्द्रपतिं विलोक्य वचनं तस्यानिशं ब्रूत मे ॥९॥

समुद्रों की तरंगों पर उड़ कर चुगेको ढूंढ़ कर प्रसन्न होने वाली बगुलियो ! तुम्हो इस समय मेरे प्राण बचाने वाली हो । तुम्हारे बिना इस समय पापिनी मेरी सहायता करने वाला और कोई नहीं है । अतएव तुम लोग नीलमेघके समान वर्ण वाले नित्य मुक्तों के स्वामी श्रीकृष्ण हरिके पास जाकर और उसके दर्शन करके मेरा सन्देश सुनाओ । और प्रभु जो कुछ कहें उसके कहे हुए वाक्योंको नित्य प्रति आकर मुझे सुनाया करो ॥ ९ ॥

यूयं हंसगणाः ! कलत्रसहिताः पुष्पेषु भोगाश्रयाः
प्राप्य स्वैरमिमां च मां स्मरवशां तस्मै निवेद्य स्वयम् ।

हे पक्षिगणो ! आपतो बड़ेही दयालु हो अत्यन्त पापिनी मैं भी आप से कुछ थोड़ी प्रार्थना करनी चाहती हूँ, कि पहले जिसने सम्पूर्ण संसारकी रचना की थी । जिसके शरीरका वर्ण मेघके समान है । उस मेरे स्वामी कृष्णसे इस मेरी दुर्दशाको जाकर कह दो । यदि आप लोगोंने मेरी इस प्रार्थनाको प्रभुके पास पहुँचा दिया तो आप लोगों को भूमण्डल और परमपदमें भी स्वाराज्य प्राप्त हो जायेगा ।

सत् शास्त्र श्रवण और सदाचार्यकी उपासनासे प्राप्त उत्तम ज्ञानवान् परम भागवतही पक्षी हैं । वे जब संसार मग्न किसी प्राणी को भागवत धर्म का उपदेश देकर प्रभुकी शरणमें पहुँचा देते हैं । तो परमात्मा भी उनके ऊपर प्रसन्न होकर उनको उभय विभूतिका नायक बना देते हैं । यह बात श्रीरामानुजाचार्य स्वामीके चरित्रों दृढ़ता के साथ तथापुष्कल रूपसे पाई जाती हैं ॥१॥

यूयं मेऽद्यशुकाः प्रभुं मम हरिं श्रीचक्रपाणिं च तं
बिम्बोष्ठं सहसा विलोक्यतनुसङ्काशां च मे ब्रूतभोः ।
क्षिप्रं मां प्रति तद्वचोऽपि वदत श्रीमत्सखीनां पुरः
स्थित्वा मे करतश्च साज्य मधुरक्षीरान्न भाजस्तभोः ॥२॥

हे मेरे तोताओ ! तुम लोग चक्रको धारण करने वाले लाल होठ वाले मेरे स्वामी श्रीहरिके पास शीघ्रतासे जाकर दर्शन करके कहो कि यह प्रेमिका आपसे मिलनेके लिये अतित्वरायुक्त हो रही है । और यह प्रभु जो भी कुछ कहे उसके प्रत्युत्तरको मेरी सखियोंके सामने खड़े होकर मेरेसे आकर कहदो तो मैं अपने हाथसे तुमको माखन मिश्री और खीर खवाऊंगी ।

सदाचार्यको सत् शिष्योंके लिये भागवत धर्मका उपदेश भागवत गोष्ठीमें देना ही लाभदायक है । यहाँ भागवत गोष्ठी ही सखी मंडली है । और भगवत रसका पानही माखन मिश्री और खीरके भोजन हैं । भक्त मण्डलीमें परमात्माकी प्राप्तिके अनेक उपायोंको श्रवण करके ही [illegible] तापत्रयजनित दुःखसे पीछा छूट सकता है ॥ २ ॥

यूयं मत्प्रियषट्पदाः शुभ कुरुक्षेत्राधिपानां पुरा,
पञ्चानां च सुहृत्तमोऽश्वसरणिं तां स्यन्दनालिं चमूम् ।
सर्वं चापि विनाश्य यः प्रभुरभूत्तस्याच्युतस्याद्भुतां,
पीत्वा तां तुलसीं ममापि शिरसि स्रक्पानसक्तास्तभोः॥३॥

हे मेरे प्यारे भौंराओ ! जिस प्रभुने पहले कुरुक्षेत्र देशमें राज्य करने वाले पाँच पांडवोंसे मित्रता करके अनेक अश्व समूहोंसे तथा रथोंकी पंक्तियोंसे सम्पन्न सम्पूर्ण सेनाका नाश करके पृथ्वी पर अपना शासन जमाया था । उस अविनाशी प्रभुके चरणोंकी मद भरी तुलसीको पीकरके आये हुए तुमलोग मेरे मस्तक पै लगी हुई मालाओं के रसको भी पीने में लग जाओ ।

इस गाथामें यह कहा है कि प्रभुके चरणोंका स्पर्श करके आये हुए सारग्राही परमभागवतोंका दर्शन और स्पर्शन हीं आत्माका कल्याण कारक है ॥३॥

यूयं मे कुटजाश्रया मधुकराः ! प्रीत्याऽत्र पानाशया,
सक्ताश्चेदिह पापिनीं सपदिमां यो वंचयन् वर्तते ।
दिव्ये धामनि सूरिवर्य परिपन्नाथं विलोक्यैव तं,
दिव्यश्रीतुलसीधरं वदत किं युक्तं तवेदं त्विति ॥४॥

हे भौंराओ आप लोग यदि मेरे मस्तक पर लगी हुई चमेलीकी मालाओंके मधुको पीनेकी आशा रखते हो तो शीघ्रता से उस प्रभुके पास जाकर जो कि मुझे छल करके दूर चला गया है । और दिव्य धाम (परमपद) में नित्य मुक्तोंका स्वामी बनकर दिव्य तुलसीकी माला को धारण करके रहता है । उसके दर्शन करके कहो कि हे प्रभो ! क्या आपको एक भोली बालिका को धोखा देकर बहुत दूर चला जाना उचित है ॥४॥

भो भो मत्परिपोषिताः प्रियशुकाः ! किंचिद्वदाम्यद्यवः,
साक्षादेवहि सादरं शृणुत मां श्रीमानिमां पापिनीम् ।

श्रीकान्ताय रमां निजोरसिसदा विभ्रत्सरूपाय तत्-
सूक्तिर्मेऽत्र पुनर्निवेदयत भोःश्रीशावरोधस्थलात् ॥१०॥

प्राणप्यारी पत्नियोंके सहित कमल पुष्पोंमें क्रीड़ाका आनन्द भोगने वाले हंस गणो ! आप लोग मेरे पास आओ और अति मनोहररूपधारिणी लक्ष्मीको सदाही वक्षस्थलमें धारण करनेवाले श्रीकान्त के लिये कामके परवश होकर अत्यन्त दुःख भोगने वाली मेरी इस दशाको मेरेही वाक्यों द्वारा निवेदन करके लक्ष्मीके निवास स्थान उस प्रभुकी सन्निधिसे आकर उनके शुभ सन्देश वाक्यो को फिर यहां आकर कहोगे ॥१०॥

दिव्यां सूक्तितर्ति विचित्य सरसां सूरिश्शठारिः कवि,
स्स्तोतुं तं मधुसूदनं प्रभुमहो साहस्रपद्यावलिम् ।
आह श्रीकुरुकापुरप्रभुरसौ ये ये पठन्ति स्वयं,
तत्रेदं दशकं तु ते किल भवन्त्येवद्रवात्माशयाः ॥११॥

मधु दैत्यको नाश करने वाले प्रभुकी स्तुति करने के लिए कुरुका पुरके स्वामी कविवर शठकोपमुनि ने भक्तिरस को बढ़ाने वाली सुन्दर सूक्तियों की पंक्तियोंमें विचारकर सहस्रगीतिको बनाया। उसमें जो भक्तवर इस दशक का स्वयं पाठ करेंगे वे उस परमात्माके भक्तिरस से अपने हृदयको अवश्यही भिगोलेंगे ॥११॥

इति श्री सहस्रगीतौ षष्ठशतके अष्टमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ षष्ठशतके नवमदशकारंभः ।

इस दशक में संसारमे चराचर रुपसे स्थित परमात्माके अनुभवसे असंतुष्ट होकर उसको दिव्यरुपके दर्शनोंकी अभिलाषा करके परमप्रभुको दिव्य विग्रह से दर्शन देने के अपने पास में आल्वार बुलाते हैं।

नीरावनी दहन वायुनभोमयस्त्वं,
मुख्योज्ज्वलो शशिरवी च समस्त सृष्ट्या ।

रुद्रोऽप्यजोऽसि करतस्तवदीप्र चक्रं,
धृत्वा च शंखमिह सर्वनुतोऽभ्युपेहि ॥ १ ॥

हे प्रभो इस संसारमें दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थ पृथ्वी जलवायु अग्नि और आकाश रूपसे तथा अति उज्वल तेजके भंडार चंद्रमा सूर्यरूप होकरके आप प्रकाशमान हो रहे हैं। सृष्टि निर्वाहके लिए आपही समस्त सृष्टिके रचयिता श्रीब्रह्मदेव रूपहोकर संहार कालमें रुद्ररूप को धारण कर लेते हो। समस्त संसार जिनको प्रणाम करता है। ऐसे प्रभो आज आप अति तीक्ष्णचक्र और शंखको धारण करके इस दास के समक्ष आकर दर्शन दीजिये ॥ १ ॥

द्यावा पृथिव्यभिनुतोऽसि च वामनस्त्वं,
भूम्नाऽवनीं दिवमपि स्वयमेव गृह्णन् ।
मायिन् ! प्रभो ! भुवि तु संचर जातुविष्णो !
दृष्ट्वा यदा तु मुदितोऽहमिहास्मि नृत्यन् ॥२॥

हे प्रभो स्वर्गवासी तथा भूमण्डलवासी सभी श्रेणीके प्राणिगण अपना मनोरथ सिद्ध करनेके लिए आपको प्रणाम करते हैं। आपने अपने वामनरूपको ही बढ़ाकर स्वयं पृथ्वी और स्वर्गको नाप कर स्वीकार किया था। अनेक मायाओं को रचने वाले सर्व व्यापक प्रभो थोड़ा सा इस भूमि में तो आप आकर विचरण करें। जिससे आपको देखकर मैं प्रसन्नता से नृत्य करलूं ॥२॥

भूम्यां किल प्रति युगं च चरन् शयान
स्तिष्ठन् क्रमादुपविशन्नपि सर्वलोकान् ।
त्वं पालयन्नसि चिरं । रमया समेतं,
त्वामप्यनाश्रित इहास्मि किमद्य खिन्नः ॥३॥

प्रभो प्रत्येक युगमें इस भूमि पर आप विचरण करके शयन करके खड़े होके बैठ करके भी सम्पूर्ण लोकोंका आप पालन करते हो। बहुत कालसे मैंने लक्ष्मीके सहित आपकी चरण शरण नहीं लीनी

इसी कारण अनेक दुखोंके भ्रम जालमें पड़ा हुआ था । और जब मैंने आपके चरणोंकी शरण ले लीनी तो फिर भी क्या दुखी ही रहूँगा ॥३॥

भित्वातनुं च शकटासुररूपिणस्त्वं
पादेन भासि परमः प्रभुरच्युतो नः ।
ब्रह्मा शिवश्शतमखश्चसुराः प्रणम्य
त्वां तु स्तुवन्ति च यथाऽत्रतथाभ्युपेहि ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! शकटरूपी असुरको अपने पैरकी ठोकरसे ही तोड़कर हमारे सर्वश्रेष्ठ अविनाशीपति होकर विराजमान हो रहे हो । आपके जिस रूपको ब्रह्मा शिव इन्द्र आदि देवगण प्रणाम करके स्तुति करते हैं । उसी रूपसे आकर इस दासको भी दर्शन दीजिये ॥ ४ ॥

दिव्ये च धामनि गिरेरुपरि स्वयं त्वं
क्षीरोदधावपि भुवीह हृदन्तरेषु ।
वासं स्थितिं च शयनं चलनं च वृत्तिं
प्राप्याण्डगोऽसि हृदि मे ऽत्र ! किमस्यदृश्यः ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! आप परमपदमें वास करके वेंकटाचल पर्वत पर खड़े होकरके क्षीर समुद्रमें शयन करके पृथ्वी पर राम कृष्णादि रूपसे विचरण करके तथा योगियोंके हृदय कमलोंमें विराजमान रहकर इस प्रकार ब्रह्माण्डमें सर्वत्र व्याप्त हो रहे हो, तो क्या कारण है कि मेरे हृदयमें ही आप छिपे हुए हो और प्रकाशमान होकर दर्शन नहीं देते ॥५॥

एकं पदं प्रसरणाज्जगतीह कृत्वा
सर्वत्र चापि दिवि चान्यदहो निधाय ।
मायिन् विभासि तव दर्शनकांक्षयाऽहं
किं संचरामि भुवि हन्त परिद्रुताङ्गः ? ॥ ६ ॥

हे अनेक मायाओंको धारण करने वाले प्रभो ! आपने त्रिविक्रमा अवतारमें एक पैरको फैलाकर तो पृथ्वीको नाप लिया था और दूसरे पैरको फैलाकर स्वर्गको नाप लिया था । इस प्रकार दोही पैरोंमें सर्व

संसारको नापकर सर्वोपरि विराजमान हो रहे हो । आपके दर्शनोंकी इच्छासे ही इस पृथ्वी पर अपने शरीरको द्रवीभूत करके ही मैं क्या विचरता रहूँगा, अर्थात् आपके दर्शनोंकी इच्छामें भटकते भटकते बहुत दिन होगये, अब यह दुःख नहीं सहा जाता आकरके जल्दीसे ही दर्शन दीजिए ॥ ६ ॥

लोकेत्र कर्म सरणिश्च समस्त लोक
स्त्वं भासि सर्वजगतामपि चैक आत्मा ।
वाह्याण्डवर्तिदशदिक्पति सूरिनाथ–
स्त्वं मे प्रसीद भगवन्नतिमन्दबुद्धेः ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! इस लोकमें समस्त प्राणस्वरूप और कर्मगतिस्वरूप होकर और सर्व वस्तुओंके एक अन्तरात्मारूप होकर आप विराजमान हो रहे हो । और इस ब्रह्माण्ड मण्डलसे बाहर रहने वाले दश दिगपतियोंके स्वामी तथा नित्यमुक्तोंके स्वामी होकर प्रकाशमान हो रहे हो । मैं एक मन्दबुद्धि हूँ, आपके वास्तविक रूप और स्थिति को नहीं जान सकता, इसलिए कृपा करके अपने मनोहारी रूपके दर्शन दीजिए ॥ ७ ॥

त्वं ज्ञानिनां हृदि वसन्नसि सर्वगन्धो
ज्योतिर्मयोऽसि वपुषाऽद्य मयि प्रसीद ।
अज्ञोऽहमस्म्यशरणो ! हृदि मे प्रविश्य
त्वं मां किमद्य वहिरेव करोषि खिन्नम् ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! आप ज्ञानियोंके हृदयमें वास करते हुए सर्वगन्ध और सर्वरसस्वरूपी होकर ज्योतिस्वरूप शरीरसे प्रकाशमान होते हो । अब मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइये मैं अज्ञानी हूँ, संसारमें मेरा कोई रक्षक नहीं है । आप भी मेरे हृदयमें घुसकर तेजोमय रूपसे प्रकाशमान हो रहे हो, तो अब हृदयसे बाहर मुझे अपने दर्शनोंके लिए क्यों तरसा रहे हो ॥ ८ ॥

चित्तभ्रमा वहतयाऽल्पसुखं प्रदर्श्य
पंचेन्द्रियार्तिविवशं किमु पापिनं माम् ।

त्वं नाशयस्यहह ! भूमितलाक्रमि त्वत्
पादाम्बुजं प्रतिकदा नु समाह्वयेर्माम् ॥ ६ ॥

हे प्रभो ! चित्तको अनेक प्रकारके भ्रमजालमें डालने वाले थोड़ेसे सुखको दिखाकर ही मुझ पापोको पंचेन्द्रियों (श्रोत्र, चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक्) के अपार दुखसागरमें डालकर क्या आप नष्ट करना चाहते हैं ? अहह ! पृथ्वीतलका आक्रमण करने वाले प्रभो ! आपके चरणारविन्दोंके दर्शनोंकी अभिलाषाका काल क्या अभी पूरा न होगा ? ॥ ६ ॥

सङ्कोचवृद्धिरहितं सततं त्वनन्तं
चात्मानुभूति सुख मप्यहह ! भ्रमाय ।
मायिन् हरे ! तव पदाम्बुज मात्रसेवा
लेशस्य किं सदृशमस्ति वताद्भुतस्य ॥ १० ॥

हे हरे ! सङ्कोच और वृद्धिसे रहित अनन्तरूप निरंतर आत्मानुभवानन्दसे उत्पन्न हुए सुखको भी मैं एक भ्रम समझता हूँ । अनेक मायाओंको रचने वाले प्रभो ! अति विचित्र आनन्दको देने वाली आपके चरणोंकी सेवाके लेशमात्रकी भी क्या वह सुख समानता कर सकता है ॥ १० ॥

दूरं श्रुतेश्च मननस्य दृढस्मृतेश्च
श्रीशं तदीयचरणाश्रितदासदासः ।
स्तोतुं शठारिवदच्च सहस्र मेतद्
भक्तान्-करोतिदशकं जगदीशदासान् ॥ ११ ॥

जो प्रभु श्रवण मनन और ध्रुवास्मृतिसे भी जाननेमें कठिनतासे आता है । उस लक्ष्मीपतिके दासोंके चरणाश्रित दासोंके दास शठकोपमुनिने उस प्रभुकी स्तुति करनेके लिए इस सहस्रगीतिको बनाया । उसमें यह दशक भक्तोंको जगन्नियन्ता उस परमात्माके दास अवश्य बना देगा ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ षष्टशतके नवमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ षष्टशतके दशमदशकारम्भः

इस दशकमें आल्वार शीघ्रता पूर्वक नित्य कैंकर्य प्राप्ति के लिये श्रीमहालक्ष्मीका पुरस्कार लेकर भगवान् श्रीवेंकटेशजी की शरणागति करते हैं।

मन्नाथ ! त्वं हि लोकान् पृथुवदनतया भक्षयस्यन्तकाले,
निस्सीमा भाति कीर्तिस्तव विशदमहाज्योतिरालिर्हिमूर्तिः।
सर्वश्रेष्ठोऽन्तरात्मा ममकिल ! तिलकस्सर्वलोकेषु भासि,
श्रीशस्त्वं वेंकटेशः कथमहमनघस्त्वत्पदाब्जे भजेयम् ॥१॥

हे मेरे नाथ आप प्रलयकाल आने पर बड़े भारी मुख वाले होकर समस्त लोकों को भक्षणकर जाते हो। सीमारहित आपकी कीर्ति और अत्यन्त उज्वल प्रकाश युक्त आपकी मूर्ति विराजमान हो रही है। और समस्त लोकोंमें तिलक (सर्वोच्च) रूपसे प्रकाशित होते हुए मेरे हृदयमें व्याप्तहो रहे हो। लक्ष्मीके पति भगवन् वेंकटाचल पर आकर विराजमान हुए हो। मैं सम्पूर्ण पापोंसे युक्त होकर आपके चरण कमलोंका ही निरन्तर भजन करूं ऐसा उपाय क्या आप बतलानेकी कृपा करेंगे ॥१॥

दुष्टात्मानः प्रणष्टास्स्वयमसुरगणास्ते बलिष्ठाप्रदग्धा-
श्चक्रं हस्ते बिभर्षि स्वय महह हरे दक्षिणे देवदेव।
तीर्थेष्वम्भोजदीप्तेष्वनलकुल समेष्वत्र वै वेंकटाद्रौ,
भासित्वं ! क्षिप्रमेनं कुरुतव चरणद्वन्द्वसक्तं जनं माम् ॥२॥

हे देव देव हरे ! स्वभावसे ही दुष्ट आत्मनाशके ही कार्यमें निरन्तर लगने वाले महाबलधारी असुरगणोंको भस्म करने वाले सुदर्शनचक्रको आप अपने दक्षिण हाथ में स्वयं धारण करते हो। लाल कमलों से अग्निके समान प्रतीत होने वाले सरोवरोंसे युक्त श्रीवेंकटाद्रि पे आप विराजमान हो रहे हो। आपके चरणोंमें आसक्त चित्त वाले इस दासको बहुतही जल्दी अपने चरणोंमें लगा लीजिये ॥२॥

कारुण्यं शीलसिद्धं तवकिल जलदश्याम मायाचरित्र,
स्वामिन् हृत्पद्मसक्ता मधुरतमरसश्चामृतात्माऽमरेशः।

सत्यं भासि त्वमेवं ! मणिकनकमहामौक्तिकानां च राशी,
नाकर्षन् वेंकटाद्रौ रुचिरसरिति मां योजय त्वत्पदाब्जे ॥३॥

अनेक माया चरित्रोंको करनेवाले नील मेघके समान श्याम-सुन्दर मेरे स्वामिन् ! दया करना तो आप का स्वभाव सिद्ध गुण है। सम्पूर्ण देवोंके देव और अमृतसे भी अधिक मधुर आप मेरे हृदयमें विराजमान हो। और मणि सुवर्ण मोतियोंकी राशियोंको बहानेवाले झरनोंसे शोभायमान श्रीवेंकटाद्रि पर आप प्रत्यक्ष होकर प्रकाशमान हो रहे हो। आपके दिव्य चरण कमलों में मुझे भी लगा लीजिये ॥३॥

निष्कारुण्यान्नृशंसानसुरकुलगणान् हन्तु मेवाग्निवक्त्रै,
र्बाणैर्वर्षैस्तु शार्ङ्गं ननु वहसि हरे श्रीपते देवदेव।
सूरीन्द्रैर्मौनिवृन्दैरपि महिततले वेंकटाद्रौ सुमाली,
वर्षैः पूर्णं पदाब्जं तव गमय च मां पापिनं त्वत्कटाक्षैः ॥४॥

हे प्रभो ! जिनके हृदयमें दयाका लेशभी नहीं है ऐसे अति निर्दयी असुर समूहोंको मारनेके लियेही अग्नि वर्षाने वाले बाणोंकी वर्षा करनेके लिएही शार्ङ्ग धनुषको आपधारण करते है। देवोंके देव लक्ष्मीके प्राणवल्लभ हे हरि मौनको धारण करने वाले दिव्य सूरिगणों से प्रशंसित श्रीवेंकटाचल पै विराजमान आपके पुष्पों की वर्षासे पूर्ण दिव्य चरण कमलोंको निर्हेतुक कृपाकटाक्ष करके इस दासको प्राप्ति करा दीजिये ॥४॥

हे धन्विन् ! गाढबन्धानपि सपदि तदा सप्तवृक्षान्निकृत्य
प्रख्यातस्सान्द्रवृक्षद्वयमपि च विशन्नन्तरास्यादिमूल।
नाथ श्रीवेंकटाद्रौ पृथुजलदसमैर्हस्तिभिस्सेवितेऽस्मिन्,
श्रीशार्ङ्ग बिभ्रतस्ते पदकमलयुगे किंकरस्स्यां कदा वा ॥५॥

हे मेरे नाथ ! इस संसार के आदिकारण रूप प्रभो आपने रामावतार में दृढ मूलवाले सात शालवृक्षोंको एक बाणसे ही काटकर धनुष धारियोंमें ख्याति प्राप्ति की थी। और आपसमें मिले हुए यमलार्जुन दोनों वृक्षोंके बीचमें घुसकर इन दोनोंको जड़मेंसे उखाड़ दिया था

नील मेघकी घटाओंके समान घूमते हुए हाथियों से सेवित इस वेंकटाचलपर्वत पर श्रीशाङ्ग धनुषको धारण करके विराजमान हुए आपके चरण कमलोंका किंकर मैं कब बनूंगा यह मेरी बड़ी तीव्र अभिलाषा है ॥५॥

पादद्वन्द्वं कदावा वयमिह जगतां मानदत्तन्तु धन्याः,
पश्यामश्चेति देवास्सततमपि तव स्तोत्र सक्ता भजन्ति ।
सर्वे त्वामेव सत्यं त्रिकरणत इह श्रीश भो वेंकटेश,
त्वत्पादाब्जे कदावा मम भवति विभो किंकरस्यैव दास्यम् ॥६॥

हे प्रभो ! वेंकटेश ! समस्त जगतको नापनेमें चतुर चरणकमल युगलको कब देखकर हम धन्यभाग होंगे ! इसी आशासे समस्तदेवता-गण मन वचन कर्मसे आपकी स्तुति करनेमें आसक्त होकर सेवा करते हैं । आपके कैंकर्य में सदारत रहने वाले मुझको आपके चरण कमलकी दास्यवृत्ति किस समय प्राप्त होगी । इसी आशामें मैं जीवन धारण कर रहा हूँ ॥६॥

सूरीन्द्र ! त्वं हि भक्त्या सतत मपि मयाऽत्रानुभाव्योऽमृताब्धिः
शत्रुघ्नः पक्षिराजोध्वजइह किलते नाथ बिम्बाधरोऽसि ।
पापाटव्याः कुमार त्वमिह विलससि श्रीधरो वेंकटाद्रौ,
त्वत्पादाब्जावलोकं क्षणमपि न सहे त्यक्तुमत्युत्सुकोऽहम् ॥७॥

हे नित्य मुक्तों के स्वामी समस्त शत्रुओंका नाश करने वाले पक्षिराज गरुड़ आपकी ध्वजामें हैं । लाल बिम्बाफलके समान आपके होठ हैं । निरन्तर भक्ति द्वारा मेरे लिए अमृत समुद्रके समान अनुभव करनेके लिएही लक्ष्मीको साथमें लेकरके आप वेंकटाचल पर विलास कर रहे हो । परन्तु मैं अनादिकालसे पाप मार्गों में ही लगा हुआ हूँ । अतएव यह मेरी बड़ी भारी अभिलाषा है कि आपके चरण कमलोंके दर्शनोंको एक क्षण भर भी न छोड़ सकूं ॥७॥

त्वत्पादाब्जोत्सुकत्वं क्षणमपि न सहेत्यक्तुमित्येवसूक्ष्म,
ज्ञानेशोनीलकण्ठस्सुमतिरपि चतुर्वक्त्र इन्द्रोऽपिरामाः ।

दिव्यास्ता मीननेत्रा परित इह हरे वेंकटाद्रौ भजन्ति,
त्वामेव त्वं हि कान्तस्सकलजनमनो रञ्जनो मामुपेहि ॥८॥

हे सर्वेश्वर! आपके चरण कमलोंकी सेवाको एक क्षण भर भी मैं नहीं छोड सकता। जिस प्रभुको नीलकण्ठ महादेवजी तथा चतुर्मुख ब्रह्माजी तथा देव राज इन्द्र और मछली के समान चंचलनेत्र वाली दिव्य नव यौवना रमणीयां सर्व प्रकारसे वेंकटाचल पै सेवा करती हैं। सकल जनों के मनको रंजन करने वाले आपही सुन्दर स्वरूप हैं। मैं भी आपके उसी रूपका दर्शन करना चाहता हूँ। कृपा करके आईये मुझे दर्शन दीजिये ॥८॥

आयातोऽप्यत्र न त्वं किल नयनपथे वर्तते नागतोऽपि,
प्रत्यक्षं तिष्ठसि त्वं द्वियुगभुजसरोजाक्ष बिम्बाधरोऽसि।
मत्प्राणेशामृताब्धे निशमपि दिवसं चात्रचिन्तामणीन्द्राः,
कुर्याश्श्रीवेंकटाद्रौ नहि तव विरहं जातु.सोढुक्षमोऽस्मि ॥९॥

हे प्रभो आप इस भूमंडल पर आकरभी अनेक रूप धारणकरके मेरे नेत्रोंके प्रत्यक्ष नहीं होते। जिस रूपसे आप इस भूमंडल में कभी नहीं आये थे उसी रूपसे मेरे हृदयमें उपस्थित हो रहे हो। हे प्रभो चार भुजा वाले और कमल लोचन वाले तथा लाल होठ वाले होकर चिंतामणि (मनुष्यों के सर्व मनोरथों को पूर्णकरने वाली मणि) और अमृत समुद्रके समान होकर रात्रिको भी दिन बनानेकी सामर्थ्य वाले हो। मेरे प्राणनाथ इस वेंकटाचल पै विराजमान आपके वियोग दुखको सहनेकी शक्ति अब मेरे में नहीं है ॥९॥

विश्लेषं नक्षणं च स्वयमहह सहे चेतिपद्मातवोर
स्यास्ते नित्यं समस्तामलसुगुणनिधे नाथ मे लोकनाथ।
देवैःश्रेष्ठै मुनीन्द्रै रपिमहिततमो वेंकटाद्रौ विभासि
त्वत्पादाब्जं प्रविष्टोऽम्यहमिह सततं दासभूतोऽस्म्यनाथ॥१०॥

अहह! प्रभो आपके वियोगको मैं क्षणभरभी स्वयं नहीं सह

सक्ता आपके वक्षःस्थलमें नित्यही लक्ष्मीजी वास करतीहैं। समस्त शुद्ध गुणोंके भण्डार समस्त लोकोंके नाथ और मेरे नाथ! आपको देवश्रेष्ठ और मनुष्य श्रेष्ठ नित्यही पूजा किया करते हैं। और दिव्यरूप धारण करके वेंकटाद्रि पर आप विराजमान हो रहे हो। आपको छोड़कर दूसरा कोई मेरा रक्षक नहीं है, आपका मैं निरन्तर दास हूँ। आपके चरण कमलोंमे हो आकर बसा हूँ, अतएव इस दासको स्वीकार कीजिये ॥ १० ॥

लोका उज्जिवितास्त स्वयमिह मम पादाब्ज युग्मे श्रितास्ते,
त्युक्त्वा नित्यं प्रसन्नं प्रभुमिह कुरुकापत्तनेशश्शठारिः।
स्तोतुं श्रीवेंकटेशं दशकमिदमपि प्राह मुक्त्यै सहस्रे,
ज्ञातृणामस्य भक्ता अपि परमपदे नित्यवासं भजन्ते ॥११॥

जो पुरुप स्वयं मेरे चरणोंका आश्रय लेते हैं, उनका उद्धार हो जाता है। इस प्रकार कहकर निरंतर प्रसन्न होने वाले वेंकटेश भगवान्की स्तुति करनेके लिए कुरुकापुराधीश शठकोपमुनिने सहस्रगीति मे यह दशक कहा है, जो परमात्माके भक्त इस दशकको जान लेंगे वे परमपदमें नित्य वास करने लग जायेंगे।

जब हम भगवान् वेंकटेशके विग्रह मुद्राका दर्शन करते हैं, तो स्पष्टरूपसे यह ज्ञात होता है कि कमरके पास नीचेको झुके हुए हाथसे आप यह निर्देश करते हैं कि हमारे इन्हीं चरणोंके शरण आने वाले पुरुषोंका उद्धार होता है। और अभय मुद्रासे यह सूचित करते हैं कि फिर उस पुरुपको किसी प्रकारका भय नहीं रहता। ऐसा कहकर ही अभय मुद्रा दिखाकर आप प्रसन्नता प्रकट करते हुए जान पड़ते हैं ॥ ११ ॥

इतिश्रीमद्वेदवेदाङ्गाद्यखिलशास्त्रनिष्णात पराशरगोत्रावतंस श्रीमन्माधवाचार्यचरणाश्रित श्रीरामानुजसम्प्रदायाचार्य मथुरागलतामठाधीश्वर पण्डितस्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्यशास्त्रि विरचित विद्वन्मोदतरङ्गिणीभाषाटीका सहित श्रीसहस्रगीते षष्ठशतक सम्पूर्णम्।

❀ श्रीमते शठकोपायनमः ❀

अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके प्रथमदशकारम्भः।

इस दशकमें पूर्वोक्त प्रकारसे लक्ष्मीकी शरण पूर्वक भगवान्‌की शरण करने पर भी, आल्वारने देखा कि शरणागतिका फलस्वरूप शान्ति तो हमें मिल नहीं रही है और पंचेन्द्रियरूप शत्रु सर्वप्रकारसे हमारा नाश करनेके लिये तुले हुए हैं। इससे ज्ञात होता है कि उस प्रभुने ही हमे इस दुखरूपी कूपमें डाला है। अतएव उस दुखसे छुडानेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं।

संख्यातीतविचित्रवृत्त भगवन् सूरीन्द्रसंसेवित!
त्रैलोक्याधिपते ममामृत निधे स्वामिन् प्रभो मे हरे।
अन्तर्वैरिकुलेन पंचकरणग्रामेण सम्पीडितं
मामेवं तव पादपङ्कजनतेर्दूरे तुदस्येवहा ॥ १ ॥

हे मेरे नाथ श्रीहरे! आप एकसे एक विचित्र चरित्रोंको जिनकी गणना किसी प्रकारसे कभी नहीं हो सकती किया करते हो। तीनों लोकोंके स्वामी होकर आप परमपदमें नित्यमुक्तोंकी सेवाको ग्रहण करते हो। और मेरे लिए तो आप अमृतके अक्षय भण्डार हो। आपने मेरेको अपने चरणोंकी शरणागतिसे दूर हटा दियाहै मेरे भीतरही सदा निवास करने वाले पंचेन्द्रि (श्रोत्र चक्षु रसना घ्राण-त्वचा) शत्रुओंसे पीडा पाते हुए इस दासको आपही इस प्रकार अत्यन्त कष्ट पहुँचा रहे हो।

अनादि कालसे हम पंचेन्द्रियोंके जालमें पड़कर अनेक प्रकारके कष्ट भोगते आये हैं। उन कष्टोंसे पीछा छुड़ानेके लिए ही आपके चरणोंकी शरण हमने ली है, किन्तु जिस आशासे शरण ली थी वह आशा तो पूरी नहीं हुई। और वेही शत्रु हमें अत्यन्त दुःख आपकी चरण छाया भी पहुँचाने लगे, तब इस सर्व कर्त्तव्यको हम आपका किया हुआ ही क्यों न समझें॥ १॥

माधुर्याद्यमृताम्बुधे जलनिधिक्ष्मापालक श्रीहरे
नीलाम्भोदनिभ श्रुतीरितगुणश्रीचक्रपाणे विभो।
मां पापाश्रयमत्र घोरविसरत्पंचेन्द्रियाणं वशं
कृत्वा हन्त दिवानिशं च तुदसि त्वत्सङ्गिनं नातनोः ॥२॥

हे प्रभो ! आप मधुरतामें अमृतके समुद्र हो, पृथ्वी और समुद्रके रक्षक हो, नीलमेघके समान दिव्य विग्रहधारी हो । श्रुतियाँ निरन्तर ही आपके गुणोंका वर्णन किया करती हैं। चक्रको हाथमें धारण करने वाले श्रीहरे ! आपने मुझपापीको अतिभयङ्कर पंचेन्द्रियोंके वशमें करके और उनसे उत्पन्न हुए व्यथाओंसे दिन रात दुख पहुँचा रहे हो । और आपके चरणारविन्दोंके शरणमें नहीं लेते हो क्या यह भी कोई न्याय है ।

आप चराचरको वशमें रखने वाले सर्वेश्वर हो । पंचेन्द्रिय जो हमें कष्ट पहुँचा रहो हैं ये सब आपकी ही प्रेरणाका फल है । यदि आप चाहें तो एक क्षणमें ही पंचेन्द्रियजन्य दुखको नष्ट करके हमें अपने चरणोंकी शरण में ले सकते हो ॥ २ ॥

विस्तीर्णां पृथ्वीमिमां किल सृजन् मूलात्मकस्त्वं हरे
भक्षित्वा पुनरुद्गिरन्नपि पदेनाक्रम्य चोद्धृत्य च ।
ज्योतिष्मन्मुकुटांचित त्वमिह मां पंचेन्द्रियैः पीडितं
कुर्वन् किं मधुसूदनाद्य भजसे हा त्वत्पदाद्दूरगम् ॥३॥

अहह प्रभो ! अति विस्तृत इस भूमण्डलकी रचना करते हुए आप समस्त वस्तुओंके मूल कारण हो । आपने ही इस भूमिको भक्षण करके फिर उगल दिया था। और अथाह जलमें डूबी हुई इसका उद्धार भी वराहरूपसे किया था । तथा त्रिविक्रमरूपसे इस पर अपने पदोंसे आक्रमण भी किया था । हे मधुसूदन ! अति प्रकाशमान मुकुटसे भूषित आप मेरेको पंचेन्द्रियोंकी पीड़ामें डालकर अपने चरणोंसे बहुत दूर हटाकर क्यों अन्याय कर रहे हो ।

आप अति कृपाशील होकर जगत्के सर्व प्रकारके रक्षक हो । परन्तु आपने अपने चरणोंका दासत्व छुड़ाकर प्रकृतिके दासत्वमें मुझे डाल दिया है । सर्वोच्च न्यायाधीशका मुकुट धारण करके भी आप मेरे साथमें अन्याय कर रहेहो यह क्या-उचित है ॥ ३ ॥

सर्वाचेतनचेतनावलिमपि त्वय्येव कृत्वा स्वयं
बालस्त्वं वटपत्रशाय्यहह मे पापस्य दिव्यौषध ।

दुष्पंचेन्द्रियवश्यमेव किल मां कृत्वा'भ्रमान्धं भुवि
त्वत्पादाम्बुजसंश्रयाद्विरहितं त्यक्त्वाऽसि दूरंगतः ॥४॥

हे प्रभो! आप इस संसारमें दृश्यमान समस्त चेतन अचेतन वर्गोंको अपने पेटमें धर करके प्रलयमें बालरूपसे वटपत्रके ऊपर शयन करते हो। मेरे पापोंको नष्ट करनेके लिए आप दिव्यौषधीरूप हो। अज्ञानसे अन्धे हुए मुझको आपने अपने चरणाश्रयसे छुड़ाकर दुष्ट पंचेन्द्रियोंके वशमें डाल दिया है। और आप मुझे छोड़ करके बहुत दूर चले गये हो। अब इसदशामें आपकी प्राप्तिका उपाय किस प्रकार कर सकूं। यह बड़ी भारी चिन्ता है ॥ ४ ॥

चक्रं ते करतो वहन्नसुरनिर्मूलप्रणाशं हरे!
कृत्वा सूरिकुलाधिपोऽसि भगवन् मे पंचशब्दादिभिः।
बन्धं दुर्विषयैः प्रकल्प्य परितः पंचेन्द्रियैर्मांतुदन्
किं दूरी कुरुषे रुजो मम महादिव्यौषधात्माऽव्ययः ॥ ५ ॥

हे हरे! आप चक्रको हाथमें धारण करके असुरोंका समूल नाश करके देवगणोंको रक्षा करते हो। हे भगवन् आपने मुझे दुष्ट पंचविषयों (शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) के बन्धनमें डालकर और पंचेन्द्रियरूपी शस्त्रोंसे पीड़ा दे रहे हो। हे प्रभो! मेरे लिए दिव्य औषधस्वरूपी आप हो। फिर मेरे इस दुखको दूर और कौन कर सकता है।

प्रभो! हम विषयोंके कीड़ोंमें इतना दृढ़ विश्वास नहीं है कि जानकी और रुक्मिणीकी स्थितिको पहुँच सके। आप यदि शीघ्रही हमारे ऊपर कृपा न करेंगे तो सम्भव है कि हमारा रहा सहा विश्वास भी आपकी ओरसे चला जायेगा ॥ ५ ॥

भूम्यामत्र हि नित्यसूरिनिवहानप्येव मेतान्यहो
हा हा हन्त तुदन्ति मां च बहुधा पंचेन्द्रियाणि स्वयम्।
किं वैतानि नकुर्वते वद भवानेवं त्यजेन्मां च चे
न्नादे मे कवितासु भक्तिनयन स्वान्तोक्तिषु भ्राजसे ॥६॥

हे प्रभो ! इस भूमिमें आये हुए नित्यसूरि वृन्दोंको भी अनेक प्रकारसे पंचेन्द्रियाँ कष्ट पहुँचाया करती हैं । अहह प्रभो ! आप यदि इस अकिंचन दासको त्याग देंगे तो ये दुष्ट पंचेन्द्रियाँ मेरी क्या क्या दुर्दशा न करेंगी । जब आप मेरे शब्द और कविता और भक्तिमें स्वयं अनुरक्त रहते हुए भी प्रकाशित हो रहे हो । तो मेरे नेत्रोंके सामने आकर एक वाक्य तो कहदो कि (मोक्षयिष्यामि माशुचः) भाई घबड़ाओ मत मैं तुमको सर्व दुखोंसे मुक्त कर दूंगा ॥ ६ ॥

देवैश्चाप्यसुरैस्सहाम्बुधितले सर्पावृतं भूधरं
कृत्वामन्थनकृत्प्रभो मम हरे दिव्यामृतात्मा भवान् ।
कारुण्यन्तु विना तवात्र चपलैः क्षुद्रैश्च पंचेन्द्रियै
र्नित्यं पीड़ित एव तानि च कदा जेतुं प्रभुस्स्यामहम् ॥७॥

हे हरे ! पहले आपने देवता और असुरोंके साथ समुद्रतलमें वासुकी नामके सर्पसे लिपटे हुए पर्वतको डालकर समुद्रका मन्थन किया था । और मेरे लिये तो आप दिव्य अमृत स्वरूप हो । इस संसारमें अति चपल नीच कर्मोंमें ही प्रवृत्ति रखने वाली पंचेन्द्रियोंसे मैं निरन्तर पीड़ित हूँ । बिना आपकी कृपाके इन दुष्ट इन्द्रियोंको जीतनेकी सामर्थ्य मुझमें कहाँ है ॥ ७ ॥

स्वामिन् मे वरसूरिमूल भगवन् कृष्णात्र पंचेन्द्रियै
र्देवानामपि मोहनोऽसि महतीं मायां तवेमां हरे ।
निर्मूल्याद्य तवायुधादिसहितं दिव्यं शुभं विग्रहं
स्मर्तुं स्तोतुमिहार्चितुं च कुरु मे शक्तिं दयावारिधे ॥८॥

हे मेरे स्वामिन् ! सर्व श्रेष्ठ नित्य मुक्तोंके भी आप मूलकारण हो । हे कृष्ण भगवन् आप पंचेन्द्रियों द्वारा बड़े बड़े दिव्य ज्ञान वाले देवताओं को भी मोहमें डाल देते हो । हे हरे! अत्यन्त दुस्तर इस आपकी मायाको समूल नष्ट करके पंचायुधोंके सहित आपके सर्व कल्याण मय दिव्य विग्रहको मैं स्मरण करूं । उसकी स्तुति करूं, अर्चना करूँ ऐसी शक्ति मेरे लिये हे दया समुद्र दे दीजिये ॥८॥

भूम्यादीनि जगन्ति सर्वचिदचिद्वर्गैस्सृजन् प्राग्भवान्,
कृष्णो मे प्रभुरद्य भाति च परं ज्योतिस्स्वयं भास्वरम् ।
वंशोन्मूलन तापकारण महापापावलेर्वर्द्धके,
गर्ते दुर्विषयात्मके पतनकृत्पंचेन्द्रियात्पाहि माम् ॥६॥

हे भगवन् ! आप सर्व प्रथम भूमिसे आदि लेकर समस्त चिद्वर्ग और अचिद्वर्ग की रचना करते हुए स्वयं अत्यन्त प्रकाशमान ज्योति स्वरूप आज मेरे लिये प्रतीत हो रहे हो। कुलको समूलनाश करने वाले पाप कर्मोंके कारणरूप और अनेक पापसमूहोंको बढ़ाने वाले दुष्ट विषयरूपी गड्ढे में डालने वाले इन पंचेन्द्रियरूपी शत्रुओंसे मेरी रक्षा कीजिये ॥६॥

प्राक् पाथोनिधिमन्थनादमृतहृन्मूर्ते सुतेजोनिधे,
मे स्वामिन्निति च स्तवैस्तव पदाम्भोजद्वयप्रेमतः ।
चित्तं मे द्रुतमस्ति यद्यपि तथाऽप्यत्यन्तभाराश्रयं,
देहं मे कृतवानसीह विषया मां पीडयन्तीन्द्रियैः ॥१०॥

हे अत्यन्त दिव्य तेजके भंडार मेरे स्वामी पहले आपने समुद्र मंथनसे उत्पन्न हुए अमृतको असुरोंके हाथोंमें से हरण करनेके लिए मोहनी रूप धारण किया था। यद्यपि मेरा चित्त अत्यन्त प्रेमके साथ आपके चरण कमलों की स्तुति करके द्रवीभूत हो रहा है। तथापि आपने मेरे शरीरको पंचेन्द्रियोंके भारसे लाद दिया है। हे प्रभो इन्द्रियोंके पंचविषय मेरेको अत्यन्त पीड़ा पहुँचा रहे हैं ॥१०॥

त्रैगुण्याश्रयतस्त्रिमूर्तितनुभृद्यःसृष्टि रक्षालयान्,
कुर्वन्नाभिसरोजभृत्र सलिले तं शायिनं माधवम् ।
स्तोतुं तस्यहि दासदासपरिषद्दासानुदासस्स्वयं,
साहस्रं शठ जिच्चकार दशकं चेदं विदन्तोऽनघा ॥१॥

जो प्रभु रजोगुण तमोगुण सत्वगुण इनके आश्रय से ब्रह्मा शिव ष्णुकी मूर्ति धारण करके सृष्टि रक्षा और प्रलयोंको किया करते हैं।

प्रलयकालके अनन्त जलमें शयन करते हुए अपनी नाभिमें जो सर्वलोकों के कारण रूप कमलको धारण करते हैं। उसी लक्ष्मीपतिकी स्तुति करने के लिए, ईश्वरके दास और उनके दासोंकी मंडलीके भी जो दासों के दास हैं। उन शठकोपमुनिने सहस्रगीति की रचनाकरी उसमें इस दशकको जो जान लेंगे उनके सर्व प्रकारके पाप नष्ट हो जायेंगे ॥११॥

इति श्रीसहस्रगीतौ षष्ठशतकं समाप्तम्।



अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके द्वितीयदशकारम्भः।

इस दशकमें पंचेन्द्रिय शत्रुओंसे भयंकर संसारसे उकताकर आल्वार भगवान् श्रीरंगनाथकी प्रपत्ति करते हैं। और प्रभुके प्रेमानुभवमें एक विरहिणी नायिकाकी दशाको प्राप्त हो जाते हैं। उस दशाका वर्णन माताके वाक्यों द्वारा किया जाता है।

निद्रां नाप्नोति नक्तं दिवमियमबला स्यात्किरन्ती स्वहस्ता
दश्रून् ते शंखचक्रे विशदयति करोत्यञ्जलिं हस्ततोऽपि।
पद्माक्षेत्यार्तिवश्या तव विरहवशा हा कथं स्यामिति त्वां,
सर्वत्रेयं विचिन्वन्त्यहह कथमियं जीवतीत्यद्य वेत्सि ॥१॥

हे भगवन् रंगनाथ! आपके विरह के वश में होकर यह अबला (शठकोप नायिका) दिन रातमें कभी नहीं सोती। और अपनी आँखों के आँसुओंको हाथोंमें लेकर चारों ओर बिखेरती है। और दोनों हाथ जोड़कर आपके शंख चक्रोंकी प्रशंसा करती है। और हे कमल दल लोचन आपके संयोग के विना मैं किसी प्रकार भी जीवित नहीं रह सकती। अत्यन्त दुःख परवश होकरके बारबार कहतीहै। और सर्वत्रही (खोए हुए रत्नके समान) आपको ढूंढती है। अहह प्रभो! क्या आप इस बातको जानते हैं कि यह अपना कष्टमय जीवन किस प्रकार बिता रही है।

जिस प्रकार श्री जनकनन्दिनी श्रीराम स्वामीके विरहमें निर्निद्र होकर अहर्निश उनकी चिन्ताहीमें रावणकी अशोक वाटिकामें बिताती थीं, यही दशा आज आल्वार की भी हुई है ॥१॥

किंवा कुर्याःसरोजाम्बक मयि कृपयेत्येव चिन्ताकुला स्या
द्वाष्पावल्या च रङ्गेश्वररुचिरसरिन्नायकेत्येव वक्ति ।
उच्छ्वासैश्च द्रता स्यात् स्मरति किल पुराकर्मनीलाब्दवर्णं,
सृष्टिस्थित्यन्तहेतुं कथयति च कथं हन्त वोज्जीविता स्यात् ॥२॥

हे राजीव लोचन ! आप इस दासीके लिए क्या करना चाहते हो इस प्रकार यह कहती है । हे रंगेश्वर, हे सुन्दर तरंग वाली नदी के स्वामी, आप मेरे ऊपर कृपा करिये इस प्रकार कहती है। तथा अत्यन्त चिन्ताकुल होकर आंसुओंकी धारा बहाती हुई गरम और लम्बे साँस लेकर द्रवी भूत होती है। और कहती है कि हाय ! मेरे पूर्व जन्मके पाप कब कटेंगे । जो प्रभु संसार की सृष्टि रचा और प्रलयका कारण है । उस नील मेघके समान वर्णवाले प्रभुको पुकारती है । कि हे प्रभो ! आपका चरण सहारा ही हमारे जीवनका आधार है । इस प्रकार कह करके ही अपने प्राणों को धारण करती है ॥२॥

लज्जाहीनेव भाति स्वयमिह मणिवर्णेति खं पश्यतीयं,
मूर्च्छामाप्नोति वीरासुरकुलहननेत्येव चित्ते द्रुता स्यात् ।
काकुत्स्थ त्वामदृश्यं कथय कथमहं हन्त पश्यामि कृष्णे-
त्यार्ताश्रीरङ्गनाथ ! त्वमिह वद कथं किं करोष्यद्य चास्याः ॥३॥

हे श्रीरङ्गनाथ आज यह स्वयम् लज्जाहीन होकर हा ! मणिवर्ण कह कर आकाश को देखती है । और मूर्छाको प्राप्त हो जाती है । अति प्रबल असुर कुलका नाश करने वाले प्रभो कह कर मनमें द्रवीभूत होती है । हे ! काकुत्स्थ और हे कृष्ण इन नेत्रोंके प्रत्यत्त न होने वाले आपको मैं किस प्रकार देख सकूं यह तो कहिये । इस प्रकार अत्यन्त दुःखी हो जाती है । तो क्या प्रभो आपने इस बिचारी के लिए क्या करना विचारा है सो तो बतादीजिए ॥३॥

निश्चेष्टा पाणिपादे भवति चरति चाप्यन्तरा मोहितास्या-
त्कृत्वा चाप्यञ्जलिं सा विषयचपलतां वक्ति धिङ्मूर्छिता स्यात् ।

क्रूरोऽस्यम्भोधिवर्णेत्यपि वदति समाहूय हे चक्रपाणे,
मामायाहीति मोहं भजति किल हरे रङ्गराट् ! किन्तु कुर्याः ॥४॥

हे रंगनाथ ! यह नायिका कभी तो हाथ पाँवोंकी चेष्ठा से शून्य हो जाती है । और कभो मनमे मोहको प्राप्त होती हुई विचरण करती है । और हाथ जोडकर प्रणाम करती है । और कहती है कि प्रियतम का प्रेम बडा ही दुखदायी है । इस प्रेम के लिए धिक्कार है । कहकर मूर्छित हो जाती है । और फिर कहतीहै कि समुद्रके समान नीलवर्ण वाले तुम बडे निर्दयी हो । और फिर उस प्रभुको बुलाकर कहती है कि चक्रपाणे आप मेरे पास आइये । इस प्रकार कह कर मोहको प्राप्त होती है । हे हरे ! आप इसके लिये क्या उपाय करेंगे ॥४॥

सञ्चिन्त्यैवापि मोहं भजति पुनरियं याति संज्ञां च भक्त्या,
कृत्वा चाप्यञ्जलिं त्वां नमति किरति सा रङ्गराजेति चाश्रून् ॥५॥
आयाहीत्येव मोहं भजति नरहरे सायमुद्भिन्नदैत्य !
क्षीराब्धे प्राप्तपूर्णामृत कुशलमतिं कन्यकां मोहयेः किम् ॥५॥

हे प्रभो ! यह मेरी पुत्री आपकी चिन्ता करकेही मोहको प्राप्त हो जाती है । और फिर सचेत हो होकर बड़ी भक्तिके साथ दोनों हाथों की अजलि करके आपको प्रणाम करती है । और यह मेरा प्रभु रंग नगरमे वास करता है ऐसा कह कर आंसुओंको बहाती है । सायं काल के समय अति प्रबल दैत्यहिरण्यकशिपु के वक्षस्थलको विदीर्ण करने वाले श्रीनरसिंह प्रभो आइये दर्शन दीजिये कहकर अचेत हो जाती है । क्षीर समुद्रसे पूर्ण अमृतको प्राप्त करने वाले प्रभो ! मेरी सरल चित्त वाली पुत्रीको क्या मोह में ही डालोगे ॥५॥

मायिन् मुग्धां च कृत्वा मम हरसि मनो रम्यवक्त्रोऽसिरत्ने,
त्येवं शीताम्बुधारावृतशुभनगरीरङ्गनाथेति वक्ति ।
धत्से तीव्रासिचापौ सुरवरकरतश्शंख चक्रे गदां चे,
त्येवं श्रीशेषशायिन् त्वयिधृत हृदयां तामिमां किन्तु कुर्याम् ॥६॥

हे अनेक मायाओंको रचने वाले प्रभो आप मुझे अपनी मोहनी

दर्शन माधुरी से मोहित करके मेरे चित्त को चुराते हो। तुम अत्यन्त रमणीय होते हुए भी बड़े टेढ़े हो। मेरे लिये आप रत्न रूप हो। शीतल स्वच्छ कावेरी की जल धाराओंसे घिरी हुई अति सुन्दर रंग नगरीके आप स्वामी हो। इस प्रकार यह मेरी पुत्री कहती है। हे शेषके ऊपर शयनकरने वाले आपके चरणोंके बीचमेंही यह अपनेमनको लगा कर कहती है, कि हे प्रभो आप समस्त देवताओं में श्रेष्ठ होकर आश्रितोंके विरोधियों को नाश करनेके लिए अति तीव्र खड्ग और शंख चक्र तथा गदाको धारण करते हो। इस प्रकार कहने वाली इस मेरी पुत्री के लिये मैं क्या करूं ॥६॥

नाना दुःखानि भोगानपि वितरसि भो दीनबन्धो दयालो
कालाधीशोऽसि चाम्भोनिधिकृतशयनः कृष्ण गम्भीरभावः।
मीनाक्रान्ताम्बुधारावृतशुभनगरी रंगनाथेति तीर्थे-
त्येवं बाष्पालिवर्षान् प्रवहति सततं मत्सुता कोमलाङ्गी ॥७॥

हे दीनबन्धो! हे दयालो आप समस्त प्राणी वृन्दोंके लिए नाना प्रकारके दुख और सुखोंको दिया करते हो। आप कालके भी अधिष्ठाता हैं। समुद्रमें शयन करने वाले! अति गहन चरित्रोंको करके कृष्णरूपसे रहने वाले आपहो। मछलियोंकी उछलनसे शोभायमान कावेरीकी जल-धाराओंसे घिरी हुई अति कल्याणदायक रंगनगरीके आप अधिष्ठाता हो। समस्त पाप और दुखोंसे तारनेके लिए मेरे लिए तीर्थस्वरूप हो। इस प्रकार कहती हुई कोमलांगी यह मेरी पुत्री निरंतर आँसुओंकी धाराओंको बहाती है ॥ ७ ॥

सूरीन्द्रोत्तंसभूषामणिरयमचलोद्धारको गोपतिश्चे-
त्येवं क्रन्दन्त्यनाथा भजति च बहुसन्ताप निश्वासशीला।
तिष्ठन्ती नीलवर्णेत्यपि गगनमियं पश्यति व्यायताक्षी
त्वां पश्येयं कथंवेत्यपि वदति विभो रङ्गराट् किन्नु कुर्याम् ॥८॥

हे रंगराज! आप सूरीन्द्रोंके प्रधानोंके भूषणमणि हो गोव-उठाकर गौओंकी रक्षा करने वाले हो। ... प्रकार ...

कर अनाथके समान यह करुण क्रन्दन करती है । और वारम्वार गर्म गर्म लम्बे स्वासोंको निकालती हुई दुःखोंसे अति सन्तप्त होती है। और फिर खड़ी होकर आँख फाड़करके आकाशको देखती है । और नीलवर्णका नाम लेकर चिल्लाती है । और कहती है कि हे प्रभो ! मुझे आपके दर्शन किस प्रकार होंगे । इस प्रकार कहने वाली इस पुत्रीके लिए मैं क्या करूं ॥ ८ ॥

मन्नाथ श्रीधरोरस्स्थल मम सकलप्राणरूपेति वक्ति,
स्वैरं दंष्ट्राग्रतो भूभरण वृषजयव्यूढगोपी प्रियेति ।
श्रीमद्रङ्गाभिधाने कृत निज वसते दक्षिणेऽस्मिन् पुरेत्वं,
नित्यं वाभासि विष्णो त्वयि सततमियं मोहिता किं भवेद्वा ॥९॥

हे विष्णो ! यह मेरी पुत्री कहती है कि लक्ष्मीको सदा ही वक्षस्थलमें धारण करने वाले मेरे नाथ आपतो समस्त प्राणस्वरूपी हो आपने अपनी इच्छासे दाढ़के अग्रभागमें भूमिको धारण किया था और सात साड़ोंका दमन करके नीलादेवीके प्रेम पात्र हुए थे । और दक्षिण दिशामें स्थित इस रंगनगरको आपने अपना निजी वास स्थान बनाकर उसमें प्रकाशमान हो रहे हो । आप में निरन्तर यह क्या मोहको ही प्राप्त होती रहेगी ॥ ९ ॥

अस्यादुखान्तं किं मम भवति न वेद्मीति वक्तीयमेव,
त्रैलोक्याधीशशम्भो विकचसुमजटाभृच्चतुर्वक्त्र देव ।
सूरीणां नायकेति स्वयमियमनिशं रंगनाथेति वक्ति,
भ्रान्त्येव त्वत्पदाब्जे जलदरुचियुतः प्राप्तसत्ता चकास्ति ॥१०॥

यह मेरी पुत्री कहती है कि मेरे इस अपार दुःखको नाश करने वाला उपाय क्या है ? इस बातको मैं नहीं जानती । त्रैलोकके अधीश भगवन् शम्भो तथा खिले हुए फूलोंसे सजी हुई जटाओं को धारण करने वाले चतुर्मुख ब्रह्माजी । यह निरन्तर यही कहा करती है कि हे नित्यसूरियोंके स्वामी हे रंगनाथ ! इसप्रकार कहकर नीलमेघके समानवर्ण वाले आपके चरण कमलोंमें ही यह पागलके समान

आसक्त हो गई है । इसी कारण इसको आज वह आत्मसत्ता प्राप्त हुई है । जिसके कारण इसका तेज सर्वाधिक होकर संसारमें प्रकाश मान हो रहा है ॥ १० ॥

मेघश्यामांघ्रियुग्मं शरणमुपगतः श्रीशठारिस्स्वपुर्यां,
वृत्तावल्याम्बुधाराद्यवतरणतले दिव्यसाहास्रकर्त्ता ।
विष्णोःस्तुत्यै विदुर्ये दशकमिदममी दिव्यसूरीन्द्रधाम्नि,
प्राप्य स्थानं परं तत् सततमपि भवन्त्यद्भुतानन्दसिन्धौ ॥११॥

मेघके समान श्यामवर्ण वाले प्रभुके चरण युगलोंकी शरणमें प्राप्त हुए श्रीशठकोपमुनिने नाना भाँतिके वृत्तोंसे शोभायमान स्वच्छ जलधारा वाली नदी से शोभायमान कुरुकापुरीमें विष्णुकी स्तुति करनेके लिये दिव्य सहस्र गीतिको किया । उसमें इस दशकको जो जान लेंगे वे पुरुष नित्य मुक्तोंके अधिष्ठता भगवान् विष्णुके वैकुंठमें उत्तम स्थानको प्राप्त होकर निरन्तर ही आनन्द समुद्र मग्न रहेंगे ॥११॥

इति श्री सहस्रगीतौ सप्तमशतके द्वितीयदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके तृतीयदशकारम्भः

इस दशकमें श्रीवेरपुरमें विराजनेवाले प्रभुके दिव्यदेशके दर्शनकरनेकेलिये नायिकाका मन चंचल हो रहा है । और वे इस चंचलता में अपने शरीर के व्यवहारको भूल जाती हैं । इस दशाको देख कर उसका कारण पूछने वाली माता और सखियों से उक्त दिव्य देशका महत्व आल्वार वर्णन करते हैं ।

यूयं नैव हि वित्थ मातर इदं श्रीशङ्खचक्रे वहन्,
पद्माक्षो हृदिमेऽत्र तार्क्ष्यमधिरुह्यास्ते च संचारवान् ।
वैरशब्दै रिह वर्णयामि सुसुखावासं हरेस्तस्य तु,
श्रीवेराख्यपुरं भजे श्रुतिरवैर्युक्तं च वाद्यारवैः ॥ १ ॥

हे माताओ आप इस बातको नहीं जानती कि यह कमल-लोचन परमात्मा शंख चक्रोंको धारण करके गरुड़के ऊपर चढ़ करके इस मेरे हृदयमें संचरण कर रहा है । यही करता है और जो विद्वानोंकी

वेदध्वनि और अनेक प्रकारके वाजोंके शब्दोंसे युक्त है, उस श्रीवेरपुरनामके पुरको मैं किन शब्दोंसे वर्णन करूँ ॥ १ ॥

श्रीवेरपुरनामका दिव्यदेश पाँड्यदेशमें कुरुकापुरीसे थोड़ी दूर पर है, इसको उस देशकी भाषामें (तिरुप्पेरै) नामसे कहते हैं ।

हे सख्यशृणुताद्य मातर इमा यूयं च पार्श्वस्थिताः
चित्तं नैव हि मे वशं ममसदा दुर्निग्रहं भाति च ।
सक्तं भात्यधरे हि बिम्बसदृशे नक्तं दिवं श्रीपतेः
श्रीवेराख्यपुरे स्थितस्य तु हरेः कृष्णस्य देवेशितुः ॥२॥

हे प्यारी सखियो तथा पूज्य माताओ ! मेरे पासमें बैठी हुई आप सुनो कि अब मेरा मन मेरे वशमें नहीं है । और भविष्यमें उसका वश होना भी असम्भव है । मेरा मन तो जो समस्त देवताओंका स्वामी है, जो श्रीवेरनामके पुरमें स्थित है। जो लक्ष्मीका पति है, उस हरि कृष्णके बिम्बाफलके समान लालहोठोंमें दिन रात आसक्त हो रहा है ॥ २ ॥

मच्चित्तं सततं च सक्तमधरे बिम्बायिते श्रीहरे
र्भास्वन्मौलितले च पद्मनयने श्रीशङ्खचक्रद्वये ।
चित्तं मे सखि मासवासरमहादिव्योत्सवैरावृते
श्रीवेराख्यपुरे स्थिते भगवति न्यस्तं हि लज्जां विना ॥३॥

हे मेरी सखियो! जिसमें मासोत्सव पक्षोत्सव संवत्सरोत्सवादि सदाही हुआ करते हैं, उस श्रीवेरपुरनामके दिव्यदेशमें विराजमान भगवान्में ही मेरा चित्त निर्लज्ज होकर आसक्त होगया है । बिम्बाफलके समान उस श्रीहरिके लाल होठोंमें और चमकते हुए ललाटतलमें तथा कमलसदृश नेत्रोंमें और दोनों शङ्खचक्रोंमें मेरा चित्त निरंतर आसक्त होगया है ॥ ३ ॥

चेतो मत्प्रियमंतरंगमहह स्वैरं हि सक्तं नहि-
स्तत्रैवाद्य किमस्ति साध्यमिह मे मग्नोऽस्तिवेदध्वनेः ।

आसक्त हो गई है। इसी कारण इसको आज वह आत्मसत्ता प्राप्त हुई है। जिसके कारण इसका तेज सर्वाधिक होकर संसारमें प्रकाश मान हो रहा है ॥ १० ॥

मेघश्यामांघ्रियुग्मं शरणमुपगतः श्रीशठारिस्स्वपुर्या,
वृक्षावल्याम्बुधाराद्यवतरणतले दिव्यसाहास्रकर्त्ता।
विष्णोःस्तुत्यै विदुर्ये दशकमिदममी दिव्यसूरीन्द्रधाम्नि,
प्राप्य स्थानं परं तत् सततमपि भवन्त्यद्भुतानन्दसिन्धौ ॥११॥

मेघके समान श्यामवर्ण वाले प्रभुके चरण युगलोंकी शरणमें प्राप्त हुए श्रीशठकोपमुनिने नाना भाँतिके वृक्षोंसे शोभायमान स्वच्छ जलधारा वाली नदी से शोभायमान कुरुकापुरीमें विष्णुकी स्तुति करनेके लिये दिव्य सहस्र गीतिको किया। उसमें इस दशकको जो जान लेंगे वे पुरुष नित्य मुक्तोंके अधिष्ठता भगवान् विष्णुके वैकुंठमें उत्तम स्थानको प्राप्त होकर निरन्तर ही आनन्द समुद्र मग्न रहेंगे ॥११॥

इति श्री सहस्रगीतौ सप्तमशतके द्वितीयदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके तृतीयदशकारम्भः

इस दशकमें श्रीवेरपुरमें विराजनेवाले प्रभुके दिव्यदेशके दर्शनकरनेकेलिये नायिकाका मन चंचल हो रहा है। और वे इस चंचलता में अपने शरीर के व्यवहारको भूल जाती हैं। इस दशाको देख कर उसका कारण पूछने वाली माता और सखियों से उक्त दिव्य देशका महत्व आल्वार वर्णन करते हैं।

यूयं नैव हि वित्थ मातर इदं श्रीशङ्खचक्रे वहन्,
पद्माक्षो हृदिमेऽत्र तार्क्ष्यमधिरुह्यास्ते च संचारवान्।
कैस्शब्दै रिह वर्णयामि सुखुखावासं हरेस्तस्य तु,
श्रीवेराख्यपुरं भजे श्रुतिसेयुक्तं च वाद्यारवैः ॥ १ ॥

हे माताओ आप इस बातको नहीं जानती कि यह कमल-लोचन परमात्मा शंख चक्रोंको धारण करके गरुड़के ऊपर चढ़ करके इस मेरे हृदयमें संचरण कर रहा है। यही करता है और जो विद्वानोंकी

वेदध्वनि और अनेक प्रकारके बाजोंके शब्दोंसे युक्त है, उस श्रीवेरपुर-नामके पुरको मैं किन शब्दोंसे वर्णन करूँ ॥ १ ॥

श्रीवेरपुरनामका दिव्यदेश पाँड्यदेशमें कुरुकापुरीसे थोडी दूर पर है, इसको उस देशकी भाषामें (तिरुप्पेरै) नामसे कहते हैं ।

हे सख्यशृणुताद्य मातर इमा यूयं च पार्श्वस्थिताः
चित्तं नैव हि मे वशं ममसदा दुर्निग्रहं भाति च ।
सक्तं भात्यधरे हि बिम्बसदृशे नक्तं दिवं श्रीपतेः
श्रीवेराख्यपुरे स्थितस्य तु हरेः कृष्णस्य देवेशितुः ॥२॥

हे प्यारी सखियो तथा पूज्य माताओ ! मेरे पासमें बैठी हुई आप सुनो कि अब मेरा मन मेरे वशमें नहीं है । और भविष्यमें उसका वश होना भी असम्भव है । मेरा मन तो जो समस्त देवताओंका स्वामी है, जो श्रीवेरनामके पुरमें स्थित है । जो लक्ष्मीका पति है, उस हरि कृष्णके बिम्बाफलके समान लालहोठोंमें दिन रात आसक्त हो रहा है ॥ २ ॥

मच्चित्तं सततं च सक्तमधरे बिम्बायिते श्रीहरे
र्भास्वन्मौलितले च पद्मनयने श्रीशङ्खचक्रद्वये ।
चित्तं मे सखि मासवासरमहादिव्योत्सवैरावृते
श्रीवेराख्यपुरे स्थिते भगवति न्यस्तं हि लज्जां विना ॥३॥

हे मेरी सखियो ! जिसमें मासोत्सव पक्षोत्सव संवत्सरोत्सवादि सदाही हुआ करते हैं, उस श्रीवेरपुरनामके दिव्यदेशमें विराजमान भगवान्में ही मेरा चित्त निर्लज्ज होकर आसक्त होगया है । बिम्बाफलके समान उस श्रीहरिके लाल होठोंमें और चमकते हुए ललाटतलमें तथा कमलसदृश नेत्रोंमें और दोनों शङ्खचक्रोंमें मेरा चित्त निरंतर आसक्त होगया है ॥ ३ ॥

चेतो मत्प्रियमंतरंगमहह स्वैरं हि सक्तं वहि-
स्तत्रैवाद्य किमस्ति साध्यमिह मे मग्नोऽस्तिवेदश्वनैः !

उद्यद्वारिधि घोषराजिसदृशे रुद्भासिते श्रीहरे
श्रीवेराख्यपुरे स्थितस्य चरिते मय्याग्रहात्किं फलम् ॥ ४ ॥

अहह ! उछलती हुई तरंगों वाले समुद्रके घोषके समान सर्वत्र ही जहाँ पर वेदध्वनि हो रही है, उस श्रीवेरपुरमें स्थित उस श्रीहरिके विचित्र चरित्रोंमें मेरे भीतरका मन स्वयं ही आसक्त होगया है। मैं उस प्रभुके अनुभवानन्दमें ऐसी मग्न हुई हूँ कि मेरे लिए कोई भी वस्तु आज दुष्प्राप्य नहीं है, इस दशामें आप लोग जो मेरे चित्तको हटानेका दुराग्रह कर रही हो, उससे क्या फल होगा ॥ ४ ॥

कोपात्तं शकटं प्रमर्द्य कुमतिं तां पूतनां ध्वंसयन्
मध्ये वृक्षयुगस्य यस्स्म विशति क्षिप्त्वा च वत्सासुरम् ।
कृष्णं तं प्रति मे मनोऽस्ति सततं लज्जाविहीनं ततः
किं मय्याग्रहतः फलं त्यजत मां श्रीवेरपुर्यां क्षणात् ॥ ५ ॥

जिस श्रीकृष्णने क्रोधसे एक ठोकरमें ही शकटासुरका मर्दन किया था। और दुष्ट हृदय वाली पूतनाका जिन्होंने विनाश किया था। जो वत्सासुरका वध करके यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें उनका उद्धार करनेके लिए घुसेथे। श्रीवेरपुरीमें वास करने वाले उसी कृष्णमें निर्लज्ज होकर मेरा मन निरंतर आसक्त होगया है। इसलिये मुझे आप लोग थोड़ी देरके लिये हठ छोड़कर श्रीवेरपुरमें ही छोड़ दो ॥५॥

नीलाम्भोदनिभो हरिर्मम पुरस्तिष्ठत्यहो दूरतो
यात्येवाद्य करान्मम स्वयमियं त्वाशा ममात्युत्कटा ।
भूम्यामत्र स वर्तते किल चतुर्वेदाश्रयैर्वैदिकैः
श्रीवेराख्यपुरे तु सस्यभरिते तत्रैव नेयाऽस्म्यहम् ॥ ६ ॥

हे सखियो ! नीलमेघके समान विग्रह वाला श्रीहरि मेरे आगे खड़ा हुआ है। ओहो ! यह तो अब मेरे हाथमें से दूर जाता है। तथापि उससे मिलनेकी मेरी तीव्र अभिलाषा बढ़ती ही जा रही है। इस भूमिमें चारों वेदोंके पाठ करने वाले ब्राह्मणोंका जहाँ पर निवास है, जो हरे हरे खेतोंसे घिरा हुआ है, उस श्रीवेरपुरनामके पुरमें ही

मेरा प्रभु विद्यमान है, उस प्रभुकी सेवा करनेके लिए मुझको तुम लोग वहाँही लेचलो ॥ ६ ॥

प्राकारावृतवार्धिसंवृतमहालंकापुरीनाशक-
श्श्रीवेराख्यपुरेऽस्ति तत्रहि मनो मे मार्गयत्येव तम्।
नायात्येव किलान्यतश्च सखि मे केस्यु स्सहाया इह
भ्रान्तं मेऽद्य मनो न कोऽपि च पुनश्चाहूय सम्भावयेत् ॥७॥

हे सखियो! अनेक प्रकारके परकोटा और समुद्रसे घिरी हुई लंकाका नाश करने वाले मेरे प्रभु इस श्रीवेरपुरमें ही विराजमान हैं। मेरा मन उस प्रभुको ही ढूँढ़ रहा है, किन्तु अनेक उपाय करने पर भी वह मेरा प्रभु आकर मुझसे नहीं मिलता। इस कार्यमें मेरी सहायता करने वाली कौन हो सकती है। आज मेरा मन पागल होकर प्रभुके मिलनेकी चिन्तामें लगा हुआ है। हाय! इस संकटमें कोई भी मुझे बुलाकर आदर पूर्वक धैर्य बँधाने वाला नहीं है ॥ ७ ॥

सर्वे मामिह वाह्यचिन्हवशतश्श्रीनीलवर्णं प्रति
श्रीशं मे हृदयं द्रवीकृतमिति प्राहुर्हि निन्दावचः।
आशा मे सखि तावतैव महती पृथ्वी समुद्रघु लो-
कातीताऽस्ति वसामि तस्य वसतौ श्रीवेरपुर्यां स्वयम् ॥८।

हे सखियो! इस संसारमें श्यामसुन्दरके सम्भोसे उत्पन्न हुए वाह्य चिन्हों (नख दन्तादिकोंके चिन्ह) को देखकर सब लोग यह कहकर कि लक्ष्मीपतिके लिये ही इसका हृदय द्रवीभूत होगया है, निन्दा भरे वाक्य कहते हैं। और जबसे लोग मेरी निन्दा करने लगे हैं, तबसे मेरी प्रेम रूपिणी आशावल्ली नित्यप्रति बढ़तीही जा रही है। और वह पृथ्वी समुद्र स्वर्गलोकोंसे भी ऊंची चली गई है। मेरी यह बड़ी भारी अभिलाषा है कि उस प्रभुकी निवास भूमि श्रीवेरपुरीमें जाकर मैं स्वयं वास करूं ॥ ८ ॥

सख्यो मातर एवमद्य न तु मामाश्वासयेत स्वयं,
किं वक्तव्यमिहास्ति वो मम मनः पूर्तिश्च नास्तीह हि।

कृष्णः श्यामलवर्ण एष भगवानास्ते स्वयं श्रीधरः
श्रीवेराख्यपुरे हि सस्यभरिते तत्रैव यामि क्षणात् ॥ ९ ॥

आज मेरी सखी और माता भी मुझे किसी प्रकारका आश्वासन नहीं देती हैं। और मैं उनसे कह भी क्या सकती हूँ। क्योंकि उनके वाक्योंसे मेरे मनमें किसी प्रकार के सन्तोषकी पूर्ति भी नहीं होती। लक्ष्मीपति श्यामसुन्दर भगवान कृष्णस्वयं हरीखेतियोंसे घिरेहुए श्रीवेरपुरमें विराजमान हो रहे हैं। मैं वहींपर एकक्षण भरमें जाऊंगी ॥ ९ ॥

सख्यो मेशृणुत प्रभास्वरमहासौधाञ्चितेऽस्मिन् पुरे,
श्रीवेरे मकरायतश्रुति पुटो मायी हरिश्श्रीधरः।
हत्वा तान् शतकौरवानपि चिराञ्चित्तं च नीलाम्बुद-
श्चक्री मेहृतवान् विचित्य तमनु व्रज्यां नलज्जाऽस्ति मे ॥१०॥

हे मेरी सखियो! सुनो तो सही अत्यन्त चमकने वाली शिखरोंसे शोभित इस श्रीवेरपुरमें अनेक मायाओंको रचने वाले, लक्ष्मीको धारण करने वाले, मकराकृति कुंडलोंको कर्णोंमें धारण करने वाले भगवान श्रीहरि विराजमान हो रहे हैं। जिसने आश्रितोंकी रक्षा करने के लिए सौ कौरवोंको मारा था। नीलमेघ समान कान्तिधारी चक्रधारी उस प्रभुने ही बहुत दिनोंसे मेरा चित्त चुरालिया है। मैं भी अब उसको ढूढनेकेलिये उसीके पीछे पड़ूगी इसमें मुझे लज्जा करनेका कोई कारण प्रतीत नहीं होता ॥ १० ॥

नानाकल्पयुगादिषु स्वयमहो नामानि रूपाणिसद्-
वृत्तादीनि पृथग्बिभर्ति य इमं स्तोतुं जगत्पालकम्।
नीलाम्भोधिनिभं शठारिवदत्साहसमन्तादिकं,
श्रीवेराख्यपुरं प्रतीह दशकाद् भक्तास्तु चक्राग्रिताः ॥ ११ ॥

जो प्रभु अनेक प्रकारके कल्प और युगोंमें स्वयं अनेक प्रकारके नाम और रूप को धारण करते हैं और उत्तम चरित्रोंको भिन्नभिन्न

रीतिसे किया करते हैं । जो सर्व प्रकारसे इस जगत्का पालन करते हैं, नीलसमुद्रके समान जिनका श्यामसुन्दर वर्ण है। उन प्रभुकी स्तुति करनेके लिए शठकोपमुनिने सहस्रगीति कही। उसमें श्रीवेरपुरका महत्व बतलाने वाले इस दशकको पढ़ करके पुरुष अवश्यही शङ्ख चक्रधारीके रूपको प्राप्त हो जायेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके तृतीयदशकं समाप्तम् ।



अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके चतुर्थदशकारम्भः

इस दशकमें आल्वार परमप्रभुके ससारमें विजयद्योतक चरित्रोंका अनुभव करते हैं।

चक्रं च शंखइह शार्ङ्गमपि क्रमेण,
दिग्वन्दिवाक्ततिगदासिगणाः किलोच्चाः ।
अरडाजुलानि मकुटाङ्घ्रितले किलोच्चे,
कालोद्गमे ननु हरे जगदाक्रमोऽयम् ॥ १ ॥

जिस समयमें श्रीहरिने इस जगतको आक्रमण किया था, उस समय उनकेचक्र और शङ्ख तथा शार्ङ्ग धनुष ये समस्त आयुध अति विशाल और तेजस्वी थे, तथा समस्त दिशाओंमें मंगलाशासनघ्वनिकी उच्च ध्वनि थी। तथा गदा और खड्गभी उच्चकोटिके थे। चरण धोनेके लिये अण्डका जल भी उच्चकोटिका था, मुकुट और चरण कमल भी आपके उच्चकोटिके थे।

जिस समयमें भगवान् बली आदि असुरोंको विजय करनेके लिये वामनरूपसे गये थे। और फिर तीन लोकोंको नापनेके लिए आपने त्रिविक्रमरूप धारण किया था, उस समय आपके भूषण और आयुध तथा समस्त उपकरण ही दिव्य और उच्चकोटिके थे, ऐसा आल्वारका अनुभव है ॥ १ ॥

सर्वेश्वरेण विबुधोत्सवमन्थकाले
दिव्योमृतार्जनविधौ संरितो गिरीस्तान् ।

प्रत्युद्गता इति च वासुकिमन्दरोत्था
मन्थे च शब्दसरणिर्महती महाब्धौ ॥ २ ॥

जिस समय सर्वेश्वरने देवताओंको अजर अमर बनानेके लिए समुद्र मन्थनसे अमृत निकालनेका उपाय रचा था, उस समय वासुकी नामके सर्पको मंदराचल पर्वतसे लपेटकर मंथन करनेका शब्द सब दिशाओंमें फैल गया था। और नदियोंका प्रवाह समुद्रकी ओरसे लौटकर उन पर्वतोंकी ओर जाने लगा था, जिनसे कि वे नदियाँ निकली हैं। और मन्दराचलके घूमनेसे समुद्रमें एक महान् अद्भुत प्रकारका शब्द होने लगा था ॥ २ ॥

देवे तदाण्डतलतः पृथिवीन्तु भृङ्गा-
दुद्धृत्य बिभ्रति निजस्थितिमेव याता ।
सप्तान्तरीपसरणिर्गिरयोऽपि सप्त
स्वस्थानगा जलधयोऽपि च सप्त सुस्थाः ॥ ३ ॥

जिस समय मेरे इष्टदेवने ब्रह्माण्डके नीचेके भागसे अपने दाँतसे पृथ्वीका उद्धार किया था। उस समय वह पृथ्वी स्थिररूपसे थी और सप्तद्वीप पर्वत और सप्त समुद्र ये ज्योंके त्यों अविचल भावसे उस पृथ्वी पर थे। अर्थात् पृथ्वीका उद्धार करनेके समय पृथ्वीके ऊपर रहने वाले सप्तद्वीप सप्त पर्वत और सप्त समुद्र ये बिना हले चले ही ज्योंके त्यों बने रहे। इसी प्रकारकी पृथ्वीको आपने महासमुद्रजलमें से निकालकर उसके ऊपर बसाया था ॥ ३ ॥

देवस्य भक्षणविधिर्जगतां तु कीदृक
कालश्च भूमिरपि वारिनभोग्रहाश्च ।
अग्निश्च वायुरपिघोररवैः प्रणष्टाः
निर्मूलिताश्च गिरयो महसां प्रणाशैः ॥ ४ ॥

उस देव परमात्माकी संसारको खानेकी विधि भी बड़ी विलक्षण है। जिस समय (प्रलयकाल) में आप संसारको भक्षण करने लगे थे। उस समय काल भूमि, जल, आकाश, तारागण, अग्नि,

वायु ये सब अपनी अपनी सत्ताओंके नाशके साथ भयङ्कर शब्द करते हुए नष्ट होगये थे । और बड़े बड़े पर्वतभी जड़में से उखड़ गयेथे ॥४॥

देवस्य वृत्तमिह भारतयुद्धकाले
दिव्यं हि मल्लसरणिः प्रबला च भग्ना ।
राज्ञां बलिष्ठपृतनाः किल कम्पितास्ताः
खस्थास्सुराश्च पुरतः प्रबलैश्च शब्दैः ॥ ५ ॥

हमारे इष्टदेव कृष्णका महाभारत युद्धके समयमें बड़ा ही विचित्र चरित्र है । आपने बड़े बड़े प्रबल मल्लोंको मारकर धूलमें मिलाया था । राजाओंकी बड़ी प्रबल सेनाओंको तृणके समान कँपाया था । और आकाशमें रहने वाले असुरोंको बड़े भयङ्कर शब्दोंके साथ नष्ट किया था ॥ ५ ॥

देवो दिनान्तसमये गगने च दिक्षु
द्रागेव शोणितसरित्प्रसरान् प्रवाह्य ।
दैत्यासुरप्रमथनं कृतवानितीदं
त्वद्रेर्हि केशरिकृतं च विदारणं स्यात् ॥ ६ ॥

उस हमारे इष्टदेव नरसिंहने सूर्यास्तके समय आकाश और दिशाओंमें अति शीघ्रतासे खूनकी नदियोंको बहाकर दैत्य और असुरोंका मथन किया था। और पर्वतके समान अति विशाल और दृढ़ खंभका विदारण करके जो प्रकट भये थे, उस नृसिंहके चरित्र बड़े ही आश्चर्यकारक हैं ॥ ६ ॥

उद्घोषशालि शरवर्षगणैश्शतानां
रक्षःकुलस्य निधने रुधिरप्रवाहः ।
अब्धिं च रक्तमयमेव हि कुर्वते स्म
श्रीशो हरिस्समहरत् यदा च लंकाम् ॥ ७ ॥

इस लक्ष्मीपति श्रीहरिने रामरूपसे जब लङ्काका संहार किया था । उस समय भयंकर शब्दोंको करने वाले हज़ारों बाणोंकी वर्षासे

राक्षस कुलका नाश करते समय रक्तकी नदियाँ बहाई थीं और समुद्रको भी रक्त जलमय कर दिया था ॥ ७ ॥

बाणासुरस्य बहुबाहुतति प्रभेत्ता
देवो यदा किल तदा ध्वजकुक्कुटेशः ।
ज्वालामयोऽपि दहनश्च स च त्रिणेत्र
स्सर्वे पलायनकरास्सकलैर्हि दृष्टः ॥ ८ ॥

जिस समय हमारे इष्टदेवने कृष्णरूपसे बाणासुरके सहस्र बाहुओंका छेदन करना प्रारम्भ किया था। उस समय मयूरकी ध्वजा वाले प्रबल प्रतापी कार्तिकेय। और अनेक ज्वालाओं वाले अग्निदेव। तथा तीन नेत्र वाले श्रीरुद्रदेव ये सब भयके मारे मनमानी दिशाओंमें भागे थे, यह दृश्य प्रायः सभी देवताओंने देखा था ॥ ८ ॥

देवो यदातु जगतामपि सर्गकर्त्ता
भूमिं जलं च दहनानिलदेवमार्गान् ।
अद्रीन् रविं च शशिनं महसां ततीश्च
वृष्टिं च देव निवहानकरोत्तदाऽन्यान् ॥ ९ ॥

जिस समय हमारे इष्टदेवने, जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छाकी थी, उस समय भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश अनेक प्रकारके पर्वत तथा सूर्य और चन्द्रमा और तारागणोंके समुदायोंको तथा मेघ और अनेक जातिके देवतागणोंको तथा संसारमें रहने वाले अनेक प्रकारके जड़चेतन वर्गोंको उत्पन्न किया था ॥ ९ ॥

यासोद्यताश्च पशवोऽद्रितलादधस्तात्
संरचिता निपतिताश्च गिरेर्गजाद्याः ।
अत्युल्कटाश्च सरितस्तु हरिः प्रवर्षात्
त्रातुं च गोकुलजनान् गिरिधृग्यदाऽऽसीत् ॥ १० ॥

जिस समय इन्द्रके प्रकोपसे की गई प्रबल वर्षासे व्रजमें चारों ओर जलकी बाढ़ आरही थी, घास खाती हुई गौ भी नीचेको मुख करके

प्राण बचानेकी चिन्तामें लगी हुई थीं, और मूसलाधार वर्षाके प्रवाहमें पहाड़ोंसे हाथी आदि बड़े बड़े बलशाली जन्तु बहे जा रहे थे। उस समय उस प्रलयवर्षासे] व्रजवासियोंकी रक्षा करनेके लिए उस हमारे इष्टदेव हरिने पर्वतको अपने हाथ पर धारण किया था ॥ १० ॥

गोवर्द्धनोद्धरण कृत्प्रभुभक्तवर्गै-
र्यस्संगतोऽस्ति शठजित्सततं तदीये।
साहस्रके तु दशकं तदिदं पठन्त
स्सर्वत्र चापि जयमेव सदा लभन्ते ॥ ११ ॥

गोवर्धनका उद्धार करने वाले प्रभुके भक्त समाजमें जो सदा सम्मिलित रहते हैं। ऐसे शठकोपमुनिने जो सहस्रगीति बनाई है। उसमें इस दशकको जो पढ़ेंगे उनको सर्वत्र विजय प्राप्त होगी ॥१०॥

इति श्री सहस्रगीतौ सप्तमशतके चतुर्थदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके पंचमदशकारम्भः।

इस दशकमें प्राणिओंकी सर्वविधि रक्षा करने वाले परमात्माके अवतार लेनेके कारण उत्तम गुणोंको छोड़ कर अन्यका आश्रय लेना उचित नहीं है यह कहा है।

सर्वे चापि चराचरास्सुमहितायोध्यापुरे वासिन-
स्सर्वत्रापि विपीलिकातृणमुखास्सृष्टौ च धातुस्स्वयम्।
मुक्त्यै साधनवर्जिता अपि परं धामाऽव्ययं प्रापिताः
किं रामन्तु विना प्रभुं तदितरा सक्तास्युरेवोत्सुकाः ॥१॥

जिन भगवान श्री रामचन्द्र ने अयोध्यापुरीमें वास करने वाले चींटीसे लेकर तृण पर्यन्त समस्त चराचर जीवोंको जिनको कि ब्रह्माकी सृष्टिमें मुक्तिकी प्राप्तिका किसी प्रकारका साधन प्राप्त नहीं था। (अर्थात् मुक्तिके सर्व प्रकारके साधनोंसे शून्य थे) उन सबको अविनाशी धाम मोक्षमें पहुँचा दिया। उन प्रभु रामचन्द्रको छोड़कर क्या भक्त गण किसी अन्यका स्मरण करेंगे ? अर्थात् चराचरके कल्याण

राक्षस कुलका नाश करते समय रक्तकी नदियाँ बहाई थीं और समुद्रको भी रक्त जलमय कर दिया था ॥ ७ ॥

बाणासुरस्य बहुबाहुतति प्रभेत्ता
देवो यदा किल तदा ध्वजकुक्कुटेशः ।
ज्वालामयोऽपि दहनश्च स च त्रिणेत्र
स्सर्वे पलायनकरास्सकलैर्हि दृष्टाः ॥ ८ ॥

जिस समय हमारे इष्टदेवने कृष्णरूपसे बाणासुरके सहस्र बाहुओंका छेदन करना प्रारम्भ किया था। उस समय मयूरकी ध्वजा वाले प्रबल प्रतापी कार्तिकेय। और अनेक ज्वालाओं वाले अग्निदेव। तथा तीन नेत्र वाले श्रीरुद्रदेव ये सब भयके मारे मनमानी दिशाओंमें भागे थे, यह दृश्य प्रायः सभी देवताओंने देखा था ॥ ८ ॥

देवो यदातु जगतामपि सर्गकर्त्ता
भूमिं जलं च दहनानिलदेवमार्गान् ।
अद्रीन् रविं च शशिनं महसां ततीश्च
वृष्टिं च देव निवहानकरोत्तदाऽन्यान् ॥ ९ ॥

जिस समय हमारे इष्टदेवने, जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छाकी थी, उस समय भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश अनेक प्रकारके पर्वत तथा सूर्य और चन्द्रमा और तारागणोंके समुदायोंको तथा मेघ और अनेक जातिके देवतागणोंको तथा संसारमें रहने वाले अनेक प्रकारके जड़चेतन वर्गोंको उत्पन्न किया था ॥ ९ ॥

घासोद्यताश्च पशवोऽद्रितलादधस्तात्
संरक्षिता निपतिताश्च गिरेर्गजाद्याः ।
अत्युत्कटाश्च सरितस्तु हरिः प्रवर्षात्
त्रातुं च गोकुलजनान् गिरिधृग्यदाऽऽसीत् ॥ १० ॥

जिस समय इन्द्रके प्रकोपसे की गई प्रबल वर्षासे व्रजमें चारों ओर जलकी बाढ़ आरही थी, घास खाती हुई गौ भी नीचेको मुख करके

प्राण बचानेकी चिन्तामें लगी हुई थीं, और मूसलाधार वर्षाके प्रवाहमें पहाड़ोंसे हाथी आदि बड़े बड़े बलशाली जन्तु बहे जा रहे थे । उस समय उस प्रलयवर्षासे व्रजवासियोंकी रक्षा करनेके लिए उस हमारे इष्टदेव हरिने पर्वतको अपने हाथ पर धारण किया था ॥ १० ॥

गोवर्द्धनोद्धरण कृत्प्रभुभक्तवर्गे-
र्यस्संगतोऽस्ति शठजित्सततं तदीये ।
साहस्रके तु दशकं तदिदं पठन्त
स्सर्वत्र चापि जयमेव सदा लभन्ते ॥ ११ ॥

गोवर्धनका उद्धार करने वाले प्रभुके भक्त समाजमें जो सदा सम्मिलित रहते हैं । ऐसे शठकोपमुनिने जो सहस्रगीति बनाई है । उसमें इस दशकको जो पढ़ेंगे उनको सर्वत्र विजय प्राप्त होगी ॥१०॥

इति श्री सहस्रगीतौ सप्तमशतके चतुर्थदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके पंचमदशकारम्भः ।

इस दशकमें प्राणिओंकी सर्वविधि रक्षा करने वाले परमात्माके अवतार लेनेके कारण उत्तम गुणोंको छोड़कर अन्यका आश्रय लेना उचित नहीं है यह कहा है ।

सर्वे चापि चराचरास्सुमहितायोध्यापुरे वासिन-
स्सर्वत्रापि पिपीलिकातृणमुखास्सृष्टौ च धातुस्स्वयम् ।
मुक्त्यै साधनवर्जिता अपिःपरं धामाव्ययं प्रापिताः
किं रामन्तु विना प्रभुं तदितरा सक्तास्युरेवोत्सुकाः ॥१॥

जिन भगवान श्री रामचन्द्र ने अयोध्यापुरीमें वास करने वाले चींटीसे लेकर तृण पर्यन्त समस्त चराचर जीवोंको जिनको कि ब्रह्माकी सृष्टिमें मुक्तिकी प्राप्तिका किसी प्रकारका साधन प्राप्त नहीं था । (अर्थात् मुक्तिके सर्व प्रकारके साधनोंसे शून्य थे) उन सबको अविनाशी धाम मोक्षमें पहुँचा दिया । उन प्रभु रामचन्द्रको छोड़कर क्या भक्त गण किसी अन्यका स्मरण करेंगे ? अर्थात् चराचरेके कल्याण

के लिए निर्हेतुक कृपा करने वाले भगवान् रामचन्द्रके चरणोंका स्मरण ही सर्वोत्तम है ॥१॥

जातोऽस्मिन् जगति स्वयं च बहु सन्तापाकुलाश्चाश्रित-
त्राणार्थं तु निशाचरान् कुचरितान् प्रध्वंस्य विष्णुर्हरिः
लोकं यः परिपालयन् पुनरपि स्वंधाम सर्वैर्ययौ,
तद्वृत्तं च निशम्य किं भुविजना नारायणान्याश्रयाः ॥ २ ॥

जो प्रभु आश्रितोंकी रक्षा करनेके लिए इस संसारमें अपनी इच्छासे उत्पन्न होकर मनुष्योंके समान ही दुःख भोगनेका स्वांग रचता है। दुष्ट चरित्र वाले राक्षसोंका नाश करके जो लोकोंकी रक्षा करता है। जो सर्वव्यापक हरि सर्व साधारण जीवोंको साथमें लेकर अपने दिव्य धामको गये थे। उन नारायणके इस प्रकारके चरित्रों को श्रवण करके ऐसा कौन सहृदय होगा जिसका चित्त उसकीदास्यरतिमें लालायित न हो जाय ॥ २ ॥

श्रोतॄणां श्रवणाग्नितुल्यवचनै रत्यन्तनिन्दात्मकैः
श्रीशं यः किलनिन्दति स्म शिशुपालाख्यः पुराणो रिपुः
सोऽपि श्रीहरिपादपंकजयुगं प्राप्नोदिति ज्ञानिनां
सन्निध्ये किमु केशवान्ययशसश्शुश्रूषवः स्युः क्वचित् ॥३॥

जो शिशुपाल लक्ष्मीपति परमात्मासे स्वाभाविक शत्रुता करता हुआ सुनने वालोंके कानोंको अग्निके समान अत्यन्त जलाने वाले निन्दाभरे वाक्योंसे सदा ही प्रभुकी निन्दा करता था। वह शिशुपाल भी अन्त समय श्रीहरिके चरणकमल युगलको प्राप्त हो गया। इस प्रकारके उस प्रभुके पतित उद्धारक चरित्रोंको सुनकर ज्ञानियोंके समाजमें कोई भी केशव भगवान्को छोड़ कर अन्यके गुणोंका क्या कभी श्रवण करेगा ? कभी भी नहीं ॥ ३ ॥

नानादेव मुखप्रपंचसरणेःपूर्वं हिशून्यं यदा,
सर्वंचास्ति तदातु कारणजलादण्डं सृजन्नेव यः ।

तत्रामुं चतुराननं पुनरपि स्रष्टुं नियोज्याखिलं,
धत्ते योऽस्य विचिन्त्य दिव्य चरितं किंवाऽन्यदासा बुधाः ॥४॥

देव मनुष्यादिक नाना प्रकारकी सृष्टिके होनेसे पहले जब सर्वत्र शून्य ही शून्य था। उस समय कारण जलसे ब्रह्माण्डको उत्पन्न करके उसीके भीतर चार मुख वाले ब्रह्माजीको जिन्होंने उत्पन्न करके सर्व प्रकारकी सृष्टि रचनेमें लगा दिया है। और जो स्वयं अन्तर्यामी रूप होकर सबको धारण करता है। उस प्रभुके दिव्य चरितों पर विचार करने वाले विद्वान लोग क्या किसी अन्य देवके दास हो सकते हैं? कदापि नहीं।

प्रलय समयमें सर्व शून्य अवस्था में जब परमात्मा शेष शय्या पर शयन कर रहे थे। तो उनके मनमें सृष्टि रचनेका संकल्प हुआ। तब उन्होंने (अपएव ससर्जादौ मनुः१) सर्व प्रथम जलकी रचना की थी। इसी जलका नाम कारण जल है। इसी जलमें असंख्य ब्रह्माण्डों की रचना हुईहै॥ ४ ॥

मग्नां तां प्रलयार्णवे तु पृथ्वीमुद्धर्तुमेवांजसा
दंष्ट्रातोऽत्र वराहरूपमभजद्यस्तस्य वृत्तं शुभम् ।
आकर्ण्याप्यनुचिन्त्य सद्गतिपराः किं चिन्तयन्तो जना
मायि श्रीचरणाम्बुजात युगलादन्यद्भजेयुः क्वचित् ॥५॥

प्रलय समुद्रमें डूबी हुई पृथ्वी का अपनी ढाढ़से उद्धार करनेके लिए जिसने वाराह रूप धारण किया था। उस प्रभुके कल्याणकारक चरित्रोंका श्रवण और मनन करके तथा आत्माकी सद्गति प्राप्त करने के लिए निरंतर चिन्तवन करते हुए सज्जन गण मायापतिके चरणकमल युगलको छोड़कर क्या किसी अन्यका कभी भजन करेंगे ॥ ५ ॥

नित्यासंकुचितात्युदारकर एवासीद्बलिर्यो महान्,
दृप्तस्तेन हि पीडिता सुरगणास्तैरर्थितोऽयं हरिः ।
दुखध्वंस भवच्च वामनवपुस्तस्याद्भुतं नाटकं,
दृष्ट्वाऽऽकर्ण्य विचिन्त्य य[illegible] शरणं किं केशवाद्धाऽपरम् ॥६॥

जो दानवराजबलि नित्यही मुक्त हस्त होकर उदार हृदयसे दान करता हुआ दानीपनेके घमंडमें आकर देवगणोंको पीडा देने लगाथा। तब समस्त देवगणोंने एकत्र होकर दुख दूर करने की प्रभुसे प्रार्थना की थी। देवताओंके दुखका नाश करनेके लिए ही जिस प्रभुने वामन रूप धरनेका नाटक रचा था। उसके इस प्रकार के आश्रित संरक्षण रूप चरित्रोंको देखकर सुनकर विचार करके केशव भगवानको छोड़कर क्या किसी अन्यकी शरणमें भक्त लोग जायेंगे कदापि नहीं ॥६॥

मार्कण्डेय मसौ जटा मकुट भृद्रःस्वयं पालया-
म्येवेत्युक्तिवरप्रदश्च सहसा तेनागतश्चाच्युतम्।
सम्प्रार्थ्याभजदिष्टसिद्धिमिति संचिन्त्यापि दृष्ट्वा च ये,
ज्ञातारः किममी भवन्ति विबुधाः कृष्णं विनाऽन्यंश्रिताः ॥७॥

जब कि जटा मुकुट धारी भगवान रुद्रने मार्कण्डेय ऋषिसे यह कहा था कि मैं तुमको मृत्युसे बचा लूंगा। और अजर अमर होनेका वरदान भी दिया था। इसीसे मार्कण्डेय भी सर्वप्रकारसे श्रीरुद्रके अराधन मे लग गये थे। जब महादेवके सिर पर चढ़ाई हुई पुष्प माला भगवानके चरणों में उन्होंने देखी तो वे फिर विष्णुके ही परम भक्त हो गये। और उसीसे अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त की। इस प्रकारके परमात्माके सर्व श्रेष्ठ गुणका चिन्तन करके और जान करके भी क्या पंडित लोग कृष्ण को छोड़कर अन्यके दास बनेंगे ॥ ७ ॥

निस्सीमात्मतपो बलात्सुरगणान् सम्पीडयन्तं खलं
दैत्यं तं च हिरण्यमद्भुततनुः श्रीनारसिंहो हरिः।
क्षिप्रं हन्त विदार्य मायिचरितोऽभूदेतदाकर्ण्यच
ज्ञातारो यदि शृण्वते किमु बुधाश्श्रीशस्यवृत्तात्परम् ॥ ८ ॥

जिन भगवान नृसिंहने सर्वाधिकतपो बलके प्रभावसे देव गणोंको अत्यन्त पीड़ा देने वाले हिरण्यकशिपुदैत्यको विचित्र (आधा मनुष्य और आधासिंह) देह धारण करके अपने तीव्र नखोंसे बड़ी शीघ्रता से विदीर्ण किया था। और अनेक प्रकारके माया चरित्र दिखाये थे।

ज्ञानी लोग इस चरित्रको सुनकर लक्ष्मी पतिके चरित्रोंको छोड़ अन्य के चरित्रोंको सुननेका साहस क्या करेंगे ? अर्थात् अघटित घटना सामर्थ्य वाले उस प्रभुके चरित्रको सुनकर अन्यके चरित्र सुनने को विद्वानोंकी इच्छा न होगी ॥ ८ ॥

दायं सर्वमपि स्वयं किलबलादाक्रम्य ते कौरवा,
स्सर्वे चापि विनाशिताश्च हरिणा पंचाशतार्थभुवम् ।
सारथ्यं वहता चमू च सकलां हत्वा प्रयात्रेतियद-
वृत्तं येतु विदुर्बुधाः किमुहरेस्ते मायिनोऽन्यं श्रिताः ॥९॥

जो कौरव पाँडवोंके भागको बलात्कारसे छीनकर स्वयं भोगते थे। उन कौरवोंका स्वाश्रित पांडवोंकी रक्षा करने के लिए जिस हरिने सर्वनाश कर दिया था । और अर्जुनके सारथी बनकर विपक्षियों की सेना को मारकर जिसने नष्ट किया था । अनेक माया रचने वाले उस हरिके चरित्रोंको जो पंडितगण जानते हैं वे क्या किसी अन्यका आश्रय ले सकते हैं ? कदापि नहीं ॥ ९ ॥

अज्ञानाश्रयजन्म-रुक्तिजरा-मृत्यादि भिश्चाखिलां,
नाना दुःख परम्परामपि च निर्मूल्य प्रणाश्य स्वयम्
भक्तान् यः कुरुते स्वपाद कमलद्वंदाश्रितान् रक्षितान्
वृत्तं तस्य विचिन्त्य किन्तु विबुधास्स्युर्मायिनोऽन्यं श्रिताः॥१०

जो भक्तवत्सल परमप्रभु निज भक्तोंकी अज्ञानका आश्रय जन्म व्याधि जरा मरणादि रूप अनेक प्रकार की दुख परम्पराको स्वयं समूल नाश करके भक्तोंको अपने चरण कमलके आश्रयमें लेकर रक्षा करता है । अनेक माया धारी उस प्रभुके चरित्रोंका चिन्तन करके क्या पंडितगण अन्य किसी देवका आश्रय करेंगे कदापि नहीं ।

गीताके (सर्वधर्मान्परित्यज्य०) इस श्लोकमें परम प्रभुने यह प्रतिज्ञा की है कि जो सर्व प्रकार से अन्य आश्रय छोड़कर मेरी शरण आता है । उसीकी सकल विघ्नबाधाओंको मैं दूरकर उसको मोक्ष

में पहुँचा देता हूँ। शरणागतोंके उद्धार करने के लिए इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने वाले प्रभुको छोड़कर अन्य की शरणमें कौन बुद्धि मान जायेगा ॥ १० ॥

नित्यं निर्मलचेतसस्तु परमानन्दं पदं प्रापयन्,
कृष्णो भातिहि नित्य निर्मलमतिस्तं श्रीशठारिर्मुनिः।
स्तोतुं श्रीकुरुकापुरप्रभुरसौ साहस्रमेवातनो,
त्तत्रेदं दशकं विदुर्यदि जगत्त्रय्यां विशुद्धाशयाः ॥११॥

जो भगवान् श्रीकृष्ण शुद्ध चित्त वाले परम भक्तों को परमानन्द पद प्राप्ति कराते हुए प्रकाशमान हो रहे हैं। उन कृष्णकी स्तुति करने के लिए कुरुकापुरीके स्वामी निर्मल मति वाले श्रीशठकोपमुनि ने सहस्रगीति बनाई। उसमें इस दशकको जो जानलेंगे वे पुरुष पापताप पूर्ण इस त्रिलोकी में विशुद्ध हृदयके होकर प्रभुके कृपा पात्र बनेंगे ॥११॥

इति श्रीसहस्र गीतौ सप्तमशतके पञ्चमदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके षष्ठदशकारम्भः

इस दशकमें आल्वार जगत् की सृष्टि करके चेतनों को करण कलेवरादि देकर महोपकार करने वाले आपके चरण मुझे कब प्राप्त होंगे इस प्रकारकी चिन्ता से व्याकुल होकर ऊँचे स्वर से करुण क्रन्दन करते हैं।

विस्तीर्णलोक ततिसृट् किल पद्मनाभो,
विस्तीर्णलोकमितिकृत् किल पद्मपादः।
पद्माम्बकोऽसि ननु पद्मकरोऽसि देव,
त्वां पालकं त्वशरणोऽत्र कदा भजेयम् ॥ १॥

हे पद्मनाभ! आपने ही मनुष्य पशु पक्षि आदि प्राणियों से परिपूर्ण लोकों की सृष्टि की है। हे पद्मपाद अत्यन्त विस्तृतसमस्तलोकों को नापने वाले भी तुम्हीं हो। हे सर्वदेव शिरोमणे आपके नेत्र और आपके हाथ भी कमलके समान अति कोमल और दर्शनीय हैं। संसारके पालन करने वाले प्रभो सर्वप्रकारसे अनाथ मैं आपकी सेवा करनेके योग्य कब होऊँगा ॥ १ ॥

पृथ्वीजलानिलमरुद्गगनात्ममाला,
सर्वेतराऽपि च पदार्थततिस्त्वमीशः ।
गोपालकश्च गिरिभृत्परमोऽसि देवै-
स्स्तव्यं तवाङ्घ्रियुगलन्तु कदा भजेयम् ॥२॥

हे प्रभो ! इस जगतमें पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश तथा दृश्यमान अन्य पदार्थोंमें भी आप व्याप्त होकर उनका नियमन करते हो। गौ और गोपोंकी रक्षा करने के लिए आपने गोवर्धन पर्वतको धारण किया था। सब देवताओंमें श्रेष्ठ आपकी ही शिव ब्रह्मादिक स्तुति किया करते हैं। इस प्रकारके आपके दिव्य चरणकमलोंकी मैं कब सेवा करूंगा ॥ २ ॥

धृत्वा गिरिन्तु परिपालक शैलवर्षा,
दस्माद्विहार नटनस्तुलसीधरोऽसि ।
रुद्रश्चतुर्मुख उभौ तव हि प्रकारौ,
स्तोत्रातिगं हृदिभवं क्व भजे वत त्वाम् ॥३॥

हे प्रभो ! आपने गोवर्धन पर्वतको धारण करके व्रजवासियोंकी रक्षा की थी। और हमारे ही हितके लिए अनेक प्रकार के नाटकों को आप रचा करते हो। किरीट पर तुलसी धारण करने वाले प्रभो रुद्र और चतुर्मुख ब्रह्माजी ये दोनों ही आपकी इच्छा मूर्ति हैं। बड़े बड़े ज्ञानियोंकी भी मति जिसकी स्तुति करने के लिए कुंठित हो जाती है। जो मेरे हृदयमें सदा ही मूर्ति रूपसे प्रकाशित है। इस प्रकार आपके चरणों की साक्षात् सेवा करनेका सौभाग्य मुझे कहाँ कब प्राप्त होगा ॥ ३ ॥

गोपाल दिव्यतुलसीधरमौलिदीप्त
त्रैलोक्यरूप विषमात्मक धातृरूप ।
इन्द्रोऽसि वज्रधर देवगणोऽसि हि त्वां
सर्वस्य मूलमपि कुत्र भजाम्यहं वा ॥ ४ ।

हे गोपाल (इन्द्रियोंको नियमन करने वाले) दिव्यतुलसीके धारण करनेसे अत्यन्त शोभायुक्त मस्तक वाले, इस त्रिलोकीमें विविध भाँतिके रूप धारण करके आप अनेक प्रकारकी लीला कर रहे हो। कभी आप रुद्ररूप धारण करके प्रलय करते हो, तो कभी चतुर्मुख ब्रह्माका रूप धारण करके सृष्टि उत्पन्न करते हो। कभी सज्जनोंके विरोधी दैत्यवर्गोंका नाश करनेके लिये वज्रधारी इन्द्र बन जाते हो। तथा सांसारिक प्राणियोंकी कामना पूरी करनेके लिए अनेक प्रकारके देवरूपोंसे प्रकाशित होते हो। संसारमें कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है, जिसके मूलकारण आप नहीं हैं, फिर सम्पूर्णरूपसे आपकी सेवा मैं किस प्रकारसे कहाँ करूँ॥ ४॥

गोपालनीलमणिरूपममाच्युत त्व
न्नाभी सरोजभवलोकततिं विलोक्य।
आत्माहृदीह मम हन्त कथं भजे त्वां
दिव्ये च धामनि वसन्तमहो परात्मन्!॥ ५॥

हे परात्मन्! आप गोपाल (पृथ्वीके भारको दूर करके उसकी रक्षा करने वाले) हो और मेरे लिए आप अविनाशी रूपसे नीलमणि के समान हो। आपके ही नाभि कमलसे उत्पन्न हुए लोकोंकी सृष्टिको देखकर और मेरे आत्मामें स्वयं विराजमान होते हुए आपको देखकर तथा दिव्यधाम (श्रीवैकुण्ठ) में वास करते हुए आपको देखकर फिर मैं किस प्रकार यथार्थरूपसे आपकी सेवाका साहसकर सकताहूँ॥५॥

माणिक्यनील तनुरेवकिलासि रक्तै-
स्सूनै रिवारुण दुकूल करांघ्रिनेत्रैः।
नाभीपुटाननहृदम्बुज तेजसा च
श्रीवत्सलांच्छन न वेद्मि गतिं तवाप्त्यै॥ ६॥

हे श्रीवत्सलांछन! नीलमणिके समान तो आपका विग्रह है और लाल कमलोंके समान लाल लाल आपके हाथ, पाँव नेत्र और पीताम्बर है। तथा नाभि और मुख ये सभी आपके रक्तकमलके

समान ही कान्ति वाले हैं । परन्तु मैं यथार्थरूपसे आपके चरणोंकी प्राप्ति करनेका उपाय नहीं जानता ॥ ६ ॥

श्रीशं धरोद्धृतिकरं गिरिजापतिं त्वां
पश्यामि किं त्रिपुरनाशकमिन्द्रियेशम् ।
वाणीपतिं किमु शचीशमिहामरेशं
सर्वात्मकोऽसि भगवन् विविधैश्च रूपैः ॥ ७ ॥

हे प्रभो ! आप लक्ष्मीपति होकर पृथ्वीका उद्धार करने वाले हो । और त्रिपुरका नाश करने वाले गिरिजापति भी आपही हो । और वाणीके समष्टिरूप सरस्वतीके पति ब्रह्मा भी आप ही हो । हे प्रभो ! इस संसारमें विविधरूपोंको धारण करके सर्व पदार्थोंके अन्तर्यामी होकर व्याप्त हो रहे हो, इस प्रकारके आपके दिव्यरूपको क्या मैं यथार्थरूपसे देख सकूंगा ॥ ७ ॥

भीता निशाचरगणास्तु बिलं प्रविष्टा
लंकापुरात्सपदि मालि मुखांश्च सूरान् ।
हत्वाधिरूढ गरुडेतु हरावुपेन्द्रे
त्वय्यत्र भास्वति कथं नु विलोकये त्वाम् ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! जिस समय आप गरुड़ारूढ़ होकर माली सुमाली आदिक दैत्योंको मारनेके लिए लंकापुरीमें गये थे, तब आपके भयके मारे समस्त निशाचरगण, माली आदिक शूरवीरगण लङ्काको छोड़कर बड़ी शीघ्रतासे पातालमें घुस गए थे । और उस समय जो आपके सम्मुख युद्ध करनेके लिए आए थे । उन दैत्योंको मारकर उनके मुर्दोंका पर्वत बना दिया था । आपने ही इन्द्रको स्वर्गका राज्य देनेके लिए उपेन्द्ररूप धारण किया था । इस प्रकार समस्त संसारकी प्रकाशमान वस्तुओंमें प्रकाश करने वाले प्रभो ! मैं आपको यथार्थरूपसे कैसे और कहाँ पर देखूं ॥ ८ ॥

क्रूरं निशाचरपतिं प्रबलं च वीरं
हत्वा समूलमपि तस्य किलानुजाय ।

हे गोपाल (इन्द्रियोंको नियमन करने वाले) दिव्यतुलसीके धारण करनेसे अत्यन्त शोभायुक्त मस्तक वाले, इस त्रिलोकीमें विविध भाँतिके रूप धारण करके आप अनेक प्रकारकी लीला कर रहे हो। कभी आप रुद्ररूप धारण करके प्रलय करते हो, तो कभी चतुर्मुख ब्रह्माका रूप धारण करके सृष्टि उत्पन्न करते हो। कभी सज्जनोंके विरोधी दैत्यवर्गोंका नाश करनेके लिये वज्रधारी इन्द्र बन जाते हो। तथा सांसारिक प्राणियोंकी कामना पूरी करनेके लिए अनेक प्रकारके देवरूपोंसे प्रकाशित होते हो। संसारमें कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है, जिसके मूलकारण आप नहीं हैं, फिर सम्पूर्णरूपसे आपकी सेवा मैं किस प्रकारसे कहाँ करूँ ॥ ४ ॥

गोपालनीलमणिरूपममाच्युत त्व
न्नाभी सरोजभवलोकततिं विलोक्य।
आत्महृदीह मम हन्त कथं भजे त्वां
दिव्ये च धामनि वसन्तमहो परात्मन् ! ॥ ५ ॥

हे परात्मन् ! आप गोपाल (पृथ्वीके भारको दूर करके उसकी रक्षा करने वाले) हो और मेरे लिए आप अविनाशी रूपसे नीलमणि के समान हो। आपके ही नाभि कमलसे उत्पन्न हुए लोकोंकी सृष्टिको देखकर और मेरे आत्मामें स्वयं विराजमान होते हुए आपको देखकर तथा दिव्यधाम (श्रीवैकुण्ठ) में वास करते हुए आपको देखकर फिर मैं किस प्रकार यथार्थरूपसे आपकी सेवाका साहसकर सकता हूँ॥५

माणिक्यनील तनुरेवकिलासि रक्तै-
स्सूनै रिवारुण दुकूल करांघ्रिनेत्रैः।
नाभीपुटाननहृदम्बुज तेजसा च
श्रीवत्सलांच्छन न वेद्मि गतिं तवाप्त्यै ॥ ६ ॥

हे श्रीवत्सलांछन ! नीलमणिके समान तो आपका विग्रह है और लाल कमलोंके समान लाल लाल आपके हाथ, पाँव नेत्र और पीताम्बर है। तथा नाभि और मुख ये सभी आपके रक्तकमलके

समान ही कान्ति वाले हैं । परन्तु मैं यथार्थरूपसे आपके चरणोंकी प्राप्ति करनेका उपाय नहीं जानता ॥ ६ ॥

श्रीशं धरोद्धृतिकरं गिरिजापतिं त्वां
पश्यामि किं त्रिपुरनाशकमिन्द्रियेशम् ।
वाणीपतिं किमु शचीशमिहामरेशं
सर्वात्मकोऽसि भगवन् विविधैश्च रूपैः ॥ ७ ॥

हे प्रभो ! आप लक्ष्मीपति होकर पृथ्वीका उद्धार करने वाले हो । और त्रिपुरका नाश करने वाले गिरिजापति भी आपही हो । और वाणीके समष्टिरूप सरस्वतीके पति ब्रह्मा भी आप ही हो । हे प्रभो ! इस संसारमें विविधरूपोंको धारण करके सर्व पदार्थोंके अन्तर्यामी होकर व्याप्त हो रहे हो, इस प्रकारके आपके दिव्यरूपको क्या मैं यथार्थरूपसे देख सकूंगा ॥ ७ ॥

भीता निशाचरगणास्तु बिलं प्रविष्टा
लंकापुरात्सपदि मालि मुखांश्च सूरान् ।
हत्वाधिरूढ गरुडेतु हरावुपेन्द्रे
त्वय्यत्र भास्वति कथं नु विलोकये त्वाम् ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! जिस समय आप गरुडारूढ होकर माली सुमाली आदिक दैत्योंको मारनेके लिए लंकापुरीमें गये थे, तब आपके भयके मारे समस्त निशाचरगण, माली आदिक शूरवीरगण लङ्काको छोड़कर बड़ी शीघ्रतासे पातालमें घुस गए थे । और उस समय जो आपके सम्मुख युद्ध करनेके लिए आए थे । उन दैत्योंको मारकर उनके मुर्दोंका पर्वत बना दिया था । आपने ही इन्द्रको स्वर्गका राज्य देनेके लिए उपेन्द्ररूप धारण किया था । इस प्रकार समस्त संसारकी प्रकाशमान वस्तुओंमें प्रकाश करने वाले प्रभो ! मैं आपको यथार्थरूपसे कैसे और कहाँ पर देखूं ॥ ८ ॥

क्रूरं निशाचरपतिं प्रबलं च वीरं
हत्वा मम[illegible]मपि तस्य किलानुजाय ।

लंकाधिपत्य कृदगात्परमं पदं यो
राज्यं दधच्चिरममुन्तु कदा भजामः ॥ ६ ॥

जो राक्षसराज रावण प्रबल प्रतापी वीर होकर क्रूरतासे सज्जनों को सताता। उसको समूल नष्ट करके उसके छोटे भाई विभीषणको आपने लङ्काका राज्यपद दिया था। और जिस भगवान् श्रीरामचन्द्रने संसारमें शान्ति और कल्याणकी स्थापना करते हुए दीर्घकाल तक अयोध्यापुरीमें राज्य किया था। और अन्तमें जीवमात्रको जिन्होंने साकेत वास दिया था। उस प्रभुकी चरण सेवा करनेका सौभाग्य हमें कब प्राप्त होगा। यह तीव्र अभिलाषा हमारे चित्तमें निरन्तर लगी हुई है ॥९॥

जातश्शिशुश्च किल गोकुलपुष्ट आसी–
दत्यद्भुतं स्वचरितः खलकंसहन्ता।
पंचाश्रितोऽरिपृतनान्तक एष दिव्यं
धाम श्रितः किल ददाति परं पदं नः ॥ १० ॥

जो भगवान् श्रीकृष्ण अपनी इच्छासे मथुरापुरीमें बालरूपसे प्रगट होकर गोकुलमें जाकर बड़े हुए थे, जिन्होंने अपनी अति विचित्र बाललीलासे ही बड़े बड़े प्रबल दैत्योंको मारकर स्वजनोंकी रक्षाकी थी। और जिन्होंने अनायास ही प्रबल प्रतापी कंसको एक धक्केसे मार दिया था। जिस प्रभुने पाँच पाण्डवोंका पक्ष लेकर उनके प्रतिपक्षी कौरवोंकी बड़ी भारी सेनाको नष्ट किया था। इस प्रकार चेतन कल्याणकारक अनेक चरित्रोंको करके अन्तमें परमपदको पधार गये थे, वे ही कृष्ण आज हमारे लिए परमपद देने को तैयार खड़े हुए हैं ॥ १० ॥

दैत्यान्तकं नरहरिं ननु चक्र पाणिं
श्रीशं शठारिरभजत्कुरुकापुरेशः।
साहस पद्यकृदिदं दशकं पठन्त
स्तव्या भवन्ति दिवि चामर धारणीभिः ॥ ११ ॥

अनेक दैत्योंका नाश करनेके लिए नृसिंहरूप धारण करने वाले

चक्रधारी लक्ष्मीपतिकी सेवा करनेके लिए कुरुकापुरके स्वामी शठकोप-मुनिने सहस्रपद्य बनाये हैं । उनमें इस दशकका जो पाठ करेंगे वे जन स्वर्गमें जाकर चँवर डुलाकर सेवा करने वाली अप्सराओंको सन्तुष्ट करके उनकी प्रशंसाके पात्र बनेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके षष्ठदशकं समाप्तम् ।



अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके सप्तमदशकारम्भः

इस दशकमें आल्वार समाधि द्वारा प्रभुकी प्रार्थना कर रहे थे, उस गाढ भावनामें श्रीकृष्णकी दिव्यमूर्ति उनके नेत्रोंके सामने प्रगट हुई उस मूर्तिकी अलौकिक मुख शोभाको देखकर आप उसे पकड़नेका उद्योग करने लगे, परन्तु उसे किसी प्रकार नहीं पकड़ सके, इससे उनके चित्तमें बड़ा कष्ट हुआ और उस कष्टको अपनी सखियोंके सामने वर्णन करते हैं ।

नारीजनान्तक युगं किमिदं तु दिव्यं
श्रीकृष्ण लोचनयुगं त्वथवा न वेद्मि ।
नव्याम्बुजद्वयमिवास्ति पुरो ममाक्ष्णोः
किं मातरो ! मम सखी निवहाश्च कुर्याम् ॥ १ ॥

हे प्यारी सखियो ! तथा पूज्यमाताओ ! आज मैं जो श्रीकृष्ण भगवान्के दोनों दिव्यनेत्रोंको देख रहा हूँ, क्या वे अवला स्त्रियोंके प्राणोंको नाश करनेके लिए ही हैं । इस बातका पता मुझे अभी नहीं लगता मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी आँखोंके सामने आज दो नये कमल खिले हुए हैं । किन्तु इनके दर्शनोंसे मेरे हृदयमें यथार्थ शान्ति नहीं होती । हाय ! इसलिए अब क्या किया जाय ।

समाधि द्वारा ईश्वरका पूर्णअनुभवआल्वारने किया है, किन्तु वे चाहते हैं कि उस ईश्वरके मुख और नेत्र कमलोंके दर्शन हम इन अपने चर्मचक्षुओंसे भी करलें तो हमें परम शान्ति प्राप्ति होजाय, अन्यथा नहीं । यही इस गाथाका अभिप्राय है ॥ १ ॥

हे मातरः किमुफलं मम निन्दनाद्यै
किं कल्पवल्ल्युतलताङ्कुर एव पार्श्वे ।

नो वेद्म्यहं हि नवनीत हरस्य नासा
चित्ते ममास्ति किल दीप शिखे वदीक्षा ॥ २ ॥

हे माताओ ! आप जो मेरे लिए बारबार निन्दाके वाक्य सुना रही हो, इससे आपको क्या लाभ है। मेरे चित्तमें तो दीपशिखाके समान अत्यन्त प्रकाशवाली उस माखनचोरकी नासिका ही दिखाई दे रही है, वह क्या कल्पवेलि है। अथवा उस कल्पलताका अंकुरही मेरे पासमें आकर चमक रहा है, इस बातका मुझे यथार्थ ज्ञान अभी तक नहीं है ॥ २ ॥

दिव्यं फलं किमुत किं मम पापपुंजं,
किंवा प्रवालशकलो नहि वेद्मि सम्यक् ।
निलाम्बुदाभवपुषो मम नायकस्य,
बिम्बाधरो दिशि दिशीह पुरो ममास्ते ॥ ३ ॥

उस श्यामसुन्दर मेरे स्वामीके बिम्बाफल के समान लाल होंठ मेरे सामने, सब दिशाओं में मुझे दीख रहे हैं। उसको मैं अपने पुण्यों का दिव्य फल कहूँ। अथवा सन्ताप दायक पापोंका पुंज कहूँ। अथवा मूंगाका टुकड़ा बताऊं। उस मेरे प्रियके लाल होठको मैं किसकी उपमा देकर वर्णन करूं। यह मेरी ज्ञानशक्तिके बाहरकी बात है ॥३

नारीवधार्थ मिहनीलधनुर्द्वयं किं,
कामस्य किं तदिदमिक्षुधनुःस्वरूपम् ।
कृष्णस्य कामजनकस्य किलेश्वरस्य,
भ्रूयुग्म मेव सततं हृदि मेऽस्ति शल्यम् ॥४॥

कामदेवको जन्म देने वाले मेरे स्वामी कृष्ण की दोनों भौंहें मेरे हृदयमें बाँणके समान निरन्तर चुभती हैं। क्या ये स्त्रियोंके प्राण लेने के लिए ताने हुए नीलवर्ण के दो धनुष हैं। अथवा विश्व विजेता उस कामके ही ये इक्षुरूप धनुष हैं।

साहित्य शास्त्र से यह बात प्रसिद्ध है कि कामका धनुष इक्षु (ईख) के समान है इसी कारण कृष्णकी भौंहके लिए इक्षु धनुष की उपमा आचार्यने दी है ॥ ४ ॥

ज्योतिर्मयी किमिह विद्युदियं सुशुभ्रा,
मुक्तावलीकिमियमस्ति ममासुहन्त्री ।
मन्दस्मितं गिरिभृतस्तदिदं प्रभोर्मे,
प्राणान् दहत्यहह मे न गतिर्जनन्यः ॥५॥

अहह, हे माताओ ! गोवर्धनको धारण करने वाले मेरे स्वामी का यह मन्द मुसुकान मेरे प्राणोंको जला रहा है । क्या यह अति उज्वल ज्योति वाली चमकती हुई बिजलीकी छटा है । अथवा यह मोतियोंकी लड़ी है । अथवा मेरे प्राणोंका हनन करने वाली खड्गकी धारा है । इस प्रकारके अनेक रूप दिखाकर मेरे प्राणों को पीड़ा देने वाली इस मन्द मुसुकान से बचकर जीवनका उपाय मुझे कोई नहीं सूझता है ॥ ५ ॥

नारीजना सुरगणादि निवास भूमिः
कुत्रेति भाति मकराकृतिरेव सेयम् ।
श्रोत्रद्वयी रुचिरकुण्डलशोभितेयं,
कृष्णस्य शेषशयनस्य तुदेत्सदामाम् ॥६॥

शेष शैयाके ऊपर शयन करने वाले श्री कृष्णकी नारीजनों के उज्जीवन और असुरगणोंके नाशक अति रमणीय मकरा कृति कुंडलों से शोभित दोनों कर्णों की शोभा मुझे सदा ही पीड़ा पहुँचाती है । अति रमणीय मकरा कृतिकुंडलोंसे सुशोभित भगवान श्रीकृष्णके कर्ण युगलको देख कर नारीजन उनके दर्शनों से ही अपने जीवन को धारण करती हैं । और असुर लोग उस सौन्दर्य को देखकर ईर्ष्याग्निसे जलकर भस्म हो जाते हैं ॥ ६ ॥

हे मातरस्सपदि पश्यत मामितीदं,
नो वेद्मि दर्शयितुमिन्दुरहो किमेषः ।
किं पूर्णमेव विततं नु चतुर्भुजस्य,
विष्णोर्ललाटफलकं किल मां हिनस्ति ॥७॥

हे माताओ थोड़ा मेरी ओर देखो तो सही यह चतुर्भुज भगवान् विष्णुका ललाट पटल कलाओंसे पूर्ण चन्द्रबिम्ब ही है। अभी इस बातको यथार्थ रूपसे मैं नहीं जान सकी हूँ। तथापि अति विस्तृत वह ललाट पटल मुझे मारे डालता है ॥ ७ ॥

कृष्णस्य दिव्य महसाऽञ्चितमाननं मे,
प्राणान् किलात्ति निजदिव्यमहःप्रभाभिः ।
पद्म प्रवाललतिकाधनुरिन्दुमुक्ता
श्रीपल्लवादिभिरिहाभरणैर्जनन्यः ॥८॥

हे माताओ ! श्रीकृष्णका दिव्य कान्ति युक्त मुख जिसमें कमल के समान लाल होठ हैं। धनुषके समान टेढ़ी भ्रूलता है। और अर्ध चंद्रके समान ललाट है। मोतियोंकी लड़ीके समान दाँत हैं। अशोक पल्लवके समान कर्ण हैं। इत्यादि अति सुन्दर अवयवोंसे युक्त अपनी दिव्य कान्ति की छटा से मेरे प्राणोंको खाये जाता है ॥ ८ ॥

गाढ़ान्धकार निविडान्तर नीलतन्तु
सन्तान निर्मल ततिः किमिहालकालिः ।
कृष्णस्य दिव्य तुलसी सुरभि र्हरेन्मां,
हे मातरः किमिति मां क्षुभितां कुरुध्वे ॥९॥

हे माताओ ! गाढ़ान्धकारके समूह में नील तन्तुओंके निर्मल समुदायके समान प्रतीत होने वाली श्रीकृष्णकी दिव्य तुलसी की सुगंधसे सुगन्धित अलकावली (जुल्फें) मुझे मारे डालती हैं। इस प्रकार अधमरी मुझको आप लोग अनेक प्रकार का उलाहना देकर क्यों सता रही हो ॥ ९ ॥

हे मातरः किमिति मां बत निन्दथाद्य,
वाह्याङ्गणेऽत्र किमु तिष्ठसि निस्त्रपेति ।
ज्योतिर्मयेऽत्र मकुटे मणिवर्णदीप्ते,
कृष्णस्य भाति हृदयं मम नित्यसक्तम् ॥१०॥

हे माताओ ! श्री कृष्णके अत्यन्त ज्योतियोंसे प्रकाशमान मणियोंसे दीप्त मुकुटमें मेरा मन निरन्तर ही आसक्त हो रहा है। आप लोग मुझे यह कहकर कि घरसे बाहर आँगनमें तू निर्लज्ज होकर क्यों खड़ी है । मेरी निन्दा क्यों करती हो ॥ १० ॥

नेत्रातिगैर्विधि शिवेन्द्र मुखैश्च देवै-
र्द्दश्यो न यस्तमिह कृष्णमसौ शठारिः ।
स्तोतुं सहस्रमतनोत्कुरुकापुरेशः
कुर्यादिदं च दशकं दिवि सूरिसङ्गम् ॥११॥

मनुष्यों के नेत्र पथमें कभी नहीं आने वाले ब्रह्म शिवइन्द्र आदिक देव भी जिसको अपने चर्म चक्षुओंसे देखने में असर्थ हैं। उस कृष्ण को स्तुति करने के लिए कुरुकापुर के स्वामी शठकोप मुनि ने सहस्र गीति बनाई, उसमें यह दशक पाठकों को परमपद में नित्य मुक्तोंका संग अवश्य करा देगा ॥१०॥

इति श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके सप्तमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके अष्टमदशकारम्भः ।

इस दशकमें संसारमें अनेक प्रकारकी विचित्र विभूतियोंके रूपमें विराजमान प्रभुके स्वरूपोंका अनुभव करके आल्वार हृदयके कष्टको शान्त करनेमें प्रवृत्त होते हैं ।

मायात्मवामन हरे मधुसूदन त्वं
ब्रूहीह मे त्वमसि वह्निजलक्ष्मात्मा ।
आकाशवायु जननीजनकप्रजात्मा-
ऽप्यन्यच्च सर्वमिति कीदृगयं प्रकारः ॥ १ ॥

हे हरे ! आप अपनी इच्छासे मायामय वामनका रूप धारण करने वाले हो । और हे मधुसूदन ! आपही अग्नि, जल, पृथ्वीरूपसे तथा आकाश, वायु और माता पितारूपसे तथा प्रजारूपसे प्रकाशमान हो रहे हो । तथा इस संसारमें और भी समस्त चराचर वस्तुरूपसे आपही अनेक प्रकारसे विराजमान हो,। हे मधुसूदन ! इस बातको

सत्यरूपसे मुझसे कहनेके लिए क्या आप कृपा करेंगे। -अर्थात् समस्त चराचर आपका ही रूप है। इस प्रकारकी मेरी हृदय-भावना को आप अपने श्रीमुख वाक्योंसे समर्थन करके क्या दृढ़ करेंगे ॥१॥

त्वं ब्रूहि मे ऽच्युतलसत्तुलसीस्रगाढ्य-
मौले किमिन्दुरवितारकराजिरूपः।
त्वं कितमश्च भुवि वृष्टि नुती च निन्दा
क्रूरो यमश्च किमसि त्वमहो विचित्रम् ॥ २ ॥

सुन्दर सुगन्धित तुलसीमालासे शोभित मस्तक वाले हे अविनाशी! आपही सूर्य चन्द्रमा तारागणरूपसे तथा अन्धकार और तेजोरूपसे और वर्षारूपसे हो। स्तुति और निन्दारूपसे संसारमें प्रकाशमान् हो रहे हो, दयाहीन तथा कठोर हृदयसे पापियोंको नरक यन्त्रणा देने वाले यमराजकेरूपमें भी क्या आपही हो। इस बातको बतलानेकी क्या आप इस दासके ऊपर कृपा करेंगे।

आपके एकसे एक विचित्र रूपोंको देखकर उत्पन्न हुए आश्चर्यजालसे छूटना ही हमारे लिए बड़ा कठिन हो रहा है ॥ २ ॥

सारथ्यवेषधर चक्रधर त्वमेव
ब्रूहीह मे युगयुगेष्वपि तत्स्वरूपः।
तत्तद्भवाखिल समान चराचरात्मा
नानाविधोऽसि च कथं विषमा विचित्राः ॥ ३ ॥

हे प्रभो! महाभारत संग्रामके समयमें अनेक प्रकारकी रथ गतियोंको जानने वाले, सारथीका वेष धारण कर भीष्मजीको मारनेके लिए चक्रधारण भी तो आपने किया था। अनेक युगोंमें उत्पन्न होने वाले अनेक चराचररूप पदार्थोंके समान ही रूप और आकृतिके होकर उसीके रूपमें मिलकर संसारमें आप रहते हो। और सम और विषम प्रकारके विचित्र सृष्टिके रूपमें आप किस प्रकार समान होकर मिल जाते हो, इसको हमारे लिए बतानेकी क्या आप कृपा करेंगे ॥३॥

पश्चाच्च कृष्ण वद किंचिदिदं हरे मे
सन्तोऽप्यसन्त इह भाति भवाननंताः ।
नाना विधोऽसि च विशालपयोधिमध्ये
शेषे शयान इति योगविधिः कथं ते ॥ ४ ॥

हे कमलदल लोचन श्रीकृष्ण! क्या मेरे लिए यह थोड़ीसी बात बतानेकी कृपा करेंगे, कि आपही इस विचित्र संसारमें अनन्तरूपोंसे सज्जन और दुष्टोंके रूपमें हो रहे हो। अति विशाल क्षीरसमुद्रके बीचमें शेषकी शय्या पर आप सोते हो। अथवा एक विचित्र प्रकारकी समाधी लगाते हो, इसके रहस्यको क्या आप इस दासको बतानेकी कृपा करोगे ॥ ४ ॥

पाशान् विमोच्य मम दास्यसुखावहस्त्वं
मायिन् वदाद्य तुलसीकुसुमाढ्यमौले ।
कायोऽपि जीव इह भासि मृतीश्च जन्म
मायामयोऽसि किमु मोहपरम्परेयम् ॥ ५ ॥

तुलसी और पुष्पोंकी मालासे शोभित मस्तक वाले अनेक मायाओंको रचने वाले प्रभो! आपने ही मेरे सांसारिक समस्त बन्धनोंको तोड़ करके अपने चरणोंकी दासवृत्तिरूप सुख कृपा कर दिया है। इस संसारमें पाँच भौतिक शरीर तथा उसमें रहने वाले जीवके रूपमें आप प्रकाशित हो रहे हो। मृत्यु और जन्मरूपसे भी आपही अनेक मायामय रूपोंको धारण कर रहे हो। जब मैं आपके परस्पर विरुद्धरूपोंका एक साथ ही अनुभव करता हूँ, तो मेरा मोह और भी अधिक बढ़ता चला जाता है ॥ ५ ॥

हे वामन त्वमसि मोहकरो वदाद्य
वेद्यं मम भ्रमहरं ननु विस्मृतिस्त्वम् ।
ज्ञानं किलोष्णमपि शीतमहो विचित्रं
नाना जयस्सुकृत दुष्कृततत्फलादिः ॥ ६ ॥

मेरे हृदयाङ्गणमें वामनरूपसे विहार करने वाले प्रभो ! क्या आपही मुझे बार बार मोह करा रहे हो। आपही तो संसारमें सर्व प्रकारके भ्रमोंको दूर करने वाले ज्ञानस्वरूप और सर्वप्रकारकी विस्मृति कराने वाले अज्ञान स्वरूप हो। तथा जानने योग्य सर्व पदार्थ स्वरूप हो। शीत और उष्णरूप भी आपही हो। और जय पराजय रूप तथा पुण्य पापरूप तथा इनके विचित्र फलस्वरूपभी तो आपही हो॥६

दुःखावह त्वमिह कृष्ण सुदीप्रमौले
दुःखावहाभिमतिःकाम सुखात्मकोऽसि ।
दुःखावहाभिलषितानि चराचराश्च
मानं त्वमेव वद कीदृगियन्तु लीला ॥ ७ ॥

प्रकाशमान किरीटको धारण करने वाले श्रीकृष्ण इस संसारमें दुख पहुँचाने वाली वस्तुरूपसे आपही हो। और दुख देने वाली वस्तुओंमें अभिमत कराने वाले आपही हो, स्त्री पुरुषोंके संयोगसे उत्पन्न होने वाले काम सुखरूप भी आपही हो। दुःखको देने वाली वस्तुओंकी अभिलाषा चराचरोंमें उत्पन्न करने वाले आप ही हो। सर्वप्रकारके पदार्थोंको जाननेके उपाय सर्व प्रमाण स्वरूपी आपही हो। आपकी यह विचित्र लीला क्यों और कितने प्रकारकी है, इस बातको क्या आप बतायेंगे ? ॥ ७ ॥

मन्नाथ कृष्ण ननु मामपि लीलया त्वं
दासं करोपि तव गोपयसि स्वभावम् ।
त्रैलोक्य मूलमसि सृष्टि करोऽसि चान्त–
र्व्यापी वहिश्च तवकीदृगयं स्वभावः ॥ ८ ॥

हे मेरे स्वामी श्रीकृष्ण ! आप मुझे अपनी लीलासे अपना दास बनाकर और अपने स्वभावको आप छिपा रहे हो। समस्त लोकोंके आदि कारणरूप होकर आपही सृष्टि करने वाले हो। तथा समस्त पदार्थोंके भीतर और बाहर व्याप्त होने वाले भी आपही हो। अति विलक्षण आपके इस प्रकारके स्वभावको हम किस प्रकार यथार्थरूपसे वर्णन कर सकते हैं ॥ ८ ॥

कीदृक् स्थितोऽसि मम कृष्ण कथं स्वभावात्
त्वं हस्तपाद सकलेन्द्रियरूपधारी ।
शब्दस्पृगादि रस रूपक गन्धरूपी
सर्वं त्वमेव तव सूक्ष्मकला ह्यनन्ताः ॥ ९ ॥

हे मेरे स्वामी कृष्ण ! आप कैसे स्वभाव वाले होकर किस प्रकारसे करचरणादि समस्त इन्द्रियोंके रूपमें तथा शब्द स्पर्श रस गन्धरूपी होकर कैसे स्थित हो रहे हो। मेरे विचारसे तो समस्त वस्तुरूप आपही हो, क्योंकि मनुष्य बुद्धिसे दुर्ज्ञेय अति सूक्ष्म आपकी कला अनन्त है, उन कलाओंसे अनन्तरूपोंमें व्याप्त होने वाले आपका वर्णन हम अनन्त काल और अनन्त जन्मोंमें भी नहीं कर सकते॥९॥

सूक्ष्मान्तरं न किल भाति ततः परं चे-
त्येवं श्रुतिर्वदति सच्च भवानसच्च ।
पुष्पाद्यलंकृत मुरस्थलमच्युतस्य
श्रीशस्य ते ! श्रुति मतोऽस्ति तव प्रकारः ॥ १० ॥

सर्व प्रमाण श्रेष्ठ वेद इस बातको निश्चितरूपसे कहता है कि आपसे अधिक कोई भी व्यापक और सूक्ष्म वस्तु नहीं है। क्योंकि सत् (कारण) असत् (कार्य) रूपसे संसारमें आपही व्याप्त हो रहे हो। अनेक प्रकारके पुष्पोंकी मालाओंसे लक्ष्मीपति अविनाशी आपका वक्षःस्थल अलंकृत है। वेदके आदि प्रवचन कर्त्ता आपके समस्त रूपोंको क्या कोई भिन्न भिन्न करके बता सकते हैं।

वेदमें(सदेव सोम्येदमग्रआसीत्) यह श्रुति आपको सत्‌रूप बतलाती है तथा (असद्वाइदमग्र आसीत्) यह श्रुति आपको असत् बताती है (तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् सच त्यचाभवत्) यह श्रुति आपको कार्यकारण रूपधारी बताती है।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम् । यः पार्थिवानिविममेरजांसि । वि०सू०

यह श्रुति भगवान् विष्णुके नामरूप और पराक्रमोंको अनन्त बतलाती है ॥ १० ॥

सर्वेश्वर मतिविदूरमपि क्रमेण,
नानाप्रकार कथनैश्च शठारिसूरिः।
स्तोता सहस्रमकरोद्द्रविडात्मकं तत,
ज्ञात्वाऽपि चात्र दशकं फलसिद्धिभाजः ॥११॥

जो ज्ञानियों की बुद्धि से भी दुर्ज्ञेय है। उस सर्वेश्वरको क्रमसे नाना प्रकार के रूपों में कथन करके स्तुति करने वाले श्री शठकोप सूरिने द्रविड भाषा मय इस सहस्र गीति को रचना की है। उसमें इस दशकको जो जान लेंगे उनको अभिलषित फलकी सिद्धि अवश्य हो जायगी ॥ ११ ॥

इति श्री सहस्र गीतौ अष्टमशतके अष्टमदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके नवमदशकारम्भः

इस दशक में श्रीशठकोपमुनि ने परमप्रभुसे प्रार्थना की कि अनादिकाल से पापरत अति क्षुद्र मेरे लिये आपने निर्हेतुक कृपा करके ज्ञान शक्त्यादिक गुण दिये हैं। फिर भी आप मुझे दुःख और दोष भरे इस संसारमे क्यों स्थापित करते हो। प्रभुने कहा कि सहस्र गीति की रचना द्वारा हमारी स्तुति करनेके लिए हमने आपको इस संसारमे रख छोड़ा है। आल्वार प्रभुके इस वाक्यसे प्रसन्न होकर उनके निर्हेतुक उपकारोंका वर्णन करते हैं।

स्वीकृत्य मां प्रथमतोप्यसकृच्चभूम्ना,
कृत्वा स्वकीयमिह दिव्य कवित्वसीम्नि।
स्तोतुं स्वमेव परमं प्रभुमादिभूतं,
ज्योतिः परं मम कथं वत वर्णयामि ॥१॥

हे प्रभो! आपने ही पहले मुझे स्वीकार करके और अपने दिव्य प्रभावसे कवियों की सीमा में बैठाकर अपने ही जगत के आदिकारण रूप प्रभुत्वको स्तुति करने के लिए शक्ति प्रदानकी है। बड़े हर्षकी बात है कि मैं आपके परम ज्योति स्वरूपका किसी प्रकार वर्णन करने लग गया हूँ ॥ १ ॥

यो मामनुग्रहवशात्कवितासु सक्तं
कुर्वन्ममैव कवितेति जना यथाऽऽहुः ।
कर्त्ता तथा स्वयमभूत्स्वनुतौ प्रसक्तो
मायी त्रिमूर्तिममुमद्य कथं स्तवीमि ?॥२॥

कविता करनेमें लगे हुए मुझको जिसने अपनी निर्हेतुक कृपासे जनसाधारणमें यह प्रसिद्ध कर दिया कि हमारे गुणोंका कविता द्वारा यथार्थ वर्णन शठकोप सूरिही कर सकते हैं। और अपने गुणोंकी प्रशंसा करनेके लिए आप ही मुझे कविता करनेका मार्ग बताकर उपदेश दे रहे हैं। इस प्रकार अनेक मायामय लीला करनेके लिए त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) धारण करने वाले उस प्रभुकी आज मैं किस प्रकार स्तुति करूं ॥ २ ॥

सोऽयं कविर्भवति मे स्तुति कृत्किलेति
स्वज्ञान कृन्ममपुरा रसनां प्रविष्टः ।
दिव्यं कवित्वमिहभक्तजनाय कुर्वन्
आद्यस्स्वयं स्वविपर्यं किमु विस्मरेयम् ! ॥ ३ ॥

जो प्रभु इस प्रकारकी आज्ञा करता है कि संसारमें कवि वही हो सकता है कि जो निश्चितरूपसे हमारी स्तुति करता हो। और उस प्रभुने ही मुझे कविताका ज्ञान प्रदान किया है। और मुझे अपना भक्तजन समझकर दिव्य कवि बनानेके लिए मेरी जिह्वा पर आकर भी विराजमान हो गया है। जो समस्त पदार्थोंका आदिमूल है और मेरे लिए सर्वप्रकार भोग्य रूप है, उस प्रभुको क्या कभी मैं भूलूंगा ? ॥ ३ ॥

पार्श्वे मम स्थित इमां कवितां च कुर्वन्
स्वस्य स्तुतिं य इह मामपि पापशीलम् ।
उज्जीवयन् गुणयुतं कुरुते परात्मा
तं नायकं मम कदा वत विस्मरेयम् ? ॥ ४ ॥

जो प्रभु मेरे पासमें खड़ा होकर अपनी स्तुतिरूप इस कविताको स्वयं करवा रहा है। और जो इस संसारमें अत्यन्त पापवृत्ति वाले मेरे को शुद्ध करके उद्धार कर रहा है, जो सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वका अन्तर्यामी है, सर्वप्रकारसे मेरे स्वामी उसको क्या मैं भूल जाऊंगा ॥ ४ ॥

संचिन्त्य सद्गुणगणान् मधुरं च काव्यं
कर्त्तुं न शक्तिरिह मेऽस्ति ! तथाऽपि गृह्णन् ।
मामेवं दिव्यकवितां स्वयमेव कुर्वन्
मद्द्वारतःस्वविपर्यां परमः प्रभुर्मे ॥ ५ ॥

जब मैं काव्यके गुणगण और दोष समूहोंका विचार करता हूँ, तो अति मधुर और निर्दोष काव्य करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। तथापि वह प्रभु अपनी निर्हेतुक दयासे अपनी दिव्यकविताको मेरे द्वारा स्वयं करवाकर अपने महत्त्व प्रतिपादन करने वाली कविताको स्वयं स्वीकार कर रहा है। वही सर्वश्रेष्ठ देव हमारा स्वामी है ॥ ५ ॥

स्वस्यस्तुतिं न किल कारयति स्वयन्तु
श्रीमानयं मधुरदिव्य कवीन्द्रमूलात् ।
अद्यागतोऽत्र कृपया मयि सन्निधाना
द्वैकुण्ठराट् किल मया स्वनुतिं तनोति ॥ ६ ॥

उस परमप्रभुके लिए उसकी स्तुति करने वाले दिव्यकवियों (व्यास वाल्मीकि आदि) के दिव्यकाव्य स्वयं अत्यन्त प्रिय नहीं हैं, पिताके लिए अबोध बच्चेकी तोतली वाणी जितनी प्रिय लगती है। उतनी शिक्षित पुत्रकी प्रिय नहीं लगती। इसीलिए वैकुण्ठवासी तथा लक्ष्मीके पति वह कृपा करके मेरे पास आये हैं। और अपनी प्रसन्नताके लिए अपनी स्तुतिरूप काव्यको मुझसे बनवा रहे हैं ॥ ६ ॥

वैकुण्ठनाथ इह मे प्रबलाघ हन्ता
मद्द्वारतःस्वनुति मेव हि कर्तुकामः ।
दिव्यां कवित्वसरणिमपि सन्दधाति
त्येवं विचिन्त्य सुगुणन्तु कदाऽस्मि तृप्तः ? ॥ ७ ॥

अनादि कालसे संचित मेरे प्रबल पापोंको नाश करने वाले भगवान् वैकुण्ठनाथ अपनी स्तुतिको मेरे द्वारा ही करानेकी इच्छासे मेरे लिए दिव्यकाव्य करनेकी शक्तिकी गति प्रदान करते हैं। इस प्रकार उस प्रभुके सौशिल्यरूप उत्तम गुणका विचार करके मैं कभी भी तृप्त नहीं होता हूँ ॥ ७ ॥

अज्ञं च मां कविवरं रचयन्नुदारां
दिव्याकृतिं स्वविषयां प्रकटीकरोति ।
यश्चक्रभृन्मम विभुः किल तस्य कीर्तिं
स्तोतुं प्रभुर्न हि भवेयमनन्तलोकैः ॥ ८ ॥

सुदर्शन चक्रको हाथमें धारण करने वाला जो प्रभु अत्यन्त अज्ञानी मेरेको कवि श्रेष्ठ बनाकर और अपने गुणोंका यथार्थ प्रतिपादन करने वाली उदार और गम्भीर अर्थोंसे भरी हुई दिव्यकाव्यको प्रगट करवाता है। वह मेरा निरुपाधिक स्वामी है,उसकी कृपाके बिना मैं अनन्त ज्ञानियोंकी मण्डलीको साथ लेकर भी यदि उसकी कीर्तिका वर्णन करना चाहूँ तो भी नहीं वर्णन कर सकता। आज मैं जो सुमधुर सर्वगुण सम्पन्न काव्यकी रचना कर रहा हूँ, वह प्रभुकी दिव्यकृपाका ही फल है ॥ ८ ॥

मां चापि दिव्यमतिमेव विधाय साक्षात्
यो मन्मुखान्मधुर सत्कृतिकृत्स्वनुत्यै ।
तं सर्वशक्तमपि माधवमुत्तमं किं
स्तुत्वा त्रिकालसमयेषु भवामि तृप्तः ? ॥ ९ ॥

जो प्रभु मेरे लिए दिव्यज्ञान और शक्ति आदिक देकर समर्थ बनाकर अपनी स्तुति करनेके लिए मेरे मुखसे अतिमधुर सुन्दर काव्यको करवा रहा है। उस सर्व शक्तिमान् सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीपतिकी तीनों समयमें स्तुति करके क्या मैं कभी तृप्त हो सकता हूँ ॥ ९ ॥

आत्मानमेवकृतविन्ननु चार्पयामी–
त्येवं विचिन्त्य स च भाति तदीय एव ।

इत्येव वेद्मि कवितां ललितां विधातु
स्तस्योपहारकणिकाऽत्र न चापरत्र ॥ १० ॥

जब मैं अपनी बुद्धिसे उस प्रभुके किए हुए अनन्त उपकारोंका विचार करता हूँ, तो मेरा विचार होता है कि मैं अपनी आत्माको उसीके चरणोंमें समर्पण करदूं, परन्तु फिर सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करने पर यह ज्ञान होता है कि वह मेरी आत्मा उसी प्रभुकी वस्तु है, उसको समर्पण करनेका मुझे अधिकार ही क्या है । किन्तु जिस प्रभुने मुझसे अति ललित कविता करवाई है, उस कविताको ही उसके चरणोंमें अर्पण करूं। इसके अतिरिक्त उसको उपहार देनेके लिए मेरे पास और है ही क्या ? ॥ १० ॥

अत्राप्यमुत्र परमन्तु विनेन्दिरेशं
नास्त्यन्य इत्ययमहो ! शठजिन्मुनीन्द्रः ।
चक्रे सहस्रमुचितं दशकं तदेतत्
संकीर्तितं वितनुते परमं प्रमोदम् ॥ ११ ॥

इस लोक और परलोकमें उस लक्ष्मीपतिको छोड़कर जिसका सचा मित्र कोई नहीं है । उसी शठकोपमुनिने उत्तम सहस्रगीतिको बनाया है । उसमें इस दशकका जो प्रेमके साथ कीर्तन करेंगे उनको परमानन्द अवश्य प्राप्त होजायगा ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके नवमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ सप्तमशतके दशमदशकारम्भः ।

इस दशक में पूर्वोक्त प्रकार से स्वनिर्मित अपने काव्यको सुनाकर श्रीनदीमातृक ग्राममें लक्ष्मीके साथ विराजमान परमात्माको प्रसन्न करने के लिये वहां जाना चाहने हैं ।

आनन्दामृतभोगसक्तहृदयौ पद्मा च विष्णुस्स्वयं,
लोकान् सप्त च सन्नियोज्य च मुदे दास्ये स्वकीये सदा ।
आनन्दाश्रयनित्यवाससहिते तौ श्रीनदीमातृक-
ग्रामे सन्निहितौ हि तत्र च मुदा किंस्वांजलिंकुर्महे ? ॥१॥

जिसमें अनेक प्रकार के उत्सवों के प्रभाव से नित्य ही आनंद वास करता है। उस नदीमातृक ग्राममें जहाँ पर सातलोकों को अपनी दास्यवृत्ति में लगाकर परमानन्द प्रदान करने के लिए, और स्वयं परमानन्द भोगने के लिए लक्ष्मी और विष्णु दोनों सदा वास करते हैं। उस नदी मातृक ग्राममें जाकर परमानन्द के साथ दोनों हाथ जोड़कर हम उस परम प्रभुकी स्तुति करेंगे। वह शुभ दिवस हमको कब प्राप्त होगा।

श्रीनदीमातृक नामका दिव्यदेशकेरलदेश में तिरुवारन्विल्लै नामसे प्रसिद्ध है। और इसी नामका एक दिव्य देश मलयवार देशमें भी है ॥ १ ॥

निस्सन्देह मिदं भवेत्किमु महालोकानशेपानपि,
वाङ्घ्रिद्वन्द्वमितान् विधाय जयति श्रीवामनो मे प्रभुः।
अत्युच्चोज्वलरम्यसौधवलये ग्रामे नदीमातृके,
तं गत्वा किमु सप्रदक्षिणमहो! तीथ सुगन्धैर्नु मः ॥२॥

सन्देह रहित समस्त लोकोंको अपने दो पैरोंसे नाप कर स्वाधीन करने वाले वामन रूप हमारे स्वामी जहां सर्व श्रेष्ठरूपसे विराजमान हैं। अत्यन्त उज्ज्वल और रमणीय छतोंसे ढके हुए उस नदी मातृक ग्राममें प्रभुके पास जाकर और उस दिव्य देशकी प्रदक्षिणा करके सुगन्धि युक्त जलको उस प्रभुके चरणोंमें समर्पण करके हम प्रणाम करेंगे वह शुभ दिवस हमको कब प्राप्त होगा ॥ २ ॥

गोविन्दं मधुसूदं हरिममुं सिंहं रिपूणां वयं,
दृष्ट्वा श्रीगरुड़ध्वजं तदुपिते ग्रामे नदीमातृके।
यज्ञैः पंचभिरञ्चितेऽपि च चतुर्वेदैःपडङ्गैरपि,
श्रीशं तं प्रणमाम किन्नु सततं ? किं साध्यमेत्तनु नः ॥३॥

पडङ्ग चरों वेदोंके पाठ करने वाले पंच यज्ञ परायण विद्वान ब्राह्मणोंसे सुशोभित श्रीनदीमातृक ग्राममें वास करने वाले गरुड़

की ध्वजा को धारण करने वाले शत्रु समूह को नाश करनेमें सिंहके समान पराक्रम दिखाने वाले पृथ्वी के रक्षक उस मधुसूदनके दर्शन करके उसको हम निरन्तर प्रणाम करेंगे। यह कार्य क्या हमारे लिए सुख पूर्वक प्राप्त हो सकता है ॥ ३ ॥

इक्षुव्रीहि-समृद्धसस्यभरिते ग्रामे नदीमातृके,
त्रैलोक्याधिपतेः प्रभोस्तु मथुराजातस्यकृष्णस्यतौ ।
रम्यौ नीलतनोश्च दिव्यचरणौ पद्मायितौ किं हृदा,
ध्यातुं शक्यतमौ ममात्र वसतः ? किं साध्यमेतत्सदा॥४॥

त्रिलोकी का पालन करने वाले हमारे स्वामी मथुरा में जन्म लेने वाले नीलघनश्याम कृष्णके जो कि ईख और धानके खेतोंसे घिरे हुए नदीमातृक ग्राममें स्थित है। उस कृष्णके कमल के समान सुन्दर रमणीय चरणोंको अपने हृदय से मैं ध्यान करता हुआ उसी दिव्य देशमें सदा वास करूं। यह कार्य मुझे क्या सुख पूर्वक प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

नित्यं मे मनसा विचिन्त्य चरणौ दिव्यौतु पद्मायितौ,
नन्तुं मे प्रभुरच्युतो विलसति ग्रामेनदीमातृके ।
भक्तानुग्रहकृच्च शेषशयनः पुष्पाढ्यसौधावृते,
कीर्तिं तस्य जगत्ततां यदि वयं गायाम नश्येदघम् ॥५॥

यह हमारा स्वामी अविनाशी श्रीहरि जिसके कमलके समान सुन्दर दिव्य चरणोंका नित्य ही हम अपने मनमें विशेषरूप से चिन्तवन करते हैं। उन्हीं चरणोंकी हमारे लिए सेवा प्रदान करनेके लिए अनेक फूलवाली बेलोंसे लदी हुई छतोंसे शोभित श्रीनदीमातृक ग्राममें विराजमान है। और जो प्रभु भक्तोंके ऊपर दया करनेके लिए शेष शैया पर शयन करता है। समस्त संसारमें फैली हुई उसकी कीर्तिका यदि हम लोग गान करें तो अवश्य ही वह हमारे पाप तापोंको समूल नष्ट कर देगा ॥ ५ ॥

तत्राजौहि तदा विजित्य च रिपुं पूर्णां रमां रुक्मिणीं,
दिव्यालंकृतसद्भुजां श्रितममुं कृष्णं मनो मे सदा ।
स्तोतुं शक्तमिदं भवेदिति हरिर्ग्रामे नदीमातृके,
भातीदं तु पुरं शुभं नमत भोः भक्ता ! अघं नश्यति ॥६॥

कुंडनपुरमें रुक्मिणी की प्राप्ति में बाधा करने वाले शत्रुओंको जीतकर दिव्य अलंकारों से शोभित भुजा वाली परिपूर्ण लक्ष्मीके रूपको धारण करने वाली रुक्मणीको जीतकर उसके आश्रयमें सदा रहने वाले कृष्ण की सदा स्तुति करने के लिए ही यह मेरा मन सदा साहस करता है । वही हरी श्रीनदीमातृक दिव्य देशमें विराजमान हो रहा है । हे भक्त गणो कल्याण कारक उसी हरिको आप लोग प्रणाम करो इसीसे आपके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जांयगे ।

दिव्या सा नगरीति पुष्पमहिते ग्रामे नदीमातृके,
दिव्ये सन्निहितः प्रभुर्ममहरिः कृष्णस्तु सूरीश्वरः ।
बाणवासपुरं प्रविश्यच युधि त्र्यक्षेतु दूरं गते,
विष्णुर्बाणसहस्रबाहुभिदसौ ! नान्यश्शरण्योऽस्ति नः॥७॥

इस संसारमें एकतो वह सर्व प्रकार के पुष्पोंसे शोभायमान नदी मातृक ग्राम ही दिव्य है । और उसमें नित्य मुक्तोंके स्वामी और हमारे स्वामी श्रीहरि कृष्ण विराजमान हैं। वह दिव्य देशतो अत्यन्त ही दिव्य और महत्व शाली है । जो भगवान् कृष्ण बांणासुरकीराजधानी में जाकर युद्ध में त्रिनेत्रधारी रुद्रको भगाकर के बाणासुर की हज़ार भुजाओं को काटकर विष्णु (अष्टबाहुरूप) रूप से प्रगट हुए थे । यही कृष्ण इस नदीमातृक पुरके दिव्य देशमें स्थित है । इसको छोड़कर हमको आपत्तियों से बचाने वाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ७ ॥

त्वत्पादौ तु विना न मेऽस्ति शरणं चेति हृदे दुर्गमे,
ग्राहग्रस्तपदो गजस्तु शरणं यस्याङ्घ्रियुग्मं गतः ।

सोऽयं दुःखहरो हरिर्विजयते ग्रामे नदीमातृके,
सस्याढ्ये तदिदं पुरं च भजतां सर्वं प्रणश्येदघम् ॥८॥

जिस समय त्रिकूटा चलके अति विस्तृत निर्मल सरोवरमें स्नान करते हुए गजराज को ग्राहने पकड़ लिया था। उस समय उसके परिवारके भाई बन्धु स्त्री आदिक निराश होकर उसको आपत्तिमें डूबा छोड़ कर चले गये थे। उस समयमें उस गजराजने अन्यावलंब छोड़कर भगवत चरण परायण हो कर यह पुकार की थी कि हे प्रभो इस समय आपके चरणों को छोड़ कर इस संसार में मेरा रक्षक कोई नहीं है। इस प्रकार की गजकी पुकार को सुनकर अति शीघ्रतासे दौड़ कर गजके दुःखको दूर करके उस के प्राण बचाये थे। वही सर्व दुख नाशक हरि हरे खेतोंसे युक्त नदी मातृक ग्राममें विराजमान हो रहे हैं। जो बड़भागी भक्त जन उस पुरमें जाकर प्रभुके चरणों की सेवा करते है। उनके सर्व प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥

क्रूराघात्ययतः परं पदमपि प्राप्नोमि चेन्मानसं
सक्तं स्यान्मम सप्रदक्षिणमिदं ग्रामे नदीमातृके ।
वन्दे वाङ्मनसानुरूपकृतिभिस्सर्वैश्च लोकैस्स्वयं
सस्याढ्ये परमे सदाऽपि कुतुकात् संसेवितुं तत्पुरम् ॥९॥

हे मेरे मन! हरे खेतोंसे युक्त सर्वश्रेष्ठ नदीमातृक दिव्यदेशकी प्रदक्षिणा पूर्वक सेवा में यदि तू लग जायेगा तो, मैं तेरे प्रतापसे अति भयङ्कर पापोंको अति शीघ्र नाश करके परमपदको प्राप्त होजाऊंगा। मैं सब लोगोंके सामने वाणी मन और कर्मसे बड़ी अभिलाषासे सेवा करनेके लिए उस पुरको ही सदा प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥

चेतो वाक्तनुभिस्तु भक्तनिवहे नित्यानुभाव्ये मुदा
नित्यं भाति हि तीर्थपुण्यचरितो ग्रामेनदीमातृके ।
श्रीशस्तत्र मनो ममास्ति सततं नान्यत्र चेति स्वयं
सूरीन्द्रः परमद्य वेत्ति हृदये गोप्यं न किंचिद्भवेत् ॥ १० ॥

जो परमप्रभु सदाही भक्त समाज द्वारा मन वचन कायासे आनन्दपूर्वक अनुभव किया जाता है । जिसके चरित्र पापोंको धोनेके लिए तीर्थोंके समान अति पवित्र हैं, वह लक्ष्मीपति प्रभु नदीमातृक ग्राममें विराजमान हो रहा है । मेरा मन उसमें ऐसा आसक्त होगया कि उसे छोड़कर एक क्षणभरके लिए भी अन्यत्र जाना नहीं चाहता।

और इस बातको नित्य सूरियोंका स्वामी वह परमात्मा भले प्रकार से जानता है इसी कारण मैं किसी भी बातको अपने हृदयमें गुप्त नहीं रख सकता हूँ ॥ १० ॥

तीर्थं तं शरणं गतोऽस्मि सततं नान्यं किलेति स्वयं,
तीर्थस्यैव परस्य दास्यनिरतो विष्णोश्शठारिमुनिः ।
तीर्थप्रायमिदं सहस्रमकरोद् दिव्यं पठन्तीह ये
तच्चेदं दशकं स्तुवन्ति किलतान् देवास्स्वदेवीः प्रति॥११॥

जो शठारि मुनि यह कहकर कि तीर्थ स्वरूप उस परमात्माके तीर्थ स्वरूपचरण कमलों की शरण हो मैंने अन्याश्रय छोड़कर ली है । इस प्रकार विष्णुकी दास्यवृत्तिमें लगे हैं । उन शठकोपमुनिने तीर्थ स्वरूप दिव्य सहस्र गाथाकी रचना की है । उसमें जो भक्त इस दशकको पढ़ेंगे उन बड़भागियों की स्तुति देवता लोग अपनी देवियोंके सामने निरन्तर करेंगे ॥ ५ ॥

इतिश्रीमद्वेदवेदाङ्गद्राविडशास्त्रनिष्णात प्रशस्तश्रोत्रावतंस श्रीमन्माधवाचार्यचरणाश्रित श्रीरामानुजसत्संप्रदायाचार्य मथुरागलतामठाधीश्वर पण्डितस्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्यशास्त्रि विरचित विद्वन्मोदतरंगिणीभाषाटीका सहित श्रीसहस्रगीतेः सप्तमशतकं सम्पूर्णम् ।



अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके प्रथमदशकारम्भः ।

इस दशकमें आल्वार कहते हैं कि मैं आपके दिव्य अलौकिक सौन्दर्यको देखकर उसमें इतना आसक्त होगया हूँ, कि अब उसको देखे बिना प्राण धारण नहीं कर सकता इसलिए कृपा करके उस सुन्दर मूर्त्तिका दर्शन देते रहिये।

देव्यस्ते श्रीश्च भूमिस्तदितरमहिषीवर्ग एवं च दिव्या-
स्सूरीन्द्राः किंकरास्ते त्रिभुवनमपि तत्पालनार्हाश्चदेहाः
सर्वाणीमानिरूपाण्यहह ! तव सरोजाक्ष बिम्बाधर त्वं
मे भास्यात्मा चरत्नं शुभममृतमहो ! त्वां दिदृक्षेऽब्धिमन्थ ॥१॥

हे कमलदल लोचन ! श्रीदेवी और भूमिदेवी आदिक आपकी असंख्य महिषी (पटरानी) हैं । अनन्त गरुड़ विश्वक्सेनादिक दिव्य सूरिजन आपके दासवर्ग हैं । और त्रिलोकीमें प्रकाशमान होने वाले विचित्र देहधारी आपकी प्रजा हैं । हे लालहोठ वाले ! संसारमें जितने भी स्थूल सूक्ष्म चराचररूप दिखाई देते हैं, वे सब आपके ही रूप मुझे प्रतीत हो रहे हैं । और आप मेरे अन्तर्यामी भी हो तथा उत्तम-रत्नरूप हो । समुद्र मन्थन करके स्वाश्रित देवोंको अमृत पिलाकर अजर अमर बनाने वाले प्रभो ! मैं आपके उसी रूपको देखनेकी तीव्र लालसामें लगा हुआ हूँ ॥ १ ॥

देहि त्व दर्शनं मे सपदि करुणयेत्यर्थिरूपोऽपि पापी
साश्रुश्चाहूय च त्वां मुहुरवदमहं हन्त ! नामानि तेऽत्र ।
किं वेद्मकृते कृपा मय्यहह ! रघुपते कृष्ण मे कल्पकस्त्वं
सिद्धं पक्वं फलं चा मृतमवनिधर ! त्वां तु वीक्षे कथं वा ॥२॥

हे पृथ्वीके उद्धार करने वाले अत्यन्त पापिष्ठ मैं यह जो प्रार्थना करता हूँ, कि आप कृपाकर मुझे दर्शन दीजिये यह भी मेरी अनधिकार चेष्टा है, परंतु हे कृष्ण ! वारम्वार आँसुओंकी धारा बहाकर मैं आपके नामोंका यहाँ जो कीर्तन करता हूँ, यह भी तो एक आपकी कृपाका ही फल है । हे रघुपति आप मेरी इच्छाओंको पूरी करनेके लिए कल्पवृक्षके समान हो । और मेरे मनको सन्तोष और

आनन्द देनेके लिए भले प्रकारसे पके हुए अमृतफलके समान हो। इतना होने पर भी मैं नित्यविभूतिमें नित्य विराजने वाले आपके रूपको ही देखना चाहता हूँ ॥ २ ॥

प्राप्य त्वां नन्दगोपः पृथुविमलयशास्तस्य सूनुः प्रियस्त्वं
प्राणात्मा वै यशोदाकुलमणि परमानन्द मत्तेभडिम्भः।
विष्णुस्वामी ममत्वं खरनखर ! हिरण्याक्षवक्षोविदारिन्
वात्सल्याब्धे न हि त्वं भवसि धृततनुश्चाद्य कोविश्वसेदाः ॥३॥

हे वात्सल्य सागर ! व्रजमें नन्द नामका गोप आपको पुत्ररूपसे प्राप्त होकर ही अति विस्तृत उज्ज्वल कीर्त्ति वाले होगये। क्योंकि आप उसके प्राणोंसे भी प्यारे पुत्र बने थे। और अपने कुलमें मणिके समान सर्वश्रेष्ठ यशोदा देवीके तो आप प्राणरूपही थे। यशोदा देवीको आपके बालक्रीड़ाके अनुभवसे ही परमानन्दकी प्राप्ति हुई थी। और महानन्द कुलके तो आप मतवाले बालगज स्वरूप हो। आप सर्व व्यापक होते हुए भी मेरे स्वामी हो। शिलाके समान अति विशाल और कठिन हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलको विदारण करनेके लिए अति दृढ और तीव्र नख वाले नृसिंहरूपको आपने धारण किया था। प्रभो इस प्रकार समय समय पर आप अनेक प्रकारके शरीरोंको धारण करके यदि आश्रितोंकी रक्षा न करें, तो आपके अस्तित्वमें कौन विश्वास करेगा। अर्थात् आपके साकाररूपको देखकर ही हम मन्द-मति आपकी ईश्वरसत्तामें विश्वास करते हैं ॥ ३ ॥

युद्धे तत्र धरातलाखिलचमू विध्वंसक श्रीहरे !
देवानाममृतं त्वमेव हि विषं रक्षोगणानां ननु।
आत्मा त्वं मम भक्तहृद्यमिह यत्तते वपुर्भक्तहृत्-
प्रीत्युत्कर्षकरी क्रिया तव सदा ! मायां न वेद्यज्ञकः ॥ ४ ॥

हे श्रीहरे ! महाभारत महा समरमें अखिल भूमण्डलकी दुष्ट सेनाओंका विध्वंस करके आपने स्वाश्रित रक्षण किया था। और समुद्रको मन्थन करके स्वाश्रित देवताओंको अमृत पिलाकर अपने

से विमुख दैत्यगणोंको विष दिया था। आप मेरे आत्मा स्वरूप हैं। आपके आश्रितोंके प्रेमास्पद जितने रूप हैं, वे सब आपके प्रेमी भक्तोंके चित्तोंको बलात्कारसे आपकी ओर खींच लेते हैं, आपके जितने भी लीला चरित्र हैं, सब भक्तोंके हृदय समुद्रमें आनन्दकी लहरोंको बढ़ाने वाले हैं। इस प्रकार सर्वविध भक्तोंकी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली आपकी मायाको मैं अज्ञानी यथार्थरूपसे कैसे जान सकता हूँ, अर्थात् मेरे क्षुद्र मनमें कभी कभी यह सन्देह होजाता है, कि वे प्रभु दर्शन देकर हमारे कष्टोंको हरण करेंगे वा नहीं ॥४॥

प्राणात्मन्! पृथ्वीं सृजन्नपि वहन् भुक्तोद्गिरन्मानकृत्
सर्वेशः प्रलयार्णवे च शयितो मन्थोऽम्बुधेस्सेतुकृत्।
तद्भेत्ता च भवान्महान् किल नृणां देवोऽसि देवाधिपो
लोकानामसि चान्तरात्मक इह त्वां प्राप्नुयां वा कथम् ॥५॥

हे प्रभो! आप मेरे प्राणोंको धारण करने वाले आत्मा हो। आप भक्त हितार्थ ही इस पृथ्वीको रचते हो, फिर इसे खा लेते हो। और उगल देते हो, इसको धारण करते हो। और इसको नापते हो और इसी प्रकार समुद्रको आप रचते हो, और उसमें शयन करते हो, तथा उसका मन्थन भी करते हो। और उस पर सेतु बाँधते हो, और प्रलय आने पर उसको तोड भी देते हो। आप मनुष्योंके देव हो, इतना ही नहीं किन्तु देवोंके भी देव हो। समस्त लोकोंके अन्तरात्मा होकर आप सर्वत्र विराजमान हो रहे हो। परन्तु इस शरीरसे आपके दिव्यचरणोंको मैं किस प्रकार प्राप्त कर सकूंगा यह तो बताइये ॥५॥

मन्नाथो जगतां प्रभुश्चसकला लोकाश्चदेवाः क्रिया
लोकातीत पदार्थजातमखिलं त्वं सूक्ष्मचिच्चाप्यचित्।
सर्वं त्वं परमे पदेऽपि विलसत् सर्वेन्द्रियात्युद्गतं
त्वामेवं परमात्मरूपमनघं मूढः कथं प्राप्नुयाम् ॥ ६ ॥

हे मेरे स्वामी! आप समस्त जगत्के निरुपाधिक स्वामी हो और समस्तलोक समस्त देव सर्वप्रकारके कर्म और भी जो पदार्थ

इन लोकोंसे बाहर हैं । और अतिसूक्ष्म चिद्वर्ग (जीवसमूह) और अचिद्वर्ग (प्रकृति समूह) रूपोंमें आपही हो । सम्पूर्ण इन्द्रियोंके गोचर न होने वाले रूपसे आप परमपदमें भी विराजमान हो रहे हो । इस प्रकार सर्व दोष रहित सर्वान्तर्यामीरूपसे सर्वत्र प्रकाशमान होने वाले आपको अति मूढ़ मैं कैसे प्राप्त होऊंगा ॥ ६ ॥

क्षीरं चाज्यं तदीदं रसमपि जलधौ लब्धमेवामृतं त्वं
तस्यापि प्राप्तसारं मधुरमपि फलं तस्य सर्वत्वमेव ।
नीलासंश्लेषभोगी सुमहित विभवो गोपसिंहोऽप्यतीतं
भव्यं यद्वर्त्तमानं तदिदमद इति त्वं हि सर्वं च तत्वम् ॥७॥

हे प्रभो ! दूध और घी और भी जितनी रस युक्त मधुर वस्तु हैं । तथा समुद्र से प्राप्त हुआ अमृत भी आप ही हैं । और अमृत का भी सार अमृत फल आप ही हो । नीला देवी के संश्लेष भोगमें ही जो नित्य आसक्त है । जिसको ईश्वर पना सर्व श्रेष्ठ और सर्व पूज्य है । तथा गोपोंमें भी जो आपही मुख्य हैं । भूत भविष्यत् और संसारमें वर्त्तमान जितने भी तत्व हैं । उनके रूपमें आपही प्रकाशमान हो रहे हो ॥ ७ ॥

मायातत्सर्ववस्तुष्वपि विशसि महान् गोपबालस्त्वमेव !
त्वन्माहात्म्यंहि रक्षो गणशमन ! सदा पापिनं मां तुदेच्च ।
क्षीराम्भोधिं श्रितस्त्वं गरुड़गमन ! भोः शेषशायिन्ः मनो वा,
कायास्सर्वेऽप्यहं च त्वमसि ननु ! ततोनप्रणन्तुं च वेद्मि ॥८॥

हे प्रभो ! आप गोप बालकका रूप धरके भी अपनी मायासे सर्व वस्तुओंमेंव्याप्त हो जातेहो । आपका प्रभाव इस प्रकारका है, कि वह सर्व प्रकार के राक्षसोंका शमन करने वाला है । किन्तु मेरे पापी हृदय में तो वह सदा ही पीड़ा पहुँचाता रहता है । यद्यपि आप मन वचन कर्म रूपसे इस संसार में रहते हो, तथापि अपनी इच्छा से क्षीर समुद्र को अपना शयन स्थान बना लेते हो , और गरुड़को अपना

उसके समस्त भूषण ढीले पड़कर खसक गये हैं, मेरे स्तन और मुखकी कान्ति भी समूल नष्ट होगई है ॥ १ ॥

प्राप्यैनं बत ! किं चिदाप्तुमिह मे सख्यस्स्पृहाढ्यास्तुवः
किं चिद्वक्तु महं नवेझि सदृशं ! हा ! हन्त पद्माम्बकः ।
अत्यन्तं रमणीय रूप इह मे नाथ स्वयं वंचक,
स्सूरीन्द्रः किल ! तद्वशं तु वलयं स्त्रीत्वं च मे किं लभे॥२॥

हे मेरी प्यारी सखियो ! यह मेरा स्वामी ऐसा है, कि तुम लोग एक बार भी उसे प्राप्त करलोगो तो फिर अन्य वस्तुको प्राप्त करनेकी तुम्हारी इच्छा न होगी। किन्तु उसी प्रभुकी प्राप्तिकी इच्छासे व्याकुल हुई मैं तुमसे क्या कहूँ। यह मेरा स्वामी जिसके कमलके समान सुन्दर नेत्र हैं, और उसका रमणीयरूप तो इतना सुन्दर है, कि वैसी सुन्दरता ढूंढने पर भी नहीं मिल सकती, नित्य मुक्तजनभी उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो कर सदा ही उसके ध्यान में मग्न रहते हैं। उसी चित चोरने मेरा चित्त चुरा लिया है। अब मेरे भूषणोंकी पूर्ति उसीके आधीन है। क्या वह शुभ समय मुझे मिलेगा कि मैं उसके मंगल विग्रहसे मिलकर अपने स्त्रीपनेको सफलकर सकूंगी ॥२॥

नीलाम्भोद निभोज्वलामलतनुः कृष्णोऽहरन्मे तनोः
कान्तिं कंकणयुग्म मप्यहमहो ! तत्प्राप्तये चानु तम् ।
गत्वा चाप्यभवं मनोज्ञवदनाः ! लोकापवादास्पदं,
लज्जामेऽस्ति वृथाऽद्य कालमतिगा पापा न लीनाऽस्म्यहम् ॥३॥

अहह ! नीलघनश्याम उज्ज्वल विग्रहधारी श्यामसुन्दर कृष्णने ही मेरा मन और शरीरकी शोभा और मेरे भूषण ये सब चुराये हैं। उसके प्राप्त करनेके उपायमें ही मुझे अनेक जन्म बीत गये हैं। अति सुन्दरमुखवाली मेरो संसारमें निन्दा भी पर्याप्तरूपसे हो चुकी है। अब उसकी प्राप्तिके बिना अधिक समय बीत गया है। फिर इस प्रियतमको प्राप्त करनेमें किसी प्रकारकी लोक लज्जा करना-

व्यर्थ है इस दुःखसे छूटने के लिये तो बड़ा अच्छा होता कि मुझ रोखी पापिन उत्पन्न होकर ही नष्ट हो गई होती ॥ ३ ॥

प्रसादैर्वलयैर्ध्वजैश्च भरिते दाक्ष्ये कुलन्दाह्वये,
रम्ये तं नगरे विचित्रचरितं जिष्णुं च तार्क्ष्यध्वजम् ।
श्रीशं चक्रधरं समर्च्य तमनु प्राप्ता स्वयं चेतसा,
हीनाऽहं करकंकणैश्च ! किमतो दद्यां स्वशीलं विना ? ॥४॥

हे सखियो ! ऊँची ऊँची ध्वजा जिन पर लगी हुई है। ऐसे प्रासादों (देव मन्दिरों से) घिरे हुए दक्षिण दिशामें स्थित कुलन्दा नामके अति रमणीय नगरमें स्थित अनेक प्रकारके विचित्र चरित्र करने वाले गरुड़ध्वज लक्ष्मी पति सुदर्शन चक्रधारी विष्णु की आर्चना करके और तन मन धन उसीके अर्पण करके ही मैं भूषण और वस्त्रों से हीन हो गई हूँ। अब एक सतीत्वधर्म ही मेरे पास शेष रहा है । उसको छोड़कर प्रभुके चरणोंमें मैं और क्या अर्पण करूं ॥ ४ ॥

याथार्थ्यात्परिशीलने स्वयमसौ सर्वेषु कल्पेस्वपि,
स्वैरं चैकविधोऽप्रमेयमहिमा ज्योतिर्मयश्चादिमः ।
श्रीशं चक्रधरं तमेवहि भजे ! सोऽयं च मामागतो,
हे सख्यः ! किमितःपरं वत ! वदाम्येषाऽस्म्यधन्या स्वयम् ॥५॥

जो प्रभु सर्व पदार्थों का आदिकरण है। जिसका स्वरूप सर्व श्रेष्ठ ज्योतिर्मय है । जिसकी महिमा का पार पाना बड़े बड़े ज्ञानियों की बुद्धि को भी अशक्य है । जो समस्त कल्पों में स्वयं एक अविनाशी रूपसे स्थित रहता है । उसका यथार्थ रूपसे अनुभव कौन कर सकता है । उसी चक्रधारी लक्ष्मी पतिका मैं निरन्तर भजन करती हूँ । परन्तु हे सखियों ! उस प्रभुने अभी तक आकर मुझे दर्शन देकर कृतार्थ नहीं किया इस कारण मैं बहुत ही दुर्भागिनी हूँ ॥ ५ ॥

तत्वं चेत्परिशील्यते ननु हरेस्तेजः परं भास्वरं,
वाचोऽतीत महो ! सुराअपि च ते भ्रान्ता न शक्ता स्तुतौ ।

वाहन बना लेते हो। हे शेष शायिन्! इसप्रकार आपका मायामें भ्रममेंपड़कर आपको प्रणाम करने की विधि भी मैं नहीं जानता ॥८॥

याथात्म्यादस्यहं च त्वमिह भवमहानारकादि त्वमेवे-
त्येवं चे त्किं फलं स्यात्परमपदगतेः किं भयं नारकाद्वा।
एवं चिन्ता कुलोऽहं त्वमिति किलयदा तत्ववित्स्यां तदापि,
स्याद्भीतिर्नारकान्मे परमपदमहानन्द! मे देहितेऽङ्घ्री ॥९॥

हे प्रभो! निरन्तर मुझे यही चिन्ता लगी रहती है, कि यथार्थ रूपसे यदि विचार किया जाय तो मैं और तुम स्वर्ग और नरक तथा संसार, रूपमें आपही हो। जब विभिन्नतासे सर्व वस्तु आपके ही रूप हैं। तो परमपद में जाकर ही हमें क्या उत्तम फल प्राप्त होगा। तथा नरकमें जाकर ही हमें क्या भयंकर पीड़ा हो सकती है। इस प्रकार के वस्तु तत्वका विचार करता हुआ भी मैं नरक से डरता हूं। अतः मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे लिए तो परमपद में परमानन्द दायक आपके चरण कमलोंमें नित्य निवास दे दीजिये ॥ ९ ॥

तेऽङ्घ्री मे दत्तवांस्त्वं तत इह कृतविन्मे किलात्मार्पणं ते.
साक्षात्सत्यं तनोमि स्वय महह! महान् ज्योतिषा भास्करस्त्वम्,
त्वं मे साहस्रबाहुः प्रभुरसि हिसहस्राक्षि पादाब्जमौलिः
सत्यं साहस्रनामा विलससि सततं! मे गतिस्त्वं शरण्यः॥१०॥

हे प्रभो! आपने कृपा करके मेरे लिए अपने चरणों की शरण प्रदान की है। इस कृतज्ञताको स्मरण करके मैंने भी इसके प्रत्युपकार रूप में अपनी आत्माको आपके चरणोंमें समर्पण कर दिया है। आप सर्वश्रेष्ठ तेजके महान् भंडार हो। और आपके सहस्र भुजा सहस्र नेत्र सहस्र पैर और सहस्र मस्तक और सहस्र नाम संसारमें प्रकाशमान हो रहे हैं। अथवा सहस्र नामों वाले आप ही संसारमें प्रकाशमान हो रहे हो। आप शरणागत रक्षक हो। इस लिए मैंने आपके ही चरणों की शरण ली है। आप ही मेरे रक्षक हैं ॥ १० ॥

सर्वस्मात्परमेव धातृपितरं रुद्रस्य तातं पितुः
सर्वेषाममि मौनिनां च पितरं ध्येयं शठारिमुनिः।
देवानामपि देवमेव कुरुकानाथो जगन्नायकं,
स्तोतुं चाह सहस्रमत्रदशकादुज्जीवनं स्याच्च नः ॥११॥

जो प्रभु सर्व श्रेष्ठ होकर ब्रह्माका पिता तथा रुद्रके पितामह है। और समस्त मुनिगणोंका भी जो पिता है। जो देवताओंका देव है, जिसके चरण कमल सदा ध्यान करने योग्य हैं। उस जगन्नाथ की स्तुति करने के लिए कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनिने सहस्रगीतिकही, उसमें यह दशक, पाठ करने वाले समस्त चेतनोंका अवश्य उद्धार करने वाला होगा ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके प्रथमदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके द्वितीयदशकारम्भः।

इसदशकमें परमात्माके गुणोंका अनुभव करके उनके प्राप्तिकी अत्यन्ततत्परता आल्वारको उत्पन्न हुई इसी कारण संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें मुख मोड़कर प्रभुकी प्राप्ति की त्वरामें उन्मत्त होकर एक नायिकाका अनुकरण करके प्रभुके चरणोंकी अप्राप्ति के दुःखको अपने मित्रोंके लिये करुणाक्रन्दन करके सुनाते हैं।

हे सख्यः करकंकणैस्सुरुचिरै युक्ताः प्रिया मेऽधुना
किंचिद्वक्तुमिहोत्सुकाऽस्मि च रहो यद्गोप्यते वैरिणाम्।
दुःसाध्यस्समयोऽस्तिभोः शृणुत मे नाथं हरिं वेंकटं
तार्क्ष्यारूढमवाप्तुमस्मि शिथिला वैवर्ण्यतःसुस्तनी ॥१॥

अति मनोहर करकंकणोंको धारण करने वाली मेरी प्यारी सखियो! मैं आज आपसे एक गुप्त बात कहना चाहता हूँ, परन्तु यह बात मेरे शत्रुओंके सामने तुमको गुप्त रखनी होगी। उसको सुनो गरुड़के ऊपर चढ़कर गमन करने वाले मेरे स्वामी जो कि वेंकटाचल पै विराजमान हैं, उनके दर्शनोंके लाभ लेनेका शुभ अवसर मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुआ इसी कारण मेरा शरीर दुर्बल होगयाहै,

एवं चास्ति परत्वमस्य ! ननु मेऽह्यार्पीच्च कान्तिं न मे,
हा दद्यात्तुलसीं सुमं वटपुरे सुप्तोऽद्य कुर्यां किमु ? ॥६॥

हे हरे ! जब हम सर्व श्रेष्ठ परम प्रकाशमान वाणी का विषय न होने वाले आपके वास्तविक रूपका विचार करते हैं, तो हमारी बुद्धि भ्रमवश हो जाती है। इतना ही नहीं किन्तु ब्रह्मादिक देव भी आपकी स्तुति करने में असमर्थ और भ्रान्त हो जाते हैं। इस प्रकार आपका परत्व सर्व श्रेष्ठ है। आपने ही तो मेरे शरीर की शोभा हरण की है। और फिर आकर कुम्भपुरीमें आप शयन कर रहे हो। तो क्या सुन्दर चरणों की तुलसी और पुष्प भी आप मुझे नहीं देते आपकी इस धृष्टता को मैं क्या करूं ॥ ६ ॥

भक्तानामघहृच्च केशव विभुर्नारायणो माधवो,
गोविन्दः परमः प्रभुः किल हरिर्वैकुंठ इत्येव च ।
स्तोताऽहं बहुनामभिश्च! हरिणा त्यक्तोऽस्मि रूपं निजं,
सोऽयं नैव च दर्शयेद्यदि शपे मात्रालिसङ्गो न मे ॥ ७ ॥

जो लक्ष्मी पति प्रभु ब्रह्मा और रुद्रका ईश्वर होकर भी नारायण रूप से भक्तों के सर्व पापों को हरण करते हैं। उस मेरे प्रभुको हरी गोविन्द माधव वैकुंठ कहकर बहुत से नामों से मैं स्तुति करती हूँ। तो भी मेरे चित्त हरण करने वाले उस हरीने मुझे त्याग दिया है। यदि उस परम प्रभुने अपना निजी रूप मेरे लिए नहीं दिखाया। तो मैं अपनी माता की शपथ खाकर कहती हूँ कि सखियो ! इस जीवन में तुम मुझसे नहीं मिल सकोगी। अर्थात् मैं अपने प्रणोंको छोड़ दूंगी ॥७॥

मत्पुष्टा हि शुकाश्च कोकिलमयूराद्या द्विजानैव वः
संगो मय्यहहाय-कान्ति-वलय-स्वान्तादिहारी मम ।
यत्रास्ते परमं पदं तदपि च क्षीराब्धिशेषाचलौ,
सर्वं प्राप्यमहो ! तथाऽपि सुलभं न स्यात्तु पाशो यदि ॥८॥

अहह ! मेरे से पुष्ट किए हुए शुक कोकिला मयूरादि पक्षी गणो ! अब तुमको भी मेरा संगम प्राप्त नहीं हो सकेगा क्योंकि आज

मेरे शरीरकी शोभा वसन भूषण और मनको चुराने वाला प्रभु जहां पर विराजमान है। वहां परम पद अथवा क्षीर सागर अथवा श्री शेषाचल पै जानेका मैं विचार करती हूँ। इस प्रकार हमको सुलभतासे प्राप्त होने वाला वह प्रभु तभी प्राप्त होगा जब कि हम संसार के मोह की फाँसियों को सहसा काट डालेंगे ॥ ८ ॥

दुर्दर्शोऽस्ति हि वंचकश्च जगतां दिव्याकृतिर्वामनो,
भूम्यां चापि दिवि प्रवृद्धतनुरेवासौ हि देवाधिपः ।
तस्मै मे तनुकान्तिरर्पि ततमा ! लज्जाऽपि मेऽद्यार्पिता !
किंवान्यत्तु ददामि हन्त ! वदत प्रेष्टास्तु सख्यो मम ॥९॥

हे मेरी प्यारी सखियो ! वंचना करने के लिए वामन का दिव्य रूप धारण करने वाला वह प्रभु समस्त जगतके के लिए दुर्दर्श है। देवाधिदेव यह प्रभु ही अपने शरीरको बढ़ा कर भूमि और आकाश में व्याप्त हो गया था। इसी के लिये मैंने अपने शरीर की शोभा अर्पण करदी है। और आज अपनी अमूल्य लज्जा भी उसीको अर्पण करदी है। अब तुम बताओ तो सही कि उसके लिये मैं और दूसरी क्या वस्तु समर्पण करूं ॥ ९ ॥

हे सख्यः ! सुललाटदेशरुचिराः किं वाद्य कुर्यामहं,
चेतो मे नव शं भवेयमिति मां त्यक्त्वानु गत्वा च तम् ।
पाणीद्वन्द्वधृतस्वशङ्खविमलश्री चक्रशंशोभिनः
चन्द्रार्काञ्चितशृंगनीलगिरिसङ्काशस्य सक्तं पदे ॥१०॥

अये सौभाग्य चिन्ह पूर्ण ललाट वाली मेरी सखियो ! आज मेरा चित्त उस प्रभु में आसक्त होकर जवाब दे गया है कि मैं अब तेरे वशमें न रहूँगा। इस प्रकार कहकर वह दोनों हाथों में उज्ज्वल शंख चक्र धारण करने से, उदय हुए सूर्य चन्द्रमा से शोभायमान शृंग वाले नील गिरिके समान शोभित होने वाले उस प्रभुके चरणकमलों में अत्यन्त आसक्त हो गया है। अब मैं इस चंचल चित्त को रोकने का क्या उपाय करूं ॥ १० ॥

पादाम्भोज समाश्रयैकहृदय स्सन्त्यक्तकामान्तरः
कृष्णं निर्मलकीर्तिमेव सततं स्तोतु शठारिमु निः।
साहस्र कुरुकापुरप्रभुरसावाहात्र गायन्ति ये
तच्चेदं दशकं भजन्ति कुशलं तेऽत्राप्यमुत्र स्वयम् ॥११॥

कुरुकापुरके स्वामी जो शठकोपमुनि संसारकी समस्त कामनाओं को छोड़कर भगवच्चरणोंमें चित्त लगाने वाले हैं, उन्हीं शठकोपमुनिने निर्मल कीर्ति वाले श्रीकृष्णकी स्तुति करनेके लिए सहस्रगीति कही है, उसमें कल्याणकारक इस दशकको जो गान करेंगे, वे पुरुष इस लोक और परलोक दोनों में परमकल्याणको प्राप्त होजाँयगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके द्वितीयदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके तृतीयदशकारम्भः।

इस दशकमें परमात्माके गुणोंका अनुभव यथार्थरूपसे करने वाला कोई नहीं है, क्योंकि नित्यसूरिगण नित्यानन्दमें मग्न हैं तत्वज्ञानी आत्मानुभवमें मग्न हैं, और ब्रह्मादिक देवस्वार्थ परायण हैं, और संसारी विषयभोगपरायण हैं। अतएव भगवद्भक्ति करनेमें कोई सहायक नहीं दीख पड़ता, ऐसा विचार करके आल्वार कुछ अप्रसन्न हो रहे थे, इनको देखकर परमात्माने यह कह कर कि आप सरीखे परमैकान्ती ही हमारे यथार्थ अनुभवका लाभ उठा सकते हैं, उनको प्रसन्न किया है।

तत्रात्र चाप्यमित एव च देवरत्नो
मर्त्यादयोऽपि तव सन्महिमानभिज्ञाः।
त्वां श्रीधराधिप ! सुगोप सुताधवेति
श्रीशङ्ख चक्रधर मेव शरण्यमाहु ॥ १ ॥

हे श्रीदेवी और भूदेवीके स्वामी ! जब हम संसारमें आपके महत्वको यथार्थरूपसे जानने वालोंको खोजना चाहते हैं, तो उन भूलोक अथवा स्वर्गलोकमें भी सर्वओर दृष्टि डालने पर भी मनुष्य देव राक्षस आदिक प्राणियोंमें आपके महत्त्वको यथार्थरूपसे जानने

पादाम्भोज समाश्रयैकहृदय स्सन्त्यक्तकामान्तरः
कृष्णं निर्मलकीर्तिमेव सततं स्तोतुं शठारिमुंनिः।
साहस्रं कुरुकापुरप्रभुरसावाहात्र गायन्ति ये
तच्चेदं दशकं भजन्ति कुशलं तेऽत्राप्यमुत्र स्वयम् ॥११॥

कुरुकापुरके स्वामी जो शठकोपमुनि संसारकी समस्त कामनाओं को छोड़कर भगवच्चरणोंमें चित्त लगाने वाले हैं, उन्हीं शठकोपमुनिने निर्मल कीर्ति वाले श्रीकृष्णकी स्तुति करनेके लिए सहस्रगीति कही है, उसमें कल्याणकारक इस दशकको जो गान करेंगे, वे पुरुष इस लोक और परलोक दोनों में परमकल्याणको प्राप्त होजाँयगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके द्वितीयदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके तृतीयदशकारम्भः।

इस दशकमें परमात्माके गुणोंका अनुभव यथार्थरूपसे करने वाला कोई नहीं है, क्योंकि नित्यसूरिगण नित्यानन्दमें मग्न हैं तत्वज्ञानी आत्मानुभवमें मग्न हैं, और ब्रह्मादिक देवस्वार्थ परायण हैं, और संसारी विषयभोगपरायण हैं। अतएव भगवद्भक्ति करनेमें कोई सहायक नहीं दीख पड़ता, ऐसा विचार करके आल्वार कुछ अप्रसन्न हो रहे थे, इनको देखकर परमात्माने यह कह कर कि आप सरीखे परमैकान्ती ही हमारे यथार्थ अनुभवका लाभ उठा सकते हैं, उनको प्रसन्न किया है।

तत्रात्र चाप्यमित एव च देवरत्नो
मर्त्यादयोऽपि तव सन्महिमानभिज्ञाः।
त्वां श्रीधराधिप ! सुगोप सुताधवेति
श्रीशङ्ख चक्रधर मेव शरण्यमाहु ॥ १ ॥

हे श्रीदेवी और भूदेवीके स्वामी ! जब हम संसारमें आपके महत्वको यथार्थरूपसे जानने वालोंको खोजना चाहते हैं, तो उन भूलोक अथवा स्वर्गलोकमें भी सर्वओर दृष्टि डालने पर भी मनुष्य देव राक्षस आदिक प्राणियोंमें आपके महत्वको यथार्थरूपसे जानने

पादाम्भोज समाश्रयैकहृदय स्सन्त्यक्तकामान्तरः
कृष्णं निर्मलकीर्तिमेव सततं स्तोतुं शठारिमुंनिः ।
साहस्रं कुरुकापुरप्रभुरसावाहात्र गायन्ति ये
तच्चेदं दशकं भजन्ति कुशलं तेऽत्राप्यमुत्र स्वयम् ॥११॥

कुरुकापुरके स्वामी जो शठकोपमुनि संसारकी समस्त कामनाओं को छोड़कर भगवच्चरणोंमें चित्त लगाने वाले हैं, उन्हीं शठकोपमुनिने निर्मल कीर्ति वाले श्रीकृष्णकी स्तुति करनेके लिए सहस्रगीति कही है, इसमें कल्याणकारक इस दशकको जो गान करेंगे, वे पुरुष इस लोक और परलोक दोनों में परमकल्याणको प्राप्त होजाँयगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके द्वितीयदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके तृतीयदशकारम्भः

इस दशकमें परमात्माके गुणोंका अनुभव यथार्थरूपसे करने वाला कोई नहीं है, क्योंकि नित्यसूरिगण नित्यानन्दमें मग्न हैं तत्वज्ञानी आत्मानुभवमें मग्न हैं, और ब्रह्मादिक देवस्वार्थ परायण हैं, और संसारी विषयभोगपरायण हैं । अतएव भगवद्भक्ति करनेमें कोई सहायक नहीं दीख पड़ता, ऐसा विचार करके आल्वार कुछ अप्रसन्न हो रहे थे, इनको देखकर परमात्माने यह कह कर कि आप सरीखे परमैकान्ती ही हमारे यथार्थ अनुभवका लाभ उठा सकते हैं, उनको प्रसन्न किया है ।

तत्रात्र चाप्यमित एव च देवरक्षो
मर्त्यादयोऽपि तव सन्महिमानभिज्ञाः ।
त्वां श्रीधराधिप ! सुगोप सुताधवेति
श्रीशङ्ख चक्रधर मेव शरण्यमाहु ॥ १ ॥

हे श्रीदेवी और भूदेवीके स्वामी ! जब हम संसारमें आपके महत्वको यथार्थरूपसे जानने वालोंको खोजना चाहते हैं, तो उन भूलोक अथवा स्वर्गलोकमे भी सर्वओर दृष्टि डालने पर भी मनुष्य देव राक्षस आदिक प्राणियोंमें आपके महत्वको यथार्थरूपसे जानने

तत्सुन्दरं तव वपुश्च पयोदनीलं
पापी दिदृक्षु रहमस्मि ! युगं क्षणं मे ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! आप प्रलयकालमें अपना दिव्य और अद्भुत शरीर बनाकर चराचररूप समस्त संसारको खाकर भी वटवृक्षके पत्रके ऊपर सुन्दर बालरूप होकर शयन करते हो। मैं आपके अत्यन्त घनश्याम सुन्दर उसी शरीरके दर्शन करना चाहता हूँ। कृपा करके बहुत ही शीघ्र आप उस विग्रहका मुझे दर्शन दीजिये, उस विग्रहके दर्शनोंकी चिन्तामें एक क्षण भी मेरे लिए युगके समान बीतता है ॥४॥

कोल्लूरपुरेऽपि च पुलिङ्गुडिनाम्नि दिव्ये
क्षेत्रे किलासि शयितो न किलागतोऽत्र।
श्रान्तिः किमद्य तव भक्तजनार्तिभङ्गा
दाहो स्विदत्र जगदाक्रमणात्पदाते ? ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! आज आप कोलूरपुरके दिव्यदेश और पुलिङ्गुडि नामके दिव्यदेशमें आकर जो शयन कर रहे हो। इसका क्या कारण है। मेरी समझमें तो आता है कि भक्तोंकी विपत्तिको दूर करनेमें जो आपको श्रम हुआहै,उसीकी थकावटको दूर करनेके लिए आप यहाँ सो रहे हो, अथवा अपने पैरोंसे जगतको नापते नापते जो थकावट आगई थी, उस थकावटको उतारनेके लिए ही आप यहाँ शयन कर रहे हो।

तिरुकोवलूर तथा पुलिङ्गुडनामक दिव्यदेश पांड्यदेशमें इसी नामसे प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥

श्रीसूरिवर्यकुलवंद्य उदारशीलः
श्री शङ्ख चक्रवर भूषण भूषिताङ्गः।
लोकेऽत्र दुस्सहतमार्तिततिप्रशान्त्यै
मच्चित्त विभ्रमकरो मणिवर्ण एति ॥ ६ ॥

हे प्रभो ! आपकी नित्यसूरिगण श्रीवैकुण्ठमें नित्य ही निरंतर सेवा करते हैं। अतएव अवाप्त समस्त काम आपको इस संसारमें

तत्सुन्दरं तव वपुश्च पयोदनीलं
पापी दिदृक्षु रहमस्मि ! युगं क्षणं मे ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! आप प्रलयकालमें अपना दिव्य और अद्भुत शरीर बनाकर चराचररूप समस्त संसारको खाकर भी वटवृक्षके पत्रके ऊपर सुन्दर बालरूप होकर शयन करते हो। मैं आपके अत्यन्त घनश्याम सुन्दर उसी शरीरके दर्शन करना चाहता हूँ। कृपा करके बहुत ही शीघ्र आप उस विग्रहका मुझे दर्शन दीजिये, उस विग्रहके दर्शनोंकी चिन्तामें एक क्षण भी मेरे लिए युगके समान बीतता है ॥४॥

कोल्लूरपुरेऽपि च पुल्लिङ्गुडिनाम्नि दिव्ये
क्षेत्रे किलासि शयितो न किलागतोऽत्र ।
श्रान्तिः किमद्य तव भक्तजनार्तिभङ्गा
दाहो स्विदत्र जगदाक्रमणात्पदाते ? ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! आज आप कोलूरपुरके दिव्यदेश और पुल्लिङ्गुडि नामके दिव्यदेशमें आकर जो शयन कर रहे हो। इसका क्या कारण है। मेरी समझमें तो आता है कि भक्तोंकी विपत्तिको दूर करनेमें जो आपको श्रम हुआ है, उसीकी थकावटको दूर करनेके लिए आप यहाँ सो रहे हो, अथवा अपने पैरोंसे जगतको नापते नापते जो थकावट आगई थी, उस थकावटको उतारनेके लिए ही आप यहाँ शयन कर रहे हो।

तिरुकोल्लूर तथा पुल्लिङ्गुडनामक दिव्यदेश पांड्यदेशमें इसी नामसे प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥

श्रीसूरिवर्यकुलवंद्य उदारशीलः
श्री शङ्ख चक्रवर भूषण भूपिताङ्गः ।
लोकेऽत्र दुस्सहतमार्तिततिप्रशान्त्यै
मच्चित्त विभ्रमकरो मणिवर्ण एति ॥ ६ ॥

हे प्रभो ! आपकी नित्यसूरिगण श्रीवैकुण्ठमें नित्य ही निरंतर सेवा करते हैं। अतएव अवाप्त समस्त काम आपको इस संसारमें

आनेका कोई कारण तो नहीं है, किन्तु भक्तोंके ऊपर आई हुई घोर विपत्तियोंको शान्त करनेके लिए ही शङ्ख चक्रादि दिव्यायुध और किरीट मुकुटादि दिव्यभूषणोंको धारण करके आते हो । हे मणिवर्ण ! मैं जब आपकी निस्वार्थ उदारताका विचार करता हूँ, तो मेरा चित्त भ्रममें पड़ जाता है ॥ ६ ॥

आयान्ति यान्ति किल भक्तजना महान्तो
लक्ष्मीधरं हृदि च वण्परिशारपुर्याम् ।
नाथं च मे मम दशां न वदन्ति तेऽमी
ते शङ्ख चक्र वहनाय भटोऽस्ति चेति ॥ ७ ॥

वण् परिशारपुरीके दिव्यदेशमें लक्ष्मीपतिकी अपने हृदयसे सेवा करनेके लिए सैकड़ों बड़े बड़े महत्त्वशाली महात्मागण निरन्तर आते हैं और जाते भी हैं । परंतु जो मेरा प्रभु वण्परिशारपुरीमें शङ्ख चक्र धारण करके एक प्रबल वीरके रूपमें स्थित है, उसको मेरी इस दैन्य दशाको कोई भी निवेदन नहीं करता है ।

* वण्परिशारपुर नामका दिव्यदेश मलबार देशमें इसी नामसे प्रसिद्ध है ।

सप्ताद्रि सप्तजलमध्यगतान्तरीपैः
क्रान्त्वा त्वमेव जितवान् किल सप्तलोकीम् ।
श्रीशं ! त्वदीय शुभ सुन्दर पादपद्मे
दास्यं दयाकर ! कदा कुरुषे च दास्ये ॥ ८ ॥

हे लक्ष्मीपते ! सात समुद्र और सात पर्वतोंसे घिरे हुए सप्तद्वीपोंको आक्रमण करके आपने सप्तलोकोंको भी विजय की थी । हे दया समुद्र ! आप इस दासको अति सुन्दर अपने चरणकमलोंकी दास्यवृत्तिमें स्वीकार करनेकी कृपा कब करोगे ॥ ८ ॥

श्रीमन् ! चतुर्मुख शिवादय इत्यमी त्वां
मन्नाथ के वत विदुर्मम चित्तहारिन् ।
कालानुकूल ! शुभकारण मां च दास्ये
कृत्वा विभासि जलदाभ ! किमद्य वच्मि ॥ ९ ॥

हे शोभाधाम ! मेरे चित्तको चुराने वाले मेरे स्वामी ! आपको चतुर्मुख ब्रह्मा और शिवादिक देवता भी यथार्थरूपसे क्या कभी जानसकते हैं । सृष्टिकी आदिमें समस्त वस्तुओंके उत्तमकारण सजल-जलदश्याम आप मुझे अपनी दास्यवृत्तिमें लगाकर विराज रहे हो, मैं आपसे और क्या अब प्रार्थना करूं ॥ ९ ॥

निर्दोष शुद्धतपसा मुनयोऽपि मुक्ता
नित्याश्च सूरिनिवहाः किल तं भजन्ति ।
अस्माभिरस्य किमु वारिधि मन्थस्य
स्तोत्रं भवेत्तु सुकरं वदताद्य यूयम् ॥ १० ॥

जिस प्रभुने स्वाश्रित देवगणों को अजर अमर बनाने के लिये ही समुद्र मंथन किया था । जिस प्रभुको मुनि लोग निर्दोष शुद्ध तप से भजन करते हैं । और नित्य मुक्त सूरि वर्ग भी जिसका निरन्तर अनुभव किया करते हैं । हे भक्तगण ! उस प्रभुका स्तोत्र हम और आप क्या सुख-पूर्वक करने की शक्ति रखते हैं । इस बात को आप कह सकते हैं क्या ? ॥ १० ॥

अत्यन्त दुर्वच-महार्ति हरस्य विष्णोः
श्रीशस्य दिव्य मुकुटस्य हरेस्स्तवाय ।
साहस्रमाह शठजित् पठतां तदेत-
द्दिव्यं चतत्र दशकं न पुनर्भवस्स्यात् ॥ ११ ॥

जिसका यथार्थ वर्णन कोई किसी प्रकार नहीं कर सकता, जो स्वाश्रितों की महाविपत्तिको हरन करने वाला है । अति दिव्य मुकुट को धारण करने वाले उस लक्ष्मीपति श्रीहरि की स्तुति करनेके लिए शठकोप सूरिने सहस्र गीति कही है । उसमें इस दिव्य दशकको जो पढ़ेंगे उनका इस संसार में पुनर्जन्म न होगा ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके तृतीयदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके चतुर्थदशकारम्भः

इस दशकमे कुवलया पीडादिक दुष्टों का नाश करके आश्रितों की रक्षा करने वाले बाल गोपाल का निवास स्थान तिरुचिताह नामका दिव्यदेशही हमारा निर्भय वास स्थान है। उसी की सेवा मुझे सर्व प्रकार से करनी चाहिये यह कहा है।

भित्वामत्तद्विपाद्रिद्विरदनशिखरौ हस्तिनं तं निपात्य,
स्वेच्छा सञ्चारकारी गजपति हननान्मल्लहन्ता च कृष्ण।
वीथीसौधेषु राज्ञामपि सपदि वहिः पश्यतां कंशहन्ता,
श्रीरम्याद्रीशपुर्यां ! वसति यदुशिशुस्तत्र सेव्यासरिन्नः ॥१॥

जिन्होंने पर्वत के समान अति विशालकाय मतवाले हाथीके शिखर रूपी दोनों दाँतों को तोड़कर और उसको पृथ्वी पर डालकर मारा था। और हाथी के मारने के अनन्तर अति बलशाली मल्लोंको मारकर स्वेच्छा पूर्वक कंस के अखाड़ेमें बाल गोपालों के साथ क्रीडा की थी। बाहरी गलियों की छतों पर बैठे हुए राजाओं के देखते देखते अति शीघ्रता से उछलकर कंसको सिंहासन से गिराकर जिस कृष्णने उसका नाश किया था। जो कृष्ण यादव कुलमें शिशुरूप से प्रगट हुए थे। वही श्रीरम्याद्रीशपुरीमे शिश्तार नामक नदी के तट पर विराजमान हुआ है। अतएव हम लोगों को अपने कल्याणके लिए उसी नदीका सेवन करना चाहिए ॥ १ ॥

अस्माकं सेव्यभोग्यामृतनिधिरपि मे नायकश्च त्रिलोकी,
सृष्टिस्थित्यप्ययार्थं त्रिविधतनुरसावन्तरात्मा सदानः।
सूरीन्द्रस्संस्तुत्य पूर्णो निवसति हि हरि स्तत्रशित्तारसमीपे,
श्रीरम्याद्रीशपुर्यां न हि शरण महो ! तं विनाऽस्माकमन्यः॥२॥

जो प्रभु हम लोगों को सर्व प्रकार से सेवा करने योग्य हैं, जो हमारे लिए अत्यन्त भोग्य होता हुआ अमृतके भंडार के समान है। जो सदा हमारे अन्तरात्मा में व्याप्त होता हुआ भी त्रिलोकी की सृष्टि रक्षा प्रलय करने के लिए ब्रह्मा विष्णु शिव स्वरूप धारण करता है। नित्य सूरिजन सदा ही जिसकी सेवा किया करते हैं।

वहाँ हमारा स्वामी श्रीहरि सत्तार नदी के समीप श्रीरम्याद्रीशपुरी में हमारे कल्याण के लिए निवास करता है । उसको छोड़कर हम लोगोंका इस संसारमें निस्वार्थ भावसे दूसरा कोई रक्षक नहीं है ॥२॥

सूरीणां नायकोऽसौ मम च विभुरहो भूमि मुद्धृत्य नाथो
मे सर्वानादि पापावलिशमनकरश्शेषिरूपो ममेशः ।
श्रीरम्याद्रीशपुर्यां वसति शुभसरित्पश्चिमेऽसौहि भागे,
तत्पादाब्जद्वयं मे शरणमिह परं नान्यदित्येव मन्ये ॥३॥

जो प्रभु नित्य सूरियोंका नायक होकर भी मेरा विशेष रूपसे स्वामी है । जिन्होंने लोक संरक्षण करने के लिए अपनी डाढ़ से भूमिका उद्धार किया था । जो प्रभु हमारे अनादिकाल के संचित पापों को स्मरण मात्र से शमन कर देता है । जो समस्त जीवगणों का शेषी (निरु पाधिक स्वामी) है, जो स्वच्छ सुन्दर जल बहने वाली सितार नदी के पश्चिम भागमें स्थित श्री रम्याद्रीशपुरी में निवास करता है । उसके चरण कमल युगल ही सर्वप्रकारसे मेरे रक्षक हैं । उस प्रभु के चरण कमलयुगल को छोड़कर संसार में हमारा अन्य कोई रक्षक नहीं है । ऐसा हमारा दृढ़ निश्चय है ॥ ३ ॥

त्रैलोक्यव्यापिदिव्यस्वतनुरयमहो ! वामनो ब्रह्मचारी,
मन्नाथोऽम्भोधिमन्था मणिनिभ इह भात्येव शित्तारतटेऽसौ ।
श्रीरम्याद्रीशपुर्यां क्रमुकसुकदली नारिकेलादिरम्ये,
देशेऽस्याङ्घ्रिद्वयं मे शरणमिह हरेर्नान्यदित्येव सत्यम् ॥४॥

जो प्रभु वामन ब्रह्मचारी रूप होकर त्रैलोक में व्याप्त होने वाले अपने दिव्य रूप को बना लेता है । और जो प्राण प्रिया लक्ष्मी के आलिंगन सुखको भोगने के लिए समुद्र मथन करता है । जिसका दिव्य विग्रह मणिके समान अत्यन्त प्रिय और मनोहर हैं । सुपारी और सुन्दर केला तथा नारियल के वृक्षों से अतिरमणीय सितार नदीके तट पर श्री रम्याद्रीशपुरी में जो विराजमान है । इस हरिके ही

चरण कमल युगल हमारे सर्व विधि रक्षक हैं। उनके बिना अन्य कोई हमारा रक्षक नहीं है। यह हमारा दृढ़निश्चियत सत्य सिद्धान्त है ॥ ४ ॥

नान्यन्मे भाति सत्यं शरण मिह ततो ! भाति तत्वं तदेव
स्वान्तं मे भाति चात्मा सततमपि हरौ तत्र नान्यत्र सत्यम्।
श्रीरम्याद्रीशपुर्यं निवसति हि स यत्राग्निहोमो वृणोत्ये,
वाकाशे सौधमालां सरिदिह शरणं सा ममाभीतिहेतुः ॥५॥

मेरे विचारसे इस संसारमें हरिको छोड़कर सच्चा रक्षक प्राणियों का दूसरा नहीं प्रतीत होता। मुझे तो यही तत्व दिखाई दे रहाहै। मेरा मन और आत्मा ये दोनों ही उस हरी में आसक्त हो गये हैं। उसको छोड़ कर अन्यत्र मेरा मन जाना ही नहीं चाहता यह बात भी ध्रुव सत्य है। जहां पर अग्नि होत्र का धुआँ आकाशमें घुमड़ता हुआ छतोंको आकर ढक लेता है। उस श्रीरम्याद्रीशपुरीमें उस परमात्मा के दिव्य देशके समीप बहने वाली वह नदी ही हमको संसारके सर्व प्रकार के भयोंसे बचा सकती है ॥ ५ ॥

मन्नाथं मे शरण्यं पितरमपिपरं मातरं सूरिगोष्ट्या,
श्रीशं स्वस्याप्यवेद्यं शयितमपि विशालाम्बुधौ श्रीहरिं तम्।
देवानां साम्यमाप्ता वसतिमुपगता यत्र सौधाश्रितायां,
श्रीरम्याद्रीशपुर्यां सरिदुपरितलेऽद्राक्षमीशं तमेनम् ॥६॥

जो प्रभु मेरा स्वामी है मेरा रक्षक है और मेरा पिता है मेरी माता है नित्य मुक्त गणों तथा लक्ष्मी का जो पति है। जो अपने महत्व को स्वयं ही नहीं जान पाता। और जो आश्रित रक्षणके लिये अति विशाल क्षीर समुद्र में शयन करता है। ऊंची ऊची शिखरों से शोभायमान श्रीरम्याद्रीशपुरी में जहाँ पर कि देवताओं के समान दिव्य प्रभाव और ज्ञान युक्त महात्मा जन नित्य ही वास करते हैं। उस सितारनदी के शुभ तट परही विराजमान उस सर्वेश्वर को हमने देखा है ॥ ६ ॥

श्रीरम्याद्रीशपुर्यां लघुसरिदुपकण्ठाश्रयश्श्रीहरिर्मे
चित्ते नित्यं चकास्ति स्वयमहह ! सरोजाक्षिबिम्बाधराद्यैः ।
पद्भ्यां हस्तैश्चपद्मै रुणमकुटभृन्नाभिपद्मश्च पद्मां-
धृत्वा वक्षस्यसौ श्रीकटिवसनधरो हारदिव्यायुधाद्यैः ॥ ७ ॥

अहह ! जो प्रभु कमलके समान नेत्र, बिम्बाफलके समान होंठ, और कमलके समान कर चरणों वाला है। खिले कमलके फूलके समान जिसकी नाभि है, लाल मणियोंसे जड़े हुए जो मुकुटको धारण करता है । बिजलीके समान चमकता हुआ जिसका पीताम्बर है। और अनेक प्रकारके दिव्यभूषण और दिव्यआयुधोंको धारण करके जिसने लक्ष्मीको भी अपने वक्षःस्थलमें धारणकर रखाहै, छोटीसी नदीके तट पर बसे हुए श्रीरम्याद्रीशपुरमें जो आकर वास करता है, वही हरी आज मेरे मन मन्दिरमें निरन्तर प्रकाशमान हो रहा है ॥७॥

मच्चित्ते भास्वरं तं महितगुणचतुर्वेदिभूदेववन्द्यं
श्रीरम्याद्रीशपुर्यां लघुसरिदुपकण्ठाश्रये देवदेवम् ।
वीराणां चासुराणां प्रमथनकरमेवान्तकं स्तोतुमेनं
लोकानां सृष्टिरक्षाप्रलयकरमहो ! नैवरीतिं हि वेद्मि ॥ ८ ॥

छोटीसी नदीके तट पर बसे हुए श्रीरम्याद्रीशपुरमें चारों वेदोंके ज्ञाता ब्राह्मण लोग जिनकी सदा स्तुति करते हैं। और मेरे चित्तमें जो सदाही प्रकाशमान् रहता है, अति प्रबल वीर असुरोंके नाश करनेके लिए जो कालस्वरूप है । और समस्त लोकोंकी सृष्टि रक्षा प्रलयको जो यथा समय विभिन्नरूपोंसे किया करता है, उस प्रभुकी यथार्थरूपसे स्तुति करनेकी विधि मैं भली भाँतिसे नहीं जानता हूँ । अर्थात् वह प्रभु किस स्तुतिसे प्रसन्न होता है, इस बातको मैं अभी तक नहीं जान सका ॥ ८ ॥

औदार्योदात्तकीर्त्ते सकलविधमहाज्ञानवृत्तादिनिष्ठैः
श्रीरम्याद्रीशपुर्यां लघुसरिदुपकण्ठाश्रयोऽसीह पूज्यः ।

सृष्टिस्थित्यप्ययानामधिपतय इमे धातृरुद्रादयस्त्वं
रक्षादीक्षां दधासि स्वयमखिलजगद्रूप एवसिसत्यम् ॥९॥

उदारता गुणसे जिसकी सर्वोच्च कीर्ति संसारमें फैली हुई है, ऐसे हे प्रभो ! आप सर्व प्रकारसे महायज्ञदान सदाचारमें जिनकी अविचल निष्ठा है। ऐसे ब्राह्मणोत्तम आपका छोटी नदीके तट पर श्रीरम्याद्रीशपुरीमें पूजन करते हैं। और सृष्टि रक्षा प्रलय इनके विधाता ब्रह्मा विष्णु रुद्रकारूप धारणकरके आपसंसारकी रक्षाकी दीक्षाको धारण करते हो। मेरा तो यही एक सत्य सिद्धान्त है, कि आपही अखिल संसारके रूपमें प्रकाशमान हो ॥ ९ ॥

नाथं सर्वेप्सितार्थप्रदमखिलसुरान् रुद्रधातृप्रमुख्यान्
रक्षन्तं तैः सहस्रत्रितयनिगमविद्भूसुरै राश्रितायाम् ।
श्रीरम्याद्रीशपुर्यां लघुसरिदुपकण्ठेऽत्र नित्यं लसन्तं
मायाचेष्टं श्रितोऽहं प्रभुममितमहासस्यकेदारदेशे ॥ १० ॥

हे हरे! हरे उत्तम खेतोंसे युक्त अति लघु सित्तार नदीके तटपर बसेहुए श्रीरम्याद्रीशपुरमें आप विराजमान हो। तीन वेदोंको यथार्थ जानने वाले हजारों ब्राह्मण लोग जहाँ वास करते हैं, उसमें जो नित्यही विराजमान है। जो निज भक्तोंके सर्व प्रकारके मनोरथोंको पूर्ति करते हैं। जो ब्रह्म रुद्रादिदेवोंकी अपनी शक्तिसे रक्षा करतेहैं, जो अनेक मायामय चरित्रोंको करते हैं। उन्हीं प्रभुके चरणोंका आश्रय मैंने लिया है ॥१०॥

नाथं हृद्यं च दुग्धं मधुरसममृतं चेक्षुकाण्डं च लोकान्
भक्षित्वा च स्वनाभिस्थलसरसिजतस्तं विरिञ्चिं च सृष्ट्वा ।
मायाचेष्टं प्रभुं तं सुमहित कुरुकापत्तनेशश्शठारि—
स्तोतुं साहस्रमाह स्वयमिह दशकं मोक्षदं बन्धनाशात् ॥११॥

जो प्रभु प्रलयका समय आने पर समस्त लोकोंको भक्षण कर लेता है, और फिर सृष्टिका समय आने पर अपनी नाभिसे उत्पन्न हुए कमल द्वारा ब्रह्माको रचकर नाना प्रकारकी सृष्टिको रचता है, जिसका मायामय नाटक अति दुर्ज्ञेय है। जो सबके

हृदय कमलमें विराजमान है, जो प्रेमी भक्तोंके लिए दूध और शहद अमृत और ईखरससे भी अधिक मधुर स्वादिष्ट है। उस प्रभुकी स्तुति करनेके लिए परममान्य कुरुकापुरीके अधिपति शठकोपमुनिने सहस्र-गीति बनाई, उसमें जो भक्त इस दशकको स्वयं पढ़ेंगे उनका संसार बन्धन छूटकर वे मोक्षको प्राप्त हो जायँगे॥ ११॥

इति श्री सहस्रगीतौ अष्टमशतके चतुर्थदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके पंचमदशकारम्भः।

इस दशकमें सर्वाङ्ग सुन्दर कल्याणस्वरूप प्रभुको मिलनेके लिए आलवार अपनी समस्त इन्द्रियोंसे चाहते थे, किन्तु प्रभुने उन्हें अपना संयोग सुख नहीं दिया। अतएव शोक ज्वालासे अति सन्तप्त होकर यह कह कर कि यदि आप हमें दर्शन न देंगे तो हम इसी शोकाग्निमें भस्म हो जायेंगे। प्रभुको अपने मिलनेके लिए बुलाते हैं।

माया विचेष्टित हरे ! मम वामन श्री
कृष्ण ! त्वदक्षिकरपादसरोजवृन्दैः।
रक्ताधरेण तनु पल्लवतश्च भासि
त्वं जङ्गमः किल तटाक इहे हि जातु ॥ १ ॥

हे हरे ! आप अपनी इच्छासे अनेक मायामय चरित्र किया करते हो। कभी वामनरूप धरते हो और फिर वामनसे त्रिविक्रम् होजाते हो। हे श्रीकृष्ण ! आपके नेत्र और कर और चरण ये कमलके समान अति मनोहर शोभाको दे रहे हैं। आपका होठ लाल बिम्बाफलके समान शोभित हो रहा है। और आपका शरीर नूतन तमालपल्लवके समान प्रकाशमान हो रहा है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि हम लोगोंके पाप तापोंको शान्त करनेके लिए आप जङ्गमतटाक (सरोवर) रूपी हो, अत्यन्त विरह दुखसे दुखी मेरे लिए क्या कभी आकर थोड़ेसे दर्शन देनेकी कृपा करोगे॥ १ ॥

अत्यन्त नीलमणिपर्वत दीप्रमौले !
स्वामिन्नुपेहि पुरतस्त्विति वाचि नेत्रे।

शोपोऽस्ति मेऽत्र तृपया ! त्रपया किलाहं
क्लिन्नोऽस्मि ! हन्त नहि जातु च मामुपैपि ॥ २ ॥

अत्यन्त नीलमणि पर्वतके समान श्यामसुन्दर विग्रह वाले, रत्नजटित किरीटको धारण करने वाले, मेरी वाणी और नेत्र आपके दर्शनोंकी तृषासे सूखे जा रहे हैं। और मैं लज्जाके मारे अत्यन्त शिथिल होगया हूँ, कृपा करके मेरे सामने आकर अपनी श्यामसुन्दर मन्दमुसुकान करने वाली मूर्तिको थोड़ी तो दिखादो। प्रभो! क्या आप अब इतने निठुर बन बैठे हो, जो मेरे पास आकर मुझे दर्शन देनेकी कृपा नहीं करते हो ॥ २ ॥

भास्वत्किरीट मम नाथ ! लसत्तुलस्या
मालां बिभर्पि ननुचेति वृथा विलप्य ।
श्रान्ता वयं विमलमेघनिभाभ्युपेहि
श्रीमन् ! चतुर्भुज ! सुकुण्डल बिम्बवक्त्र ॥ ३ ॥

हे मेरे स्वामी! आप रत्नोंकी ज्योतियोंसे जगमगाते हुए किरीट को मस्तक पर धारण करते हो, और अति सुन्दर सुगन्धियुक्त तुलसी की मालाको गलेमें धारण करते हो। हे शोभाधाम! चार भुजाओंको धारण करने वाले मकराकृति कुण्डलोंको धारण करने वाले, कुन्दरुके समान लाल मुख वाले, हम आपके दर्शनोंके लिए विलाप करते करते थक गये हैं। हे श्यामसुन्दर! अबतो आकर निराश हुए दासोंको दर्शन देकर जीवनकी आशा बँधाइये ॥ ३ ॥

क्षीराम्बुधौ तु शयनाद्रजताद्रिशृङ्गे
त्वं नीलमेघसदृशोऽसि ! सुनीलमूर्ते ?
बिम्बाधरश्च मधुमत्कमलाक्षियुग्मं
चित्ते ममास्ति भरितं तव ! किं वदेयम् ? ॥ ४ ॥

हे श्यामसुन्दर! आप क्षीरसमुद्रमें श्वेतवर्णके शेषजीके ऊपर शयन करते हुए ऐसे प्रतीत होते हो मानों चाँदीके पर्वतके ऊपर नीलमेघकी घटा उदय हुई हो। आपके होंठ बिम्बाफलके समान

लाल वर्णके हैं, और मकरन्द भरे हुए कमल पुष्पके समान दोनों नेत्र मेरे हृदयमें बैठे हुए हैं। अब इससे अधिक मैं आपसे और क्या कहूँ ॥४॥

भुक्ताखिलाब्धि वृतभूमितलोऽसि हि त्वं
नीलाब्दवर्ण नहि वक्तुमहं तु शक्तः
त्वत्पादयुग्ममिह भास्वरमस्ति सक्तं
चित्ते ममाद्य रवियुग्ममिवास्य निद्रा ?॥ ५ ॥

हे प्रभो ! अति विशाल समुद्रसे घिरी हुई पृथ्वीको आप भक्षण करके समुद्र में शयन करते हो, मैं नीलमेघ कान्तिधारी आपके महत्त्वको यथार्थरूपसे कह भी नहीं सकता। दो सूर्यांके समान प्रकाश करने वाले आपके दोनों चरण मेरे हृदयमें जम कर बैठे हुए हैं। इसी कारण मेरेको निद्रा देवीके भी दर्शन दुर्लभ हो गये हैं।

संसार में एक सूर्यके उदय होने से ही प्राणी मात्रकी निद्रा विदा हो जाती है, तो आल्वार के हृदय में तो प्रभुके चरणद्वय रूपी दो सूर्यों का उदय हुआ है। अतएव उनकी निद्रा सदाके लिए उनसे दूर चली जाय तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ॥ ५ ॥

नीलाम्बुदाभ ! घटलील ! ममाक्षि रूप !
श्री कृष्ण नाथ ! ममदिव्य जगन्निवास ? ।
इत्येव दास्यविधये किल वच्मि भूम्यां,
वार्धौ दिवि स्वमहसा समुपैहि सेव्य ॥६॥

हे श्याम सुन्दर ! आपको तो कुंभनृत्य अतीव प्रिय है, मेरे आप नेत्र स्वरूप हैं। हे मेरे नाथ ! समस्त जगत के बाहर और भीतर आप निवास करते हो। और भूमि अथवा समुद्र अथवा परमपद इत्यादि स्थानों में कहीं भी आप वास करते हो, परन्तु मैं तो आपका सदाही अकिंचनदास हूँ। इस दास के उज्जीवन के लिए सेवा प्रदान करने को जल्दी ही आकर प्रगट रूप से दर्शन दीजिये ॥ ६ ॥

पद्माक्षि हस्त पद रक्त सरोज वक्त्र
सूर्याभनीलमणिरश्मिनिधे ! विभो माम् ।

आयाहि मत्पुरत एव न चेत्त्वदङ्घ्रौ
दास्याय मां वृणु समस्तजगत्प्रमाणे ॥ ७ ॥

हे प्रभो ! आपके चरण और हस्त तथा नेत्र ये रक्तकमलके समान अति सुन्दर हैं । और मुख भी आपका रक्तकमलके समान सुन्दर है । सूर्यके समान प्रकाशमान मणियोंसे जटित आभूषणोंको आप धारण करते हो । हे प्रभो ! आप शीघ्र ही मेरे सामने आकर दर्शन दीजिये । नहीं तो लोकोंको नापने वाले आपके चरणकमलोंकी छत्र छायामें ही दासवृत्ति करनेके लिए मेरेको बुलाकर स्वीकार कीजिये ।

चेतोहरं मम विलोक्य च मेघवृन्दं
क्लिन्नोऽस्मि नाथ तनुसन्निभमस्ति चेति ।
पंचाश्रितार्थमिह वत्सल ! पार्थसूत-
स्त्वं तान् शतं च हतवान् नहि मामुपैषि ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! जब मैं उठती हुई नीलमेघोंकी घटाओंको देखता हूँ, तो यह स्मरण करके कि इनका रूप मेरे स्वामीके शरीरके समान है, मेरा चित्त बहुत ही व्याकुल हो जाता है । पाण्डवोंके ऊपर अत्यन्त प्रेम दिखानेके लिए ही आप अर्जुनके घोड़ोंको हाँकने वाले सारथी बने थे । और निज भक्त पाण्डवोंको कष्ट पहुँचाने वाले असंख्य शत्रुओंकी सेनाओंको आपने नष्ट किया था । जब आप भक्तोंके प्रेम के वशीभूत होकर उनके कष्टोंको बहुतही शीघ्र नष्ट करदेते हो । तो क्या कारण है कि आप मेरे पास आकर और अपने पवित्र दर्शन देकर मुझे कृतार्थ नहीं करते ॥ ८ ॥

दीप्रस्वचक्रधर माधव तार्क्ष्यकेतो
किं युक्तमेतदिति चेद्विलपामि भूयः ।
भारापनोदन भुवो मथुरापुरे त्वं
जातोऽसि सस्यभरिते किमु मां वृणीषे ॥ ९ ॥

अत्यन्त तेज वाले सुदर्शन चक्रको धारण करने वाले लक्ष्मीपति गरुड़गामी प्रभो ! क्या आपके लिए इस अकिंचन दासको दर्शन

न देकर विपत्तिमें डाल देना यह उचित है ? हे प्रभो ! आपने भूमिके भारको दूर करनेके लिए अनेक प्रकारके हरे खेतोंसे घिरेहुए मथुरापुरमें जन्म लिया था। मैं निरन्तर आपकी प्राप्तिके लिए विलाप कर रहा हूँ, क्या आप मुझको अपनी चरण सेवामें स्वीकार करेंगे ॥ ६ ॥

मायामयावतरणाद्भुतवीरवृत्त !
श्रीभारताख्य युधि वायंनिलाग्निभूखैः ।
सर्वैश्च भासि पयसीह घृतं यथा त्वं
सर्वत्र मायिचरितं क्व विलोकये त्वाम् ॥ १० ॥

हे प्रभो ! यद्यपि आपने महाभारत संग्राममें अनेक प्रकारके मायाजालोंको रचकर संसारको चकित करने वाले वीरताके कार्य किये थे। तथापि जिस प्रकार दूधके एक एक कणमें घृत व्याप्त रहता है, उसी प्रकार जल, वायु, अग्नि, भूमि, आकाश आदि संसारके प्रत्येक रजकणमें आप व्याप्त हो। इस प्रकार सर्वत्र विराजमान आपके एक से एक विचित्र कार्योंको देखकर हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। अतएव ऐसा कौनसा स्थल है, जहाँ पर हम आपके माया चरित्रोंको पूर्णरूपसे देखनेकी चेष्टा करें ॥ १० ॥

श्रीसूरिभोग्य तुलसीधरमप्रमेयं
पश्याम्यहं क्वनु वतेति मुहुः प्रकीर्त्य
दिव्योक्तिभिश्शठजिदाह सहस्रमत्र
प्रत्यक्षमेव दशकं पठतां सुखं स्यात् ॥ ११ ॥

जिस प्रभुका दिव्यसूरिलोग नित्यही परिचरण करते हैं, जो तुलसीकी मालाको धारण करते हैं, जो किसी इन्द्रियसे यथार्थरूपसे नहीं जाने जा सकते। उस प्रभुके मैं कहाँ दर्शन करूँ। इस प्रकार निरंतर कीर्तन करते हुए शठकोपमुनिने दिव्यपद्योंकी सहस्रगीति बनाई, उसमें इस दशकको जो पढ़ेंगे उनको प्रत्यक्षमें ही सर्व प्रकारके सुख प्राप्त हो जाँयगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके पञ्चमदशकं समाप्तम्।



श्रीमते शठकोपाय नमः

अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके षष्ठदशकारम्भः।

इस दशक में आल्वार यह विचार करके कि हमारे स्वामी हमारे ऊपर कृपा करके और हमारी सर्व प्रकार की सेवा को स्वीकार करने के लिये ही परमपद से आकर कटिस्थल नाम के दिव्यदेशमें विराजमान हुए हैं। इसी कारण श्रीकटिस्थल दिव्यदेश वासी परमात्मा के वात्सल्यादि गुणोंका अनुसंधान करके प्रपन्न होते हैं।

नक्तं दिवं स्मरत मामिति यः कृपालु
रस्मासु भाति तुलसीकुसुमाढ्यमौलिः।
नाथस्य तस्य पुरमस्ति कटिस्थलाख्यं,
स्थानं हि शेषपदवीं भजतां परं तत् ॥१॥

जो परम कृपालु परमात्मा निज भक्तोंको रात्रि दिन अपना स्मरण कराने के लिए फूल और तुलसीकी मालाको मस्तक पर धारण करके इस मृत्युलोक में कटिस्थलनाम के पुर में विराजमान हुआ है। उस हमारे स्वामीका यह निवास स्थल उनकी चरण सेवा करने के लिए अत्यन्त ही उपयोगी और सुलभ स्थान है ॥१॥

श्रीकटिस्थलनामका दिव्य देश केरलदेशमें तिरुक्कडित्साननाम से प्रसिद्ध है। यहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके रूप से विराजमान हैं।

युद्धे महाबलमदाढ्यमवश्यचित्तान्,
निर्मूल्य राक्षसगणानखिलान् शरौघैः।
वीराग्रणीर्वसति मे हृदये कटिश्री,
स्थाने च तुष्टहृदयस्सततं परात्मा ॥२॥

जिस प्रभुने, युद्ध में अपने को प्रबल बलशाली मानकर उसके मदसे उन्मत्त हुए समस्त राक्षस गणोंको बाण समूहसे निर्मूल कर दिये थे। समस्त वीरों में अग्रगण्य वेही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त प्रसन्नताके साथ मेरे हृदयमें और श्रीकटिस्थान नामके दिव्यदेश में निरन्तर वास करते हैं ॥२॥

एकोऽप्युभावपि च यस्त्रय इत्यपीह,
स्थित्वा स्वयं रहसि गुप्ततनुर्वभौ सः ।
श्रीवत्सलांछन उदारमना कटिश्री-
स्थाने चकास्ति मनसो मधुरोऽत्र मायी ॥३॥

जो प्रभु एक रूप (कारण ब्रह्म) से तथा दो रूप (प्रकृति पुरुष) से तथा तीन रूप (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) से इस संसार में स्थित है । और जिसके वास्तविक शरीरका यथार्थ ज्ञान तो किसी को है भी नहीं । जो श्रीवत्स के चिन्हको वक्षस्थलमें धारण करता है । जिसके समान उदार व्यक्ति दूसरा कोई नहींहै, वही प्रभु श्रीराम श्रीकटिस्थल नामके दिव्य देश में विराजमान है । वह मेरे मनके लिए तो बहुत ही प्यारा लगता है ॥३॥

श्रीसूरिसेवित-सुगन्ध लसत्कटिश्री
स्थाने वसन् हि महिते भुवि मायिवृत्तः ।
दग्धे ममाघनिचये मयि सौहृदान्मे,
चित्ते विशाल भुवनेऽत्र कृताश्रयोऽस्ति ॥४॥

जिस प्रभुकी नित्य सूरिगण सदाही सेवा करते हैं । जिसकी कीर्ति संसारमें फैली हुई है । अनेक माया रचने वाला वही प्रभु पृथ्वी में अति माननीय श्रीकटिस्थलनाम के दिव्य देशमें वास करता है । और उसकी भक्तिसे मेरे समस्त प्रकारके पाप जल गए हैं । इसी कारण वह प्रभु मुझसे बहुत ही प्रेम करके मेरे अतिविशाल मनमन्दिरमें आकर विराजमान हुआ है ॥४॥

दिव्यैश्चसूरिनिवहै रखिलैश्च सेव्ये,
वैकुण्ठ दिव्यनगरे सततं वसन् यः
कृष्णस्स एव घटलील इहापि भाति,
श्रीशः कटिस्थलपुरे मम चात्र चित्ते ॥५॥

जिस प्रभुकी दिव्यश्रीवैकुण्ठनगर में समस्त नित्यमुक्त गण भले प्रकारसे निरन्तर सेवा किया करते हैं । जो प्रभु कृष्णरूप धारण करके

कुंभनृत्यमें बहुतही प्रेम रखता है। वही लक्ष्मीपति इस कटिस्थलपुर में विराजमान हो रहा है। और मेरेचित्तचत्वरमें भी वही विराजमान है ॥५॥

लीलापरः प्रभुरसौ मम पापिनोऽस्मिन्,
चित्ते वसन् व्यसनहा मधुसूदनो मे।
अत्रास्ति सस्यभरिते महिते कटिश्री-
स्थाने पुरं तदिदमस्त्यखिलार्तिहन्तुः ॥६॥

जो प्रभु अपने भक्तों के मनोविनोद के लिए अनेक प्रकार की लीलाओंको किया करते हैं। वही मधुसूदन अत्यन्त पापिष्ठ मेरे चित्तमें भी वास करने लगगये हैं। इसी के प्रताप से मेरे मन के समस्त दोष और दुख दूर हो गये हैं। इस पृथ्वी में अनेक हरे खेतों से घिरे हुए सज्जनों से पूजनीय श्रीकटिस्थलनामके दिव्य देशमें विराजमान हुए हैं। यह दिव्य देश समस्त भागवतों के सर्व प्रकार के दुःखों को नाश करने वाला है ॥६॥

गोविन्द एव पृथ्वीं च दिवं समग्रं,
पद्भ्यां ममौ! भुवि नृणामपि तौ हि वन्द्यौ।
पादौ द्युलोक निलयैरपि नित्यसेव्यं
चेदं कटिस्थलपुरं भजतार्तिशान्त्यै ॥७॥

परमप्रभु गोविन्दने समस्त पृथ्वी और स्वर्गको अपने चरणों से नापा था। इस पृथ्वी में परमात्माके उन्हीं चरणों की वन्दना प्रत्येक नरनारी को करनी चाहिये। वही प्रभु कटिस्थलपुर के दिव्य देश में आकर विराजमान है। जिस कटिस्थलपुर की स्वर्गवासी देवलोक भी सेवा करते हैं। उसी दिव्य देशकी सेवा सर्वप्रकार के दुख दूर करने के लिए प्रत्येक भक्त को करनी चाहिये ॥७॥

दिव्यं पदं च परमं पृथ्वी पयोधि-
स्सर्वं च सर्वनगराणि च तत्र तत्र।

सर्वेश्वरस्य किल तस्य भवन्ति भोग्या-
न्येतत्कटिस्थलमिदं च मनोऽस्य हि स्वम् ॥८॥

दिव्यपरमपद पृथ्वी समुद्र और समस्त द्वीप तथा पृथ्वी के विभिन्न स्थानों में जहां तहां बसने वाले नगर ये सभी उस सर्वेश्वर के अत्यन्त भोग्यस्थल हैं किन्तु सबसे अधिक उस प्रभुके लिए प्यारा यह कटिस्थल दिव्यदेश और मेरा मन ही है ॥८॥

तेजस्विसूरिवरसेव्य कटिस्थलाख्ये -
वासी च गोकुलपतिः किल मायिवृत्तः ।
अर्चास्थलेषु सकलेष्वपि भाति सेव्य-
स्वामी महाननिशमद्भुतशीलवृत्तः ॥ ९ ॥

जिसप्रभुकी तेजवाले सूरिगण नित्य सेवा करते हैं,जो परमात्मा गोकुलपति रूप धारणकरके अनेक प्रकारके मायायुक्त चरित्र करता है। और जो कटिस्थल नामके दिव्यदेशमें सदा वास करता है। और सम्पूर्ण दिव्यदेशोंमें विराजमान मूर्तियोंमें जिसकी सेवा की जाती है, जो निरंतर ही इस विश्व रंगमंचपर अनेक अद्भुत नाटकोंको करता रहता है, वही प्रभु हमारा स्वार्थरहित स्वामी है ॥ ९ ॥

नारायणोऽद्भुतचरित्र इहास्ति विष्णुः
श्रीवामनो हरिरसौ मम हृत्सरोजे ।
तिष्ठत्यसौ श्रुतिचतुष्टयविद्वरेण्यै
स्सेव्ये कटिस्थलपुरे किल कल्पकाढ्ये ॥ १० ॥

चारों वेदोंको यथार्थरूपसे जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण जहाँ सदा ही निवास करते हैं। और अनेक प्रकारके धनाढ्योंका जो आवास स्थान है। उस कटिस्थलपुरमें भगवान् विष्णु विराजमान हैं। जो नारायण अद्भुत चरित्रोंको सदाही किया करते हैं। और जो सर्व व्यापक विष्णुरूपी हैं, वे ही मेरे हृदयकमलमें वामनरूप धारण करके विराजमान हैं ॥ १० ॥

वृक्षादि सस्यभरिते महिते कटिश्री-
स्थाने रमापतिमिमं कुरुकापुरीशः ।
स्तोतुं सहस्रमकरोच्छठजित्सुधार्द्रं
तत्रेदमस्तिदशकं दिवि वासमूलम् ॥ ११ ॥

अनेक प्रकारके वृक्ष और खेतोंसे शोभायमान श्रीकटिस्थल नामके दिव्यदेशमें विराजमान इस लक्ष्मीपतिकी स्तुति करनेके लिए, कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनिने अमृत रस टपकाने वाली सहस्र-गीतिको बनाया उसमें इस दशकको जो पढ़ेंगे उनका वास स्वर्गमें अवश्य होगा ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके षष्ठदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके सप्तमदशकारम्भः ।

इस दशकमें आल्वार यह समझकर कि मेरे संयोग बिना प्रभु नहीं रह सकते, इस कारण आकर उन्होंने मुझे अपनी छातीसे लगाकर स्वीकार किया है । इस प्रकारके आनन्दसे परम प्रसन्न होकर कहते है, कि वह प्रभु मेरे हृदयमें बैठकर निरन्तर ही प्रकाशमान हो रहा है ।

विस्मृत्य मां स्वचरणाम्बुजयोः करोत्वि
त्यभ्यर्थ्य तं सुचिर मेव किलाह्वयामि ।
सोऽयं प्रविश्य हृदये मम वामनोऽद्य
प्रीत्या चकास्ति ननु सन्ततसाक्षिभूतः ॥ १ ॥

मैं अत्यन्त आश्चर्यसे चकित होकर उस प्रभुसे यह प्रार्थना करके कि आप मुझे अपने चरणोंमें स्वीकार कर लीजिये । यह कह कर बहुत दिनोंसे जिसको बुला रहा था, वही प्रभु वामनरूपसे मेरे हृदयमें बड़ी प्रसन्नता पूर्वक घुसकर मेरे भले बुरे सर्व प्रकारके कर्मोंको देखनेके लिए अब विराजमान हो रहा है ॥ १ ॥

मच्चित्त शासन पराण्यपिचेन्द्रियाणि
दुर्निग्रहाण्यपि निगृह्य च साक्षिभूतः ।

नाथोमहा द्विपवरेऽतिदयालुरासी
दित्येतदत्र न किलाद्भुत मद्यभाति ॥ २ ॥

मेरे हृदयके भीतर साक्षीरूपसे बैठे हुए उस परमात्माने, मेरे चित्तको वशमें करके जो सदाही अपने अधीन रखती थीं, जिनका जीतना मेरी शक्तिसे नितान्त असम्भव था, उन मेरी दुष्ट इन्द्रियोंको भी जिसने जीतकर अपने वशमें कर लिया है। जो मेरा स्वामी ग्राह से ग्रसेहुए गजराजके ऊपर दया करके उसके संकटको काटता है, तो मेरी इन्द्रियोंको उसने विषय फाँसीसे मुक्त करके अपनी ओर लगा लिया तो इसमें मेरे लिए आश्चर्य करनेकी बातही क्या है ॥२॥

नाथस्स एव हृदि मेऽस्ति तमः प्रहन्ता
नान्यत्फलं भवति चात्र जगत्त्रयं च
नैवास्ति तत्फलमहो करुणाकिमेषा
किं मोह एव किमु मायिन एव माया ॥ ३ ॥

मेरे हृदयके समस्त अज्ञानको दूर करता हुआ वह प्रभु मेरे हृदयमें विराजमान है। इससे और अधिक उत्तम फल मुझे त्रिलोकी का राज्य मिलने पर भी क्या प्राप्त हो सकेगा? यह प्रभुकी क्या निर्हेतुक दया है, अथवा मेरे लिए ही कुछ मोह होगया है। अथवा उस माया धारीका ही यह मायाजाल है ॥ ३ ॥

गोपालको ममविभुः किल सूरिनाथः
कृष्णोऽद्य भास्वरदयानिधिरुज्वलं तम् ।
स्वंविग्रन्तु विमलं हृदि मे निवेश्य,
श्रीशो न वंचयति मामिह मोहयेत किम् ॥४॥

जो प्रभु वैकुण्ठधाम में दिव्य सूरियों का पालक होता हुआ भी श्रीकृष्णरूप से गोपालक हुआ था। सर्व श्रेष्ठ रूप से प्रकाशमान होने वाली दया का जो भंडार है उस कृष्णकोही अतिप्रकाशमान सुन्दर विग्रह धारीकेरूप में अपने हृदयमें मैंने विराजमान कर लिया है

अब वह प्रभु मेरे हृदय को छोडकर अन्यत्र नहीं जाता तो क्या कभी मुझे छोडकर और अन्यत्र जाकर मोहरूपी दुख में डालेगा ॥४॥

कृत्वा प्रसाद मिह मय्यपि च स्वकीर्तिं,
प्रख्यापितां जगति मे ननु सम्प्रकाश्य ।
मय्येव भाति मणिपर्वतसन्निभोऽसौ !
किं तस्य कीर्तिमतुलामपि कीर्तयेयम् ? ॥५॥

उस प्रभुने मेरे ऊपर बडी ही कृपा की है कि मणि के पर्वत के समान उसने संसार में सर्वत्र प्रसिद्ध अपनी कीर्ति को मेरे हृदयमें प्रकाशमान करके मेरे ही हृदय में विराजमान हो रहा है। क्या सर्व श्रेष्ठ उसकी कीर्तिका मैं भले प्रकार कीर्त्तन कर सकूंगा ? ॥५॥

माणिक्यभूभृदुपरि प्रतताम्बुजाभा-
न्यस्याङ्घ्रि नेत्रकरहृद्वदनानि नाभिः ।
मह्यं च किंचिदिह वस्तु ददातिचेत्स;
स्वात्मानमेव वितरेद्धत ! तर्हि कस्मै ? ॥६॥

जिस प्रभुके चरण नेत्र हाथ हृदय मुख नाभि इनकी शोभा ऐसी हो रही है मानों नीलमणि के पर्वतके ऊपर अत्यन्त सुन्दर लाल जाति के कमल खिले हों। वह प्रभु मेरी प्रार्थना के अनुसार मुझे कुछ दे भी दे तो फिर अपनीआत्माको वह किसव्यक्तिके लिए देवेंगे अर्थात् मुझे तुच्छसी वस्तु न देकर अपने स्वरूपको ही देंगे ॥६॥

वक्त्राम्बुजं दशनकुड्मलनाभि पद्मं,
तेजस्वि च श्रवणयुग्ममिहास्य शोभा ।
सर्वत्र चाप्यहमहं त्विति भाति सोऽयं,
मन्दस्मितैर्हृदि ममास्ति न वेद्मि चान्यत् ॥७॥

जो प्रभु मेरे हृदय मे अपने शरीर की शोभा से प्रकाशमान है। जैसे कमलके समान मुखकुन्दकीकलीके समान दांत, कमलके समान नाभि,अत्यन्त तेज वाले दोनों कान, इनकी शोभा एकसे एक बढ़ कर मेरे हृदयमें प्रकाशमान हो रहे हैं । और जो प्रभु स्वयं ही मंदमुसकान

करता हुआ मेरे हृदयमें विराजमान है। उसको छोड़कर मैं अपने मनको प्रसन्न करने का उपाय और कोई नहीं जानता ॥७॥

नान्योपकारविदहं ! मयि दास्यभाग्यं,
विन्यस्य भात्युपकृतिं स्वयमेव कुर्वन् ।
अव्याजमेष परमो हृदि मे स्थितोऽद्य,
त्रैलोक्यमप्युदरतस्स्वयमेव धृत्वा ॥८॥

जो प्रभु तीनों लोकोंको अवकाश के सहित अपने उदर में स्थापित कर लेता है। उस प्रभूने निस्वार्थ भावसे मेरेको दास्यवृत्तिका सौभाग्य प्रदान किया है। और मेरे ऊपर अनेक प्रकारके उपकारोंको करता हुआ, मेरे हृदयमें अबभी स्थित है। उस प्रभुके लिए किसी प्रकारका प्रत्युपकार करना हम नहीं जानते। अर्थात् उसने अपनी इच्छासे हमारे साथ में जो जो उपकार किए हैं उनके बदले में हमभी कुछ उनका प्रत्युपकार किसी कार्यसे कर सके ऐसा कोई भी कार्य हमारी समझमें नहीं आता ॥८॥

भूपालकानपि सुरान् जठरे दधानं,
त्रैलोक्यमप्युदरतस्स्वयमेव धृत्वा ।
सर्वेश्वरं स्थितियुतं च यथा वदेनं,
चित्ते निजे किलसदाऽपि निवेशयामि ॥९॥

पृथ्वी की रक्षा करने वाले देवताओंको भी जो प्रभु पेटमें धारण करलेता है। और तीनों लोकोंको भी जो स्वयं उदरमें धारण कर लेता है। जो संसारकी रक्षा करनेके लिए अनेक प्रकारकी लीलाओंको रचता है। इसके इसीप्रकारके रूपको मैं सदा अपने हृदय में बैठाकर उसी का ध्यान करा करूं यह मेरा शुभ संकल्प है ॥९॥

उद्यत्तरङ्ग भरितेऽपि च दुग्धसिन्धौ,
तेजस्विनि स्वशयने शयितं फणीन्द्रे ।
नाथं परं मम किलाकरवं स्वचित्ते
विश्लेषमेव न सहेऽहमितः कदाऽपि ॥१०

उछलती हुई तरंगों से भरे हुए क्षीर समुद्र में अत्यन्त तेज वाले शेषजीके ऊपर जो प्रभु शयन करते हैं । उन मेरे स्वामीको मैंने आज अपने चित्तमें स्थापन कर लिया है । इसी कारण भविष्य में भी उस प्रभु का विश्लेष (अलग होना) मैं कभी नहीं सह सकता ॥१०॥

तेजस्विशेषशयनं परमं प्रभुं नः,
श्रीशं हि दास्यविधयेऽङ्घ्रियुगे शठारिः ।
स्तोतुं सहस्रमकरोद्दशकं तदेत,
त्तीत्राचितो दहति जन्ममहाघतूलम् ॥११॥

जो प्रभू मणियों के तेज से अत्यन्त प्रकाशमान शेषजीके ऊपर शयन करते हैं । जो लक्ष्मीके पति हैं उनी प्रभुके चरणोंकी दास्यवृत्ति करने के लिए और स्तुति करने के लिए शठकोपमुनिने सहस्रगीति की रचना की है । उसमें यह दशक पाठकों को जन्मसे लेकर किए गए सर्व पापों को जलाकर जन्म मरण के चक्रसे छुडा देगा ॥११॥

इति श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके सप्तमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके अष्टमदशकारम्भः ।

इस दशकमें आल्वार यह समझकर कि मेरे संयोग से उत्पन्न हुए हर्ष से प्रभुका सौन्दर्य भूषणादिक नवीन हो गये हैं । उनके सहित आकर मेरे हृदयमें यह प्रभु विराजमान हुए हैं । अतएव उस सर्वेश्वर के सर्व स्वामित्वरूप महत्व का प्रतिपादन करते हैं ।

दिव्याब्जायितलोचनश्च विलसद्दन्तश्च वक्त्राम्बुजे,
श्रोत्र द्वन्द्वविलोलकुंडलयुगो नीलाम्बुदाभो हरिः ।
श्रीमान्भास्वररत्न मौलिरसमो विष्णुश्चतुर्बाहुधृक्
चक्रीशाङ्गगदासि शंखभृदसौ वाभाति चित्ते मम ॥१॥

जो विष्णु,चारों भुजाओंमे शंख चक्र गदाशाङ्ग धनुष को धारण करता है । और जिसके दिव्य कमलके समान सुन्दर और विस्तृत नेत्र हैं । जिसके मुखकमलमें कुन्दकलीके समान दाँतोंकी पंक्ति शोभायमान हो रही है । जिसके दोनों कानों में चमकते हुए चपल कुण्डल शोभा

दे रहे हैं। जो स्वयं नीलमेघके समान श्यामसुन्दर विग्रह वाला है। और जो चमकते हुए रत्नों से जड़े हुए मुकुटको मस्तक पै धारण किये हुए है। जो अत्यन्त शोभा का भंडार है वही श्रीहरि आज मेरे चित्त में आकर विराजमान हुआ है।

अण्डान्तश्च वहिश्च शास्ति सकलं योऽन्तर्नियन्ता स्वयं,
दुर्वर्ण्यश्च परात्परः परिमलानन्दानुभूतेरपि।
निस्सीमामृतवारिधिश्च विशदज्ञानामृताम्भोनिधि-
र्देवानां पतिरेक एव हृदये मे भाति चात्मन्यपि ॥२॥

जो प्रभु समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी होकर उनको अपनी इच्छानुसार चलाता है। जो ब्रह्माण्डों के भीतर और बाहर भी समस्त प्राणियों का शासन करता है। जिसके सर्वश्रेष्ठ स्वरूपको कोई भी यथार्थ रूपसे वर्णन नहीं कर सकता। जो अत्यन्त सुगन्धित वस्तुओंसे भी अधिक आनन्द देने वाला है। जो सीमा रहित अमृत का समुद्र है। जो अत्यन्त विस्तृत निर्मल ज्ञानरूपी अमृतका महा सागर है। जो समस्त देवताओंका सर्वपूज्यएकस्वामी है। वही प्रभु आज मेरे हृदय और मेरी आत्मामें आकर विराजमान हुआ है ॥२॥

सूरीणां पतिमप्रमेयमपि तं प्राप्तुं प्रसादादहं
तस्यैवाद्य करोमि तं मम हृदीत्येषा कृपा चास्य हि।
बुद्धिप्राणशरीर मुख्यमखिलं चान्यत्तु हेयं भवे
दित्येवं विशदां मतिं च जनयन्नात्माऽपि मे भात्ययम् ॥३॥

जो प्रभु नित्यसूरियोंका सर्वश्रेष्ठ पति है, उसी को प्राप्त होनेके लिए उसीकी कृपासे मैं आज उसके कैंकर्यको करता हूँ। और उसी का मैं अपने मनमें ध्यान करता हूँ। यह भी उसी परमदयालुकी महती दया है। आज उसी प्रभुने मुझे यह शुद्ध विवेक दिया है, जिससेकि मैं बुद्धि प्राण शरीर और आत्माको उसकी सेवासे रहितकों त्याज्य समझ सका हूँ। और वही प्रभु मेरे मनमें स्वयं स्थित होकर विराजमान हो रहा है ॥ ३ ॥

जीवाजीवसमस्तमूलमपि तं विष्णुं शिवाब्जाशना
द्यात्मानं प्रथमं सुधारसमधुक्षीरेक्षुसारात्मकम् ।
बुद्धि प्राणशरीरगं ममहरिं चात्मान्तरात्मा मम-
प्येवं गुप्तमिमं मयीह विशदं वेद्मि स्वयं श्रीधरम् ॥ ४ ॥

जो प्रभु जड़ चेतनात्मक समस्त संसारका आदि कारण है। और जो संसारकी सृष्टि रक्षा प्रलय करनेके लिए ब्रह्मा विष्णु शिवका रूप धारण करता है। जो मिश्री, मधु, दूध, ईख, रस इनसे भी अधिक मधुर और स्वादिष्ठ है। और जो हरि मेरे बुद्धि प्राण शरीर और मनमें भी गुप्तरूपसे व्याप्त हो रहा है। और जो मेरे मनमें अति उज्ज्वल सर्वावयव सुन्दररूपसे भी विराजमान है,उस शोभाधामको मैं स्वयं भले प्रकारसे जानता हूँ। अर्थात् उस प्रभुकी सर्वव्यापकता और सर्वश्रेष्ठता और सर्वोत्तम मधुरताका मुझे जो ज्ञान हुआ है, वह उसी प्रभुकी कृपासे हुआ है ॥ ४ ॥

आत्मज्ञानवतोऽपि मे न विलसेत्सूक्ष्मं स्वरूपं च तत्
प्राज्ञानामपि दुर्गमं हि विशदज्ञानेऽपि दुर्दर्शता ।
एवं चेदमुपर्युपर्यपि महागूढं सुसूक्ष्मं भवेत्
तत्तदोषगुणाद्यतीतममलज्ञानात्मकं दुर्ग्रहम् ॥ ५ ॥

उस प्रभुका सर्व विलक्षण स्वरूप इतना सूक्ष्म है कि बड़े बड़े ज्ञानी भी अपने योगबल द्वारा उत्पन्न हुए विशदज्ञानसे उसे जाननेमें असमर्थ हैं। और आत्मज्ञान वाले मेरे लिए भी जिस सूक्ष्म स्वरूपका जानना अति कठिन है, हम जब विचार करते हैं, तो यह बात निश्चितरूपसे सत्य हो जाती है, कि पहले तो उस प्रभुको जानना ही कठिन है। और जानकर भी उसका साक्षात् अनुभव होना महाकठिन है। क्योंकि जिन साधनोंसे हम उस प्रभुको जानना चाहते हैं, अथवा उसका साक्षात्कार करना चाहते हैं, वे समस्त साधन दोष युक्त और अपूर्ण हैं। अतएव इन साधनोंसे निर्दोष परिपूर्ण सर्वेश्वरको जानना अति कठिन है ॥ ५ ॥

नानाज्ञानमतीत्य शुद्धमनसा सर्वेन्द्रियाणां जयं
दुर्वारामित सत्प्रधान विविधज्ञानात्स्वयं चात्मनः ।
निर्मूल्यापि सुखं च दुःख मखिलं संगाच्च मुक्तो यदि
स्यान्मुक्तिः क्षणतः किलेयमपि च प्राप्यैव मुक्तिः क्वचित् ॥६

अनेक प्रकारके सिद्धान्तोंके ज्ञानके झंझटोंको छोड़कर शुद्ध मनसे दुर्जय समस्त इन्द्रियोंको जीतकर स्वयं आत्माके और प्रकृतिके विवेक द्वारा सर्वप्रकारके सुख और दुःखोंको समूल नष्ट करके सांसारिक विषयोंके सर्वप्रकारके संगको यदि यह प्राणी छोड़दे तो क्षणभरमें उसको निश्चितरूपसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है । और सन्दिग्ध चित्त वालोंके लिए तो कभी कभी घुणाक्षर न्यायसे मुक्ति होजाती है ॥६॥

उसमें कोई निश्चय नहीं है कि संशयात्माओंकी अवश्यंही मुक्ति होगी, क्योंकि निश्चितरूपसे तो मोक्ष निःसन्देह साधकोंकी ही हुआ करती है ।

लकड़ी में जब घुन नामका कीड़ा छेद करने लगता है, तो उसमें क ख के समान अक्षर अनायासही बन जाते हैं, यद्यपि कीड़ाका उद्देश्य अक्षर बनानेमें नहीं है, वह तो केवल लकड़ी को ही काटना जानता है, किन्तु उसके काटने ही से लकड़ी में अकस्मात् अक्षरों की सी आकृति हो जाती है, इसीको घुणाक्षरन्याय कहते हैं ।

मुक्तिस्सैव किलात्मभुक्तिरिति या तस्याः फलं स्यात्सुखं
चेत्येवं हि वदन् यदि प्रकृतिसङ्गाद्यैर्विहीनः स्वयम् ।
सामुक्तिः किल मुक्तिरेव च फलं च स्यात्सुखं तद्विना
काभुक्तिः किमु तत्फलं त्विति मनोभ्रान्त्या पतंत्येव हि ॥७॥

जिन पुरुषोंको यह निश्चय है कि संसारबन्धनसे छूटनाही आत्माकी निश्चितरूपसे मुक्ति है । और उसका फल नित्य सुखको भोगना ही है । वे इस प्रकार कहते हुए प्रकृतिके संगको स्वयं छोड़ देंगे तो उनका वह प्रकृतिसे मुक्त होना वास्तवमें मुक्ति ही है । और उनको नित्य सुख भी अवश्य ही प्राप्त होगा । और जिन संशयात्मा

पुरुषोंको यह संशय है, कि प्रकृति पुरुषका संग छोड़ेगी वा नहीं, मुक्ति न जाने होगी वा नहीं। और उसका सुख भी हमें प्राप्त होगा वा नहीं, इस प्रकारके भ्रान्तिके चक्करमें जो पड़े रहते हैं, वे अवश्य ही मुक्ति मार्गसे गिर जाते हैं ॥ ७ ॥

हा हा हन्त ! पतन्ति चेति शिथिलान्येवेन्द्रियादीन्यहो
दृष्ट्वा गेह निवासिनोऽपि युगपद्बाह्याश्च दुःखाकुलाः ।
क्रन्दन्त्येव यदा तदोत्क्रमदशां प्राप्तस्य चोन्मत्तवत्
तेषु स्नेहपरं मनो मम हरौ सक्तं यदि स्याद्वरम् ॥८॥

हाय ! जिस समय पुरुषकी कर चरणादिक और नेत्र श्रोत्रादिक समस्त इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं। और घरवालोंको यह निश्चय हो जाता है कि अब अवश्य ही इसका शरीर छूटेगा। तो उसको देखकर घर वाले और बाहरके पड़ौसी भी रोते हुए उन्मत्तके समान चिल्लाते हैं। इस प्रकार मरने वाले प्राणोका भी प्रेम अपने सांसारिक सम्बन्धियोंसे हटकर दुख यन्त्रणा भोगनेमें लग जाता है। इस प्रकारकी दशाको प्राप्त होनेसे पहले ही मेरा चित्त संसारके स्त्री पुत्र धनादिकों में से हटकर श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें यदि आसक्त होजाय तो बहुत ही अच्छी बात हो। अथवा आत्माका उससे अवश्य कल्याण होगा ॥ ८ ॥

एक्यं स्याद्यदि तच्छुभं शशविषाणाद्याश्च लभ्या यदि
स्याज्जीवः परमःपुमान् गरुड़सत्केतुश्च मायी हि नः ।
जीवे नैवहि कल्पितं कथमपि स्याद्वैक्य मित्याशया
योगीन्द्राः परितोऽप्यटन्तिहि वृथा कालत्रयेऽपीदृशाः ॥९॥

यदि यह सिद्धान्त मान भी लिया जाय कि जीवका शरीर छूटने पर वह ब्रह्ममें मिलकर एक हो जाता है। अतएव उसको मरने के बाद सुख दुःख भोगना पड़ता है, यह बात मिथ्या है। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकती है, जब कि शशश्रृङ्गकी प्राप्ति देखी जा सके अर्थात् जिस प्रकार शशेकें सींग होने असम्भव है, उसी प्रकार

जीवका ब्रह्ममें मिलकर एक होना असम्भव है। यदि मान लिया जाय कि जीव ही परम पुरुषोत्तम होकर गरुड़गामी हो जाता है। और जीवने ही अपने अज्ञानसे इस संसारकी कल्पना करली है, तौ जब हम बड़े बड़े योगीन्द्रोंको भी तीनों कालोंमें धक्का खाते हुए देखते हैं तो उक्त सिद्धान्त स्पष्ट रीतिसे झूँठा सिद्ध होजाता है ॥९॥

यह बात वशिष्ठ पराशर मार्कण्डेय ऋषियोंके चरित्रसे हमें उस सत्यकी ओर ले जाती कि जीव त्रिकालमें भी सर्वेश्वर और सर्व शक्तिमान नहीं हो सकता है।

भक्तानां न किलास्त्यसन्नयमसन्नन्यात्मनां श्रीधरो
भात्यस्मत्प्रभुद्धिनीयविभवस्सर्वैं गुणैर्मे हृदि।
वृद्धिं च क्षयमद्य शुक्लशशिनः कृष्णस्य चामी यथा
ज्ञानाज्ञानतमःप्रकाशसरणिं सर्वां निहन्मो वयम् ॥ १० ॥

जो पुरुष यह कहते हैं कि ईश्वर है ही नहीं, यदि होता तो वह हमारे सामने आकर कुछ कार्यतो करता उनके लिए ईश्वर भलेही न रहे, किन्तु सर्व शोभाधाम हमारा स्वामी सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य से युक्त होकर हमारे हृदयमें तो वह विराजमान हो रहा है। जिस प्रकार शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्ष चन्द्रमाको बढ़ाते और घटाते रहते हैं, इसी प्रकार वह प्रभुभी अपने संयोगसे हमें आनन्दित और वियोगसे दुखित करता रहता है। अब हम उस प्रभुकी कृपाके प्रभावसे ही ज्ञान और अज्ञान अन्धकार और प्रकाश-मार्गोंके झंझटों का नाशकर शुद्ध ज्ञान वाले होगये हैं ॥ १० ॥

ज्ञानं मोहमपि प्रणाश्य च निजे पादाब्जयुग्मे हरिः
स्वामी भक्तकुलं निवेश्य कृपया धाता च रुद्रस्त्वयम्।
श्रीशो रक्षति तत्कृपास्पदमसौ साहस्रमाहातुलं
सूरिःश्रीश्शठजिच्च तत्र दशकं चेदं तदङ्घ्रौ नयेत् ॥ ११ ॥

जो हरी भक्तगणोंका स्वामी होकर अपनी कृपासे उनके ज्ञान और मोहका नाश करके अपने चरण कमलोंमें लगाकर उनकी रक्षा

करता है। और जो लक्ष्मी पति सृष्टि और प्रलय करने के लिये ब्रह्मा और रुद्र का रूप धारण कर लेता है। उसी प्रभु की कृपाके पात्ररूप शठकोपसूरिने सर्व श्रेष्ठ सहस्र गीति को कहा है। उसमें इस दशक को जो पढ़ेंगे वे अवश्य ही परम प्रभु के चरणकमलों को प्राप्त हो जायेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके अष्टमदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके नवमदशकारम्भः।

इस दशक में आल्वार व्याघ्रपुरवासी परमात्मा की शरीरशोभा को देखकर उसमें ऐसे आसक्त हो गये कि अन्यवस्तु का उनको ध्यान ही नहीं रहा। इसलिये वसे प्रभुके दिव्य अंग और दिव्य भूषणों का एक एक करके नायिकारूप से वर्णन करते हैं।

माणिक्याद्रितले महोज्ज्वलसरोजानीव वक्षस्स्थलं,
वक्त्रं नेत्रकरांघ्रिनाभिवसनादीनि स्वयं भासयन्।
नाथःश्रीपतिरस्मदीश उदित क्षेत्रादिसस्यावृते,
श्रीमद्व्याघ्रपुरे न वक्ति हि हरेर्नाम्नोऽन्यदेषा सुता ॥१॥

यह मेरी पुत्री उगे हुए हरे खेतों से ढके श्रीमद्व्याघ्रपुरमें विराजमान प्रभुका ही बारबार कीर्तन करती है। यह कहती है कि उस प्रभुका वक्षःस्थल ऐसा शोभा देता है मानो नीलमाणिक्य पर्वत के ऊपर लाल कमल खिले हों, और उसके मुख नेत्र कर चरण नाभि पीताम्बर ये सभी बड़े प्रकाशमान हैं। वही हमारा स्वामी लक्ष्मी नाथ श्रीमद्व्याघ्रपुरमें आकर प्रगट हुआ है। उसकी चरण सेवा ही प्राणियों का कल्याण करने वाली है।

आल्वार प्रभु के ध्यानमें इतने व्यग्र थे कि वे अपने स्वरूप को भूल कर एक नायिका का अनुकरण करने लगे। उनकी इस दशाको देखकर उनकी माता उनके अन्य सखिजनोंसे कहती हैं। व्याघ्र पुर केरलदेशमें (कुट्टनाडु तिरु पुलियूर) इस नाम से प्रसिद्ध है ॥ १ ॥

हे मातृ प्रमुखाःकिमद्य करवै। रम्ये सुवर्णाचले
तेजस्वी रविरेव किं ग्रहगणास्तारागणा वेन्य हो।

भास्वद्दिव्य किरीटहार सकलालंकार-भूषाधरः
स्वामी व्याघ्रपुरस्य सस्यभरितस्येति स्तवीति स्वयम् ॥२॥

हे माताओ! यह सखी हरे खेतों से शोभायमान व्याघ्रपुरके स्वामी की स्वयं स्तुति करती हुई कहती है कि अहह! यह प्रभु व्याघ्रपुरमें ऐसा प्रतीत होता है। मानो सुमेरुके ऊपरमें अत्यन्त तेज वाले सूर्य का उदय हुआ हो। इसके भूषणोंको देखकर यह प्रतीत होता है कि मानों गगन मंडल में समस्त ग्रह और तारा गणों का उदय हुआ हो। इसी भाँति इसके प्रकाशमान दिव्य किरीट हार तथा अन्य भूषण शोभा दे रहे हैं। इस प्रकार प्रभुकी दर्शनमाधुरी से पागल हुई, इसके लिये हम क्या करें ॥ २ ॥

गर्जत्तुङ्गतरंगवारिधिरहो! ज्वालागणैरुज्ज्वलै-
स्संचारी किमयं रिवति स्तुतिकरा यस्यारयोऽपि स्वयम्।
तस्यैवायुधचक्रधारिण इयं रक्षः प्रहर्तुर्हरेः
श्रीमद्व्याघ्रपुरं हि रत्नभवनैर्दीप्रं स्तवीत्यन्वहम् ॥३॥

हे माताओ! यह हमारी सखी निरन्तर ही अनेक प्रकारके रत्न जड़ित भवनों से चम चमाते हुए श्री मद्व्याघ्रपुरकी प्रशंसा किया करती है। जिस प्रभु की स्तुति उनके शत्रु भी यह कह करके करते हैं कि यह कोई अत्यन्त प्रकाशमान ज्वाला समूह के साथ घोर गर्जना करती हुई तरंगों वाला जंगम समुद्र ही है क्या ?। जो प्रभु सुदर्शन चक्र रूपी आयुध को सदा धारण करता है। जो प्रभु राक्षस कुल का समूल नाश करने वाला है। उसके श्रीमद्व्याघ्रपुर की ही बारबार यह सखी प्रशंसा करती है ॥ ३ ॥

उद्यद्वृक्षगणैश्चुकाण्डनिवह-व्रीह्यादिभिर्भूषिते,
श्रीमद्व्याघ्रपुरे च रम्यसलिलक्षेत्रे त्रिलोकीभुजः।
सूरीन्द्रस्यगुणैःशुभैर्विलसतः श्रीशस्य नामावलिं,
सेयं कीर्तयति स्वयं हि सततं सम्यक् प्रकाशावहा ॥४॥

हे माताओ ! यह सखी तो निरन्तर अति रमणीय जल भरे खेतों में उगे हुए वृक्षगण और ईख तथा धानोंके खेतोंसे शोभायमान श्रीमद्व्याघ्रपुर में विराजमान अनेक शुभगुणों से अलंकृत नित्य मुक्त और लक्ष्मी के स्वामी त्रिलोकी पालक परमात्मा के शुभ नामों को ही प्रकट रूप से कीर्तन करती है ॥ ४ ॥

प्राचीनाभरणावलिं सपदि यद्धृत्वा त्वियं शोभते,
सद्वस्त्रैरपि च स्वगात्रविलसल्लावण्य शोभादिभिः ।
तत्सर्वं न निसर्गसिद्धमिह हि श्रीव्याघ्रपुर्यां प्रभो-
स्त्रैलोक्याधिपतेः कृपाम्बुधितले मग्नाऽस्ति सेयं स्वयम् ॥५॥

हे माताओ ! यह सखी तो अपने शरीर पर धारण किए पुराने वस्त्रों और आभूषणों को ही उत्तम समझकर उस प्रभु की चिन्तामें ऐसी लगी हुई है कि अपने उत्तम वस्त्रोंको भूलकर और अपने शरीर की उत्तम शोभाको भी भूल कर श्रीव्याघ्रपुरीमें विराजमान कृपा सागर परमात्मा के अनुभव में ही स्वयं निमग्न हो रही है । यह सब कुछ इसकी स्वाभाविक बात नहीं है । ज्ञात होता है कि उस प्रभुके अनुभव ने ही इसको पागल के समान बना दिया है ॥ ५ ॥

गम्भीराम्बुधिवर्ण कृष्ण करुणापथोधिमग्ना चिरं,
सेयं संगमकालचिन्हभरिता ! तस्मादयं तामिमाम् ।
भूयश्चाप्युपकर्तुमत्र वसति श्रीव्याघ्रपुर्यां हरि-
स्तस्यानुग्रहतस्त्वियं विलसति श्रीपक्वपूगाधरा ॥६॥

हे माताओ ! प्रथमतो यह मेरीप्यारी सखी गंभीर समुद्रके समान नीलवर्ण धारी श्रीकृष्णके दयासमुद्रमें ही बहुत दिनोंसे निमग्न है । और इसके शरीर पर प्रत्यक्ष में भी प्रभु के सम्भोग चिन्ह दिखाई दे रहे हैं । और इसी कारण प्रभु भी फिर इसके साथमें उपकार करने के लिए श्रीव्याघ्रपुरीमें आकर बसे हैं । उसीकी कृपा से यह पकी हुई सुपारियों को खाती हुई शोभायमान हो रही है ॥६॥

मृद्वीं पल्लवसन्ततिं सुरुचिरं ताम्बूलवल्लीं स्वयं
धृत्वा भाति तया किल क्रमुकसद्वृक्षोऽत्र संश्लिष्यते ।
पुष्पैःपक्कफलैश्च भाति कदली सा नारिकेलान्विता
श्रीमद्व्याघ्रपुरेऽत्र कृष्णचरणौ सेयं श्रिता कन्यका ॥७॥

हे माताओ ! यह कमनीय कन्या अति कोमल ताम्बूलवल्लीके पल्लवोंको (पान बीड़ाको) मुखमें स्वयं धारण करके उत्तम जातिके सुपारीके वृक्ष से आलिंगन करती है । और कभी फलों की माला लेकर और कभी पके हुए केला और नारियलके फलोंको लेकर श्रीमद्व्याघ्रपुरमें निवास करने वाले भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका आश्रय लेती हैं, इस प्रकारके सात्विक चरित्र करने वाली यह हमको बहुत ही अच्छी लगती है ॥ ७ ॥

युष्माकं जननीजनाः ! किमु वदाम्यत्यन्तसम्पद्युता
गीर्वाणोक्तियुताश्च वेदपठनैराराधयन्तो हरिम् ।
श्रीमद्व्याघ्रपुरेऽत्र सन्ति बहवश्चाज्याहुतेर्धूमतो
लोकान् व्याप्य च शेषशायिन इयं नामैव संकीर्तयेत् ॥८॥

हे माताओ ! मैं आप लोगोंसे इस सखीके चरित्रोंको क्या कहूँ, यह तो जिस व्याघ्रपुरमें अत्यन्त सम्पत्तिशाली और संस्कृतके उच्च-कोटिके विद्वान् वेदपाठोंसे भगवान्की आराधना करते हैं । और बहुतसे अग्निहोत्री ब्राह्मण जहाँपर घृतकी आहुतिके लोकव्यापी धूमको निरन्तर उठाते रहते हैं । उस व्याघ्रपुरमें निरंतर वास करने वाले शेषशायीके नामोंका ही सङ्कीर्तन करती है ॥ ८ ॥

शीताम्भोनिधिवर्णं कृष्णचरितं वेदादिघोषैर्युता
विप्रा यत्र सरस्सु चाब्जनिवहा दीपायिताश्चोज्वलाः ।
श्रीमद्व्याघ्रपुरं हि सस्यभरितं तत् कीर्तयन्ती सदा
सेयं नान्यदहो वेदन्मम सुता नक्तं दिवं तत्परा ॥ ९ ॥

अहह ! शीतल समुद्रके समान वर्णवाले श्रीकृष्णके चरित्रोंको वेदमन्त्रोंकी ध्वनिसे वर्णन करने वाले ब्राह्मणगण जहाँ नित्य

निवास करते हैं । और जहाँ पर सरोवरोंमें खिले हुए लाल कमल जलते हुए उज्ज्वल दीपोंके समान प्रतीत होते हैं । जहाँ पर हरे हरे खेत चारों ओर खड़े हुए हैं, उसी श्रीमद्व्याघ्रपुरका निरंतर कीर्तन करने वाली यह मेरी पुत्री और किसीका भी नाम नहीं लेती । यह मुझे बड़ा आश्चर्य है, ऐसा नायिकाकी माता कहती है ॥ ९ ॥

उत्तुङ्गैर्नवरत्नसौधनिवहैर्या दक्षिणस्या दिशः
श्रीमद्व्याघ्रपुरी चकास्ति तिलकप्राया हि तस्यामियम् ।
श्रीकृष्णस्य कृपाश्रया भगवतो विष्णोस्स्वयं मायिनो
नोचेद्दिव्यसुगन्धिशीततुलसीयुक्ता कथं स्यादियम् ॥१०॥

जो श्रीमद्व्याघ्रपुरी दक्षिण दिशारूप रमणीके तिलकके समान है । जिसमें ऊंची ऊंची नवरत्नोंकी छतें बनी हुई हैं, उसी व्याघ्रपुरीमें विराजमान अनेक मायाधारी भगवान् विष्णु श्रीकृष्णके कृपाकी पात्र यह मेरी पुत्री बन गई, यदि ऐसा न होता तो इसके पास सुगन्धियुक्त शीतल तुलसीकी माला कहाँसे आती, इससे इसके गलेमें तुलसीकी मालाको देखकर हमको यह दृढ़ निश्चय होता है कि व्याघ्रपुरवासी भगवान्ने प्रसन्न होकर अपनी प्रसादी तुलसीकी माला इस कन्याको बहुमान पूर्वक पहनादी है ॥ १० ॥

त्रैलोक्याधिपतेः प्रभोर्भगवतः कैंकर्यसक्तात्मनां
भक्तानामपि भक्तभक्तिभरतो योऽसौ शठारिर्मुनिः ।
दिव्यद्राविणसूक्तिहारमकरोत् साहस्रपद्यात्मकं
तत्रेदं दशकं पठन्ति भुवि ये ते श्रीपतेः किंकराः ॥ ११ ॥

जो प्रभु तीनों लोकोंका स्वामी है, उसी भगवान्के कैंकर्यमें आसक्त है, चित्त जिन्होंका ऐसे परमभागवतोंकी भक्तीसे युक्त जो शठकोपमुनि हैं, उन्होंने सहस्र पद्यों वाली दिव्यद्रविड़ सूक्तियोंकी माला (सहस्रगीति) की रचना की है, उसमें इस दशकको भूमितल पर जो पाठ करेंगे, वे अवश्यही परमप्रभुके नित्य कैंकर्यपात्र हो जाँयगे ।

इति श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके नवमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतके दशमदशकारम्भः

इस दशकमें संसारी लोग अपने कल्याणके लिये जिन स्वर्ग और कैवल्यादिका आश्रय लेते हैं, वे प्रायः पुरुषार्थ नहीं है। पुरुषार्थ (आत्मकल्याण) तो केवल प्रभुके चरणोंकी निरन्तर सवविध सेवा करने वाले परमभागवतोंके चरणोंकी सेवा करना ही है। इसी बातको आल्वार यहाँ वर्णन करते हैं।

दास्यं तस्य परस्य पुंस इह यत्कांक्षे तदा मे क्षणात्
दुर्मार्गास्सकलाश्च कुत्रचिदहो लीनाः प्रणष्टाः स्वयम्।
तद्दासाङ्घ्रियुगाश्रयोऽयमिह मे त्रैलोक्यराज्यादपि
श्रेयानेव कथं त्यजामि तमहो तद्दासपादाश्रयम् ॥ १ ॥

अहह! मैं इस संसारमें जब परमपुरुषकी दास्यवृत्ति करनेका विचार करता हूँ, तो उसी क्षण मेरे सर्वप्रकारके दुष्ट संग स्वयं छूट कर नष्ट हो जाते हैं। और जब मैंने उस सर्वेश्वरके परमभक्त श्रीवैष्णवोंके चरणयुगलोंका आश्रय ले लिया तो, उसमें मुझे जो आनन्द आता है, वह त्रिलोकीके राज्यसे भी अधिक आनन्द और कल्याणका दाता है। सर्वश्रेष्ठ आत्मकल्याणको देने वाले भगवद्दासों के चरणोंकी शरणको मैं किस प्रकार छोड़नेका साहस करूं ॥ १ ॥

त्रैलोक्याधिपतित्वमप्यहह मे माऽस्त्वेव माऽस्त्येव तत्
स्वातन्त्र्यं परमं च केवलपदं स्वात्मानुभूत्यात्मकम्।
विष्णोर्वापुकमेघसन्निभतनोः पादाब्जदासास्तु ये
तेषां पादसमाश्रयादिह महानन्दं भजे नान्यतः ॥ २ ॥

अहह! इस संसार में यदि मुझे भागवत सेवा से विमुख करने वाला त्रिलोकी का राज्य भी मिल जाय तो उसको भी लेना मैं कभी स्वीकार नहीं करूंगा। और मैं चाहता हूँ कि ऐसे दुष्ट प्रलोभन कभी भी मेरे सामने न आवें। और जिसमें आत्मा सर्वस्वतंत्र हो कर केवल अपने स्वरूपका ही अनुभव करता है। उस कैवल्य पदको भी मैं नहीं चाहता। मुझे तो वर्षा कालके मेघके समान श्याम सुन्दर भगवान विष्णु के चरणकमलों में जो सर्व प्रकार से अपना

आत्मभर समर्पण कर चुके हैं। उन परम भागवतों की सेवा करने में ही परम आनन्द प्राप्त होता है। अन्यवस्तुसे कभी, मुझे ऐसा आनन्द प्राप्त नहीं होता ॥-२॥

त्रैलोक्यं सकलं स्वदिव्यवपुषा व्याप्य स्थितं वामनं,
पश्चात्तं यदि संश्रये स्वयमहं दास्याय तत्पादयोः।
तच्चाप्यद्य न रोचते मम तदीयाङ्घ्रिद्वयं ये श्रिता,
स्तेषामेव महात्मनां भुवि पदाम्भोजाश्रयोऽस्त्वद्य मे ॥३॥

आज इस भूमण्डल में जब मुझे सर्व प्रकार से भगवच्चरणों का आश्रय लेने वाले महात्मा श्री वैष्णवों के चरण कमलोंका आश्रय मिल गया, तो जो प्रभु स्वयं वामन रूप का होकर भी अपने दिव्य शरीर से तीनों लोकों में व्याप्त हो गया था। उस पुण्डरीकाक्ष के चरणोंमें दास्यवृत्ति करना भी अब अच्छा नहीं लगता। भक्तवत्सलताका आदर्श जैसा वामनावतार में प्रभुने दिखाया है। वैसा अन्य अवतारों में नहीं इसी कारण वामन भगवान्का नाम अधिक लेते हैं।

परमात्मा की सेवा करने वालों को प्रायः यह सन्देह हो सकता है कि हमारी सेवासे परमात्मा प्रसन्न होंगे अथवा नहीं। परन्तु भागवतों की सेवा करने में उक्त सन्देह करने का अवसर ही नहीं है। क्यों कि भागवत तो सेवा करने से प्रत्यक्ष में प्रसन्न होते देखे जाते हैं। इसी आशय को यह प्राचीन श्लोकभी स्पष्ट करता हैकिः

सिद्धिर्भवति मावेति संशयोऽच्युतसेविनाम्।
न संशयस्तु तद्भक्तपरिचर्यारतात्मनाम् ॥

पृथ्वीं य स्सकलामिमां ननु पुरा भुक्त्वाऽपि चोद्गीर्य च,
स्वामी बिम्बफलाधरस्सुरुचिराम्भोजाक्षियुग्मो हरिः।
तत्कल्याणगुणास्तु वाचि यदि मे चित्ते च रूपं शुभं,
हस्ते पुष्पचयश्च चेद्भुवि किमस्त्यत्रापि मे शोच्यता ? ॥४॥

अहह! जो प्रभु पहले समस्त पृथ्वीको खाकर और फिर सृष्टि के समय उगल देता है। जो मेरा स्वामी बिम्बाफल के समान लाल

होठ और अति रमणीय कमलके समान नेत्र युगल वाला है। उस हरी के कल्याण गुणोंका मैं अपनी वाणी से कीर्तन करता हूँ, और मैं अपने शुद्ध चित्त में उस प्रभु के शुभदायक रूपका ध्यान करता हूँ, और यदि हाथों से उसकी अर्चना करने के लिए पुष्पोंका संग्रह करता हूँ, तो क्या फिर भी मुझको इस भूमण्डल में किसी प्रकार के शोच करने की आवश्यकता है ॥ ४ ॥

सन्मार्गैर्यदि याम्यहं तु परमं धाम प्रभोर्मायिनः,
पादाम्भोजयुगप्रभाविलसितश्चानन्दमग्नो दिवि ।
तत्सर्वं न वरं हि मे ! भुवि परं देही स्वरूपं मम
ज्ञात्वा मत्कैवितारसामृतपरीवाहे भवेयं बुधैः ॥५॥

मैं यदि अर्चिरादि मार्गों से मायावी उस प्रभुके दिव्य धाम में जाऊं, और वहाँ पर उस प्रभुके चरण कमल युगलकी दिव्य ज्योतिका अनुभव करके नित्यानन्द मग्न हो जाऊं, तो भी इन सब बातों को मैं श्रेष्ठ नहीं समझता हूँ। मैं तो प्रभु से यही प्रार्थना करता हूँ कि इस भूमण्डल में ही मुझे शरीर धारी बनाइये और उसमें भी इस प्रकार का सुयोग दीजिये कि आपके ज्ञाननिष्ठ भक्तों की गोष्ठी में आपके रूप स्वरूप गुण विभूतियों को यथार्थ जान कर आपके गुणोंकी कविता के रसामृत प्रवाहमें सदाही गोते लगाता रहूँ ॥५॥

दृप्तं मत्तगजं प्रणाश्य विलसच्चक्रायुधो भाति यः
तीक्ष्णाक्षिद्वयरक्तकेशमसुरध्वंसं च तार्क्ष्यं नयन् ।
सत्कल्याणगुणानुभूतिसदृशं किं वा भवेज्ज्ञातु चित्,
त्रैलोक्याधिपतित्ववैभवमपि स्यात्फल्गु ! मे न प्रियम् ॥६॥

जो परम प्रभु मतवाले कुवलयापीड़ हाथीका नाश करने वाले हैं। जिनका सुदर्शन चक्र आयुध नित्यही प्रकाशमान है। और अत्यन्त तीक्ष्ण और रक्त हैं नेत्र युगल और केश समूह जिसके, जो निरन्तर ही असुरों का विध्वंस किया करते हैं, ऐसे गरुड़जी के ऊपर चढ़कर जो गमन करते हैं, उस प्रभुके कल्याणगुणों के अनुभवमें जो

मुझे आनन्द आता है वैसा आनन्द त्रिलोकी के अधिपतिके ऐश्वर्य में भी कभी नहीं आसकता ॥६॥

दिव्यश्लाघ्यगुणान्वितं च सततं सृष्टेश्च मूलं परं,
ब्रह्म स्वेक्षण चिंतनं च जगतां हेतुश्च देवाधिराट् ।
तस्याङ्घ्रिद्वयपल्लवाश्रयणतोऽप्यस्माकमेतत् प्रियं,
तद्भक्तावलिसङ्गमाद्भवति यत्सौख्यं महत्सन्ततम् ॥७॥

जो प्रभु अति प्रशंसनीय दिव्य गुणों का भंडार है, और जो सृष्टिका परम कारण है, जो स्वयं परब्रह्म होकर अपने विचार से ही जगत्का कारण हो जाता है । जो समस्त देवोंका अधिपति है, उस प्रभुके चरण कमल युगलके आश्रयणसे भी अधिक हमको भक्तोंके निरन्तर संग में बड़ा भारी आनन्द प्राप्त होता है ॥७॥

सृष्ट्वैकार्णवमद्भुतं तदुपरि स्वैरं शयानो हरिः,
पादाम्भोजभुजोत्तमाङ्गसरणिं स्वीयां प्रकाश्याच्युतः ।
भास्वत्कल्पककोटिसूर्यविलसन्माणिक्यभूभृत्सम-
स्तद्भक्तावलि सङ्गमोऽस्तु सततं चास्माकमुज्जीवनः ॥८॥

जो प्रभु अति विस्तृत समुद्रको रचकर उसके ऊपर स्वछन्द रूप से और अद्भुत चरण कमल और भुजा और मस्तकको प्रकाशमान करते हुए स्वयं अविनाशी रूपसे शयन करते हैं । जिनका तेज प्रकाश करने वाले करोड़ों सूर्योंके समान है । जो चमकते हुए नीलमणिके पर्वतके समान शरीर धारी हैं । उन प्रभुके चरणों के भक्तोंका निरन्तर समागमही हमारी आत्माका उद्धार करने वाला है ॥८॥

भक्तानामखिलाघनाशनपटुस्स्वामी चकास्ति स्वयं,
धृत्वा चक्रगदासिशार्ङ्गजलजान्यन्यायुधान्यप्यसौ ।
सौंदर्याकरपंचबाणजनक स्तस्यानघा ये जना,
दासास्तादृशदासदास्यविभवो नित्यं चकास्त्वेव नः ॥९॥

जो हमारा स्वामी शंख चक्र गदा शार्ङ्ग धनुष इन आयुधोंको धारण करके भक्तोंके सर्वप्रकारके पाप और क्लेशों के नाश करने में

अति चतुर होकर सर्वश्रेष्ठ रूपसे प्रकाशमान है। और जो सुन्दरताके भंडार पंचबाण कामदेवको भी उत्पन्न करने वाला है। जो सज्जन उस प्रभुके भक्त हैं, उन सज्जनोंकी दास्यवृत्ति करने वाले जो भागवत दास हैं, उन भागवत दासों का नित्य कैंकर्य हमें प्राप्त होता रहे यही हम परमात्मासे प्रार्थना करते हैं ॥९॥

मूर्तिं चाप्यतसीसुमस्य सदृशीं दिव्यां चतुर्बाहुभृद्,
धृत्वा भाति च चक्रपाणिरतुलो मे नाथकोऽसौ हरिः।
नित्यं तच्चरणाब्जदाससरणेर्दासानुदासाश्च ये,
तद्दासाः प्रभवोः हिनः कुलमिदं कल्पेषु दास्येऽस्तुनः ॥१०॥

जो प्रभु अलसीके फूलके समान श्यामसुन्दर वाली मूर्तिको धारण करके हाथमें चक्रको धारण करते हैं। वे ही हरि हमारे निस्वार्थ स्वामी हैं। उस प्रभूके चरणोंके दासोंके जो दास हैं। और उनके भी जो दास हैं, वे ही समस्त कल्पोंमें हमारे कुलके स्वामी हैं, और उन्हीं की दास्यवृत्ति सर्व देशकाल में हमें मिलती रहे इसी में हम अपनेको धन्य भाग्य मानते हैं ॥१०॥

त्रैलोक्येऽपि विचित्रदिव्यरचने सर्वत्रगं श्रीहरिं,
कृष्णं पद्मविलोचनं हि कुरुकापुर्यांशठारिः प्रभुः।
स्तोतुं चाह सहस्रमुत्तममिदं भक्ता विदुश्चेत् स्वयं,
दाराद्यैर्दशकं भवन्ति भवनेष्वेवात्र भाग्यान्विता ॥११॥

सुर मनुज पशु पक्षी आदि विचित्र रचना वाले त्रिलोक में जो प्रभु सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। कमल लोचन उस कृष्णकी स्तुति करने के लिये कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनिने उत्तमपद्यों वाली सहस्र-गीतिको कहा है। उसमें इस दशकको जो भक्त स्वयं जान लेवेंगे वे स्त्री पुत्र धनादिकोंसे युक्त होकर सौभाग्यशाली अवश्य हो जायेंगे ॥११॥

इति श्रीमद्वेदवेदाङ्गाद्यखिलशास्त्रनिष्णात पराशरगोत्रावतंस श्रीमन्माधवार्यचरणाश्रित श्रीरामानुजसत्सम्प्रदायाचार्य मथुरागलतामठाधीश्वर पण्डितस्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्यशास्त्रि विरचित विद्वन्मोदतरंगिणी भाषाटीकासहित श्रीसहस्रगीतौ अष्टमशतक सम्पूर्णम्

अथ श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके प्रथमदशकारम्भः।

इस दशक मे आल्वार यह उपदेश देते हैं कि संसार में शरीर से सम्बन्ध रखने वाले बन्धु गण आपत्ति पड़ने पर कोई काम नहीं आते, वे तो सम्पत्ति मे ही स्वार्थसिद्ध करने के लिए बन्धु बन जाते हैं। अतएव आपत्ति मे साथ देने वाले स्वाभाविक बन्धु परम प्रभु के चरणका ही आश्रय लेना कल्याण कारक है।

पत्नीपुत्रसुतादिबन्धुपरिवाराद्याः फलापेक्षिणो
वित्ते हस्तगते हिनः परिजना नैवान्यदा मादराः।
तस्मादष्टदिशासु चोपरि तलेऽधस्ताच्च सर्वत्र य-
द्विश्वं तत्परिभुज्य रक्षितुरमीनाथस्य दासा वयम् ॥१॥

इस संसार में हमारी विवाहिता स्त्री और पुत्र और बन्धु तथा परिवार के लोग ये सब अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए तभी तक हम से नाता रखते हैं, जब तक हमारे हाथों में प्रचुर धन रहता है। और जब हमारे पास धन बीत जाता है तो ये सब अपना नाता हमसे तोड़ देते हैं। इसीलिए जो प्रभु आठों दिशाओं में ऊपर और नीचे भी संसार के ऐश्य को भोग करता हुआ सबकी रक्षा करता है। उसी स्वामी के दास होना हम लोगों ने स्वीकार किया है ॥१॥

इस गाथा का अर्थ हम नीचे एक कविके उद्गारों में दिखलाते हैं।

भजन—अब किससे करिये प्यार यार खुद ग़रज़ ज़माना है ॥ टेक ॥

मित्र कहे मैं जन्म का संगी हूँ सच्चा दिलदार।
वक्त पड़े पर काम न आवे किया यार को ख्वार ॥
ना फिर मुँह दिखलाना है ॥ यार खुद ग़रज़० ॥
भाई कहे भुजा मैं तेरी जीवन नौका धार।
ज़र ज़मीन घरके झगड़ों पर किया मुकद्दमा स्यार ॥
नदी अब खून बहाना है ॥ यार खुद० ॥
पुत्र कहे तुम पिता हो मेरे मैं फ़र्माबरदार।
ब्याह हुए पर आँख दिखावे अलग किया व्यवहार ॥
नहीं अब कोई अपना है ॥ यार खुद० ॥
स्त्री कहे प्राणपति मेरे जीवन के आधार ॥
धन सन्तान नहीं होने पर करन लगी व्यभिचार ॥

नहीं अब अन्त ठिकाना है ॥ यार खुद० ॥
जब घर वालोंकी यह हालत है तो और सब मतलबदार।
राधे श्याम शरण चल प्रभु की वही लगावे पार ॥
ग़रीब का वहीं ठिकाना है ॥ यार खुद० ॥

आशा बन्धुजनाश्च रक्षणपरास्तेऽमी च नः पार्श्वगाः
सर्वे स्वार्थपरायणा हि नटनैः कर्षंति सर्वं रसम् ।
तस्मादेकशरेण सप्तविटपिच्छेत्तुःपरं स्वामिनो
दास्यादेव भवाम नीलजलदस्योज्जीविता रक्षिताः ॥२॥

संसार में जिन को हम अपना बन्धु समझ कर उनके ऊपर सर्व प्रकार का विश्वास करते हैं। जो हमारी रक्षा करने के ठेकेदार बनते हैं। वे सभी स्वार्थ परायण होकर हमारे पास रहते हुए अनेक प्रकार का नाटक रचकर के हमारे सार(धन)को खींच लेते हैं। और सार न रहने पर हमको विपत्ति में छोड़कर चले जाते हैं। अतएव एक ही बाण से सात शाल वृक्षों को छेदन करने वाले नील मेघ के समान श्यामसुन्दर मूर्ति धारी प्रभु के चरणोंके दास होकर ही हम लोग अपनी आत्मा का सर्व प्रकार से उद्धार करके उसकी रक्षा करने में समर्थ हो सकेंगे ॥ २ ॥

वित्ते हस्तगते हिनः परिजना स्वतीति नाना स्तुतिं,
कृत्वा यान्ति धनग्रहा नहि भजन्त्यस्मान् दरिद्रायितान् ।
नाना कण्टक-राक्षसप्रमथनं नाथं श्रिताश्चेद्वयं
जातं श्रीमथुरापुरे हरिममुं नान्यच्छरण्यं हिनः ॥३॥

संसारमें जब हमारे पास बहुतसा धन आ जाता है तो हमारे सभी शरीर सम्बन्धी धन लेने के लोभ से हमारे पास आकर अनेक प्रकारकी प्रशंसाका पुल बाँधते हैं। और जब उनको धन मिल जाता है तो बड़े बड़े आशीर्वाद भी वे हमें देते हैं। परन्तु जब हम दरिद्र दशामें हो जाते हैं तो कोई भी आकर हमारी बात भी नहीं पूछता। अतएव संसार को कंटक के समान अति पीड़ा पहुँचाने वाले

दुष्ट राक्षसोंका मंथन करने के लिए जिस प्रभु ने मथुरापुरी में जन्म लिया है। हमको उसी प्रभु की शरण में जाना चाहिये। उसको छोड़ विपत्ति में हमारा रक्षक अन्य कोई नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

आपत्कालसुहृत्तमा इति वृथा वित्तादिदानैर्वशे,
ये ये चात्र कृतास्त एव च ऋणग्राहाः प्रयान्ति स्वयम् ।
अस्माकं न सहायका इति परं सत्यं वृथा वर्णनं !
शीलं श्रीमथुरोद्भवस्य शरणं ! नास्माकमन्यद्भवेत् ? ॥४॥

हमने इस संसार में यह सोचकर कि ये लोग हमारी विपत्तिमें सहायता करेंगे जिन लोगों को अनेक प्रकारके धन वस्त्रादि देकर प्रसन्न किया था। वे ही लोग हमसे अपना ऋण लेकर चले गये और हमारी पूर्वोक्त आशा व्यर्थ हो गई। अतएव जो हमारी विपत्तिमें किसी प्रकार सहायक नहीं हो सकते ऐसे बन्धु नामधारी शत्रुओंकी चर्चा करनाभी व्यर्थ है। इसीकारण श्रीमथुरापुरीमें जन्म लेने वाले परमात्माके स्वभावको विचारकर हमें यह दृढ़ निश्चय होता है कि वही हमारा सर्व विध रक्षक है। उसको छोड़कर और कोई हमारी रक्षा नहीं कर सकता ॥४॥

चातुर्यं परमं निजं हि बहुधा सम्भाव्य वाङ्माधुरी-
मेव स्त्रीनिवहा नटन्ति च सुखं तैः प्राप्य तुष्टा अपि ।
काले हन्त ! पतन्ति दुःख जलधौ तस्माद् दुरात्मासुर-
ध्वंसं श्रीमथुरोद्भवं तुशरणं सम्प्राप्य यामस्सुखम् ॥५॥

और बन्धुओंको तो जाने दीजिये हमारी स्त्री जो हमारी अर्द्धांगिनी बनने का साहस करती है, वह भी अपने अनेक प्रकारकी सेवा चातुर्य और मधुर वाणीसे हमको सन्तुष्ट करनेके लिए अनेक उपायों का नाटक रचती है, और हमभी उससे क्षणभरके लिये सुखीहो जाते हैं, परन्तु विपरीत समय आने पर उन सब प्राणप्यारियों की प्रेम कलाओंको वहीं छोड़ कर अपार दुःख समुद्रमें डूब जाते हैं। अतएव सर्वप्रकारके दुःखोंको दूर करनेके लिए हम दुष्ट असुरोंका विध्वंस

करने वाले मथुरामें जन्म लेने वाले श्रीकृष्णकी ही शरण में जांय। उसीसे हमको सर्व प्रकार का सुख प्राप्त होगा ॥५॥

नास्त्येवात्र सुखं जगत्यहह ! हा ! श्रीशस्मृतिं तां विना,
याता एव वृथा स्वयं त्वगणिता जाता मृताः प्राक्तनाः ।
पूर्णश्रीमदनादिसिद्धमधुरा पुर्युद्भवश्रीहरेः
कल्याणात्मगुणस्तुतिर्हि शरणं ! नान्यद्भवेत्सारतः ॥६॥

अहह ! हे भक्तपुरुषो ! मनमें थोड़ा विचार करके देखो तो सही कि उस प्रभु के स्मरण को छोड़कर इस संसार में सुख है ही नहीं। और जन्म ले ले कर मरते मरते पूर्व समयमें हमारे असंख्य जन्म व्यर्थमें बीत चुके हैं। अब यही सार है कि जो प्रभू पूर्णरूपसे अनादि सिद्ध है। और जिसने मथुरापुरीमें जन्म धारण किया है, उस श्रीहरि के कल्याण कारक उत्तम गुणोंकी स्तुति करने ही से हमारी आत्म रक्षा होगी अन्यथा नहीं ॥६॥

नान्यद्भाति शरण्यमित्यपि वयं ब्रूमस्स्वयं सारतो,
युस्माकं हितमेव नात्र जगति क्लेशावकाशो नृणाम् ।
नित्यं चिन्तनमेव भाति फलदं ! नैवात्र हानिर्भवेत् !
गोपालं मथुरोद्भवं गुणनिधिं स्तुत्वाऽनिशं जीवत ॥७॥

हे भक्त पुरुषो ! हम इस बात को निश्चित रूपसे शास्त्रों के सारका विचार करके कहते हैं, कि आप लोगों का इस संसारमें अनेक क्लेशों से बचा कर रक्षा करने वाला उस प्रभु को छोड़ दूसरा कोई नहीं है। इस कारण मथुरा में जन्म लेकर गौओं की रक्षा करने वाले समस्त गुणों के भंडार श्रीकृष्ण की निरन्तर स्तुति करते हुए ही शेष जीवन को बिताओ। क्योंकि उस प्रभु का नित्य स्मरण ही सर्व प्रकार के वाछित फलों का देने वाला है। और यदि मानलो कि उसके स्मरण से हमारी इष्ट पूर्ति नहीं हुई तो किसी प्रकार की हानि होने की भी सम्भावना नहीं है ॥ ७ ॥

कृष्णान्नापरमस्ति वस्तुशरणं स्वख्यातिविख्यातये
भूभारापनयाय सोऽत्रमथुरापुर्य्यां कृताविर्भवः ।
तस्माद्वस्तु यदस्ति वोऽद्य सकलं तत्पादपद्मद्वये
भक्त्या चार्पयत-भ्रमादिरहितास्सर्वं स एवास्ति वः ॥१०॥

जिस प्रभुने अपने ऐश्वर्यको संसारमें प्रसिद्ध करनेके लिए और पृथ्वीका भार उतारनेके लिए मथुरामें जन्म धारण किया है। उस कृष्णको छोड़कर कोई भी वस्तु श्रेष्ठ नहीं है। वही प्राणियोंका सर्व विध रक्षक है, इसलिए हे भक्तपुरुषो! आपके पास जो भी कुछ वस्तु हो, उस सब वस्तुको सर्व प्रकारका भ्रम छोड़कर भक्तिपूर्वक उसीके चरणयुगलोंमें अर्पण करदो, क्योंकि आप लोगोंका सर्वप्रकार से हितचिन्तन करने वाला श्रेष्ठ बन्धु वह प्रभु ही है ॥ १० ॥

तस्मान्नापरमस्ति किंचिदिति यत्तन्निर्णयात्तं हरिं
श्रीकृष्णं कुसुमस्रगाञ्चिततनुं स्तोतुं शठारिमुनिः ।
दिव्यद्राविडवाङ्मयं सुरुचिरंसाहस्रमाहानघं
तत्रेदं दशकं पठन्ति भुवि ये तेषां हि दासा वयम् ॥ ११ ॥

जो शठकोपमुनि भले प्रकारसे शास्त्रीय वाक्योंका निर्णय करते हुए इस ध्रुव सत्य पर पहुँचे हैं कि उस हरि से श्रेष्ठ संसारमें कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। और जिन्होंने पुष्पमालाको धारण करने वाले श्रीकृष्णकी स्तुति करनेके लिए द्राविड़भाषामय अति मनोहर दोष रहित सहस्रगीतिको कहा है, उसमें इस दशकको जो भक्त जन भूमिमें पढ़ेंगे हम उन्हीं परम भागवतोंके दास हैं ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके प्रथमदशकं समाप्तम् ।



अथ श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके द्वितीयदशकारम्भः ।

इस दशकमें ताम्रपर्णी नदीके तट पर शीतल हरे खेतोंसे युक्त तिरुपुलिंगुडि नामके दिव्यदेशमें शेपशैया पर विराजमान परमात्मासे आल्वार प्रार्थना करते हैं, कि आप एक ही करवटसे यहाँ पर बहुत दिनोंसे सोये हुए हैं, अब उठकर दो चार पैर तक आप मेरे सामने विचरण करिये जिससे मैं आपकी सुन्दर चाल और मन्दमुसुकानको देखकर कृतार्थ हो जाऊँ।

क्षेत्रैः श्रीताम्रपर्णीतटसलिलयुतैर्भास्वरे श्रीपुलिङ्गु-
ड्यारव्ये श्रीदिव्यदेशे शयित ! तव कृपां प्राप्य लक्ष्म्याश्च देव्याः ।
देवागारे च सम्मार्जनमपि सुचिरात्किंकरत्वं च सर्वं
प्राप्तानां भक्तिभाजां वद किमपि वचोऽस्माकमाढ्यैः कटाक्षैः ॥१॥

ताम्रपर्णीके तट पर जल भरे हुए शीतल हरे खेतोंसे शोभायमान श्रीपुलिंगुड़ि नामके दिव्यदेशमें शयन करने वाले प्रभो ! आपकी और श्रीलक्ष्मीजीकी परमकृपाको प्राप्त होकर कुल परम्परासे मंदिरकी झाड़ू लगाकर शुद्ध करने आदि सर्वप्रकारके कैंकर्यको करने वाले आपके भक्त हम लोगोंसे सुन्दरतायुक्त नेत्र कटाक्षोंसे देखकर आप कुछ वाक्य तो कहो ॥ १ ॥

रम्ये सौवर्णसौधैश्शयित शुभपुलिंगुड्यभिख्ये पुरेऽत्र
क्षेत्रैश्चाप्यार्द्रसस्यैर्वय मखिलकुलैश्शेषवृत्तिं गतास्ते ।
कैंकर्यं चाप्यनन्यास्तवचरणयुगे संश्रिता एव दासाः
कारुण्यात्त्वं पदाब्जं कुरु शिरसि च मे भूमि मानायतं ते ॥२॥

हे प्रभो ! हम आपके दास सुवर्णके समान चमकती हुई छतोंसे और हरे हरे खेतोंसे अति रमणीय पुलिंगुडिनामके इस दिव्यदेशमें समस्त परिवारके साथ आपकी शेषवृत्ति (दासवृत्ति) में लग गये हैं। और सर्वप्रकारका अन्य आश्रय छोड़कर कैंकर्य करनेके लिए आपके चरणोंका ही आश्रय हमने लिया है। हे प्रभो ! समस्त भूमि को नापने वाले अपने चरणकमलको आप कृपा करके मेरे शिरके ऊपर स्थापन कर दीजिए ॥ २ ॥

शेषे त्वं दीर्घकालादिह शयनमिदं ते कियन्तं च कालं,
धत्से ! श्रीमन् ! पुलिङ्गुड्यभिधपुरशयानन्तरङ्गे तु शेषः !
नित्यं चामी वयं ते ! सरसिजनयन त्वत्कृपार्द्रैः कटाक्षै-
रुत्थाय श्रीसमेतस्सपदि च जगतां सेव्य एवास्व पीठे ॥३॥

पुलिंगुडि नाम के दिव्य देशमें शयन करने वाले प्रभो ! आपको यहाँ पर सोते हुए अनेक युग बीत गये । अब कब तक यहाँ सोते रहोगे । यह आपके अन्तरङ्ग सेवा करने वाले श्रीशेषजी और हम लोग यह चाहते हैं कि आप लक्ष्मी के सहित उठकर सिंहासन पर विराजमान हो जावें, और समस्त जगत फिर आपकी सेवाकरे । अतएव हे कमलदल लोचन कृपा भरे हुए नेत्र-कटाक्षोंको दासजनोंके ऊपर करके संसारकी सेवाको स्वीकार कीजिए ॥ ३ ॥

शैय्यां प्राप्तः पुलिङ्गुड्यभिहितनगरे भासि मच्चित्तवासिन्
नित्यं चासीन एव त्वमिह वरगुणश्रीपुरे श्रीसमेतः ।
तिष्ठन् वैकुंठपुर्यां मयिच करुणया विस्मिता वीक्ष्यशीलं
भावत्कं नृत्तसक्ता वयमिह जलदाभेहि विम्बाधर त्वम् ॥४॥

हे श्यामसुन्दर ! आप पुलिङ्गुड़ि नामके दिव्य देशमें तो शयन कर रहे हो। और वरगुणश्रीपुर नामके दिव्य देशमें लक्ष्मी सहित बैठे हुए विराजमान हो रहे हो । और वैकुंठ पुरीमें आप खड़े हुए हो । और मेरे ऊपर बड़ी भारी कृपा करके सदा ही मेरे चित्तमें वास करते हो । आपके इस दयालुता भरे स्वभावको देखकर आश्चर्य चकित होकर हम आपके गुणोंको गाकर नृत्यमें लगे हुए हैं । हे बिम्बाफलके समान लालहोठवाले आप जल्दीसे उठकर दासोंको दर्शन दीजिये॥४॥

रम्य श्रीताम्रपर्णीतटभुवि च पुलिङ्गुड्यभिख्ये शयान !
श्रीश ! त्वं तार्क्ष्यवाहस्सपदि करुणयाऽभूर्गजस्यार्तिहन्ता ।
ज्योत्स्नामुक्ताभमन्दस्मित ! शुचिरदन ! त्वं प्रवालाधरोऽसि
प्रेम्णा मामभ्युपेहि स्वनयनयुगलाम्भोज भास्वद्विकासैः॥५॥

हे लक्ष्मी पते ! आप अति रमणीय श्रीताम्रपर्णीकी तट भूमिमें पुलिंगुडि नामके दिव्य देशमें शयन कर रहे हो। आपने बड़ी कृपा करके गरुड़के ऊपर चढ़करके ग्राहसे पकड़े हुए गजके दुःखोंको नष्ट किया था। आपके मन्दमुसुकानको चन्द्रमाकी चाँदनीकी उपमा और शुद्धदन्तपंक्तिको मोतियोंकी उपमा और होठको मूंगाकी उपमा देना भी उनका अपमान करना है। सूर्यकी किरणोंसे विकाशको प्राप्त हुए कमलके समान सुन्दर नेत्रोंसे कृपा करके इस दासको भी आकर अवलोकन कीजिये ॥ ५ ॥

सौवर्णाद्रौ महाम्भोधरउदयमभूस्त्वं हि तार्क्ष्याधिरूढः
स्वामी श्रीशंखचक्राद्यसि सहित गदाशार्ङ्गधारी सुमौलिः ।
क्रूरं मालीसुमालीत्यभिहितमसुर द्वन्द्वमाजौ निहत्य,
ध्वंसी रोपाद्रिपूणां विपदुपशमनो नः पुलिंगुड्यधीशः ॥६॥

जो हमारा प्रभु गरुड़के ऊपर चढ़ा हुआ ऐसा शोभित होता है, मानो सुमेरु पर्वतके ऊपर बड़े भारी मेघका उदय हुआ हो। जो हमारा स्वामी शंख चक्र गदा शार्ङ्ग धनुषको धारण करता है। जिसका मस्तक मणि जटित मुकुटसे प्रकाशमान हो रहा है। जिस प्रभुने अत्यन्त क्रूर मालीसुमाली आदि दैत्यों को संग्राममें मार कर समस्त देव शत्रुओंका ध्वंस किया था। वही प्रभु हमारी सर्व प्रकार की विपत्तियोंको शान्त करनेके लिए पुलिंगुडि नामके दिव्य देशका स्वामी होकर विराजमान हुआ है ॥ ६ ॥

अस्माकं दुःखहन्ता त्वमिह ! दिविपदां तत्र संरक्षकोऽसि,
श्रीमन् ! मन्नाथशेषे सरसिजरुचिरे श्रीपुलिंगुड्यभिख्ये ।
क्षेत्रे भक्तोत्तमानामिह भुवि महितानन्दकोलाहलैर्नः
संसेव्यो लोकदृश्यो भव नयनपथे जातु चास्माकमीश ॥७॥

हे प्रभो ! आप इस संसारमें हमारे सर्वप्रकारके दुःखोंको नाश करने वाले हो। और हे श्रीमन् स्वर्गमें भी आप देवताओंकी रक्षा किया करते हो। हे मेरे स्वामी इस भूमिमें जहाँ पर भक्तोत्तमोंके

..ति मनोहर कीर्तनकी आनन्द ध्वनि निरन्तर ही होती रहती है। जहाँ पर अति रमणीय कमलोंसे युक्त सरोवर शोभा दे रहे हैं। ..सी श्रीपुलिंलगुडि नामके दिव्य क्षेत्रमें समस्त लोकोंकी सेवा स्वीकार करनेके लिए प्रत्यक्ष हुए हो। हे मेरे नाथ आप उस अपनी मधुर मूर्तिके थोड़ेसे दर्शन देनेकी कृपा इस दासके ऊपर भी करें ॥ ७॥

चन्द्रावासैश्च सौधैर्विलसति महिते श्रीपुलिंगुड्यभिख्ये,
क्षेत्रे वैकुण्ठपुर्यामपि कृतवसते ! देव ! लोका यथा त्वाम् ।
पादाम्भोजप्रणामैरसकृदुपरि चोत्थानसम्प्रार्थनार्चा-
स्तोत्राद्यैस्संश्रितास्युस्त्वहमहमिकया त्वं तथास्याश्च दृश्यः ॥८॥

हे प्रभो ! जिस प्रकार आप चन्द्रमंडल को स्पर्श करने वाले ऊँचे प्रासादों (देव मंदिरों) से शोभायमान अति रमणीय श्रीपुलिंलगुडि नामके दिव्य क्षेत्रमें वास करते हो। और मुक्त लोग जिस प्रकार चरण कमलोंमें प्रणाम और अभ्युत्थान (देखकर खड़े हो जाना) प्रार्थना तथा अर्चन और स्तोत्र आदि सामग्रीसे-मैं पहले पूजन करूं, मैं पहले पूजन करूं ! कहकर पूजनमें आसक्त हो जाते हैं उसी प्रकार श्रीपुलिंलगुडि दिव्य नगरमें वास करते हो। मेरी भी यही एक प्रार्थना है कि उसी प्रकारसे आकर आप इस दासको भी दर्शन देकर कृतार्थ करें ॥ ८॥

मीनावल्युत्प्लुताढ्ये सुरुचिरमहितव्रीहिसस्यावृते च
क्षेत्रे श्रीमत्पुलिङ्गुड्यभिहित नगरे राक्षसध्वंसिशस्त्रः ।
भास्वानस्माकमत्र प्रियतमसुतनो मङ्गलाशासनार्थं
दृश्योऽस्मल्लोचनानां कृतवसतिरहो त्वं भवात्रैव भूम्याम् ॥६॥

हे प्रभो ! राक्षसोंका विध्वंस करने वाले सर्वप्रकारके आयुधोंको धारण करने वाले आप उछलती हुई मछलियोंसे युक्त अति मनोहर सर्वश्रेष्ठ धानोंके खेतोंसे घिरे हुए श्रीमत्पुलिंगुडिनामके दिव्य देशमें प्रकाशमान हो रहे हो। अत्यन्त प्रेमास्पद दिव्यमंगल विग्रहको धारण करने वाले, आपका हम लोग जिसप्रकार मंगलाशासन कर सकें

उसी प्रकार हमारे नेत्रोंके सामने प्रगट होकर आप इस भूमिमें विराजमान रहें यही इस दासकी प्रार्थना है ॥ ६ ॥

तीव्राघातायुधानां प्रभुरमरगणान् वीतदुःखान् करोपि
प्रध्वंस्यैवासुराणां गणमखिलमपि त्वं खलानां विषात्मा ।
त्वद्भक्तस्यामृतात्मा मम शयित पुलिङ्ग्व्यभिख्येऽत्रपद्मा
पृथ्वीदेवीकरस्थं पदयुगमपि मे जातु कुर्याः करस्थम् ॥१०॥

हे प्रभो ! आप अत्यन्त तीव्र आघात पहुँचाने वाले आयुधोंको धारण करके सम्पूर्ण असुरगणोंका विध्वंस करके देवगणोंके समस्त दुःखोंको नाश करते हो । और दुष्टोंके प्राण हरण करनेके लिए सदा ही विषरूप हो, तथा अपने भक्तोंको जीवन प्रदान करनेके लिए अमृत स्वरूप हो । आप पुलिङ्गुडिनामके दिव्यदेशमें शेषशैय्या पर शयन कर रहे हो, वहाँ पर आपके जिन चरणकमलोंकी सेवा अपने अतिकोमल कर पल्लवोंसे श्रीदेवी और भूदेवी प्रेमके साथ करती हैं । कृपा करके उन्हीं चरणकमलोंका स्पर्श इसदासके हाथोंसे भी होजाय ऐसी कृपा करिये ॥ १० ॥

उद्घोषाम्भोधिमंथं हरिमपि किल मामाह्वयायाहि वेति
प्रार्थ्य प्राप्ताभिलापश्शठरिपुरननोत्ताम्रपर्णीतटेशः ।
वाचा साहस्रमालां कृतिमिह दशकं चा द्वितीयं पठन्त-
श्चित्ते नित्यं वहन्ति स्वयमखिलजगन्मानपादाब्जयुग्मम् ॥११

अति घोर शब्द करते हुए समुद्रका मन्थन करने वाले हरिको यह कह कर कि, आप मुझे अपने चरणोंमें बुला लीजिए अथवा आपही मेरे पास आ जाइये, प्रार्थना करके अपनी अभिलाषा जिन्होंने पूरी की है । ताम्रपर्णीके तटपर बसी हुई कुरुकापुरीके स्वामी उन्हीं शठ-कोपमुनिने अपनी वाणीसे सहस्रपद्यों वाली सहस्रगीतिकी रचना की । उसमें इस अद्वितीय दशकको जो भक्तजन पढ़ेंगे, वे समस्त संसार नापने वाले प्रभुके चरणकमलको अपने चित्तमें स्वयं धारण अवश्य करेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके द्वितीयदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके तृतीयदशकारम्भः।

इस दशकमें आचार्यकी परमभक्तिको देखकर अति प्रसन्न होकर परमात्मा उनसे कहनेलगे कि तुम्हारे उद्धारके लिये मैं नारायण सब प्रकार तैयार तो हूं ही फिर तुमको किसी प्रकार अपने उद्धारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। प्रभुके इस उपकारके वशीभूत होकरही अपने स्वाभाविक स्वामिगुणोंका आचार्य स्वयं अनुभव करते हैं।

एकैकनामबहुधा जगतां च रक्षां
कर्तुं क्षमं भवति नाम सहस्रवाच्यः।
नीलाम्बुदाभ सुतनुश्शुभदिव्यरूपो
नारायणोऽप्रतिम एव किल प्रभुर्नः ॥ १ ॥

जिस श्रीमन्नारायणका एक एक नाम ही संसारकी अनेक प्रकार से रक्षा करनेके लिए समर्थ होता है, इसी प्रकार अनेक प्रभाव वाले जिसके सहस्र (असंख्य) नाम हैं और उन नामों द्वारा जिस एकही नारायणका महत्त्व प्रतिपादन होता है, जिसका दिव्यमंगल विग्रह नीलघटाके समान श्यामसुन्दर है। जिसका कल्याणकारक दिव्यरूप सर्वश्रेष्ठ है, जिसके समान या जिससे अधिक ऐश्वर्य वाला दूसरा कोई नहीं है। वही श्रीमन्नारायण हमारा स्वाभाविक स्वामी है ॥ १ ॥

पृथ्वीमिमां च विततामयमेव सृष्ट्वा
चोद्धृत्य भक्षणकरोऽपि पुनश्च सृष्ट्वा।
माता च पादतलतस्स्वयमेव सृष्टि-
स्थित्यन्तकृच्च सकलं च तमेव विद्मः ॥ २ ॥

जो प्रभु अति विस्तार वाली इस पृथ्वीकी स्वयं रचना करता है, और डूबने पर उसका उद्धार करता है, तथा प्रलय आने पर जो सबको खा जाता है, और फिर प्रलय बीतने पर सब सृष्टिको रच देता है और फिर स्वयं अपने पादतलसे इसको नापता है और जो सृष्टि रक्षा प्रलयको यथा समय अनेक रूपोंसे किया करता है, उस नारायणको ही हम सब कुछ समझते हैं ॥ २ ॥

वेदान्तगुप्तपरमार्थ परैश्च शास्त्रै-
रेपोऽप्रमेय इति निश्चितमेव तत्वम् ।
प्राज्ञाश्च वैदिकवरा हरिमेव नत्वा
व्याधिच्छिदं किल विदुः परमौषधं तम् ॥ ३ ॥

जो प्रभु वेदान्तोंमें भले प्रकारसे गुप्त हैं (सुरक्षित हैं) तथा परमार्थको ही बताने वाले अन्यशास्त्रों (श्रीविष्णुपुराण आदिक) से भी जो सर्वाधिक और अद्वितीय तत्व निश्चितरूपसे सिद्ध किया गया है । उसी श्रीहरिको वेदार्थके यथार्थ ज्ञाता विद्वान् लोग प्रणाम करके यह कहते हैं, कि हम सर्वप्रकारके दुःखोंको काटनेकी परमौषधी उस विष्णु भगवान्को ही समझते हैं ॥ ३ ॥

दिव्यौषधं परममेव किलास्मदीयं,
भोगावलेरित च सूरिवरैः प्रतुष्टैः ।
सङ्कीर्तितः प्रभुरसौ मम नीलवर्णः
कृष्णो मुकुन्द इति मानस ! मा त्यजैनम् ॥४॥

हे मेरे मन ! जिस प्रभुको नित्यमुक्तगण प्रसन्नतापूर्वक यह कह कर कि हम लोगोंको नित्य अखण्डानन्द-भोगनेके लिए श्रीहरि ही हमारे लिए सर्वश्रेष्ठ दिव्यौषधि है,निरन्तर कीर्तन करते हैं । नीलघन-श्याम श्रीकृष्ण मुकुन्दही हमारा सच्चा स्वामी है, उस प्रभुको तुम कभी भी मत विसारो ॥ ४ ॥

हे चित्त पापविवशोऽहमिहार्थ ये त्वा,
मेतत्परं सुदृढमेव पुनः पुनश्च ।
दिव्यातिरम्य तुलसीस्रजमप्रमेयं,
नित्यं भजत्वमसमं ! न हि जातु मुञ्चेः ॥५॥

हे मेरे मन ! अनादिकालसे पाप पंकमें डूबा हुआ मैं तुमसे यही बारम्बार आग्रह पूर्वक प्रार्थना करता हूँ, कि अति मनोहर दिव्य-तुलसीकी मालाको धारण करने वाले सर्वश्रेष्ठ समानता रहित उस प्रभुका निरन्तर भजनकर एक क्षणभी उसके भजनको मत छोड़ो ॥५॥

बाहुद्वयेच सकला भरणाञ्चिते श्री,
देव्याश्चसङ्गम इहास्य निशाटनाशः ॥
क्षीराम्बुधेश्च मथनं त्वमृतार्थ मित्ये,
वैतद्विचिन्त्य निरतं मम चित्तमस्मिन् ॥६॥

जो प्रभु समस्त आभरणों से शोभायमान दोनों भुजाओं से श्रीदेवीका आलिंगन सुख अनुभव करते हैं। जो प्रभु इस संसारमें निशाचरगणों का नाश किया करते हैं। और जिसने स्वाश्रित देवगणों को अमृत पिलाने के लिए समुद्र का मंथन किया था। प्रभु के इस प्रकार स्वाश्रित रक्षण रूप अद्भुत चरित्रों का विचार करके मेरा मन उसी में लग गया है ॥ ६ ॥

एकांतनु च नरता मपि सिहतां यो
धृत्वाऽसुरस्य नखतोऽपि विभेद वक्षः ।
वैकुण्ठवर्तितममु हिदि दृक्षु चित्तं
नक्तं दिवं च कुतुकाकुलितं मदीयम् ॥ ७ ॥

जिस प्रभुने एक ही शरीरमें सिंह के आकार और मनुष्य के आकारको धारण करके अति प्रबल हिरण्याकशिपु असुरके वक्षःस्थल को विदारण किया था। और जो प्रभु वैकुंठमें ही नित्य वास करता है। उस प्रभु के दर्शनोंकी चिन्ता में ही मेरा चित्त दिनरात व्याकुल रहता है ॥ ७ ॥

प्रध्वंस्य च द्विविधकर्मफलं प्रवेशं
देहेषु चापि विविधेषु निवार्य चास्मान् ।
उज्जीवयन् जगति भाति च वेंकटाद्रौ
तं प्राप्य सांजलि पुटाः किल सन्ति देवाः ॥ ८ ॥

जो प्रभु हम दास वर्गोंके दोनों प्रकारके (संचित और क्रियमाण) कर्मों की फांसी को काट कर उद्धार करता है। वही प्रभु इस संसार में वैकटाचल पर विराजमान हो रहा है उसके पास जाकर जो मनुष्य

हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं वे अवश्यही स्वर्गमें जाकर देवता बनजातेहैं

पुष्पं च तीर्थमपिदीप सुधूपयुक्तं,
स्वीकृत्य चार्चयितु मुत्सुकताऽपि माभूत्।
एवं सुशीलमनघं तव शेषशायिन्!
पादाम्बुजं तवकथंनु भजे? न वेद्मि ॥९॥

हे प्रभो! सुन्दर पुष्प और शुद्ध जल दीप और धूप लेकर आपकी सेवा करने की इच्छा मेरे चित्तमें होते ही उससे पहले ही आप निर्हेतुक कृपा करके दासको दर्शन देने के लिये आये हो। हे शेषके ऊपर शयन करने वाले अब मैं यह नहीं जानता कि निरन्तर आपके चरणोंकी सेवा किस प्रकार करनी चाहिये ॥ ९ ॥

पद्मोद्भवोऽपि तव नाभि समुद्भवोऽसौ!
रुद्र स्त्रिशूलभृदयं तव पार्श्वभूतः।
शेषाश्च देवनिवहास्तव सन्ति भक्ताः
शीलं तवानिशमहं तु कथं स्तवीमि ॥१०॥

हे प्रभो! कमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माभी आपकी नाभिकमलसे ही उत्पन्नहुए हैं। और त्रिशूलधारी श्रीरुद्रदेव भी आपकीही बगलसे पैदा हुएहैं। अन्य बचे हुए समस्त देवभी आपके चरणोंकी भक्तिमें लगे हुए हैं। इस प्रकार सर्वाधिक आपके महत्वको मैं किस प्रकार वर्णन करूं॥

निस्सीमशीलहरिपादसरोज युग्मं,
स्तोतुं शठारिरतनोत्कुरुकापुरीशः
साहस्रसूक्तिसरणिं! दशकं तदेत,
द्वैकुंठ संगमकरं पठतां जनानाम् ॥११॥

कुरुकापुरीके स्वामीशठकोपमुनिने सीमारहितशीलके भंडार श्रीहरिके चरणकमलयुगलकी स्तुति करनेके लिए सहस्र गीतिकी रचना की है। उसमें इस दशकको जो सज्जन पढ़ेंगे वे अवश्य ही वैकुंठ दिव्य धामको प्राप्त हो जायेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके तृतीयदशकं समाप्तम्।

श्रीमते शठकोपायनमः।

अथ श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके चतुर्थदशकारम्भः।

इस दशकमें आल्वार उस प्रभुकी भक्तवत्सलताको जो कि लक्ष्मीजीको सदा वक्षस्थलमें ही धारण करते हैं देखकर प्रसन्न हुए परन्तु वे अभी तक हमारा मनोरथ सफल नहीं करते; यह कह कर वे दुःखित हो गये। फिर प्रभुने कृपाकर उनको अपनी माधुरी मूर्ति दिखाई, उस मूर्तिको देखकर आल्वार बड़े प्रसन्न हुए अतः उसी मूर्तिके निरन्तर दर्शन करने की अभिलाषा प्रकट करते हैं।

नीलाञ्जनाक्तनयनां कमलोद्भवां तां
लक्ष्मीं स्ववक्षसि बिभर्षि हि पद्मवर्णाम्।
श्रीमन्! सुदर्शन सुशंखवरं कराभ्यां,
त्वां द्रष्टु मिच्छति सदा मम नेत्रयुग्मम् ॥१॥

हे शोभाधाम प्रभो! कमलसे उत्पन्न हुई अञ्जन(सुरमा)लगानेसे शोभापूर्ण हैं नेत्र जिसके कमलके समान वर्ण वाली लक्ष्मीको आप अपने वक्षस्थलमें धारण करते हो। और अपने दोनों हाथोंमें सुदर्शन चक्र और शंखको धारण करते हो। आपके इसीप्रकारके रूपको देखनेकी अभिलाषा मेरेदोनों नेत्रोंमें बहुतदिनोंसे लगी हुई है ॥१॥

मन्नेत्ररूप! तव दर्शन कांक्षयेदं,
चित्तं मनोरथशतैर्मम सानुलापम्।
देवादिभिश्च मुनिभिश्च न शक्यते यो,
द्रष्टुं तमीप्सुरहमद्य किलाह्वयामि ॥२॥

हे प्रभो! मेरे नेत्र आपके दर्शनोंको तरस रहे हैं। और मेरा मन अनेक प्रकार के सैकड़ों मनोरथोंको करता हुआ आपके मिलनेकी लालसामें अनेक प्रकारके प्रलाप कर रहा है। जो ईश्वर ब्रह्मादि देवोंसे और सनकादि मुनियोंसे भी यथार्थ रूपसे नहीं देखा जा सकता। उसी प्रभुको दर्शनोंकी इच्छासे मैं बुला रहा हूँ ॥ २ ॥

दासायितस्य मम मानसमस्ति खिन्नं
भावं व्यनक्ति च यथा शुनकस्स्वपुच्छात्।
गोवर्द्धनोधरणतः पशुपालकस्त्वं!
किं ते दया तु न भवेन्मयिचेति दूये ॥३॥

आपकी दासताको स्वीकार करने वाला मेरा मन आपके दर्शनों की इच्छासे अपने भीतरके अभिप्रायको अनेक चेष्टाओं द्वारा बतलाना चाहता है। जैसे कुत्ता अपने स्वामीके सामने अपने भीतर के भावोंको पूँछहिलाकरके बतलाया करता है। प्रभो! गोवर्द्धन पर्वतका उद्धार करके व्रजके गौओंकी रक्षा करने वाले तुम्हीं हो, क्या आपकी दया मेरे ऊपर न होगी? । इसी आशंकासे मैं घबड़ा रहा हूँ ॥३॥

देवादि दानवगणस्य च नारसिंह
त्वं दुर्गमोऽसि तव शेषतयैव धन्याः ।
तेऽमी च दास्यविभवात्तव किं लभेम
भ्रान्ता वयं त्विति मनो मम सीदतीदम् ॥ ४ ॥

हे नरसिंहदेव! दानवगणोंको तो आप अत्यन्त दुष्प्राप्य हो। आपके दासवृत्ति करने वाले ही प्राणी इस भूतलमें धन्य भाग्य वाले हैं। क्या हम लोग दास्यवृत्तिके बलसे ही आपको प्राप्त कर सकेंगे?। इस प्रकार भ्रमजालमें पड़ा हुआ मेरा मन बहुतही व्याकुल हो रहा है॥४

दुष्टात्मनाशममराधिपतिं प्रभुं नः
सृष्टेः पुरैव चतुराननसर्गहेतुम् ।
श्रीशेषशायिनमुदार सुनीलवर्णं
त्वां त्वत्पदाब्जमपि मेऽस्ति दिदृक्षु चित्तम् ॥ ५ ॥

जो हमारा प्रभु संसारके सृष्टिके होनेसे पहलेही सृष्टिके विधाता चतुरानन ब्रह्माजीकी रचना करता है। और जो प्रभु दुष्टोंका नाश करके देवताओंकी रक्षा करके उनका स्वामी होजाता है। जो स्वयं अति श्यामसुन्दर विग्रह धारण करके श्रीशेषजीके ऊपर शयन करता है, आपके ऐसे चरणकमलको देखनेके लिए मेरा मन अत्यन्त त्वरायुक्त हो रहा है ॥ ५ ॥

मत्प्राप्यभूत! तव दर्शनकांक्षया त्वां
चित्ते ममैव सुदृढं विनिवेश्य मोदे ।

देवाधिदेव महसा दिवि चाद्वितीय
त्वां मे मनोऽनुभवति प्रियमादितत्त्वम् ॥ ६ ॥

हे मेरे सर्वस्व ! मैं आपके दर्शनोंकी अभिलाषासे आपको अपने चित्तमें दृढ़तापूर्वक स्थापना करके प्रसन्न हुआ हूँ। आप देवोंके भी पूज्यदेव हो। आपके समान तेजस्वी स्वर्ग और परमपदमें भी कोई दूसरा नहीं है। समस्त वस्तुओंके आदिकारणभूत और भक्तोंके अति प्रिय तत्त्वस्वरूप आपकोही मेरा मन निरन्तर अनुभव करताहै॥६॥

मच्चित्तवास विमल प्रबलं च दैत्यं
वक्षोविदारण मुखान्नखतो विनाश्य ।
त्वं नारसिंहवपुषा किल लोकपाल-
स्त्वां मे न्तरंगमनुभूय चकास्ति हृष्टम् ॥ ७ ॥

निर्मलरूपसे सदाही मेरे चित्तमें वास करने वाले प्रभो ! आपने नरसिंहरूप धारण करके अपने नखोंसे प्रबल दैत्य हिरण्यकशिपुके वक्षस्थलको विदारण करके उसका विनाश किया था। सम्पूर्ण लोकोंकी सर्वप्रकारसे रक्षा करने वाले आपका दिव्यअनुभव करके मेरा मन बहुतही प्रसन्न होता हुआ प्रकाशमान हो रहा है ॥ ७ ॥

एकीभवत्प्रबल परमतभंजकं तं
सर्वान्तरात्मक मनादिमुदारशीलम्
देवादिकारणमहं पुरुषोत्तमं श्री-
कृष्णं मम प्रियमिहास्मि विलोक्य धन्यः ॥ ८ ॥

एक मत होकर वस्तु तत्त्वका प्रतिपादन करने वाले षड्दर्शनोंके (सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त) ज्ञानका विषय जो प्रभु यथार्थरूपसे कभी नहीं होता। जो समस्त वस्तुओंके भीतर अन्तर्यामीरूपसे विराजमान है, जो स्वयं आदि (जन्म) रहित है, और समस्त देवगणोंका भी जो आदिकारण है, जो पुरुष नामधारी समस्त जीववृन्दसे श्रेष्ठ होकर पुरुषोत्तमरूपसे स्थित है, जो श्रीकृष्ण

मुझे बहुतही प्यारा लगता है, उसी प्रियतम श्रीकृष्णके दर्शनोंसे मैं धन्यभाग्य वाला होगया हूँ ॥ ८ ॥

सांख्यशास्त्र—विस्तारपूर्वक प्रकृतिका वर्णन करता हुआ प्रकृति पुरुषसे भिन्न है, ऐसा ज्ञान होजाने ही से मोक्ष होना मानता है।

योगशास्त्र—अष्टांग योग द्वारा सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वरका ध्यानकर उसकी कृपासे प्रकृतिसे छूटकर कैवल्यपदमें जाकर केवल आत्मस्वरूपका अनुभव करनाही मोक्ष मानता है।

न्यायशास्त्र—प्रमाण प्रमेयादि षोडश पदार्थोंका निरूपण करते हुए अनुमान द्वारा ईश्वरका ज्ञान प्राप्तकर उसकी उपासनासे इक्कीसगुण 'देहेन्द्रियादि' से वियुक्त हो जानाही मोक्ष मानता है।

वैशेषिकशास्त्र—द्रव्यगुण कर्म सामान्य समवाय अभाव इन पदार्थोंके साधर्म्य वैधर्म्य ज्ञान द्वारा तत्त्वज्ञानके होनेहीसे मोक्ष मानताहै।

मीमांसाशास्त्र—अपने वर्ण और आश्रमके अधिकारके अनुसार वेदाध्ययन करके लौकिक वाणिज्यादि व्यवसायसे द्रव्योपार्जन करके अनेक प्रकारके दर्शपौर्णमास चातुर्मास्यादि यज्ञ करके शरीर छूटनेके अनन्तर स्वर्गनामके किसी लोकमें दिव्य अलौकिक सुख भोगनेकोही मोक्ष मानता है।

वेदान्तशास्त्र—बौद्धोंकी छायाके आधारसे कल्पना किया गया शांकर वेदान्त ईश्वरको सम्पूर्णगुण और शक्तियोंसे रहित बतलाकर ब्रह्महीजगतरूपमें मायाके सम्बन्धसे अज्ञहोकर अपनेरूपको भूलकर अनेक रूपों वाला होगया है। 'तत्त्वमसि' वाक्यका ज्ञान होनेसे ही उसकी माया नष्ट होकर अपने रूपको पहिचान लेनाही मुक्ति मानता है।

जब हम इन षड्दर्शनोंकी निष्पक्षरूपसे समालोचना करते हैं, तो इन दर्शनोंके मन्तव्यके अनुसार आत्माका सचा कल्याणकारक मार्ग कोई भी निश्चित नहीं होता, इसीलिए प्रभुकी भक्ति करनाही आत्मकल्याण कारक है। और इसी बातको परमयोगेश्वर श्रीकृष्णने भी स्वमुखसे कहाहै, कि—भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ गीता अ० ११

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ गीता अ० १५

माया चेष्टित वैभवस्स तु हरिर्नैवास्ति सत्यव्रतो,
गोविन्दस्तत एव हस्तकलितं तस्यास्ति मे जीवितम् ॥२॥

हे सुन्दर क्रौंचाङ्गनाओ ! तुम अपने प्राणपतियोंके साथ विश्लेष भरे हुए इन दुखदाई शब्दोंको बहुनदिनोंसे क्यों कर रही हो । तुम्हारा यह कार्य अच्छा नहीं है । अनेक मायाओंको रचने वाले सत्य संकल्प श्रीहरि गोविन्द यहाँ पर आकर मुझे दर्शन नहीं देते । इसी कारण मेरा जीवन उसीके हाथोंमें बँधा हुआ है ॥ २ ॥

भो ! भो ! स्त्रीशकुनाः प्रिया अपिमम प्राणाः प्रतिष्ठापिता
स्तस्यैवाद्यकरे हरे रिह रतो यूयं महासम्भ्रमैः ।
सश्लेषैकरसाः कथं वत सहे दुर्भाग्यतः पापिनी
नैवात्राद्य ममासवः किल कथं मे जीवितं धारये ? ॥ ३ ॥

हे क्रौंचाङ्गनाओ ! आज अपने प्राण मैंने उसी प्रियतमके हाथोंमें दे दिये हैं,अब तुम तो लोग यहाँ पर अपने प्राण पतियोंके साथ आलिंगन करती हुई परमादरसे रतिसुखको भोगकर नृत्य कर रही हो । असंख्य पाप करने वाली दुर्भाग्यपूर्ण मेरे प्राण आज इस शरीरमें रहना नहीं चाहते, फिर प्रेम-वर्द्धक तुम्हारी मधुरवाणी सुनकर मैं अपने प्राणोंको किस प्रकार धारण करूँगी ॥ ३ ॥

यूयं कुक्कुटनायिकाः प्रियतमैस्संश्लेषशब्दान्विताः
कृष्णो हन्त निशम्य चापि नहि मामायाति मायी हरिः ।
एवं माकुरुताद्य संगमरवान् वाक्चित्त कर्माणिनः
तस्यैवाद्य वशे ! शरीरमसवस्तेऽमीच रन्त्यन्तरे ॥ ४ ॥

हे मुर्गियो ! तुम तो अपने प्रियतमोंके साथ सम्भोग सुखको भोगती हुई विचित्र शब्द कर रही हो । जिस प्रकार तुम्हारे बुलानेसे तुम्हारा पति आकर तुम्हें हर्षित करता है, उसप्रकार मायाधारी मेरा पति कृष्ण तो मेरे बार बार बुलाने पर भी नहीं आता । अब मैं तुमसे यह प्रार्थना करती हूँ, कि तुम सम्भोग सूचक शब्दोंको मतकरो

मेरी वाणी, मन और कर्म ये सब तो उस कृष्णके पास जाकर उसके बसमें हो गये हैं । परन्त मेरा शरीर और मेरे प्राण तो अभी बीचमें ही इधर उधर घूम रहे हैं ॥ ४ ॥

यूयं पक्षिगणाः ! कथं मम पुरो हा हन्त ! नानारवै-
र्नृत्यन्तोऽद्य तुदेत मां ? सहि हरिर्मायेन्द्रजालाकुलः ।
जित्वा सप्त जगन्ति भाति च वहन् लक्ष्मीं च वक्षस्थले
भोक्तुं मे सकलानसून् कृतमतिर्हा ! हन्त सम्यक् स्वयम् ॥५॥

अरी मैनाकी बच्चियो ! तुम मेरे सामने अनेक प्रकारकी मधुर ध्वनि करके नाचती हुई मुझे क्यों पीड़ा पहुँचा रही हो । जो हरि मायाका इन्द्रजाल रचनेमें ही सदा लगा रहता है । जो अपने पैरोंके नापनेसे ही सातों लोकोंको जीतकर अपने बसमें कर लेता है । जो लक्ष्मीको निरन्तर ही अपने वक्षस्थलमें धारण करके विराजमान रहता है । उसी प्रभुने मेरे प्राणोंको खाने का स्वयं निश्चय कर लिया है ॥५॥

मत्प्राणयित एव तेऽस्ति सदृशो वक्त्रे च नेत्रे तथा
काकुत्स्थः करतोऽपि पादतलतःश्यामात्तनोर्वर्णतः ।
सोऽयं संगत एव मां त्यजतिहा ! त्वं मे सखेति भ्रमा
देवं हे शुकवर्धितोऽसि हि मया मुग्ध ! त्यजाद्यारवान् ॥६॥

हे बाल शुक ! मेरा प्राणाधारभी तेरेही मुखके समान लाल मुख वाला है । वह मेरा प्रियतम तेरे ही सरीखे सुन्दर नेत्र वाला है । जिसके करचरण रक्तवर्ण और शरीर श्याम वर्णका है । वही प्रभु मेरे लिए अपना संगम सुख दिखाकर अब छोड़के जाता है । मैंने तेरेको भ्रमसे अपना मित्र समझकर ही तुझे बढ़ाया है । परन्तु इस समय मुझे शत्रुसे भी अधिक पीड़ा पहुँचा रहा है । इसलिए मैं तेरे से प्रार्थना करती हूँ कि अब अपनी मधुर शब्द बोलना छोड़दे ॥६॥

संगत्यैव मया सहाद्य तु गतो दूरं सरोजाम्बकः
कृष्णो नीलमणिप्रभुः प्रियतमो मायी च बिम्बाधरः ।

विद्यु च्चापलसत्पयोदनिवहा यूयं समानाहि मे,
कान्तस्येति ममासुहारि तदिदं युष्मद्वपुर्गोप्यताम् ॥७॥

वह कमललोचन नील मणिके समान कान्तिवाला तथा लाल होठों वाला मेरा प्राण प्यारा श्रीकृष्ण, मेरे लिए अपना थोड़ासा संग सुख दिखा कर दूर चला गया है। इन्द्र धनुष और चमकती हुई बिजलीसे शोभायमान मेघ गणो! मैं जब तुमको देखती हूँ तो वन माला और किरीटधारी श्रीकृष्णका मुझे स्मरण हो आता है। और उस प्रभुको मधुर मूर्तिके मिलनको ही मेरे प्राण निकलने के लिए तड़फने लग जाते हैं। इसलिए मेरे प्राणोंके नाशक इस श्याम शरीरको कृपा कर! तुम छिपालो ॥ ७ ॥

यूयं कोकिलबालकाः किल हरेः कृष्णस्य नामानिता,
न्येवं हन्त विघोष्य जीवितहराः किं प्रार्थनं मे वृथा ।
युष्माकं दधिदुग्धमिश्रमहमेवान्नं समर्प्याखिलां,
सूक्तीनां सरणिं च शिक्षितवतीत्येवं किमेतत्फलम् ॥८॥

हे कोकिलाके बच्चियो! तुम श्रीहरि कृष्णके शुभ नामोंकी घोषणा करके ही क्या मेरे प्राणोंको हरण करोगी? और क्या मेरी सब प्रार्थना व्यर्थ ही हो जायेगी?। मैंने तुमको जो दही दूध मिला हुआ अन्न खिलाकर पुष्ट किया है, और जो मधुर भाषण करनेकी शिक्षा तुम्हें दी है, उसका फल क्या अब यही है कि तुम उस प्रियतम कृष्णका नाम ले ले कर मेरे प्राणोंको हरण करो? ॥८॥

गीतैरेव मनोरमै र्मधुकरा यूयं विहार प्रिया,
युष्माकं रुतमस्ति मेऽद्यमनसो हन्त! व्रणे शस्त्रवत् ।
गानं वस्त्यजताद्य हन्त मम हि प्राणान् हरन् दूरतः
कृष्णो हन्त! गतोऽम्बुजाक्षियुगलो! हा हन्त कुर्यां किमु॥९॥

अहह! हे भौंराओ तुम लोग तो मनोहर गान गाकर ही अनेक प्रकार के विहार करने में प्रेम रखते हो। किन्तु आज आप लोगोंकी

मधुर ध्वनि मेरे लिए घावमें लगते हुए शस्त्रकासा काम कर रही है। कृपा करके आप लोग अपना गाना बन्द कर दें। क्यों कि मेरा प्यारा कमललोचन कृष्ण मेरे प्राणोंको हरण करके दूर चला गया है। हाय अब प्राणधारण करनेका क्या उपाय किया जाय ? ॥ ९ ॥

वैकुण्ठाधिपतिं तमेव परमं प्राप्तुं हि सज्जाऽस्म्यहं
यूयं हन्त बका विहाररसिकाः क्षेत्रोदकेषु स्वयम् ।
किं स्यादद्य विचारतः फलमहो रम्यं वपुर्मेऽधुना
सीदत्येव समस्तलोकसरणिस्सौख्यं परं प्राप्नुताम् ॥१०॥

मैं तो आज उस वैकुण्ठनाथ परमप्रभुके चरणोंको प्राप्त करनेकी तैयारीमें (मरनेको) बैठी हूँ। खेतोंके जलमें विहार करने वाले हे बगुला पक्षियो ! तुम आकाश मण्डलमें इकट्ठे होकर उड़ते हुए अब क्या करोगे ? अब अधिक विचार करनेसे लाभही क्या है। क्योंकि मेरा अति रमणीय यह शरीर अब नष्ट होनेही वाला है। मैं चाहती हूँ, कि मैं भले ही अनन्तकालके लिए दुःखोंकी घटाओंमें विलीन हो जाऊं, परन्तु समस्त संसार उत्तमसुखोंको प्राप्त होजाय ॥१०

सर्वव्यापि मनोरम स्वसुगुणावल्या वशीकृत्य च
स्तोत्रेऽस्मिन् कृपया प्रवर्तयति यश्श्रीशस्तु मायी हरिः ।
तं संकीर्तयितुं शठारिरतनोत्साहस्रपद्यावलिं
तत्रेदं त्रिजगद्द्रवीकरणतो ह्यं नवैकात्मकम् ॥ ११ ॥

अनेक मायाधारी हरि लक्ष्मीपति जो सर्वव्यापक हैं, जो अपने उत्तम गुणगणोंसे भक्तके चित्तको अपने वशमें करके निर्हेतुक कृपासे उसको अपनी स्तुति करनेमें लगा देते हैं। उसी हरिको भले प्रकारसे कीर्त्तनकरनेके लिए शठकोपमुनिने सहस्रगीतिका निर्माण किया। उसमें त्रिलोकीको द्रवीभूत करने वाले मनोहर इस दशकको जो पढ़ेंगे वे अवश्यही लोकमान्य हो जायेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके पंचमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके षष्ठदशकारम्भः ।

इस दशकमें ईश्वर हम लोगोंको स्वीकार करनेके लिये स्वयं ही हमारे सर्वोत्तम कार्य करता हुआ अर्चामूर्तिका रूप धारण करके दिव्यदेशोंमें विराजमान है। इसीलिये कालकरै नामके नगरमें आकर बसने वाले प्रभुके दर्शनोंकी अभिलाषासे आल्वार प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करते हैं।

वीथीषु दिव्यकुसुमावलि सौरभ श्री
पूर्णं च कालकरै महापुरमाश्रितं तम् ।
स्मृत्वाऽस्ति मायिनमिदं मम चित्तमार्द्रं
संवर्द्धं तेऽभिलपितं मम किन्नु कुर्याम् ॥ १ ॥

जिसकी गलियोंमें दिव्य पुष्पमालाओंकी सुगन्धि सर्वदिशाओं को सुगन्धित कर रही हैं। उस श्रीकालकर नामके नगरमें विराजमान होने वाले प्रभुको स्मरण करके मेरा चित्त एकाएक प्रेमार्द्र हो जाता है। और उस प्रभुके दर्शन करनेकी तीव्रअभिलाषा मेरे चित्तमें बढ़ती ही जा रही है। अब क्या किया जाय ॥ १ ॥

उद्यानवर्ति सरसीयुतकालकरै श्री
स्वामिन् ! ममार्य ! तव वैभवमप्रमेयम् ।
स्मृत्वा मनो द्रवति मे ! वचसा ध्वनिः स्यात् !
गानेतु दग्ध हृदयोऽस्मि कथं भजे त्वाम् ? ॥२॥

खिले हुए कमलोंसे शोभायमान सरोवरों वाले बगीचे जहाँ पर लगे हुए हैं। ऐसे श्रीकालकर दिव्यदेशके स्वामी! आप मेरे सर्वदा मान्य और पूज्य हो। सर्वश्रेष्ठ आपके वैभवको स्मरण करके मेरा मन द्रवीभूत हो जाता है। और वाणीसे आपके गुणगानकी ध्वनिकी धाराका प्रवाह होने लगता है। अब वियोग सन्तापाग्निसे निरन्तर जलने वाले इस हृदयसे मैं आपकी सेवा किस प्रकारसे करूँ ॥ २ ॥

सौशील्यतो मम मनो वशयन् प्रविश्य
मां च द्विधा किल विभज्य च धारकस्सन् ।
भुक्त्वा च मां लसति कालकरै दिव्यदेशे
मेघायितस्वतनुरस्य न वेद्मि मायाम् ॥ ३ ॥

मेघके समान सुन्दर वर्णवाला मेरा स्वामी सरल स्वभावसे मेरे मनको अपने वशमें करनेके लिए, और मुझे द्विविधामें डालकर मेरे प्राणोंको जो धारण करवाता है। वह मेरी सर्वप्रकारकी शक्तियोंका भक्षण-करके कालकरै नामके दिव्यदेशमें विराजमान है। मैं इसकी कपट मायाओंका पार कैसे पा सकूँगी ॥ ३ ॥

स्वस्मिन्नशेषभुवनानि दधान एव
स्वैरं स्वयं च निवसन्नखिलेषु तेषु ।
स्वामी महासुरभि-कालकरैनायकोऽसौ
भुंक्ते च मामपि ! न वेद्मि कृपा प्रकारम् ॥ ४ ॥

जो प्रभु अपने शरीरमें अखिल ब्रह्माण्डोंको धारण करता है और जो स्वयं भी समस्त ब्रह्माण्डोंके भीतर निवास करता है। वही प्रभु अनेक प्रकारके खिले हुए कमलोंकी सुगन्धिसे भरे कालककरै नामके दिव्यदेशमें वास कर रहा है। और जो मेरे भी प्राणोंको विरहरूप धारण करके खा रहा है। उसकी पूर्ण कृपा कैसे हो इस उपायको मैं नहीं जानता ॥ ४ ॥

चित्तं प्रविश्य मम कारुणिकश्शरीरं
चात्मान मप्यहह मे स्वयमेव भुक्त्वा ।
रम्याब्ज कालकरै विभुर्जलदाभमूर्तिः
कृष्णस्य तस्य विविधाहि चकास्ति माया ॥ ५ ॥

जो प्रभु सर्व व्यापक होता हुआ भी स्वयं श्यामसुन्दर मूर्ति-धारी है। वह अति कृपालु होकरभी मेरे मन शरीर और आत्मामें घुसकर उनको स्वयं खा लेता है। वही प्रभु अति रमणीय कमलभरे सरोवरोंसे युक्त कालकरैनामके दिव्यदेशमें विराजमान है। उस कृष्णकी अनेकरूप धारण करने वाली माया प्रकाशमान हो रही है॥५॥

कृष्णस्य कृत्रिमगतिर्मम भाति भोग्या !
व्यामोहतस्स किल मां परिभुज्य दीनाम् ।

मां मोहयत्यहह कालकरैनायकं तं
कृष्णेति सन्ततमहं हरिमाह्वयामि ॥ ६ ॥

उस कृष्णकी अनेक प्रकारकी कपट मायाभी मुझे बड़ी ही अच्छी लगती है, अति दीन दशाको प्राप्त हुई मुझको वह बड़े स्नेह के साथ भोगकर छोड़के मोहमें डालता है। कालकरै दिव्यदेशमें स्वामीरूपसे विराजमान उस हरिको मैं निरन्तरही हे कृष्ण ! आवो कहकर बुलाती हूँ ॥ ६ ॥

मायाविना मम हृदब्जतले प्रविश्य
भुक्तोऽपि भोगमवशेषितमेव मत्वा ।
आत्मास्तवीति ममकालकरै नायकं तं
कृष्णं हि काम विवशश्शिथिलो द्रवेच ॥ ७ ॥

वह कृष्ण अपनी कुटिलताको छोड़कर मेरे हृदयमें घुसकर बैठ गया है। जो अनेक प्रकारसे अनुभव करने पर भी अनुभव नहीं किये सदृश ही प्रतीत होता है। उसी प्रभुकी प्राप्तिकी इच्छामें मेरा आत्मा शिथिल होकर प्रेम विह्वल होजाता है। और उस शिथिलताको दूर करनेके लिए ही मेरा आत्मा कालकरै दिव्यदेशवासी प्रभुकी स्तुति करता है ॥ ७ ॥

भुक्त्वा च देहमपि मे स्वयमागतोऽयं
चात्मान मप्यहह मेऽत्र दिने दिने च ।
निश्शेषमेवपरिभुज्य चकास्ति मेघ–
श्रीकालकरै प्रभुरहो मम दास्यमीक् ॥ ८ ॥

नीलमेघके समान शरीर शोभाधारी वह प्रभु स्वयं आकर नित्य प्रति मेरी देह और आत्माको भोगता हुआ निश्शेषरूपसे सबको भोगकर कालकरै नामके दिव्यदेशमें विराजमान हो रहा है। यह सब कुछ मेरे दासवृत्तिका ही फल है ॥ ८ ॥

बिम्बाधरश्च सरसीरुहलोचनोऽयं
नीलाम्बुदाभ इह कालकरै वासशीलः ।

श्रीमच्चतुर्भुजधरोऽस्ति हि देवोदेवो
भोग्योऽहमस्मि किल तस्य समोऽग्रको मे ?॥ ६ ॥

जो प्रभु बिम्बाफलके समान लालहोठों वाला है, जिसके कमलके समान अति सुन्दर नेत्र हैं। जो स्वयं नीलमेघके समान श्यामसुन्दर है। जिसकी सुन्दर चार भुजाएँ शोभायमान हैं। जो कालकरै दिव्य देशमें सदाही वास करता है, उस प्रभुने सर्वप्रकारसे मुझे अपना भोग्य (सेवामें आने योग्य) बना लिया है। इससे मेरे समान बड़भागी संसारमें दूसरा कौन होगा ॥ ६ ॥

पश्यामि चेदहमशेषमपि त्वदीयं
भुंजे किलेत्यभिलपन्तमतीत्य मां च।
मेघायितः किल चिरात्तु निपीय पूर्णां
श्रीकालकरै प्रभुरसौ त्वरयाऽनुभुङ्क्ते ॥ १० ॥

हे प्रभो ! मैं अपनी समस्त वस्तुओंको आपके ही भोगने योग्य समझती हूँ। और इस प्रकारकी इच्छा करने वाले मुझको आपभी सर्वप्रकारसे भोगते हो। आप मेघरूप होकर सर्वप्रकारसे मेरी सेवा रूप जलको पीकर कालकरै नामके दिव्यदेशमें विराजमान होते हुए मेरा भोग (स्वीकार) करते हो ॥ १० ॥

कंसं निहत्य च रुषा जगतां च बन्धु
र्यस्तन्तुवन् शठरिपुः कुरुकापुरीशः।
साहस्रमाह परमं दशकं किलेदं
संसारताप शमनं पठतां सुखाय ॥ ११ ॥

जिस प्रभुने क्रोधसे कंसको मारकर जगतमें बन्धुत्व स्नेह दिखाया था। उसी कृष्णकी स्तुति करने के लिए कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनिने उत्तम सहस्रगीतिको कहा। उसमे यह दशक पाठ करने वालोंके संसारके सर्वप्रकारके पापतापोंको शान्त करके सुख देगा ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके पञ्चदशक समाप्तम्।

श्रीमते शठकोपायनमः।

अथ श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके सप्तमदशकारम्भः।

इस दशकम वियोगी जनोंके प्राण हरण करने वाली अपनी सुन्दरताको भूलकर आश्रितजनोंके साथ वास करने वाले हरिके अर्चारूपके लिए अपनी प्रार्थना सुनानेके लिए पक्षियोंको (परम भागवतोंको) दूत बनाकर अपना सन्देश भेजकर आलवार नायिकाके वाक्यों द्वारा यह कहते हैं कि तुम हमारा सदेश उसप्रभु के पास जाकर सुनाओ। और वहाँ से आकर अपना चरण हमारे मस्तक पर धारण करके हमें कृतार्थ करो।

आहारं जलधेस्तुटेषु च वनेष्वन्विष्य संचारिणि!
त्वं मत्प्रीति युते! चशोणित पदे भव्ये बलाकाह्वये।
श्रीमूलिक्कलनायकं च तुलसीमालाढ्य मौलिं प्रति,
त्वं दूतीभव! संचरत्पदयुगंतेमेऽद्य शीर्षेकुरु॥१॥

हे बसकियो! तेरा श्वेतवर्ण और लाल रंगके पैर बड़े ही सुन्दर भव्य प्रतीत होते हैं। और तू हरे हरे खेतोंमें और समुद्रके तट पर भी आहार की खोजमें विचरण करती हो। अब मेरे ऊपर प्रसन्न होकर तुलसीकी मालाको मस्तक पर धारण करने वाले श्रीमूलीकलनायकके पास मेरी दूती बनकर जाओ। और निरन्तर संचार करने वाले अपने चरण युगलोंको मेरे सिर पर स्थापन करो।

यह दिव्य देश (तिरुमूलिक्कलम्) मालावार प्रदेशमें इसी नामसे प्रसिद्ध है। संस्कृतमें श्रीमूलधाम समृद्धस्थल कहते हैं यहाँ पर कुंभ नतंक भगवान् पूर्वमुख विराजमान हैं॥ १॥

यूयं बन्धुगणैश्च कान्तसहितास्संचारशीला द्विजाः
श्रीमूलिक्कलनायकं प्रति मम ब्रूतोक्ति मेतांपरम्।
त्यक्ता तेन च बन्धुभिश्च नितरां जीवामि किंगर्हिता,
किं नार्होऽस्म्यह मच्युतस्य परमां गोष्ठीं प्रवेष्टुंच ताम्॥२॥

हे सारस पक्षियो! तुम तो अपनी कान्ताओंके सहित संचार करते हुए अपने बन्धुगणोंमे आनन्द भोग रहे हो। अब आप मेरा सन्देश लेकर श्रीमूलिकल नायकके पास जाकर मेरे वाक्योंको क्याकहोगे? मेरा बन्धुगणोंने भी त्यागकर दिया और उस प्रभुने भी मुझे त्याग

दिया तो इस प्रकार संसारमें निन्दित जीवन व्यतीत करती हुई क्या मैं जीवित रह सकती हूँ । और क्या मैं उस अविनाशी प्रभुकी गोष्ठीमें घुसने के योग्य भी नहीं हूँ ॥ २ ॥

आहारानुगतास्तटाकसलिले हंसा ! वलाकागणाः
श्रीमूलीक्कलनायकस्य नयनश्रीपाणि पादाम्बुजं ।
अम्भोजात सुपत्र मूर्तिमपि तं बिम्बाधरं श्रीहरेः
किं नार्हाम्यवलोकितुं च रुचिरं ? यूयन्तु तं पृच्छत ॥३॥

सरोवरोंके जलमें आहारको ढूढ़ने वाले हंसगणो और बत्तक गणो ! आप लोग श्रीमूलीक्कलनायकके पास जाकर यह बात पूछो तो सही कि क्या मैं उसके नयन कमल और हस्तकमल, चरणकमल को तथा कमलपत्रके समान कोमल उसकी मूर्तिको बिम्बाफलके समान अति सुन्दर उस हरिके होठोंको देखनेके योग्य भी नहीं हूँ ? ॥ ३ ॥

अम्भोदा रुचिरास्तु यूयमधुना दौत्यं वहन्तो मम,
श्रीमूलिक्कल नायकं प्रति गतास्तस्मै तनुर्दीयताम् ।
भो ! भो ! नाथ ! दया परेति वचनं ब्रूथैवचेत्किं तनो-
स्सादृश्यं भवतां हरेच्च गमनं विष्णोः पदे वारयेत् ? ॥४॥

अति शोभा वाले मेघगणो ! आप लोग आज मेरे दूतका काम करनेके लिए श्रीमूलीक्कलनायकके पास जाकर उसके लिए अपना शरीर दान करके कहो कि हे परमदयालु स्वामिन् क्या आप उस वेचारीके ऊपर कृपा करोगे ? यदि इस प्रकार कहने से अपने शरीरके समान तुम्हारी श्यामसुन्दरताको वह प्रभु क्या नष्ट कर देंगे । और क्या गगन मंडलमें आप लोगोंका घूमना बंद कर देंगे ॥ ४ ॥

आकाशे त्वरया च धावनपरा अम्भोधरा वैद्युत-
ज्वालाभिस्सहितास्तु यूयमधुना मूलिक्कलेशं प्रति ।
दौत्यं मे वहतोक्तिमेव नयत ! क्लेशापहः केशवः
किं मे नैव ददाति दर्शनमयं चित्ते निवासी मम ॥५॥

हे मेघगणो! तुम तो चमकती हुई बिजलीकी ज्वालाओंके साथ आकाश मंडलमें बड़ेजोरसे इधर उधर दौड़ ही लगाया करते हो। तो क्या अब मेरा संदेश सुनानेको दूत बनकर श्रीमूलीकलनायकके पास मेरे इस वाक्यको लेजाकर कहोगे, कि हे केशव प्रभो! आपतो शरणगतोंके क्लेशोंको नाश करने के लिए सदा तैयार रहते हो। और मेरे चित्तमें तो सदा आपके दर्शनोंकी अभिलाषा ही वास करती है। तो कृपा करके इस दासीको अपनी मधुर मूर्तिके दर्शन दिखाकर दुःखोंसे मुक्त क्यों नहीं करते ॥ ५ ॥

यूयं भो मधुरोक्तयो मधुकराः! पुष्पावली शोभिते,
श्रीमूलिकलनाम्नि तत्र तु पुरे लक्ष्मीं वहन्वक्षसि।
आस्ते यस्तु विलोक्य तं वदत मे दौत्यं वहन्तःस्वयं,
शैथिल्यं मम भूषणाङ्गद-दुकूलादीनि यान्तीत्यहो! ॥६॥

निरन्तर मधुर ध्वनिको करने वाले मधुकरगणो! आप लोग पुष्पवाटिकाओंसे शोभायमान श्रीमूलीकलनामके नगरमें अपने वक्षस्थलमें लक्ष्मीको धारण करके विराजने वाले उस प्रभुके दर्शन करके मेरे दूतके कहने योग्य संदेशोंको स्वयं जाकर कहो तो सही कि हे प्रभो अब आपके विरह दुखसे उसका शरीर बहुत ही कृश हो गया है। उसके भूषण-बाजू आदि वस्त्र-दुशाला आदि ये नित्य प्रति ही शिथिल होते जा रहे हैं ॥ ६ ॥

उद्यानेषु विहारिणो द्विजगणा यूयं विलोक्याच्युतं
तं ब्रूताद्य गिरं मदर्थमनघामेकां प्रवालाधरम्।
श्रीमूलिकलशासिनं सुरुचिराम्भोजाक्षकं श्रीधरं,
किं कीर्तिस्तव मेऽङ्गदं च वसनं हृत्वाभुजौ मुंचतः ॥७॥

वाटिकाओंमें विहार करने वाले कोकिल पक्षिगणो! आप लोग रमणीय कमललोचनवाले मूंगाके समान लालहोठों वाले श्रीमूलीकलनायकशोभाधामके दर्शन करके आज मेरे हितके लिए दोषरहित कुछ वाक्योंको कह देना कि प्रभो आप मेरे बाजू

और दुशालाको हरण करके अर्थात् अति कृशशरीरसे वस्त्र, भूषण को शिथिल करने से ही क्या आपकी कमनीयकीर्ति उज्वलतासे संसारमें प्रकाश करेगी ? ॥ ७ ॥

भृंगीभृंगगणाश्च यूयमधुनोद्यानेषु संश्लेषिणः
प्रीत्या हन्त ! मिथः पुरे दृढतमप्रकारमालावृते ।
श्रीमूलिकलनाम्नि वासिनममुं मूर्त्याऽतसीश्यामलं,
दृष्ट्वा श्रीतुलसीलसन्मुकुटमप्येकां गिरं ब्रूत मे ॥८॥

पुष्पवाटिकाओंमें आपसमें संयोग सुखको भोगने वाले भौंरी भौंराओं ! आप लोग अत्यन्त दृढ़ परकोटासे घिरे हुए श्रीमूलीकल नामके दिव्यदेशमें अलसीके फूलसीश्यामसुन्दर मूर्तिसे वास करने वाले प्रभुके प्रसन्नता पूर्वक दर्शन करके और तुलसी मालासे शं मुकुटवाले उस प्रभुसे मेरीएक बात तो कह देना ॥ ८ ॥

यूयं पक्षिगणा जलोपरिचरा दृष्ट्वा हरिं श्रीधरं,
श्रीमूलिकलवासिनं वदत मे श्रीचक्रपाणिं प्रियम् ।
वैवर्ण्यं वहतीह मे स्तनयुगं पूर्वन्तुभूषाधरं,
नेत्राब्जद्वयमश्रुपूरितं महो ! त्यागोऽद्य मे नोचितः ॥९॥

जलके ऊपर क्रीड़ा करने वाले सारसपक्षियो ! तुम श्रीमूलीकल दिव्य देशमें वास करने वाले चक्रधारी मेरे प्यारे शोभाधाम श्रीहरिके दर्शन करके कहना तो सही कि पहले वस्त्र और भूषणोंको धारण करने वाले मेरे दोनों स्तन सूख कर विरूप हो गये हैं। और मेरे नेत्र कमलोंसे निरन्तर आँसुओंकी वर्षाकी झड़ी लगी रहती है। ऐसी दयनीय दशामें मेरा त्याग करना आपको उचित नहीं है ॥ ९ ॥

यूयं हंस गणाश्च मन्दगमना आहारमन्विष्य सं
श्लेषानन्दयुतानदीपरिसरे तं मे विलोक्य प्रियम् ।
श्रीमूलिकलनायकं वदत ते युक्तं नहीदं त्विति
क्षिप्रं जीवितकाल एव मम यत्कांचीभवेत्प्रच्युता ॥१०॥

नदीके तटोंमें मन्दगतिसे चुगेको ढूँढकर प्रियतमाओंके संगम सुखोंको भोगने वाले हंसगणो ! तुम लोग मेरे प्रियतम श्रीमूलिकल नायकके दर्शन करके कहना कि आपको ऐसा करना उचित नहीं है, कि जीवित अवस्थामें ही मेरी कौंधनी आपके विरह दुःखसे दुर्बलताके कारण ढीली होकर गिर जाय ॥ १० ॥

श्रीमूलिकलवासिनं प्रति हरिं तेजः परं श्रीधरं
मुग्धोक्त्या शुकभाषिता तु रमणीकान्ता यथा भाषयेत् ।
प्रीत्या श्रीकुरुकापुरप्रभुरसौ श्रीसूक्तिसाहस्रके
पद्यानां दशकं तथेदमवदत् संसाररोगापहम् ॥ ११ ॥

जिस प्रकार प्रियतमके प्रेमानन्दमें मुग्ध हुई रमणी प्रियतमको प्रसन्न करनेके लिए तोताके समान गद्गद्भाषण करती है। उसी प्रकार अत्यन्त तेजस्वी सर्व शोभाधाम श्रीमूलिकल दिव्यदेशवासी श्रीहरिको प्रसन्न करनेके लिए कुरुकापुरीके स्वामी शठकोप मुनिकी बनाई हुई श्रीसहस्रगीतिमें ये दश श्लोक हैं, इनको जो पढ़ेंगे उनके संसारके समस्त रोग नष्ट हो जायेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके सप्तमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके अष्टमदशकारम्भः ।

इस दशकमें आल्वार यह मनोरथ करते हैं, कि मैं किसीप्रकार तिरुनावाय् (नवपुर) में जाकर अपने नेत्रोंसे शिखासे लेकर पैर तक परमप्रभुके दर्शन करके सर्वप्रकारकी दास्यवृत्ति करूँ।

चित्तं निवेशयितुमच्युतमुत्सुकानां
सर्वाघहारि च सुगन्धि वनाभिरामम् ।
श्रीशस्य भोग्यमुचितं कथ मस्तिसेव्यं
नावायपुरं शुभतमं मम पापभाजः ॥ १ ॥

जिसको मुनिजन सदाही चित्तमें ध्यान करनेकी इच्छा करते हैं, जो प्रभु अपने आश्रितोंके सर्वप्रकारके पापोंका नाश करते हैं, और

जो अति सुगन्धवाली पुष्पवाटिकाओंसे अति रमणीयतिरुनावायपुरमें वास करते हैं । जो दिव्यदेश उस लक्ष्मीपतिका सर्वप्रकारसे स्वरूपानुरूप, भोग्य है, उसके सर्व कल्याणकारक तिरुनावायुदिव्यदेशकी सेवा मुझ सदृश पापीके लिए किस प्रकार मिल सकेगी ?॥ १ ॥

यस्य प्रियातनुकटिः कमलोद्भवा श्री-
र्यस्य प्रियाऽञ्जनयना तरुणी च नीला ।
सर्वेश्वरस्य सततं किल तस्य भोग्यं
नावायुपुरं ममकदा भवतीह सेव्यम् ॥ २ ॥

जिस प्रभुकी प्रिय पत्नी पतली कमरवाली कमलसे उत्पन्न हुई लक्ष्मीजी, और कमलके समान सुन्दर नेत्रवाली तरुणियोंमें श्रेष्ठ नीलादेवी है । जो प्रभु चराचर सम्पूर्ण संसारका स्वामी है, जिसके लिए नावायपुर निरन्तर बड़ाही प्रिय लगता है, उस प्रभुके नावायपुर दिव्यदेशमें जाकर उनकी सेवा मुझे कब प्राप्त होगी, मेरे चित्तमें यह बड़ी अभिलाषा है ॥ २ ॥

संश्लेषकालमनिशं च विचिन्त्य चित्ते
नेत्रद्वये ऽप्यह मिहास्मि हि साश्रुपूरः ।
नारायणः कमलया सहभाति हि श्री-
नावायुपुरेऽत्र तु विशामि कदा न वेद्मि ॥ ३ ॥

जो भगवान् नारायण लक्ष्मीके साथ तिरुनावायुपुरमें विराजमानहो रहे हैं । उनसे मिलनेका समय मुझे भी प्राप्त होगा ? इसी चिन्तामें मेरा मन बेचैन हो रहा है । और दोनों नेत्र आँसुओंसे दिन रात भरे ही रहते हैं । पर अब तक मुझे नावायुपुरमें जानेका सुअवसर प्राप्त न हुआ,वह समय कब आयेगा मैं इसीकी चिन्तामें लगा हुआ हूँ॥३॥

उद्यान शोभि सुमसौरभवासिते श्री
नावायुपुरे लसति संश्रित एव नीलाम् ।
पद्मात्मिकां हरिरसौ किल तस्य सेवां
नित्यं चिकीर्षु रहमस्मि कदा भजेयम् ॥ ४ ॥

बागोंमें अनेक प्रकारसे खिलकर शोभाको बढ़ाने वाले फूलोंकी सुगन्धिसे सुगन्धित श्रीनावायपुरमें कमलनयनी नीलाको साथमें लेकर जो हरि विराजमान हो रहा है। मैं चाहता हूँ कि उस प्रभुकी सर्वप्रकारकी सेवा मुझे निरंतर मिला करे। परन्तु न जाने वह समर्थ परमात्मा मेरे लिए कब दिखायेगा ॥ ४ ॥

भर्ताश्रियोऽपि च भुवोऽपि च देवतानां
सर्वात्मनां प्रभुरसौ परमे पदेऽपि।
नावायपुरे वसति सादर मच्युतोऽमुं
दृष्ट्वा कदाऽक्षियुगलेन सुखं भजेयम् ? ॥ ५ ॥

जो प्रभु परमपदमें श्रीदेवी और भूदेवीका पति होकर सम्पूर्ण देवगण और समस्त प्राणियोंका भी स्वामी है। वही अविनाशी प्रभु श्रीनावाय् पुरमें बड़े आदरके साथ वास करता है, दोनों नेत्रोंसे उस प्रभुके दर्शन करके परमसुखको मैं कब प्राप्त होऊँगा ॥ ५ ॥

भृङ्गावली भरित पुष्प वनावृते श्री
नावायपुरे विजयसे सततं हरे त्वम्।
गोपालनाथ तव सत्यमहं हि दासो
नेत्रद्वयं मम हि दर्शन सौख्य कांक्षि ॥ ६ ॥

हे हरे! आप व्रजवासी गोपोंके सर्वविध पालक हो। और भ्रमरसमूहोंसे युक्त पुष्पवाटिकाओंसे घिरे हुए श्रीनावायपुरमें निरंतर ही विजयी होकर विराजमान हो रहे हो। मैं आपका सच्चा दास हूँ, मेरे नेत्रोंको यह बड़ी अभिलाषा है, कि आपके दर्शनोंका सुख कब मिलेगा ॥ ६ ॥

अर्थी महावलिकरात्पृथ्वीं च हृत्वा
देवासुरादि समरान्तक ! देव देव !
नारायणात्र कमलासहितोऽसि हि श्री—
नावायपुरे कुरु दयां मयि दास भूते ॥ ७ ॥

हे देव ! आपने वामनरूपसे भिक्षुक बनकर बलीके हाथसे समस्त पृथ्वीको छीनकर देव और असुरोंके संग्रामका अन्त किया था । हे नारायण ! अब आप लक्ष्मीके सहित श्रीनावाय् पुरमें आकर विराजमान हुए हो । मैं आपका सच्चा दास हूँ, अतएव मेरे ऊपर आप दया कीजिये ॥ ७ ॥

किं त्वं करोषि न कृपां मयि किं करोषि
त्वत्पादपद्मयुगले कृपयाऽथवा माम् ।
स्वैरं कुरुष्व मनसीह ममानघे त्वां
नावाय्पुरेश कलये सुमतिं प्रदेहि ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! आप मेरे ऊपर कृपा नहीं करते हो, यह क्या कर रहे हो ? आप कृपा करके मेरेको अपने चरणकमल युगलमें यथेष्ठरूपसे लगा लीजिये । अथवा श्रीनावाय्पुरमें विराजमान आपका मैं अपने मनमें ध्यान करूँगा । अतएव मेरे लिए आप ऐसी सुबुद्धि दीजिये जिससे मैं आपके ध्यान और स्मरणमें लगजाऊँ ॥ ८ ॥

देवादिभिश्च मुनिभिश्च न शक्यते यो
द्रष्टुं त्रिमूर्ति जननस्य च मूल भूतः ।
लोकत्रयाधिपतिरस्ति स सादरं श्री
नावाय्पुरे बत ! तमद्य भजन्ति के वा ॥ ९ ॥

जो प्रभु, ब्रह्मा विष्णु और शिव इन तीनों मूर्तियोंका आदि कारणरूप है, जिसको ब्रह्मादिक देवता और सनकादिक ऋषिगण भी नहीं देख पाते । त्रिलोकीका सर्वश्रेष्ठ स्वामी वही प्रभु परमादरके साथ नावाय् पुरमें विराजमान् हुआ है । इस प्रकार भक्तोंके लिए सुलभरूप होकर सर्वत्र विराजमान् उसकी सेवा कौन पुरुष कर सकते हैं ॥ ९ ॥

आराम शोभिनि विभासि किलागतः श्री–
नावाय्पुरेऽद्य मणिवर्ण कदा भजे त्वाम् ।
इत्येव सन्ततविचिन्तनतः किल त्वां
श्रीशेति हन्त हृदयार्द्रतयाऽह्वयामि ॥ १० ॥

हे मणिवर्ण ! अनेक प्रकारके बाग बगीचोंसे शोभायमान श्री नावायपुरमें आकर आप विराजमान हुए हो। मैं कब आपकी सेवा करूँ इसी प्रकार निरन्तर चिन्तामें लगा हुआ हूँ। हा ! लक्ष्मीपते ! आपको द्रवीभूत हृदय होकर बुला रहा हूँ ॥ १० ॥

रम्ये विभाति मणिसौध युतेहरिश्श्री–
नावायूपुरे ! तमिममेवशठारि सूरिः ।
स्तोतुं सहस्र गणिते दशकं व्यतानी,
देतत्पठन्त इह यांतिहि दिव्यगन्धम् ॥११॥

मणिमय उच्चशिखरोंसे शोभायमान अति रमणीय श्रीनावायूपुरमें जो प्रभु विराजमान है उसी प्रभुकी स्तुति करनेके लिए शठकोपसूरिने सहस्रगीति बनाई। उसमें इस दशकको जो पढ़ेंगे उनकी संसारमें दिव्य कीर्ति फैल जायगी ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके अष्टमदशकं समाप्तम् ।



अथ श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके नवमदशकारम्भः ।

इस दशकमें आल्वार उस प्रभुकी भक्तिरूप मदिरा से मस्त होकर आपने शरीर सुधबुधको भूलकर एक नायिकाकी अवस्थाको प्राप्त होते हैं। और जिस प्रकार गौचारण के लिए वनमें गये श्री कृष्णकी दर्शन आशामें बैठी हुई गोपिकाओंकी कृष्णके आनेमें देरी होनेसे जो दशा होती थी उसी प्रकार की दुःख पूर्ण दशाका अनुभव करते हैं।

मल्लीसौगन्धापूर्णोऽप्यनिल इहहि मे शस्त्रवद्भाति ! दिव्यं
गानं रम्यंचशल्यं ! जनयति नितरां मोह मेवास्त सन्ध्या ।
सन्ध्या रक्ताः पयोदा अपि च विशसना हन्त कान्तं विनामे
पद्माक्षं गोपसिंहं स्तनभुजयुगले काद्य धृत्वा प्रयामि ? ॥१॥

अहह ! उस कमललोचन अति सुन्दर प्राणप्यारे गोपसिंहके बिना आज-चमेलीके पुष्पोंकी सुगन्धसे भरा हुआ यह वायु मुझे शस्त्रके समान पीड़ा पहुँचाता है। और कलकंठ पक्षियोंका गान भी मेरे शरीरमें सुईके समान चुभता है। सूर्य अस्तकालकी सन्ध्या तो मुझे

निरन्तर अचेत ही करे देती है। सन्ध्याके समय रक्तवर्णके बादल तो मेरी हत्या करनेको ही तुले हुए हैं। हाय! उस कमललोचन गोपसिंह प्राणप्यारेकेबिना स्तन और दोनोंभुजाओंको लेकर मैं कहाँ जाऊँ॥१

प्राप्यं देशं न वेद्मि स्वयमयमनिलो हन्त घण्टारवैश्च
क्लिश्नात्येवास्तसन्ध्या वत सपदि च मामङ्गरागैःसमेता।
रागोऽयं पंचमो भात्यनिलकुटजमालान्वितो हन्त कान्तो
गोपालो लोकपालो नहि समुपगतः प्राणरक्षा कथं मे ॥२॥

हाय! मैं अब छिपने लायक स्थानको भी तो नहीं जानती जिसमें छिपकर मैं अपने दुखोंको दूर कर सकूँ। यह वायु तो मुझे घण्टा और वेणुके शब्दके साथ बहुतही दुःख दे रहा है। और सूर्यास्त समयकी लालवर्णकी सन्ध्या बहुतही कष्ट पहुँचा रही है। और पंचम स्वरसे होने वाले राग मुझे बहुतही दुःख दे रहे हैं। पहाड़ी चमेलीकी माला धारण करने वाला मेरा प्राणपति जो गोपाल होता हुआभी सर्व लोकपाल है, वह अभी तक मेरे पास नहीं आया। अब मेरे प्राणोंकी रक्षा किस प्रकार हो सकती है ॥ २ ॥

अत्र प्राणान् कथं मे सपदि वत वहाम्यद्य संश्लेपतो मे
कृत्वा वक्षोजयुग्मं शिथिलमिव कटिं चापि भुग्नामिवासौ।
हित्वा मां चोर एव स्वय महह! हरिस्त्वत्र नायातिकृष्ण-
स्तस्याक्षिद्वन्द वक्त्राद्यलकरुचिचतुर्बाहवो मां तुदन्ति ॥३॥

अहह! वह कृष्ण अपने सम्भोगसुखसे मेरे दोनों स्तनोंको शिथिल करके और मेरी कमरको टेढ़ी बनाकर मुझे छोड़कर चोरके समान छिप करके चला गया। अब मैं अपने प्राणोंको किस आधार पर धारण करूं, क्योंकि वह चितचोर तो मेरे पास आताही नहीं। और उसके दोनों नेत्रकमल अति सुन्दरमुख और घुँघराले अलकोंकी झलक, और चारों भुजाओंका स्मरण निरन्तर मुझे पीड़ा पहुँचा रहाहै॥३॥

पापिन्या मेऽद्य चित्तं तुदति च पवनो हन्त शीतोऽद्य दाही
चन्द्रस्सन्तापकारी दहनवदहह ज्वालिनी पुष्पशय्या।

साक्षात्ताक्ष्याधिरूढं तदपि च परमं दैवतं भृङ्गतुल्यं
भुक्त्वा तेनास्मि पुष्पस्रगहमतिकृशा दुर्दशा दुस्सहा मे ॥ ४ ॥

अहह ! उत्तराखण्डका शीतल पवन भी मुझ पापिनीके चित्तको आज पीड़ा पहुँचा रहा है । और चन्द्रदेव भी अपनी किरणोंसे सन्ताप देकर मुझे जला रहे हैं, और यह पुष्पोंकी शैय्याभी अग्नि ज्वालाके समान मुझे जलाये देती है, और गरुड़के ऊपर चढ़कर विचरण करने वाले प्रभु मेरे इष्टदेव हैं । उस प्रभुने ही मुझे रस पीकर मर्दन कियेहुए पुष्पको भौंराके समान भोगकर दुर्बल बना दिया है । अब इस प्रकारकी दुर्दशा मुझसे नहीं सही जाती ॥ ४ ॥

चित्तं चेदं न मित्रं मम सपदि पशूनाह्वयत्येव सन्ध्या
गोपालो नागतोऽसौ कठिनहृदय एवास्य वेणुस्तुदेन्माम् ।
हाहा ! तं चाभियाता मम किल पुरतो हन्त मे प्राणसख्यः
कारुण्यं तस्य मृग्यं मयि कथमधुना प्राणरक्षा भवेन्मेः ॥५॥

अहह ! आज मेरा यह चित्त भी मेरे साथ मित्रताका व्यवहार नहीं करता, और सन्ध्याका समय गौवोंको बुलानाही चाहता है,परंतु कठोर हृदयका गोपाल तो अबभी नहीं आया,परंतु इसके वेणुका शब्द तो मुझे अत्यन्तही पीड़ा पहुँचा रहा है । हाय ! मेरी प्राणप्यारी सखी भी उस वेणुके शब्दकी ओर दौड़ी चली गईहैं । और उस प्रियतमकी कृपा तो मुझे बहुत ढूंढने पर भी दिखाई नहीं देती । अब इस आपत्तिमें मेरे प्राणोंकी रक्षा किस प्रकार हो सकती है ॥ ५ ॥

दुष्प्रापो मेऽद्य तत्सङ्गमसमय इह श्रीहरेस्तस्य विष्णोः
कारुण्यं तद्विना मे न हि भुवि तु भवेज्जीवितं चाद्य सन्ध्या ।
चित्तं मे नानुकूलं विधिशिवसहिता साऽपि लक्ष्मीस्तनुं च
प्राप्नोत्यस्येति नाहं बत शरणमहो प्राप्नुयां किन्नु कुर्याम् ॥६॥

सर्व व्यापक उस श्रीहरिका संगमसुख मिलना अब मेरे लिए दुर्लभ है, और उसकी कृपाके बिना भूमितलमें मेरा जीवित रहना भी कठिन है । मेरा चित्त बड़ी चञ्चलतासे उसीकी चिन्तामें लगकर मेरे

प्रतिकूल होगया है । जिस प्रभुके शरीरमें ब्रह्मा शिव आदि देवोंके साथ लक्ष्मीजी भी वास पाती हैं, उस प्रभुकी चरणशरण अभी तक मुझको प्राप्त न हुई अब क्या किया जाय ॥ ६ ॥

नीलाम्भोदाभमूर्तिं ननु मम हृदयं कृष्णमेवाश्रितं त-
न्मायावश्यं सुगन्धस्सरसमधुरगीनादिभिर्वाति वातः ।
नानामल्लीसुमाद्यैः परिमलभरितो हन्त वातोऽयमेवं
मर्मस्पर्शी तुदेन्मां कथमहह जनन्योऽद्य मे वच्मि वृत्तम् ॥७॥

आज मेरा मन नीलमेघके समान श्यामसुन्दर मूर्ति वाले श्रीकृष्णमें ही उसकी मोहनी मूर्तिके वशमें होकर आसक्त होगया है । अब तो चमेली आदिक अनेक प्रकारके पुष्पोंकी सुगन्धिसे भरा हुआ अमृत रस बरसाने वाले गीतोंके साथ यह पवनदेव भी मेरे मर्मस्थानोंको पीड़ा पहुँचा रहा है । हे माताओ ! मैं आज आप लोगोंके सामने अपने दुश्चरित्रोंको कहाँ तक वर्णन करूं ॥ ७ ॥

वातोऽयं दिव्यगन्धो नवनव विभवो वाति सन्ध्या च रक्ता
तीव्रा हा हन्त कृष्णः कुटिल गतिरहो तस्य मायाऽति तीव्रा ।
सौरभ्योपेतमल्ली परिमल विसरच्चन्दनाचापि वेणो-
र्नादोऽयं पंचमस्थः किल मम सपदि प्राणहृद्गोपिकाजित् ॥८॥

अहह ! नये नये प्रकारकी दिव्यसुगन्धियोंसे युक्त वायु अब बह रहा है । सन्ध्या भी तीव्र लालरूपको धारण कर रही है । और अनेक प्रकारकी कुटिल चालोंको चलने वाले कृष्णकी-माया भी बड़ी तीव्र है । अन्यसुगन्धिसे युक्त होकर चन्दनकी सुगन्धिसे भरा हुआ बंशीका पञ्चमस्वरसे होने वाला शब्द जिसने व्रज गोपियोंको जीतकर अपने वशमें किया है, वही अति शीघ्र मेरे प्राणोंको हरण करने वालाहै ॥८॥

मध्ये मध्ये मनोहार्यभिनवभणितैर्वेणुनादै र्गतासु-
आहं हा ! हन्त ! वीदयामपि रुचिरतमां सूक्तिसंगीतमालम् ।
कान्तचित्ताभिरामामहह ! न हि परां वेद्मि वाचाऽपिवक्तु-
चेष्टां तस्याद्य रात्रिर्भवति ! वत नमां ! कान्त आयाति मायी ॥९॥

अहह ! बीच बीचमें उत्पन्न हुए मनको हरण करने वाले वेणु के शब्दोंसे मैं अचेत हो जाती हूँ। जो अति मनोहर द्रव्य और सुन्दर है उस संगीत मालाको जो मेरे प्रियतमके चित्तके समान मनोहर है, मैं अपनी वाणीसे कह भी नहीं सकती । और उस कृष्णकी गतिको कौन जान सकता है। रात्रिका समय हो गया है। अनेक माया रचने वाला मेरा प्रियतम तो अभीतक आता ही नहीं है ॥ ९ ॥

आयातैव निशाऽधुना ननु हरिर्मायी समायात्यहो !
गावश्चापि वृषैश्चरन्ति सहिता लीलाविलासाकुलाः ।
श्रूयन्ते बहुधा च वेणुनिनदा दीप्ता लताष्षट्पदै-
र्मेल्याद्या जलधिश्च खेचरखो ! जीवामि किं तं विना ?

अब रात्रि तो आगई परन्तु मायाधारी हरि नहीं आते हैं। और गौवें भी साडोंके साथ अनेक प्रकारकी लीलाके विलासोंमें लगी हुई हैं। और अनेक प्रकारकी वंशीकी ध्वनि भी सुनाई पड़ रही है। चमेलीकी लता भौंरोंओंके गुंजारसे शोभायमान हो रही हैं। और आकाशमें देवताओंका शब्द भी समुद्रगर्जनके समान हो रहा है। इस प्रकार प्रतिकूल दशामें पड़ी हुई मैं उस प्रियतमके बिना क्या जीवित रह सकती हूँ ॥ १० ॥

तद्विश्लेपसहा न ये निशिभृशं गोपीजनाः क्रन्दने-
स्तेषामेव शठारिरप्य हह ! तद्विश्लेषदुःखासहः ।
साहस्रे परमं जगौ च दशकं चेदं पठन्तो भुवि,
प्रीत्या भक्तजनास्तमेव शरणं प्राप्तास्थ चोज्जीविताः ॥११॥

जो गोपियाँ रात्रिमें उस कृष्णका वियोग नहीं सह सकती थीं उन्होंके करुण क्रन्दनको ध्यानमें रखकर उनके वियोग दुखको सहन नहीं करने वाले शठकोपमुनिने उत्तम सहस्रगीतिमें यह दशक कहा है। इसको भूमिमें जो महान् प्रेमसे पाठ करेंगे उन भक्तोंकी शरणमें प्राप्त हुए पुरुषोंका आत्मोद्धार होजायगा ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके नवमदशक समाप्तम् ।



श्रीमते शठकोपाय नमः

अथ श्रीसहस्रगीतौ नवमशतके दशमदशकारम्भः ।

इस दशकमें आलवार यह उपदेश देते हैं कि जो प्रभु सर्वस्व धारणको अभय प्रदान करके उद्धार करने के लिए श्रीकृष्णपुरमें वास करते हैं। उन्हीकी सर्वप्रकारसे शरण लेना प्राणि मात्रका कल्याण कारक है।

प्राकाररम्य शुभ-कृष्णपुराधिनाथः
प्राप्तस्स एवहिं पुरा वटपत्र शय्याम् ।
तस्यांघ्रियुग्ममनिशं प्रति पद्म पद्मै,
राराध्य पापरहिता भवतात्र धन्याः ॥१॥

हे भक्त वर्गो ! जो प्रभु प्रलयके समय बाल रूपसे वटके पत्रके ऊपर शयन करता है। वही प्रभु परकोटासे अति रमणीय श्रीकृष्णपुरमें आकर विराजमान हुआ है। निरन्तर उसीके चरण युगलकी शरण लेकर और कमल पुष्पोंसे उनकी अर्चना करके समस्त पापोंसे मुक्त होकर धन्य भाग्य वाले हो जावो।

यह श्रीकृष्णपुर दिव्य देश मद्रास प्रान्तके चोल मंडलमें है। उस देशकी भाषामें तिरुकण्णपुरम् नामसे प्रसिद्ध है । यह मायावरम् स्टेशनसे अनुमानतः आठ कोश है ॥ १ ॥

भक्ताश्च यूयमधुना भजताच्युतं तं
पुष्पैस्तुरम्यवलयेन च राजतेन ।
संशोभिते सपदि कृष्णपुरे वसन्तं !
भक्त्या भजध्वमनिशं च प्रभुं कृतार्थाः ॥२॥

हे भक्तगणो ! आप लोग रजत वर्णके प्राकारसे शोभायमान कृष्णपुरमें वास करने वाले अविनाशी प्रभुका पुष्पोंसे भक्ति पूर्वक सेवन करो। इसीसे आप लोग कृतार्थ हो जावोगे ॥ २ ॥

उद्यानशोभि शुभकृष्णपुराधिनाथं,
वैकुण्ठ नाथ,ममराधिपतिं, मुरारिम् ।
भक्ता भजन्तु मिलितास्तु भवन्त एवं
भक्त्या समर्प्य कुसुमानि च वीतदुःखाः ॥३॥

जो प्रभु श्रीवैकुंठ लोकमें नित्य मुक्तोंका स्वामी होकर विराजमान है, वही प्रभु अनेक प्रकारके उद्यानोंसे सुशोभित श्रीकृष्णपुरमें आकर विराजमान हुआ है। हे भक्तजनो! आप लोग सब मिलकर उस मुरारीके श्रीचरणोंमें पुष्पोंको अर्पण करके उसकी सेवा करो इसीसे आप लोगोंके सर्व प्रकारके कष्ट दूर हो जायेंगे ॥ ३ ॥

कांतस्य यस्य सततं हरिणायताक्षी
नीला प्रिया सपदि तं मधुरं गुणाढ्यम्।
आराध्य कृष्णपुरनाथमिहैव पुष्पै—
यूयं भजध्वमयमेव भवेच्छरण्यः ॥४॥

अति कमनीय कान्तिधारी जिस प्रभुकी मृगनयनी नीलादेवी निरन्तर प्यारी पत्नी है। अनेक गुणोंसे सम्पन्न मधुर मूर्तिधारी श्रीकृष्णपुर नाथको यहीं पर सुन्दर पुष्पोंसे आराधना करके उसकी सेवा करो। सेवासे प्रसन्न हुआ यह प्रभु ही आप लोगोंकी सर्वविध रक्षाकरने वाला होगा ॥ ४ ॥

सोऽयं भवेच्च शरणं शरणागतानां
वैकुण्ठमेव तनुते मरणं गतानाम्।
स्वामीलसद्वलयकृष्णपुराधिनाथो
भूपालको भवति भक्ततंतेश्च भक्तः ॥५॥

हे भक्त गणो! जो हमारा स्वामी चमकते हुए परकोटा वाले कृष्णपुरमें वास करता है, और उन भक्तोंको मरने के अनन्तर वैकुंठ धाममें पहुँचा देता है। और अपने भक्त समुदायकी सर्वप्रकार राजाके समान होकर रक्षा करता है ॥ ५ ॥

स्वांघ्रिद्वयाश्रितजनेषु च वत्सलोऽयं
वक्षोविदारणपटुश्च हिरण्यकस्य।
सौवर्ण सद्वलयकृष्णपुराधिनाथ
स्सत्याश्रयेषु सततं च भवेत्स सत्यः ॥ ६ ॥

सुवर्णके प्राकारसे घिरे हुए कृष्णपुरका यह स्वामीहै, जो सत्यतासे इसकी निरन्तर शरणागति करता है, उसके लिए भी वह सत्यस्वरूप हो जाता है। उसके चरणयुगलका जो आश्रय लेता है, उसके लिए वह बहुतही प्रेमरूप हो जाता है। उसीने अपनी भक्तवत्सलता दिखानेके लिए हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलको बड़ा चतुरतासे विदारण किया था ॥ ६ ॥

सत्योऽस्त्यनन्यमनसां किल भक्तिभाजां
मिथ्याऽस्ति चान्यमनसां हरिरिन्दिरेशः ।
क्षेत्रावलीलसित कृष्णपुराधिनाथो
भव्यो भवेत्किल सदा शरणागतानाम् ॥ ७ ॥

हरे खेतोंकी पंक्तियोंसे शोभायमान कृष्णपुरमें उसका स्वामी होकर वास करने वाला प्रभु शरणागत भक्तोंको सदाही भव्यरूप (दर्शनीय) हो जाता है। अनन्य मनसे जो उसकी भक्ति करते हैं, उनके लिए वह सत्यस्वरूप हो जाता है। और जो बिना श्रद्धाके अन्य मन वाले होकर रहतेहैं उनके लिए वह मिथ्यारूप हो जाताहै ॥७

वश्यो भवेत्स्वचरणाम्बुजभक्तिभाजां
व्याधिं प्रणाश्य सहि जन्मततिं निहन्यात् ।
सौवर्णसद्वलय कृष्ण पुरेशितुर्व
स्संसेव्यमङ्घ्रियुगलं परमेष्टिनस्तत् ॥ ८ ॥

सुवर्णके परकोटासे घिरे हुए कृष्णपुरमें जो प्रभु वास करता है, सर्वपूज्य उस ईश्वरके चरणयुगलोंकी सेवाही भक्तजनोंको करनी उचित है। वह प्रभु अपने चरणोंकी भक्तिपूर्वक सेवा करने वालोंके वशमें होजाता है। और उनके सर्वप्रकारके रोगोंका नाश करके उनकी जन्म परंपराको नष्ट कर देता है ॥ ८ ॥

तस्याङ्घ्रियुग्म भजनात्सकलं च दुःखं
नश्येन्न भीतिकणिकाऽस्ति ममाद्यकाऽपि ।

श्रीवेद विद्वसति कृष्णपुराधि नाथं
मूलं परन्तु भजतां नहि दुःखगन्धः

वेदोंको पढ़ने वाले विद्वानोंका जो वास स्थान है, ऐसे कृष्णपुरमें स्वामी होकर जोप्रभु वास करता है। जो समस्त संसारका मूल कारण है। और जिसकी सेवा करने वालोंको कभी दुखका गंध भी प्राप्त नहीं होता। उसीके चरणयुगलके भजनसे आज मेरे समस्त दुख नष्ट हो गये और अब मुझे भयका लेश भी नहीं रहा है ॥ ९ ॥

पद्मालयामुरसि यस्तु दधाति तस्य
प्राकारशोभि शुभ कृष्णपुरप्रशंसा।
दुःखापहा भवति मे! नहि भाति चिन्ता!
तस्मान्न मेऽद्य किल किंचिदिहास्त्यलभ्यम् ॥१०॥

जो प्रभु प्राकारसे शोभायमान कृष्णपुरमें विराजमान होकर वक्षस्थलमें लक्ष्मीको धारण करते हैं। उनकी स्तुति करना ही मेरे लिए सर्व दुखोंको नाश करने वाली प्रतीत होती है। उसकी स्तुतिके प्रभाव से ही मैं आज सर्व प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त हो गया हूँ। अब इसी कारण इस संसारमें कोई वस्तु मेरे लिए दुर्लभ नही है ॥ १० ॥

सर्वांघनाशविधये कुरुकापुरीशः
श्रीमान् शठारिरवदत्सरसं सहस्रं।
तत्रेद मेवदशकं परिगायनृत्तैः
श्रीशस्य पादयुगलं शरणं भजध्वम् ॥११॥

सम्पूर्ण पापोंको नाश करनेके लिए कुरुकापुरके स्वामी श्रीमान् शठकोपमुनिने भक्तिरस बहाने वाली सहस्रगीतिको कहा है। इस दशकको नृत्य पूर्वक गान करके लक्ष्मी पतिके चरण युगलके शरण जाकर उसकी सेवा करनी चाहिए ॥ ११ ॥

इतिश्रीमद्वेदवेदाङ्गाद्यखिलशास्त्रनिष्णात पराशरगोत्रावतंस श्रीमन्माधवाचार्यचरणाश्रित श्रीरामानुजसत्संप्रदायाचार्य मथुरागलतामठाधीश्वर पण्डितस्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्यशास्त्रि विरचित विद्वन्मोदतरंगिणीभाषाटीका सहित श्रीसहस्रगीते· नवमशतकं सम्पूर्णम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके प्रथमदशकारम्भः।

इस दशकमें श्रीशठकोपसूरि दिव्यदेशकी यात्राकरने के विचारसे किसी मार्ग सहायकको खोज रहे थे कि एकाएक उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि भक्तोंके विरोधियोंका नाश करने वाले श्यामसुन्दर प्रभुको छोड़के और कोई सहाक नहीं हो सकता इसीलिए मोह पुराधीश प्रभुकी ही शरणागत होने का विचार प्रगट करते हैं।

अम्भोजावलिभिस्तटाकसरणिर्यत्रास्ति सम्भूपिता,
क्षेत्रेष्वत्र सदाऽपि वासरसिकः श्रीमोहपुर्यां हरिः।
रक्षोनाशकरश्चतुर्भुजधरो बिम्बाधरः पद्मदृङ्
नीलाम्भोद निभस्स एव शरणं स्यालको! नेतरः ॥१॥

जहाँ पर खिले हुए कमलोंसे सरोवरें अत्यन्तशोभाको प्राप्त हो रहे हैं। उसी श्रीमोहपुरीनामके क्षेत्रमें वास करने से ही जिसको सदा आनन्द प्राप्त होता है, राक्षसोंके नाश करने के लिए जो चारों भुजाओंमें आयुधोंको धारण करता है, जिसके बिम्बाफलके समान होठ और कमलके समान नेत्र हैं, जो नीलमेघके समान कान्ति धारी है, जिसके घुँघरालेबाल अत्यन्तरमणीय हैं, वह हरि ही हमारा सर्व प्रकारसे रक्षक है। उसके बिना अन्य कोई हमारी रक्षा नहीं कर सकता।

श्री मोहपुरी नामका दिव्य देश पाँड्य देशमें, तिरुमोहूर, नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ पर कालमेघ भगवान श्रीमेघवल्ली लक्ष्मीके साथ पूर्व मुख विराजमान हैं। यह सुन्दरबाहु भगवान्के दिव्यदेशसे तीन कोश दक्षिणमें है ॥ १ ॥

दिव्य श्रीतुलसी सुमावलिधर स्साहस्रनाम्नां प्रभु–
र्वाच्यो वेदचतुष्टयप्रवचनैर्विप्रोत्तमैरन्विते।
श्रीमन्मोहपुरे चकास्ति हि हरिस्तस्यैव पादाम्बुज–
च्छायारूप–महातटाक सलिले मग्नावयं सर्वदा ॥२॥

चारों वेदोंके पठन पाठनमें लगे हुए ब्राह्मणगण जहाँ नित्य वास करते हैं। सम्पत्तिशाली उस मोहपुरमें विराजनेवाले जो हरि हैं

और जो दिव्य तुलसी और फूलोंकी वनमालाको धारण करते हैं, हजारों नाम जिस एकही प्रभुका महत्त्व प्रतिपादन करते हैं। उसी प्रभुके चरणकमलोंकी छायारूप सरोवरके जलमें हम सदा निमग्न रहते हैं। इसी कारण हमारे संसारिक सर्व पाप नष्ट हो गये हैं ॥२॥

नान्यं त्वान्तु विना वयं हि शरणं प्राप्ता इति श्रीहरिं
यं देवाश्चतुराननेश्वमुखाश्शंसन्ति भूयःस्वयम् ।
त्रैलोक्याधिपतेस्तु तस्य वसतिं भक्त्या वयं सन्नताः
श्रीमन्मोहपुरीं भजाम शरणं सर्वार्तिशान्त्यै सदा ॥३॥

जिस श्रीहरिको ब्रह्मा शिवादिक देवगण स्तुति करते हुए यह कहते हैं कि आपके विना हम लोगोंका सर्वविधि रक्षक दूसरा नहीं हो सकता। जो प्रभु तीनों लोकोंका स्वामी हैं। उसके नित्य वास स्थान श्रीमन्मोहपुरीको हम लोग परमादरके साथ प्रणाम करते हुए निरन्तर सेवन करें। इसीसे सर्वप्रकारके हमारे दुख दूर होजायगे ॥३॥

दुःखध्वसंकरोऽद्य पालय विभो ! सर्वानिहास्मानिति
स्तुत्वा देवगणाश्च ते मुनिगणास्संश्रित्य तेजःपरम् ।
धन्यास्सान्त्विति भानि शेपशयनश्श्रीमोहपुर्यामसौ,
स्तोतुं तत्पदयुग्ममार्तिशमनं भक्तास्समागच्छत ॥४॥

हे भक्त गणो ! देव गण और मुनिगण जिस प्रभुको यह कह कर कि:— आप हमारे सर्व प्रकारके दुखोंका नाश करने वाले हो, हे प्रभो ! इस संसारमें हम सब लोगोंकी आप रक्षा करें। इस प्रकार स्तुति करके उस परम तेजस्वीका समाश्रयण करके धन्यवादके पात्र बन जाते हैं। वही प्रभु शेषके ऊपर शयन करते हुए श्रीमोहपुरीमें विराजमान हो रहे हैं। सर्व दुखोंके नाश करने वाले उसके चरण युगलकी स्तुति करनेके लिये ही आप लोग आइये ॥ ॥४॥

अस्माकं परमं महश्च जगतां मूलं परं पादत
सर्वाण्डान्तरलोकमानचतुरश्श्रीमोहपुर्यां हरिः ।

भात्येवाष्टदिशासु चेक्षुमधुरव्रीह्यादिसस्यावृतं
देवागारमिमं परीत्य विनता नृत्याम चागच्छत ॥ ५ ॥

हे भक्तवर्गो ! आइये जो प्रभु संसारका आदि कारण है, और हमारा पूज्य सर्वश्रेष्ठ ज्योति स्वरूप है । ब्रह्माण्डके भीतर बसने वाले समस्त लोकोंके नापनेमें जो बड़ा चतुर है, वही श्रीहरि मोहपुरीमें आकर विराजमान हुआ है । जिसकी आठों दिशाओंमें मधुर ईख और धानके खेत लगे हुए हैं इस देवके मन्दिरकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम करें और उस प्रभुके गुणोंको गाकर नृत्य करें ॥ ५ ॥

मायाचेष्टित एव गोपतिलको दुष्टासुरध्वंसकः—
स्सूरीणामपि मौनिनां च सुलभस्स्तोत्रान्वितानां च नः ।
माधुर्यामृतवारिधिस्सुरुचिरक्षेत्रावृते भात्यसौ
श्रीमन्मोहपुरे किलास्य चरणद्वन्द्वं शरण्यं हि नः ॥ ६ ॥

हे भक्तगणो ! जो प्रभु गोपोंके स्वामी नन्दके घरमें जन्म लेकर अनेक प्रकारके मायाचरित्रोंको करता था । और दुष्ट असुरोंका जिसने विध्वंश किया था, और जो उसके गुणोंको निरन्तर मनन करने वाले सूरियों (पण्डितगणों) को सुलभ है और उसकी स्तुति करने वाले हम लोगोंके लिए भी जो सुलभ होगया है । वही प्रभु अमृतवर्षाने वाली माधुरी मूर्तिको धारण करके अतिसुन्दरखेतोंसे घिरे हुए श्रीमोहपुरमें विराजमान है । इसी प्रभुका चरणयुगल ही हम लोगोंका सर्वप्रकारसे रक्षक है ॥ ६ ॥

लोकानामाद्यमूलप्रकृति परिसरत्कारणाम्भः प्रसृष्टेः
पश्चात्तं चाब्जयोनिं मुनिमपि च सुरान् सर्वलोकांश्च सृष्ट्वा ।
सोऽयं श्रीमोहपुर्यां विलसति हि हरिस्तत्पुरं चेत्परीत्य
स्वैरं यामोऽस्मदार्तिस्सपदि परिहृतास्याच्छरण्यं न चान्यत् ॥७

समस्त लोकोंकी कारणरूप मूलप्रकृतिसे उत्पन्न हुए कारण जलकी उत्पत्तिके अनन्तर ब्रह्मा मुनिको तथा सर्वदेवगण तथा समस्त लोकोंको जिसने रचा था, वही हरि श्रीमोहपुरीमें आकर विराजमान

हुए हैं। उस मोहपुरीकी स्वेच्छापूर्वक परिक्रमा करके हम लोग उसकी शरण जाँय तो बहुतही शीघ्र हमारे दुःख दूर हो जायेंगे, इसके बिना दूसरा कोई हमारा रक्षक नहीं है ॥ ७ ॥

उद्यद्वृक्षैस्तटाकैरपि च बहुविधै भूषितायां चकास्ति
श्रीविष्णुर्मोहपुर्यां दशरथतनयो दिव्यरत्नप्रभोऽसौ
यस्मिन्नम्भोधिरूपे निशिचरनिवहा हन्त नष्टास्सहस्रै—
र्नाम्नां क्रूराशयास्तं भजत भुवि जनाभक्तितोदुःखशान्त्यै॥८॥

जो प्रभु दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार लेकर दिव्यरत्नोंकी कान्ति से भूषित हुए थे। जिस प्रभुके समुद्रके समान अपार और अथाह पराक्रममें राक्षसों के गण नष्ट होगये थे। दूसरेकी वञ्चना करनेके लिए कठोर हृदय वाले प्राणियो! तुम सम्पूर्ण दुःखोंकी शान्तिके लिए उसी प्रभुकी सहस्र नामोंसे भक्तिपूर्वक सेवा करो ॥ ८ ॥

अच्छस्वच्छ महातटाकसदृशस्वाङ्घ्रिद्वय श्रीहरिः
पद्माक्षश्च चतुर्भुजो विलसति ज्योतिः प्रबालाधरः।
नानाराक्षसकाननावलिगणच्छेदी च वीराग्रणी
रस्मिन् मोहपुरेऽद्य भाति शरणं चास्माकमेतत्पुरम् ॥९॥

जिस श्रीहरिके चरणयुगल, रक्तकमलोंसेयुक्त निर्मल महासरोवरके समान स्वाश्रित सन्तापहारीहैं। जिसके कमलके समान नेत्र और प्रवालके समान होठहै, और स्वयं चतुर्भुजरूपसे जो प्रकाशमान होताहै। जो वीरोंका मुखिया होकर अनेक प्रकारके राक्षसरूपी वनोंके काटनेके लिए कुठाररूप हो जाता है। वही प्रभु, इस श्रीमोहपुरीमें विराजमान हुआ है। हम लोगोंकी रक्षा करनेके लिए इससे उत्तम और कोई देवता नहीं है ॥ ९ ॥

अस्माकं शरणं परं तदिदमेवेति स्वयं संश्रितान्
भक्तान् रक्षति कामरूपभृदसौ श्रीमोहपुर्यां वसन्।
देवानामसुरप्रणाशनविधौ कीर्तिं परां भक्तितो
यूयं भक्तगणा स्तुतत्स्मरणतः पश्चात्स्वयं धार्मिकाः ॥१०॥

जो प्रभु श्रीमोहपुरीमें वास करते हुए हमारी सर्वविध उत्तम प्रकारसे रक्षा करने वाले हैं । इस प्रकार विचार करके जो शरण आते हैं, उन भक्तोंकी जो अनेकरूप धरकरके रक्षा करतेहैं । जो देवताओंके ऊपर कृपा करके असुरोंके नाश करनेका उपाय रचते हैं । हे भक्तगणो ! आप लोग उसकी सर्वश्रेष्ठ कीर्तिकी भक्तिपूर्वक स्तुति करो । उस प्रभुके स्मरणसे ही आप लोग धार्मिकोंमें अपनी गणना करा सकेंगे॥१०॥

अस्मद्बन्धुगणाः स्तुतिं कुरुत चेत्येवं शठारिः प्रिया
नाहूयाच्युतमेव शंसितुममुं श्रीकुम्भलीलाश्रयम् ।
साहस्रे व्यतनोदिदं च दशकं श्रीमोहपुर्याश्रयं
भक्त्या ये तु पठन्ति दुःखमखिलं तेषां प्रणश्येत्क्षणात्॥११॥

हे हमारे बन्धुगणो ! आप लोग उस परमात्माकी ही स्तुति करो इस प्रकार कह कर अपने प्रिय मित्रोंको बुलाकर कुम्भनृत्य करने वाले परमात्माकी स्तुति करनेके लिए श्रीशठकोपमुनिने सहस्रगीति बनाई । उस सहस्रगीतिके, श्रीमोहपुरीके महत्व प्रतिपादन करने वाले इसदशकको जो पुरुष भक्तिपूर्वक पढ़ेंगे, उनके सर्व प्रकारके दुःख क्षणभरमें नष्ट हो जावेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके प्रथमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके द्वितीयदशकारम्भः ।

इस दशकमें प्रेमपूर्वक परमेश्वरका नामोच्चारण करते ही वह सर्वप्रकारसे प्राणियों की रक्षा करता है । श्रीमदनन्तपुरमें जाकर प्रभुके कैंकर्यमें आने वाले विघ्नोंको हरिका नाम स्मरण ही नष्ट कर देगा । अतएव हे मेरे प्यारे मित्रो ! आप लोग आइये और अनन्तपुरमें चल कर भगवन्नामोंका स्मरण करके अपने पाप पुञ्जोंको नष्ट कर दीजिये ।

श्रीमत्केशवनामकीर्तनकृतां सर्वार्तिनाशो भवेत्
क्रूराहिंसनतत्परा यमभटा नैवोपसर्पन्ति तान् ।
तस्माद्य यमनन्तशायिपुरमेवाद्य स्वयं प्राप्नुत
क्षेत्रैः पुष्पवनान्वितैः परिवृतं शेते च यत्राच्युतः ॥ १ ॥

जो प्राणी भगवान् केशवके नामोंका कीर्त्तन करते हैं, उनके

सर्वप्रकारके दुख नष्ट होजाते हैं। और अति क्रूर हृदयके प्राणियोंकी हत्यामें प्रेम रखने वाले यमराजके दूत उनके पास कभी नहीं आते। अतएव हे भक्तगणों! पुष्पवाटिकाओंसे और हरे खेतोंसे घिरे हुए जिस पुरमें वह अविनाशी प्रभु शयन करते हैं, उस अनन्तपुरमें ही आप लोग स्वयं जाकर उस प्रभुकी सेवा करो।

अनन्त शयन नामका दिव्यदेश मलयवारदेशमें है, इसको उस देशकी भाषामें 'तिरुवनन्तपुरम्' कहते हैं,- यहाँ पर अनन्त पद्मनाभ भगवान् भुजङ्गशयन होकर पूर्व मुख विराजमान हैं ॥ १ ॥

यूयं चेदधुनैव तत्रतु गतास्संसारदुःखं हतं
भूयादेव हि सप्तजन्मसु च वः प्रोद्यत्तरुप्राङ्गणैः ।
उद्यानैर्विलसत्यनन्तशयने दिव्येपुरे श्रीहरे
रेकंनाम सहस्रमेव भवति ध्यानात्परं स्यात्पदम् ॥२॥

हे भक्तगणो! आप लोग अनेक प्रकारके उद्यानोंसे घिरे हुए दिव्यदेशमें जिसके आँगनमें अति सुन्दर वृक्ष खड़े हुए हैं। आज ही चले जावोगे तो समस्त संसारके दुःख सातजन्मोंतकके नष्ट हो जायेंगे। जिस अनन्त शयन दिव्यदेशमें बैठकर प्रभुका एक नामही सहस्रनामोंके समान फलदायक होजाता है, और प्रभुके ध्यानसे परमपद प्राप्त हो जाता है, उसी दिव्यदेशका आश्रय लेना आप लोगोंका आत्म कल्याणकारक है ॥ २ ॥

यस्याऽस्ते विनतासुतस्तु सततं दिव्यं हरेर्वाहनं
केतुश्चापि स एव सोऽद्य जगतां भक्षी च रक्षाकरः ।
आस्ते श्रीमदनन्तशायिनगरे क्षिप्रं प्रविश्यात्र वः
खेदान्नाशयतः स्वयं वदत तन्नामपि साहस्रकम् ॥ ३ ॥

जिस हरिका विनतानन्दन (श्रीगरुड़जी) दिव्यवाहन हैं। और वे ही गरुड़जी उस प्रभुकी ध्वजा हैं, और जो प्रभु संसारको खाकर उदरमें रखनेसे सर्वजगतकी रक्षा करते हैं, वे ही प्रभु श्रीमदनन्तशयन दिव्यदेशमें आकर विराजमान हुए हैं। अतएव हे भक्तगणो!

लोग अति शीघ्र उसदिव्यदेशमें जाकर वास करनेसे आप अपने समस्त दुःखोंको नाश कर डालो। और स्वयं वहाँ जाकर उस प्रभुके सहस्रनामोंका कीर्त्तन भी करो ॥ ३ ॥

अम्भोधेस्तटतो वनैः परिवृते सौरभ्यसम्भूषिते-
र्नित्यं यो विलसत्यनन्तशयने तं पुष्पहस्ताःस्वयम्।
आराध्यात्र भवन्ति धन्यहृदया भक्तास्तदीयं परं
भाग्यं कीर्तयत स्वयन्तु सततं निश्शंकमेवानघम् ॥४॥

जो प्रभु समुद्रके तट पर लगे हुए वनोंमें उत्पन्न हुए नानाप्रकारके पुष्पोंकी सुगन्धिसे भूषित अनन्तशयनपुरमें नित्य वास करता है, जिस प्रभुको भक्त लोग अपने हाथोंमें पुष्प तुलसी लेकर आराधना करके धन्य भाग्य हो जाते हैं। हे भक्तगणो! ऐसे भक्तोंके उत्तम भाग्योंका निशङ्क होकर आप लोग कीर्त्तन करें, इसीसे आप लोगोंका कल्याण होगा ॥ ४ ॥

भक्त्या यूयममुं समर्चयत सत्पुष्पैश्च तीर्थान्वितै-
स्तन्नामानि च गायत प्रियतमान्येतज्जनिं नाशयेत्।
येतं नाथमनन्तशायिनगरे भक्त्या भजन्ति स्वयं
तत्पादप्रवणा भवन्ति सुदृढं सूरीश्वरास्ते दिवि ॥ ५ ॥

हे भक्तगणो! आप लोग इस अनन्तशयनभगवान्‌को ही ...न जल और पुष्पोंसे भक्तिपूर्वक अर्चना करो, और उसप्रभुके अत्यन्त प्रिय नामोंका गान करो। इसीसे आप लोगोंका जन्म मरणका कष्ट दूर हो जायेगा। जो भक्तजन अनन्तशयन दिव्यदेशमें विराजमान इस हमारे स्वामीका भक्तिपूर्वक स्वयं भजन करतेहैं, और जो महाविश्वास पूर्वक उस प्रभुके चरणकमलोंमें आसक्त हो जाते हैं, वे परमपदमें जाकर नित्यमुक्तोंके अधिपति होजाते हैं ॥ ५ ॥

गोविन्दः किल षण्मुखस्य जनकं सम्मोचयन् पातका
द्देवानामपि चादिरेव परमो योऽनन्तपुर्याश्रयः।

तं सेनापतिरर्चयत्यनुदिनं नित्यैश्च मुक्तैस्स्वयं,
भक्तास्तेऽपि च बान्धवा इति वयं भूयास्मतैः स्सङ्गता ॥६॥

हे भक्तगणो ! अनन्तशयन दिव्य देशमें विराजने वाला यही प्रभु समस्त देवोंका आदिकारण है। इसी गोविन्दने छः मुख वाले कार्तिकेयके पिता शिवजीको ब्रह्महत्याके पापोंसे छुड़ाया था। जिस प्रभुके सेनापति (श्रीविष्वक्सेनजी) नित्य मुक्तोंके साथ स्वयं निरन्तर सेवा किया करते हैं। इस प्रभुके जो सर्वप्रकार से भक्त हैं, वेही हमारे सच्चे बन्धु हैं। हमको उन्हींकी गोष्ठीमें सदा अपने कल्याण के लिए वास करना चाहिये ॥ ६ ॥

लोकान् जीवांश्च देवानखिलमितरदप्येप संहृत्यसृष्ट्वा
गोविन्दो भाति मूर्तिः परमगुण मणिश्शेषशायी विभुर्नः।
चेत्रैर्मीनालियुक्तैर्विलसितविभवेऽनन्त पुर्याख्यदेशे !
तत्र द्वारादिशुद्धि क्रमकृत मनसां सर्व पापं प्रणश्यत् ॥७॥

जो गोविन्द समस्त लोक और समस्त जीवोंका तथा सम्पूर्ण देवगण और अन्यप्रकारके प्राणियोंका संहार करके शेषके ऊपर शयन करते हैं। और जो अनन्त कल्याण गुणोंसे अलंकृतमूर्तिसे समस्त संसारकी सृष्टि करके प्रकाशमान होते हैं, वे ही हमारे स्वामी उछलती हुई मछलियोंसे युक्त खेतोंकी शोभासे बढ़ती हुई शोभा वाले अनन्त शयन नामके दिव्यदेशमें विराजमान हो रहे हैं। उस अनन्त दिव्य देशमें जो झाड़ू लगाकर दरवाजेको शुद्ध करनाआदि कैंकर्यमें मन लगाते हैं उनके सर्वप्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

पापं नश्यति! मन्मथस्य जनकः कृष्णोविभाति स्वयं
दिव्येऽनन्तपुरे सदेति च जगुः ! शेषे शयानस्य च।
तस्याङ्घ्रिद्वय दर्शनाय निरतां यूयं समागच्छत !
भ्रान्तिर्माऽस्तु च संशयोऽत्र ! विशदं सर्वं वदामो वयम् ॥८॥

हे भक्तजनो ! इस अनन्तशयन दिव्य देशमें कामदेवको उत्पन्न करने वाले भगवान् ... स्वयं आकर विराजमान हुए हैं।

जिनके दर्शनमात्रसे पाप नष्ट हो जाता है, ऐसा सत्शास्त्र और सन्त-जन कहते आये हैं, कि शेषजीके ऊपर शयन करने वाले उस प्रभुके चरणयुगलके दर्शन करनेके लिए आप सब लोग आओ। आप लोग किसी मूर्खके बहकानेसे भ्रमजालमें मत पड़ो। आत्मकल्याण तभी होगा, जब कि हमारी बताई हुई बातोंमें आप लोग भले प्रकार विश्वास कर लेंगे ॥ ८ ॥

अस्माभिः कथितानि तानि च दिनान्यद्यागतानि स्वयं
दिव्येऽनन्तपुरे वरे सुरुचिरोद्यानेऽद्य रक्षाऽस्ति नः ।
धूपं दिव्यसुगन्धिपुष्पसरणिं श्रीवामनाङ्घ्रिद्वये
कर्तुं स्तोतुमिमं च सक्तमनसां पापानि नश्यन्त्यहो ॥९॥

हे भक्तजनो ! हम आप लोगोंसे जो कहा करते थे, वहीं दिन अब स्वयं आगये हैं (मृत्यु समयके दिन आगये हैं) अब हमारी रक्षा संसारके सम्बन्धो किसी प्रकारसे नहीं कर सकते, हमारी रक्षा तभी होगी जब कि रमणीय उद्यानोंसे घिरेहुए दिव्य अनन्तपुरमें बसने वाले श्रीवामनभगवान्‌के चरणयुगलमें धूप और सुगन्धियुक्त पुष्पोंकी मालाको अर्पण करके उसकी स्तुति करनेमें मन लगा देंगे। क्योंकि उस प्रभुकी अर्चना करके जो निरन्तर स्तुति करते हैं, उनके सर्वपाप बहुत ही शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ ९ ॥

भक्ताश्चेदिह माधवेति सकृदप्याहुः स्वयं भक्तितः
पापानि प्रहतानि तानि कनकप्राकारसंशोभिते ।
दिव्येनन्तपुरे हरेर्भुवि तु ये स्तोत्रं च नाथस्य नः
कुर्युर्धूपसुदीपगन्धकुसुमैस्ते यान्ति कीर्तिं पराम् ॥१०॥

हे भक्तजनो ! इस संसारमें जो प्राणी भक्तिभावसे स्वयं एक बार भी हे माधव ! ऐसा प्रभुका नामोच्चारण करते हैं। उनके सर्व प्रकारके पाप तत्क्षण ही नष्ट हो जाते हैं, और जो भक्तगण सुवर्णके समान चमकते हुए सुन्दर परकोटासे शोभित दिव्यअनन्तपुरमें वास

करने वाले हमारे स्वामी श्रीहरिका धूप दीप चन्दन पुष्पोंसे अर्चन करके स्तुति करते हैं, उनकी दिव्य कीर्ति संसारमें फैल जाती है॥१०॥

दिव्यानन्तपुरेश्वरं च जगतामादिं हरिं श्रीधरं
स्तोतुं श्रीकुरुकेश्वरश्शठरिपुः पंचापि पंचाब्रवीत्।
साहस्रे तदिदं पठन्ति दशकं ये धाम्नि दिव्ये स्वयं
ते गत्वाहि भजन्ति दिव्यललनाहस्तैश्शुभालंक्रियाम्॥११॥

जो प्रभु जगत्का आदिकारण है, जो दिव्यअनन्तपुरमें वास करता है, उस हरि श्रीधरकी स्तुति करनेके लिए कुरुकापुरीके स्वामी शठकोपमुनिने पाँच-पाँचसौ गाथाओं (सहस्र गाथा) वाली सहस्र-गीति कही उसमें इस दशकको जो पढ़ेंगे, वे दिव्यलोकमें स्वयं जाकर दिव्यअप्सराओंके हाथोंसे सुन्दर शृङ्गारको कराकर आनन्द भोगेंगे॥११॥

इति श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके द्वितीयदशकं समाप्तम्।



अथ श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके तृतीयदशकारम्भः।

इस दशकमें आल्वार प्रभुके चरणोंमें इतने आसक्त होगये कि वे एक क्षणको भी उन्हें छोड़ना नहीं चाहते, किसी कारणवश वे प्रभुके स्मरणको भूल गये तो उनको वैसा ही दुख हुआ कि जैसा प्रियतमसे बिछुड़ी हुई उसकी चिन्तासे दुखी एक नवोढ़ा नायिका को होता है, इसी कारण श्रीकृष्णके विरहमें विरहिणी गोपियोंके दुखका अनुभव करके उनकी दशाका वर्णन करने लगे हैं।

बाहुद्वन्द्वं कृश हा बत! तनुकृशतां मे न पश्येद्वियोगं
कूजन्ती कोलिलालिस्सपदि बत मयूरावलिर्नृत्तसक्ता।
गोसंघानुप्रयाते त्वयि मम हि दिनं कल्पसाहस्रमेव
त्वन्नेत्राब्जद्वयं मां तुदति बत हरे कृष्ण! न त्वं दयालुः॥१॥

हाय! मेरी दोनों भुजाएँ कृश होगई हैं, और मेरा शरीर भी बहुत ही कृश होगया है, और कोकिलागण प्रियतमके वियोग दुखको बढ़ाने वाले शब्द कर रही है। और मोरोंके झुण्ड मधुर वाणी बोलते हुए नाचनेमें लगे हैं! हे कृष्ण! तुम तो गौवोंके पीछे चले गये, और

हमें तुम्हारे दर्शनोंके बिना एक दिन भी हजार कल्पके समान होगया है,तुम्हारे कमलके समान सुन्दर नेत्र हमारे मनमें चुभ रहे हैं । हे हरे ! तुम बड़े कठोर हृदयके हो, मुझ दुःखिनीको देखकर दया तुमको दया नहीं आती ? ॥ १ ॥

कारुण्यं ते न कृष्णास्त्यहह नहि नहि श्लेष कालेऽपि ते मे
वक्षोजद्वन्द्वमेतत्पृथु भवति महानन्दपाथोधिरेवम् ।
आकाशं चाप्यतीत्य भ्रमयति सुतरां बुद्धिमेवं दशा स्यात्
स्वप्नावस्था हि जीवस्तव विरहसहो नैव गा नानुयाहि ॥ २ ॥

अहह हे कृष्ण ! तुम्हारे मनमें दया तो है नहीं, अतएव निर्दयी होकर तुम मुझे दुःख पहुँचा रहे हो । ओहो ! नहीं, नहीं मैं भूलमें ऐसा कह रही हूँ, आप तो आनन्दके महासमुद्र हो, इसी कारण आप जब मुझसे मिलते हो तो उस आपके संगम समयमें मेरे दोनों स्तन आनंदके कारण मोटे हो जाते हैं, और जब आप मुझे छोड़कर चले जाते हो तो मेरी बुद्धि बड़े भ्रममें पडकर आकाश और पाताल लोकों तक चक्कर लगाया करती है, यह मेरी दशा जाग्रत अवस्था की है अथवा स्वप्न अवस्था की है । यह भी मुझे पता नहीं लगता। अतएव आपका विरह मुझसे एक क्षणभर भी नहीं सहा जाता सो आप अब गौवोंके पीछे मत जाओ ॥ २ ॥

धेनूनां घासकाले तव विरहसहानास्मि ! सीदामि ! हन्तो
च्छ्वासैः ससंतप्तचित्ताऽस्म्यहह ! नहि सहायोऽद्य मे नीलमूर्ते ।
संचारस्तेन दृश्यो मम भवति ! दिनं चैक मेवं न याति !
त्वद्विश्लेषेऽश्रुपातो न विरमति ! दशां तामिमां हन्म गोप्य ॥३॥

हे हरे ! आप गौ चरानेके लिये जब जाते हो तो आपकी विरह दशा मुझसे नहीं सही जाती । मैं उस समय बहुत ही दुःख पाने लगती हूँ । और बड़े बड़े स्वाँस लेकर संतप्त चित्तवाली होजाती हूँ । अहह ! हे श्यामसुन्दर क्या तुम आज मेरे सहायक न होगे ?। जिससमय आप मेरी दृष्टिसे ओझल होजाते हो तो मुझे एक दिनभी

काटना कठिन हो जाता है। और जब आपका विश्लेष होता है तो मेरे आँसुओंका बहना एक क्षणभर भी बन्द नहीं होता। आपके दूर हो जाने पर मैं अपने इस गोपीशरीरको ही नष्ट कर दूँगी ॥ ३ ॥

दासीनां ते दशां नः पृथगिह विरहे सन्त ! नैव स्मरेस्त्वं !
गोविन्देवं पशूस्ताननुसरसि वने हन्त ! मुञ्चन्निहास्मान् ।
मायास्वादूक्तिसारामृतसरिति च ते मानसं मेऽस्ति मग्नं
पापिन्या हन्त ! हन्त स्मृतमपि वचनं ते दहत्येव मेऽसून् ॥४॥

हे प्रभो ! जब आप हमको छोड़कर वनमें गौवोंके पीछे चले जाते हो तो हे गोविन्द ! इस प्रकार तुम्हारी दासी हमलोगोंको क्या आप अलग होकर स्मरण करते होंगे ? मेरा मन तो आपके माया (कपट) से भरे सुन्दर अमृतके समान स्वादिष्ट वाक्य रूपी सरोवरमें ही मग्न रहता है। किन्तु अत्यन्त पापकी मेरे प्राणोंको आपके वाक्योंका स्मरण भी जलाया ही करता है ॥ ४ ॥

त्वत्स्वादूक्तिस्मृतिर्मां दहति बत ! दिनं कृष्ण ! गोचारकाले,
मल्लीसौगन्ध्ययातान्निनमहह ! समायाति सायं च सन्ध्या ।
रत्नोद्भासे तथोरस्यभिनवकुटजैः कुड्मलै र्वासितं मे,

स्त्रीत्वं हा ! दुस्सहं नः किल नयनयुगं त्वश्रुपूर्णं मनश्च,
भ्रान्तं ! नस्ते पशूनामनुगमनमहो नाशकं ! तप्त आत्मा ॥६॥

गंभीर समुद्रके समान नीलकान्ति नेत्रवाले कृष्ण ! तुम हमारे मस्तक पर अपने दोनों चरणोंको स्वयं स्थापन कर दो । हम यह जानती हैं कि आपकी चारोंओर कमनीय प्रेमिका रहती हैं । हमसे स्त्रीके शरीका भार लादना अब नहीं सहा जाता । और हमारे नेत्रों से निरन्तर ही दुःख के आँसू बहते रहते हैं, तथा मन हमारा भ्रान्त (पागल) के समान हो रहा है । ऐसी दशामें आपका गौवोंके पीछे जाना, दुःखसन्तप्त हमारे आत्माको सहन करना उसकी शक्ति के बाहर है ॥ ६ ॥

शैथिल्यं यान्तिकाञ्च्यङ्गदवलय मुखान्यद्य ! नेत्राब्जयुग्मं,
रम्यं वाष्पाम्बुपूर्णं ! स्तनयुगमपि मे हन्त ! हा शुष्यतीदम् ।
बाहू चैतौकृशौ मे ! मणि निभ ! तव दिव्याङ्घ्रिपद्मद्वयं च
किन्न स्यात्कानने त्वं पशुगणमनुयास्यासुरैः किं भवेद्वा ? ॥७॥

हे मणिके समान वर्ण वाले कृष्ण ! जब आप वनमें गौवोंके पीछे चलते हो तो, आपके कोमल चरण वनके कंटक और कंकड़ोंके छिदने से बहुत ही कष्ट पाते होंगे । और बड़े बड़े भयङ्कर असुरोंके साथ आपकी जो भेंट होती है, उसमें न जाने आपके सुकुमार शरीर पर क्या आपत्ति आजाय, इसी चिन्तासे हमारे दोनों बाहु कृश हैं । और हमारे दोनों स्तन उखाड़ी हुई कमल कलिकाके समान सूख गये हैं । और नेत्र कमलोंमें सदा आँसुओंका जल ही भरा रहता है, और कौंधनी बाजू कङ्कण आदिभूषण ढीले पड़कर शरीरसे खिसके जा रहेहैं॥७॥

आयातारात्त्वसाश्वे त्कथमहह भवेदित्यहं हन्त चिन्ता
पारावारेऽस्मि मग्ना पशु गणमनुमैवाद्य याहीति वच्मि ।
आशापाशाभिसन्धि प्रयतन रतयश्चार्तिमूलं ममाद्य
त्वं मे हस्तस्थितस्याः पुरत इह चरे गोपिकाभिः प्रियाभिः ॥७॥

हे प्रभो! आप गौवोंके पीछे बनमें गये और वहाँ पर कहीं राक्षस आगये तो न जाने क्या विपत्ति आजाय। मैं इस प्रकारकी चिन्तारूप समुद्रमें मग्न हो रही हूँ। इसीसे मैं कहती हूँ कि आज आप गौवोंके पीछे मत जाइये। अब आपसे अनेक प्रकारके मधुर रतिसुखोंके भोगनेकी आशारूपी फाँसी ही आज हमारे सर्व दुःखोंका कारण होगई है। अतएव आप हमारे साथ अपने हाथोंसे हाथ मिला कर अपनी प्रेम-पात्री गोपिकाओंके सामने ही आनन्दका भोगकरो॥८॥

प्रीताभिः कामिनीभिर्यदि चरसि सुखं प्राप्नुपं वीतदुःख-
स्त्वं मे नाथ प्रियं मे महदिति विदितं माऽस्तु मे स्त्रीत्वदोपः।
विश्लेपो दुस्सहो मे पशुगणमनु मायाहि कंसेरितैस्ते
नाना युद्धानि च स्युर्निशिचरनिवहैर्हन्त मेऽनुव्रजोक्तिम् ॥९॥

हे प्रभो! आपकी रति क्रीड़ासे प्रसन्न हुई कामिनियोंके साथ यदि काम सुखको भोगोगे तो सर्वप्रकारके आपके दुख नष्ट हो जावेंगे, आप मेरे स्वामी हो। मैं इस बातको सत्य कहती हूँ, कि आपके इस आचरणसे मुझे बड़ी ही प्रसन्नता होगी, मैं तो ईश्वरसे यही प्रार्थना करती हूँ कि अनेक दोपोंसे भरा स्त्रीका शरीर वह मुझे न दे। और आपका वियोग दुख तो मुझसे सहा नहीं जाता। इसी लिए मैं प्रार्थना करती हूँ, कि आप गौ चराने न जाँय, क्योंकि वहाँ पर कंसके भेजे हुए राक्षसगणोंके साथ आपको बड़े बड़े युद्ध करने पड़ेंगे तो इससे आपको बड़ी विपत्तिका सामना करना पड़ेगा। अतएव मेरे कहनेको मानकर आप यहीं रहिये॥ ९ ॥

गोपानां नायको नः कुलमणिरसि भो देव बिम्बाधरस्त्वं
क्रूराः कंसेरिताश्चाप्यसुरभटगणा मौनिभीत्यै चरन्ति।
एकस्त्वं निस्सहायो बलमपि च विहायैव रामं प्रयासि
स्खेशास्तेस्युर्वचो मे शृणु परमपदार्तिक वरं गोपकृत्यम् ॥१०॥

हे देव देव! आप गौवों के स्वामी होते हुए हमारे समस्त कुल के स्वामी हो। हे बिम्बाधर कंसके भेजे हुए प्रबल असुरगण अपि

मुनियों को डराने के लिये वनमें घूमते रहते हैं। और तुम अकेलेही अपने बड़े भाई बलरामको छोड़करभी असहाय होके गौचराने जाते हो। इससे आपको बड़े दुखोंका सामना करना पड़ेगा। इसलिए हमारी बात सुनो कि क्या परमपदके सुखोंसे भी अधिक सुख आपको इन गौओंके चरानेके कार्य में आरहा है? ॥१०॥

असमद्गोपान्वयेन्दोश्चरणयुगलमेवात्र बिम्बाधरस्य,
स्तोतुं चोदारभावश्शठरिपुरवदत्सूक्तिमाला सहस्रं।
गापीनां वाक्यरीत्या पशुगणमनुमागच्छ कान्तां विहाय,
श्रीमन्मामित्यपीदं दशकमपि न येद्वावकांस्तस्य गोष्ठीम्॥११॥

हमारे गोपकुलके चन्द्रमा लालहोठ वाले कृष्णकी स्तुति करने के लिए उदार हृदयके शठकोपसूरिने सुन्दर सूक्तियोंकी माला रूपी सहस्रगीति कही। हे कृष्ण हम प्राण प्यारियोंको छोड़कर गौओंके पीछे मत जावो इस प्रकार गोपियोंके वाक्योंकी रीतिको लेकर इस कहे हुए दशकको जो पाठ करेंगे वे अवश्यही भगवान् श्रीगोपीनाथ की गोष्ठीमें सम्मिलित हो जायँगे ॥११॥

इति श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके तृतीयदशकं समाप्तम्।



अथ श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके चतुर्थदशकारम्भः।

इस दशकमें आल्वार यह कहते हैं कि उभय विभूति (नित्य विभूति और लीला विभूति) के स्वामी और स्वाश्रितोंके लिये जो अत्यन्त सुलभ हैं, उस कृष्णके चरणोंको भक्तियोगद्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। अतएव उनके चरण प्राप्तिके लिये उसकी भक्ति करना ही उचित उपाय है।

नीलाम्बुदाभ तनुरब्ज विलोचनोऽसौ,
यः पचभूतमय एव च चक्रपाणिः।
सूरीश्वरैरपि च तस्य सुकीर्तितस्य,
दामोदरस्य चरणौ ननु भक्तिलभ्यौ ॥१॥

जो प्रभु पंचभूतों (पृथ्वी,जल वायु,आकाश,अग्नि)में व्याप्त होरहा है। जिसकी नीलमेघके समान श्यामसुन्दर मूर्ति है। जिसके कमलके समान सुन्दरनेत्र हैं, और जो स्वाश्रितोंकी रक्षाके लिये हाथमें चक्र धारण करता है। नित्य सूरिगण जिसके गुणोंका निरन्तर कीर्त्तन किया करते हैं। उस भक्तवत्सल दामोदर भगवान्के चरण भक्ति द्वाराही प्राप्त हो सकते हैं ॥१॥

दिव्यामराधिपतिरेव निजप्रभावाद्,
दृश्योनयस्तु भुवि भक्तिवियुक्तचित्तैः।
नित्यं श्रिया सहित एव चकास्ति मूर्त्या,
पद्माम्बकोऽस्त्यघहरो मम नायकोऽसौ ॥२॥

जो कमल लोचन प्रभु लक्ष्मीके सहित सुन्दर मूर्तिरूपसे सदा ही परमपदमें विराजमान रहते हैं, जो नित्य मुक्तोंके अधिपति हैं, जिनको भक्तिसे शुद्ध किए हुए मनके बिना अपने बुद्धिबलसे भूमिमें कोईभी नहीं जान सकता। जो अपने आश्रितोंके पापोंको नाश करने वाले हैं, वे ही प्रभु हमारे स्वामी हैं ॥२॥

चक्रं बिभर्ति! ननु रक्षति नस्ततोऽद्य,
ध्वस्तं समस्त भवदुःखमपि क्षणान्नः।
हानिर्नकाचिदपि नः किल जातु च स्या-
न्नीलापतेस्तु चरणौ शिरसा वहामः ॥३॥

जो प्रभु हमारी रक्षा करनेके लिएही सदा चक्रको धारण करता है। उसीके चरणोंकी भक्तिके प्रभावसे आज हमारे संसारके सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण दुःख नष्ट होगये हैं। और भविष्यमें भी हमारी इसी चरण भक्तिके प्रतापसे किसीप्रकार की हानि होनेकी सम्भावना नहीं है। इसी कारण हम नीलापति परमात्माके चरणोंको अपने सिर पर धारण करते हैं ॥३॥

धृत्वा च तस्य चरणौ सिरसाऽस्मिधन्य-
स्तंसूरिभिश्च नरपन्नशयं सुसेव्यम्।

श्रीशैलवासमपि मे हृदि नित्यवासं,
निश्चित्य चास्मि कृतकृत्य इहाद्य मान्यः ॥४॥

जिस प्रभुकी सूरि (पंडित) गण नित्य सेवा किया करते हैं, जो प्रलय समुद्रमें अकेलाही वटपत्रके ऊपर शयन करताहै, उसी प्रभु के चरणोंको अपने सिर पर धारण करके मैं धन्यताको प्राप्त होगया हूँ। जो प्रभु श्रीशैल (वेंकटाचल) पर नित्य वास करता है। उसी प्रभुने मेरे हृदयमें-भी नित्यवास करनेका निश्चय किया है। इस बातको जानकर मैं कृत्य कृत्य हो गया हूँ और इसीकारण संसार के अन्य लव्धी मेरा सम्मान करने लग गये हैं ॥४॥

मच्चित्तवासिनमिमं सततं मुरारिं,
निश्चित्य चक्रधरमेव च मायिवृत्तम्।
जानामि दूरगमिमंहि हरिं परेषां
सत्यं त्वसत्यमपि शेषशयं प्रियं नः ॥५॥

यद्यपि अनेक माया चरित्र करने वाला चक्रधारी मुरारी मेरे चित्तमें निरन्तरही वास करता है। इस बातको मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ। और मुझे यहभी विश्वास है कि अन्य ढोंगी भक्तोंके चित्तसे वह हरि बहुतही दूर है। हमारी इस बातको अज्ञानी जन सत्य समझें अथवा असत्य समझें परन्तु वह शेषशायी प्रभुही हमारे लिये तो अत्यन्त प्रिय हैं ॥५॥

शेषे शयानमपि भक्तिजुषां दयालुं,
पार्श्वे वहन्तमपि तं तरुणेन्दुचूडम्।
अस्मत्प्रभुं ननु हरिं परमं भजेऽहं!
तत्पादपद्मयुगलं प्रणमामि नित्यम् ॥६॥

जो प्रभु अपनी बग़लमें चन्द्रचूड़ (शिवजी) को धारण करते हुए ही शेषजीके ऊपर शयन करते हैं। जो भक्तोंके ऊपर सदा दयालु रहते हैं। जो हमारे सर्वप्रकारसे स्वामी हैं। और जो हरि सर्वप्रकारके

पापोंके हरण कर्त्ता हैं, उन्हींके चरणकमलयुगलको प्रणाम करके मैं नित्य प्रति उस प्रभु की सेवा करता हूँ ॥६॥

माणिक्य भास्वर तनुर्मधुसूदनोऽसौ
नाथो ममास्ति कनकप्रभचक्रधारी ।
भक्तात्मनां हि भवदुःखविनाशको नः
प्राप्यं परात्परममुं भज चित्त नित्यम् ॥ ७ ॥

हे मेरे मन ! जो मेरा स्वामी सुवर्णके समान रक्त ज्वालाओंसे व्याप्त चक्रको धारण करता है। जिसका नीलमणिके समान प्रकाशमान शरीर है। जो आश्रितजनोंके विरोधियोंको मधुदैत्यके समान नाश करता है। और जो अपने चरणोंकी भक्ति करने वाले सज्जनोंके संसारमें होने वाले समस्त दुःखोंका नाश कर देता है। जो समस्त देवोंसे श्रेष्ठ है, जिसको अपने कल्याण करनेके लिए संसारके चराचर प्राणि प्राप्त किया करते है, उसीका तुम निरन्तर भजन करो ॥ ७ ॥

श्रीचक्रपाणि रमरातिग-सुप्रभाव-
स्संहारकोऽस्ति जगतां स च सर्गकर्त्ता ।
गोपालको गिरिधरो निजबाहुवीर्यात्
तत्पादसंस्मरणतश्शुभ मेहि चित्त ! ॥ ८ ॥

हे मेरे मन ! जो प्रभु हाथमें चक्र धारण करके सम्पूर्ण देवताओं को आश्चर्यमें डालने वाले महा प्रभावशाली कर्मोंको करते हैं, और समस्त जगतकी सृष्टि और संहारको यथा समय किया करते हैं। जिस प्रभुने अपने बाहुओंके बलसे गोवर्द्धनपर्वतको धारण करके गौ और गोपोंकी रक्षा की थी। उन्हींके चरणोंके स्मरणसे तुम्हारा सर्वप्रकारसे कल्याण होगा ॥ ८ ॥

भक्त्या भजन्तु सततं च जना इतीदं
प्रागेव हि प्रकटितं परमेण पुंसा ।
वेदान्त तत्त्वमिति तत्कमतोऽद्य दृष्टं
तत्पादपद्मयुगलं सकला यशान्त्यै ॥ ६ ॥

हे भक्तजनो! परमदयालु परमपुरुषने वेदान्त (उपनिषद्) रूपी समुद्रका मंथन करके परम तत्त्वरूपसे यह बात प्रगट की है, कि निरन्तर भक्तिपूर्वक मेरे चरणोंकी सेवा करना ही सर्वपाप निवर्तक और कल्याणकारक है। प्रभुका वही उपदेश हमने क्रमसे (धीरे-धीरे) प्रत्यक्षमें देख लिया है, कि उसके चरणयुगलोंका भजन ही सर्वप्रकारके पापोंका नाश करनेके लिए समर्थ है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उपनिषदोंका मंथन करके भक्तोंके कल्याणके लिए गीताशास्त्रका प्रकाश कियो, और उस गीतामें ही सार रूपसे आपने भक्तजनोंको यह सरल उपदेश दिया है कि—

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः॥

अर्थात् हमारे चरणोंकी शरणागतिही प्राणीमात्रको सर्वपापोंसे छुड़ा कर परमकल्याणका भाजन बना सकती है, इसी भावको आव्वारने इस गाथामें कहा है॥ ६॥

सम्पूजनाय च यथाविधि चित्तदार्ढ्यात्
श्रीमाधवस्य सततं शुभधूपदीपैः
पुष्पैश्च तीर्थसहितै रमरा हि सज्जा—
स्युस्तस्य पादयुगलं भजतां शरण्यम्॥ १०॥

हे मेरे मन! जिस लक्ष्मीपति भगवानका विधिपूर्वक पूजन करनेके लिए सुन्दर धूप दीप पुष्प जल आदि सामग्रीको लेकर दृढ़ विश्वास पूर्वक नित्यमुक्त सदाही तैयार रहते हैं। उसी प्रभुके चरण युगलोंका भजनही सर्वप्रकारके पापोंसे प्राणियोंकी रक्षा करने वाला हो सकता है॥ १०॥

साक्षात्परात्परममुं दृढ़माहुमीशं
प्राप्तुं हरिं बकुदिनाडुदितश्शठारिः।
साहस्रमाह दशकं पठतां तदेतत्
कृष्णस्य पादयुगलं परमं शरण्यम्॥ ११॥

हमारा स्वामी श्रीहरि जो भूदेवीका प्राणप्यारा पति है, जिसने स्वाश्रितोंके विरोधियोंको डरानेके लिए मतवाले कुवलियापीड़ हाथीका विध्वंस किया था, वह नारायणही समस्तसंसारका आदिकारण है ॥२॥

स्वयमेव जगत्सर्वं सृष्ट्वा चोद्धृत्य तत्स्वयम् ।
भुक्त्वा च पुनरुद्गीर्य सर्वं रक्षति च स्वयम् ॥ ३ ॥

जगत्का कारण यह नारायण ही अपनी इच्छासे जगतको रच कर और प्रलयमें डूबे हुए उसका उद्धार करके, तथा प्रलय आने पर सबको खाकर प्रलय बीत जानेपर सबको उगलकर सर्वप्रकारसे समस्त संसारकी रक्षा करता है ॥ ३ ॥

शेषे स्तोत्रार्हसद्वक्त्रे शयानं कारणार्णवे ।
रक्षकं प्राप्य तत्पादौ पुष्पैरर्च्चयतानिशम् ॥ ४ ॥

हे भक्तगणो ! जो प्रभु स्तुति करने योग्य उत्तम सहस्रमुखोंको धारण करनेवाले श्रीशेषजीके ऊपर कारणसमुद्रमें शयन करताहै,जिसके चरणकमल प्राणियोंकी सर्वप्रकारसे रक्षा करते हैं, उसी प्रभुके चरणोंकी पुष्प जलादि लेकर निरन्तर अर्चना करो ॥ ४ ॥

नव्यः प्रतिदिनं पुष्पैराराधयत तं हरिम् ।
तन्नामगायत प्रीत्या-मोक्ष एव भवेद्ध्रुवम् ॥ ५ ॥

हे भक्तजनो ! आप लोग अपनी आत्माके कल्याणके लिए खिले हुए नये नये पुष्पोंसे प्रतिदिन श्रीमन्नारायणकी ही आराधना करो, और प्रेमके साथ उस नारायणके नामोंका ही गान करो इससे आपका अवश्य मोक्ष हो जायेगा ॥ ५ ॥

अतसी गुच्छसच्छायः पूतना स्तन्यपानकृत् ।
नित्यं वसति हि प्रीत्या माधवो वेंकटाचले ॥ ६ ॥

हे भक्तगणो ! जिस प्रभुने पूतना नामकी राक्षसीके स्तनोंके दूधका पान करके उसे मारा था, और जो प्रभु अलसीके फूलोंकीसी सुन्दर कान्ति धारण करके बड़े प्रेमसे श्री वेंकटाचल पर नित्यवास करता है। उसके चरणकमलोंकी सेवा ही आपको मोक्ष देगी ॥ ६ ॥

पिलुदिनाडु (कुरुकापुरी) में जन्म धारण करने वाले शठकोप सूरिने सर्वदेव श्रेष्ठ अत्यन्त बलवान भुजावाले श्रीहरिको साक्षात् प्राप्त करनेके लिए सहस्रगीति कही। उसमें इस दशकको जो पढ़ेंगे उनकी सर्व प्रकारसे श्रीकृष्णके चरणयुगल रक्षा करेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके चतुर्थदशकं समाप्तम्।



अथ श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके पंचमदशकारम्भः।

इस दशकमें, जो सज्जन भक्तियुक्त होकर उस प्रभुका ध्यान करते हैं, और निरन्तर श्रीहरिकी उपासनामें लगे रहते हैं, उनके इस कार्यमें सहायक होकर उन्नति प्रदानकरने वाला श्रीनारायण मूलमन्त्र ही है, यह कहते हैं।

कृष्णपादाम्बुजद्वन्द्वं प्राप्तुं कुतुकिनान्तु वः।
चिन्तनीयं सदा नाम नारायण इति ध्रुवम् ॥ १ ॥

हे भक्तगणो! आप लोग संसारके अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगते भोगते यदि घबड़ागये हो, और यदि उन दुःखोंकी निवृत्तिके लिए भगवान श्रीकृष्णके चरणकमल युगलको प्राप्त करनेकी तीव्र लालसा आपके मनमें लगी है, तो आपको यह कार्य परमावश्यक होगा कि उस प्रभुके नामोंमें सबसे श्रेष्ठ नारायण नामका ही सदा आप जप किया करें।

यह बात वेद शास्त्रों तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके वाक्योंसे सिद्ध है, कि संसारमें समस्त विज्ञानोंका सर्वाधार एक मात्र वेद है, और वह वेद सूक्ष्मरूपसे अष्टाक्षरमें स्थित है। और वह अष्टाक्षर प्रणवमें स्थितहै, और प्रणव (अ)अक्षरमें स्थितहै। अतएव प्रणवार्थ विवरणरूप नारायण अष्टाक्षर मन्त्र ही सर्व मन्त्रोंमें श्रेष्ठ और कल्याणकारक है। इसी बातको यह श्लोकभी दृढ़तासे पुष्ट करता है

सर्वार्था वेद गर्भस्था वेदाश्चाष्टाक्षरे स्थिताः।
अष्टाक्षरस्तुप्रणवे अकारे प्रणव स्थितः ॥ वृद्धहारीत ॥ १ ॥

नारायणोऽस्मदीशोऽयं भूदेवीवल्लभो हरिः।
मत्तवारणविध्वंसी कारणं जगतां स्वयम् ॥ २ ॥

हमारा स्वामी श्रीहरि जो भूदेवीका प्राणप्यारा पति है, जिसने स्वाश्रितोंके विरोधियोंको डरानेके लिए मतवाले कुवलियापीड़ हाथीका विध्वंस किया था, वह नारायणही समस्तसंसारका आदिकारण है ॥२॥

स्वयमेव जगत्सर्वं सृष्ट्वा चोद्धृत्य तत्स्वयम् ।
भुक्त्वा च पुनरुद्गीर्य सर्वं रक्षति च स्वयम् ॥ ३ ॥

जगत्का कारण यह नारायण ही अपनी इच्छासे जगत्को रच कर और प्रलयमें डूबे हुए उसका उद्धार करके, तथा प्रलय आने पर सबको खाकर प्रलय बीत जानेपर सबको उगलकर सर्वप्रकारसे समस्त संसारकी रक्षा करता है ॥ ३ ॥

शेषे स्तोत्रार्हसद्वक्त्रे शयानं कारणार्णवे ।
रक्षकं प्राप्य तत्पादौ पुष्पैरर्चयतानिशम् ॥ ४ ॥

हे भक्तगणो ! जो प्रभु स्तुति करने योग्य उत्तम सहस्रमुखोंको धारण करनेवाले श्रीशेषजीके ऊपर कारणसमुद्रमें शयन करताहै, जिसके चरणकमल प्राणियोंकी सर्वप्रकारसे रक्षा करते हैं, उसी प्रभुके चरणों की पुष्प जलादि लेकर निरन्तर अर्चना करो ॥ ४ ॥

नव्यः प्रतिदिनं पुष्पैराराधयत तं हरिम् ।
तन्नामगायत प्रीत्या मोक्ष एव भवेद्ध्रुवम् ॥ ५ ॥

हे भक्तजनो ! आप लोग अपनी आत्माके कल्याणके लिए खिले हुए नये नये पुष्पोंसे प्रतिदिन श्रीमन्नारायणकी ही आराधना करो, और प्रेमके साथ उस नारायणके नामोंका ही गान करो इससे आपका अवश्य मोक्ष हो जायेगा ॥ ५ ॥

अतसी गुच्छसच्छायः पूतना स्तन्यपानकृत् ।
नित्यं वसति हि प्रीत्या माधवो वेंकटाचले ॥ ६ ॥

हे भक्तगणो ! जिस प्रभुने पूतना नामकी राक्षसीके स्तनोंके दूधका पान करके उसे मारा था, और जो प्रभु अलसीके फूलोंकीसी सुन्दर कान्ति धारण करके बड़े प्रेमसे श्री वेंकटाचल पर नित्यवास करता है । उसके चरणकमलोंकी सेवा ही आपको मोक्ष देगी ॥ ६ ॥

माधवस्य शुभं नाम संकीर्तयथ चेत्स्वयम् ।
भूतं भव्यं च पापं वस्सम्भवेन्नैव जातु चित् ॥ ७ ॥

हे भक्तगणो ! आप लोग यदि स्वयं सच्चे हृदयसे भगवान माधवके शुभनामोंका कीर्तन करोगे तो आपके पहलेके किये हुए पाप और भविष्यमें होने वाले सर्वप्रकारके पाप अवश्यही नष्ट हो जायेंगे ॥७॥

नोपसर्पन्ति दुःखानि नीलाम्बुदनिभस्य तत् ।
नाम ये कीर्तयन्त्येते सर्वे स्युरमराः स्वयम् ॥ ८ ॥

नीलमेघके समान श्यामसुन्दर विग्रहवाले प्रभुका जो भक्तगण नाम संकीर्तन करते हैं, उनकेपास किसीप्रकारके भी दुःख कभी नहीं आते और वे स्वयं नित्यमुक्त होकर परमपदमें वास करते हैं ॥ ८ ॥

देवानां दुर्लभं विष्णुं भक्तानां सुलभं हरिम् ।
ये भजन्ति स्वयं प्रीत्या तेषां पापं न सम्भवेत् ॥ ९ ॥

जो प्रभु भक्ति रहित देवताओंको भी दुर्लभ है, वही प्रभु भक्ति वाले प्राणियोंको अति सुलभ होजाता है। इस हरिका जो प्रेमके साथ स्वयं भजन करते हैं, उनके सर्वप्रकारके पाप छूट जातेहैं॥९॥

पलायन्ते हि पापानि चाज्ञानरुचिवासनाः ।
आराध्य नूतनैः पुष्पैर्नाथं चिन्तयतानिशम् ॥ १० ॥

जो पुरुष हमारे स्वामीका नवीन पुष्पोंसे आराधन करके निरंतर चिन्तन करते हैं, उनके सर्वप्रकारके पाप और अज्ञान और सांसारिक विषयोंकी रुचि तथा पूर्व जन्मकृत पाप कर्म वासना ये बहुतही शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ १० ॥

श्रीपते करुणापात्रं शठारिस्वदन्मुनिः ।
साहस्रे दशकं चेदं भक्तानां फलमुत्तमम् ॥ ११ ॥

लक्ष्मीपतिके परमकृपापात्रशठकोपमुनिने सहस्रगीतिको कही है। यह दशक पाठ करने वाले भक्तोंको सर्वोत्तम फलकी प्राप्ति करा देगा ॥ ११ ॥

इति श्र सहस्रगीतौ दशमशतके पञ्चमदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके षष्ठदशकारम्भः ।

इस दशकमे आल्वार यह कहते है कि ईश्वर हम लोगोंको उद्धार करके स्वीकार करनेका सदा ही तैयार रहते हैं, किन्तु वह हमारा तभी उद्धार करेंगे जब कि हम उनके उपदिष्ट मार्गसे चलेंगे । इसी लिए वह प्रभु तिरुवाट्टारु नामके दिव्य देशमें आकर बसे हैं। उनकी चरण सेवा ही हमारा कल्याण करेगी ।

कारुण्याश्रय भक्तवर्यसरणे दासस्य मे श्रीहरि-
श्चक्री स्वां करुणां प्रदर्शयति च स्वाभीष्ठरीत्या मम ।
नाहं जन्म तु कामयेऽत्र विपुले मोहावहे भूतले ।
भ्रान्तिं सन्त्यज मानसाद्य चपल ! प्राप्यैव वाट्टार प्रभुम् ॥१॥

हे मेरे मन ! परम कृपालु परमात्माके भक्तवरोंकी दासवृत्तिमें रहने वाले मेरे लिए चक्रधारण करने वाले श्रीहरि मुझे अपने अनुकूल करनेके लिए मेरेऊपर बहुतही कृपा दिखारहे हैं और अनेक प्रकार के मोहोंको उत्पन्न करने वाले इस विपुल भूतलमें मै अब जन्म लेना नहीं चाहता । इसलिए तू अब अपनी चंचलता और अनेक प्रकारकी भ्रान्तिको छोड़दे । क्योंकि सर्व प्रकारसे हमको प्राप्त होने योग्य वाट्टार दिव्य देशके स्वामी उपस्थित हुए हैं ।

श्री वाट्टार नामका दिव्यदेश मलयवाड़ देशमें इसी नामसे प्रसिद्ध है, इसको संस्कृतमें, आदिअनन्तस्थल, कहते हैं । यहाँ पर आदि केशव भगवान पश्चिममुख होकर शेष शयनके ऊपर विराजमान हैं॥१॥

श्रीवाट्टारपुर-नायकस्य चरणौ नत्वा भयध्वंसकौ,
नाथं केशवमच्युतं वयममी संकीर्त्य गीतैश्चतम् ।
ध्वस्तप्राक्तनकर्मपाशनिवहा स्त्यक्त्वा च संसारिभि-
स्सङ्गं श्रीहरि माश्रितारशृणु मनो ! नारायणं श्रीधरम् ॥२॥

हे मेरे मन ! सुनोतो सही ! हमारा अब यह दृढ़ विचार हो गया है कि श्रीवाट्टारपुरके स्वामी भगवान श्रीआदिकेशवके संसार भयको नाश करने वाले चरणोंको प्रणाम करके उस अविनाशी अपने स्वामी का ही हम गीत गाकर संकीर्तन करें । और संसारियोंको छोड़कर

शोभाधाम भगवान् श्रीहरि श्रीमन्नारायणका आश्रयलें। इसीसे हमारे सर्व प्रकारके प्राचीन कर्मों की फाँसी कट जायेगी ॥ २ ॥

भो भो ! मानस संश्रिताः किल वयं नारायणं श्रीधरं,
तन्नामावलिकीर्तनैस्स तु हरिर्वाट्टार् निवासी स्वयम् ।
आगत्यात्र परंपदं प्रियतमं नः प्राप्यमेवाव्ययं,
दातुं चास्तिहि साभिलाष इदमेवास्तु प्रियं नः फलम् ॥३॥

हे मेरे मन ! हम लोगोंने निश्चयपूर्वक भगवान् 'श्रीलक्ष्मीपति नारायणका ही आश्रय उनके नामोंका कीर्तन करके लिया है। हमारे लिए मनोभिलषित अविनाशी परमपद देनेके लिए ही आदि-केशव भगवान् श्रीवाट्टार नामके दिव्यदेशमे आकर निवास करने लगे हैं। और हमें उनके दर्शनोंसे यह निश्चय हो गया है, कि वे हमारे को परमपदमें पहुँचानेकी अभिलाषा उनके मनमें है, अतएव हमारे लिए यह बड़ी ही प्रसन्नताकी बात है ॥ ३ ॥

हे सच्चित्त ! खलं हिरण्यकशिपुं भित्वा च वक्षस्थले,
श्रीवाट्टार् प्रभुरेष भाति समरे तान् पांडवान् भारते ।
धृत्वा रक्षितुमायुधं च परमस्स्वामी स्थितो मे हृदि,
प्राकाश्यं द्रविडागमस्य रचयन् दिव्यं कृपावान्मयि ॥४॥

हे मेरे सुन्दर चित्त ! जिस प्रभुने दुष्ट हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थल को विदारण करके मारा था और महाभारत संग्राममें पाँडवोंकी रक्षा करनेके लिए जिसने चक्रको ग्रहण किया था, और जो मेरे हृदयमें स्थित होकर द्रविड़वेद (श्रीसहस्रगीतिको) रचने की ज्ञान शक्ति देरहा है। जो हमारा सर्व श्रेष्ठ स्वामी है, वही प्रभु हम लोगोंके ऊपर कृपा करने के लिए श्रीवाट्टारपुरमें आकर विराजमान हुआ है ॥४॥

दिव्यंधामपरं प्रयातुमपि नस्सन्मार्गदायी हरिः ·
श्रीवाट्टार प्रभुरेष पूर्वमवदद्यां रीतिमेव स्वयम् ।
तां प्राप्याद्य तु तार्क्ष्यवाहचरणौ तावेव नौमि प्रियौ,
भाति श्रीतुलसीधरो मम शिरस्येवं हता दुर्गतिः ॥५॥

जो प्रभु हम लोगोंके लिए परमदिव्यधाम देनेके समय सन्मार्ग (अर्चिरादि मार्ग)को दिखाते हैं। और उस प्रभुने स्वयं हम लोगोंको अपने चरणोंकी शरणमें जानेकी जो रीति बतलाई थी। उसी विधिको जानकर हम आज उस गरुड़ध्वज भगवान्के दिव्य चरणोंको प्रणाम करते हैं। जो हमारे लिए अत्यन्त ही प्रिय है। और जो प्रभु तुलसी की माला धारण करके मेरे मस्तक पर प्रकाशमान हो रहा है। वही इस वाद्दार् नामके दिव्य देशमें विराजमान है। अतएव इसीकी सेवासे हमारे सर्वप्रकारके कष्ट दूर हो गये ॥ ५ ॥

तत्पाम्बुजयुग्ममस्ति सततं मन्मस्तके ! भाति मे,
नाथः पद्मविलोचनो मम हृदि स्थैर्यं गतस्सर्वदा ।
श्रीवाद्दार् नगरेऽस्ति शेषशयनो ! मत्तद्विपध्वंन
स्तस्याङ्घ्रिद्वयमेव संततममी संश्रित्य धन्या वयम् ॥६॥

जिस प्रभुके चरणकमलयुगल मेरे मस्तक पर सदा प्रकाशमान रहते हैं। और कमलदललोचन जिस मेरे स्वामीने मेरे हृदयमें अपना दृढ़ आसन जमा लिया है। मतवाले हाथीका ध्वंस करने वाले वे ही प्रभु श्रीवाद्दार् नगरमें शेषके ऊपर शयन करके विराजमान हैं। उस प्रभुके ही चरणयुगलकी निरन्तर शरण लेकर हम लोग धन्यभाग्य हो गये हैं ॥ ६ ॥

दिव्यं भूषण भूषितं पदयुगं संश्रित्य धन्या वयं,
गोविन्दो हृदि सन्ततं वसति मे ! पाथोधिपर्यावृते ।
देशे दक्षिणदिग्भवेऽस्ति तिलकप्रायेऽत्र वाद्दार्पुरे,
दिव्ये रत्नमयेऽस्य पादतुलसीमेऽङ्गे सुगन्धावहा ॥७॥

जो प्रभु मेरे हृदयमें निरन्तर वास करता है, इसके दिव्य भूषणों से भूषित चरणयुगलोंका आश्रय लेकर हम धन्यभाग्य हो गये हैं। यही गोविन्द प्रभु समुद्रसे घिरे हुए दक्षिण दिशामें बसने वाले देशोंमें प्रधान दिव्य रत्नोंसे युक्त श्रीवाद्दार्पुरमें आकर बसता है। इसके चरणोंकी प्रसादी तुलसीने मेरे समस्त अंगोंको सुगन्धित कर दिया है ॥ ७ ॥

सौगन्ध्यान्वितमूर्तिरेष तुलसी भास्वत्किरीटो हरि–
र्वीरश्रीयुतचक्रपाणिरतुलो नीलाञ्जनाद्रिप्रभः ।
श्रीवाद्दारपुरवासिनोऽस्य किमहं सत्कारकृत्यं शुभं,
कृत्वाऽस्म्यद्य कृती ? सदाऽपि हृदिमे यस्माच्च वाभात्यसौ ॥८॥

जो प्रभु सुगन्धिसे भरी हुई तुलसीकी मालाको चमकते हुए किरीट पर धारण करता है। और जो हरि वीर लक्ष्मीसे शोभित होकर हाथमें चक्रधारण करके सर्व श्रेष्ठताको प्राप्त हुआ है। जिसकी दिव्य मूर्ति अंजनके (सुरमा) पर्वतके समान है, और जो श्रीवाद्दारपुरमें निवास करता है। इस प्रभुकी सर्वोत्तम कौनसी सेवा करके मैं आज कृत कृत्य हो जाऊँगी। क्योंकि यह प्रभु निरन्तर ही मेरे हृदयमें भले प्रकारसे विराजमान हो रहा है ॥ ८ ॥

लक्ष्म्या वक्षसि भास्वरोऽयमधुना वाद्दारपुरे श्रीधरः
तार्क्ष्यारूढ़ इहास्ति शीतलगुणे नित्यं सुसेव्यो नृणाम् ।
युद्धे राक्षस संघनाशकृदसौ चित्ते ममास्ति स्वयं,
निश्चिन्तो विलसत्यहो ! न किल मां त्यक्त्वा प्रयात्यन्यतः॥९॥

जो प्रभु अपने वक्षःस्थलमें लक्ष्मीको धारण करके प्रकाशमान होता है। वही जल प्रवाहोंसे अति शीतल इस श्रीवाद्दारपुरमें गरुड़ पर चढ़ा हुआ सर्वशोभायुक्त रूपसे विराजमान है। जिसकी सज्जन गण नित्य ही सेवा करते हैं, इसी प्रभुने युद्धमें राक्षस समूहोंका नाश किया था, और अब मेरे चित्तमें स्वयं निश्चित हो कर आनन्द क्रीड़ा कर रहा है। अब उसने मेरे हृदयमें इतना प्रेम कर लिया है कि मुझे छोड़कर दूसरे स्थानमें एक क्षणभरको भी नहीं जाता ॥ ९ ॥

कैंकर्यं सततं भवेदिनि च तत्प्रत्यर्थिजन्मापहः
श्रीमान् भाति हिरण्यकासुरतनुच्छेदी च शेषेशयः ।
सेवां प्राप्य परां तदा नरहरिर्भूत्वा च भक्तावनो,
योवाद्दारनगरेऽस्त्यसौ हि महतां सेवाफलं दर्शयन्॥१०॥

जो प्रभु भक्तोंसे अपना निरंतर कैंकर्य करानेके लिए उसके विरोधी जन्म मरणोंकी फाँसीको काट देता है। जिसने भक्तोंकी रक्षा करने के लिए नारसिंह रूप धारण करके हिरण्यकशिपुनामकेदैत्यका वक्षःस्थल विदीर्ण करके उसे मारा था। जो प्रभु सर्वोत्तम सेवाको स्वीकार करके लक्ष्मीका पति होकर परमपदमें विराजमान होता है। वही वाहार् नगरमें महात्माओंको सेवारूपी फल दिखाता हुआ आकर विराजमान हुआ है ॥ १० ॥

वीरश्रीयुत पादपङ्कज युगंस्वीयं प्रदर्श्य स्वयं
नाना दुर्गतिनाशको विजयसे वाहारपुरे श्रीधरः ।
इत्येवं दशकं त्विदं शठरिपुस्साहस्रके द्राविडे
श्राव्यं चाह हि सूरयोऽपि तदिदं श्रुत्वा न तृप्ता दिवि ॥११॥

जो प्रभु शूरवीरकी शोभाको धारणकरके अपने चरणकमलयुगलको दिखाकर भक्तजनोंके नानाप्रकारके संकटोंको नाश करते हैं, और जो लक्ष्मीको धारण करके श्रीवाहारपुरमें सर्वश्रेष्ठरूपसे विराजमान है, उस प्रभुका भलेप्रकारसे महत्व बतलाने वाले इसदशकको शठकोपमुनिने द्राविड भाषामयी सहस्रगीतिमें कहा है, अत्यन्त श्रोत्र सुखदायी इस दशकको सुननेसे परमपदवासी दिव्यसूरियोंकी भी तृप्ती नहीं होती ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके षष्ठदशकं समाप्तम् ।

अथ श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके सप्तमदशकारम्भः ।

इस दशकमें आल्वारने यह प्रतिपादन किया है, कि उस प्रभुके सौशील्यादि-गुणोंमें आग्रह न करके केवल उसकी दास्यवृत्तिको ही करो ? और अपनी सुललित कविताकला द्वारा उसीकी स्तुतिका वर्णन करो ।

मायी वंचक सर्वभौम उदितो मायाकविर्मानसे
मे जीवेऽपि किल प्रविश्य रहसि स्वैरं च तत्संगतः
भुक्त्वा तन्मम चित्तचेतनयुगं स्वैरं स्वयं सर्वतः
पूर्णो भाति वनाचलेऽद्य कवयश्लाघ्यास्थ सेवान्विताः ॥१॥

अति मधुर और ललित काव्यकी रचना करने वाले कविगणो ! अब अनेक माया रचने वाला ठगराज हरि ही काव्य रचनेके लिए मेरे मन और मेरी आत्मामें स्वयं घुसकर उसमें मिल गया है। जो मेरे चित्त और चेतन इन दोनोंको स्वयं सर्वप्रकारसे (स्वीकार करके) खाकर पूर्ण होगया है,वही इस वनाचल पर आज विराजमान हो रहा है। उसीकी सर्वप्रकारसे काव्य द्वारा सेवा करके आप लोगोंकी कवि-कीर्ति विस्तृत होगी ॥ १ ॥

भुक्त्वा जीवमिहाखिलं ममहरिः स्वैरं स्वयं पूर्णए
वाऽऽस्ते सर्वजगन्मयोपि परितस्सर्वात्मवर्गात्मकः ।
एवं चाहमपि स्वयं भवति च स्तोतापि मे मात्त्विकं
दुग्धं चेक्षुरसोऽमृतं च वनशैलोऽपि भाति स्थिरः ॥ २ ॥

जो इस वनाचल पर स्थिररूपसे विराजमान हो रहा है,वही हरि मेरे जीव प्राणेन्द्रियादिकोंको स्वयं खाकर पूर्णरूपसे होगया है। और वही सब ओरसे समस्त वस्तुओंमें व्यापक होकर समस्त संसारमें प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार मेरे भीतर बैठकर सहस्रगीति द्वारा अपनी स्तुति करने वाला वह स्वयं ही है। मेरे लिए तो वह शहद (मधु) दूध ईखके रस और अमृतके समान अत्यन्त स्वादिष्ट है ॥ २ ॥

भुक्त्वा मां परितोऽपि मेऽद्य तनुमप्याविश्य मायामयोः
जीवे मेऽपि समग्र एव विलसन्मायी चकास्ति प्रभुः ।
दाक्ष्ये तत्र वनाचले सुरुचिरे दृष्ट्वाऽप्यहं तां दिशां
नत्वाऽप्यन्यत एव यामि किमहो नाथस्य कीदृक् कृपा ॥३॥

मायामय यह प्रभु सर्वप्रकारसे मेरेको खाकर और मेरे शरीर और जीवमें समग्ररूपसे अनेक प्रकारके विलास करता हुआ प्रकाश-मान हो रहा है। यही प्रभु दक्षिण दिशामें अति रमणीय वनाचल पर स्थित है। उस प्रभुकी मेरे ऊपर कैसी विलक्षण कृपा है, कि मैं उस प्रभुके दर्शन करके कृतार्थ हुआ हूँ। मैं अब उस प्रभुके चरणोंको छोड़ कर क्या किसी दूसरेका आश्रय पकड़ूंगा ? ॥ ३ ॥

जीवानां जगतां च मण्डलमपि स्वैरं स्वयं पाति य-
स्सोऽयं नास्तिकराक्षस प्रमथनस्संचारशीलो भुवि ।
आस्ते दक्षिणदिग्भवे च तिलकप्राये वनाद्रौ परं
देहं मे नहि जातु च त्यजति मे नाथस्य कीदृक्कृपा ॥४॥

जो प्रभु इस ब्रह्माण्ड मण्डलमें समस्त जीवगणोंकी स्वयं रक्षा करते हैं। और जो प्रभु नास्तिक राक्षसोंका मंथन करनेके लिए भूमण्डलमें आकर अवतार धारण करतेहैं, और जो प्रभु दक्षिण दिशा-रूपी वधूको शोभा देनेके लिए तिलककी समानता रखने वाले वनाद्रि पर विराजमान हैं। वह मेरे शरीरको एक क्षणभर भी कभी नहीं त्यागते। मेरे स्वामीकी मेरे ऊपर कैसी विलक्षण कृपा हुई है ॥४॥

नाशार्थं नास्तिकानां दिवि च दिविपदां श्रेयसेऽप्यास्तिकानां
प्रीत्यै चानन्दवृद्ध्यै सततशुभगुणाशंसिनां वै मुनीनाम् ।
पद्यालीहृद्यगीतावलि मपि च ममस्वैरमेव स्वयं श्री
नाथो मे भाति गायन्नहह वनगिरौ गान लोलोऽनुगायन् ॥५॥

अहह! जो प्रभु नास्तिकोंके नाश करनेके लिए, और स्वर्गमें देव-ताओंके कल्याण करनेके लिए, और आस्तिकोंके हृदयमें प्रेमभक्ति बढ़ानेके लिए, और निरन्तर भगवद्गुण गाने वाले सज्जन मुनिगणोंको आनन्द बढ़ानेके लिए, मेरे द्वारा हृदयको हरण करने वाली गीतोंसे युक्त पद्यावली (सहस्रगीति) को स्वयं गान करवाता हुआ, वन-गिरीके ऊपर मधुरगानको सुननेके लालचसे आकर विराजमान हुआहै॥५

भक्त्यातौ विधिशंकरौ पदयुगं स्तुत्वा च यस्य प्रियौ
कारुण्यात्स जगत्त्रयीं च जठरे कृत्वा स्वयं रक्षकः ।
कल्पान्तेष्वपि माधवो वनगिरौ-भात्यद्य नाथो मम
प्रीत्याऽसौ मयिव्यामोहितोऽस्ति सततं नैव त्यजेन्मां हरिः ॥६॥

जिस प्रभुके चरणयुगलोंको परमभक्तिके साथ स्तुति करके ब्रह्मा और शिव उनके अत्यन्त प्रिय होगये। जो प्रभु कल्पान्त

(महाप्रलय) में कृपा करके समस्त लोकोंको अपने पेटमें धारण करके स्वयं रक्षा करते हैं, वही मेरे स्वामी माधव आज वनगिरी पर विराजमान हैं। वह मेरे प्रेमसे इतने मोहित होगये हैं, कि वह मुझे अब कभी भी छोड़कर नहीं जाते हैं ॥ ६ ॥

कारुण्यं मयि दर्शयेश्वर ! दयासिन्धो जगन्नायके-
त्येवं रुद्रचतुर्मुखौ शतमखो देवा मुनीन्द्रा अपि ।
यं शंसन्ति सदाऽपि तस्य सततं वासाश्रयोभास्वरो,
रम्यो मोहविनाशको गिरिरयं नाम्ना वनाद्रिःस्वयम् ॥७॥

जिस प्रभुकी रुद्र ब्रह्मा इन्द्र आदि देवता और मुनि वृन्द स्तुति करते हुए यह कहते हैं कि हे ईश्वर ! हे दयासागर ! हे जगन्नायक ! हमारे ऊपर अपनी कृपाको दिखाइये। उसी प्रभुका निरन्तर वास करनेका स्थान यह वनाद्रिनामका है। जो नानाप्रकारके वनोंसे शोभाको बढ़ाता हुआ हमारे संसार जनित मोहको विनाश करता है ॥ ७ ॥

श्रीमन्तं च वनाद्रिमद्भुततमं ! क्षीराम्बुधिं ! मस्तकं
मे ! विष्णोः परमं पदं च कमला कान्तस्य ! शेषाचलम् ।
देहं जीवमपीह मेत्र हृदयं वाचं कृतिं चाच्युतो,
नेवासौ त्यजति क्षणं च जगतामेकं परं कारणम् ॥८॥

जो प्रभु समस्त जगतका एक ही परमकारण है, और जो शोभा युक्त वनाद्रिको और अतिविचित्र क्षीरसागरको और मेरे मस्तकको तथा लक्ष्मीपति विष्णुके परमपदको और मेरे देह और जीव तथा हृदय वाणी और अन्य कार्यको एक क्षणभर भी नहीं त्यागता वही अविनाशी प्रभु स्वाश्रितोंको कल्याण देने वाला है ॥ ८ ॥

सर्वेषां जगतां य आदिरखिलं विश्वं सृजन् पालयन्
कल्पेष्वेव विनाशयन्नपि वर्त्तत्येवं प्रभुर्मे हरिः ।
गम्भीराम्बुधिवर्ण एव जयति श्रीमान् वनाद्रौ शुभे
हे चित्त त्वमिमं गिरिं भज सदा ते स्वस्ति मोक्षो भवेत्॥९॥

जो प्रभु सम्पूर्णजगत्का आदिकारण है, जो सम्पूर्ण विश्वकी रचना और पालन करता है, और कल्पान्तमें सबका नाश करता हुआ क्रीड़ा करता है । वही मेरा प्रभु गम्भीर समुद्रके समान नील-वर्णधारी सर्वशोभाधाम कल्याणरूप वनाद्रि पर सर्वश्रेष्ठरूपसे विराज-मान है । हे मेरे चित्त ! तू सदा इस पर्वतकी ही सेवा कर, तेरा सर्व विधि कल्याण होगा, और इसीसे मोक्षभी तेरे को प्राप्त होजायेगी ॥६॥

स्वामिन् ! मे वनगिर्यधीश यदहं भूत्वा त्वमेवाच्युत !
श्रीमन् पालयसीह मां च विषयान् ज्ञानेन्द्रियाणां गणाम् ।
तत्कर्मेन्द्रियपंचकं च दलयन् भूतानि पंचापि च
त्वं मूल प्रकृतिं महान्त मपिवाहंकारचित्ते जहि ॥१०॥

हे मेरे स्वामिन्, हे वनगिरिके अधिष्ठाता, हे अच्युत, हे शोभा-धाम ! मैं जो सर्वप्रकारसे आपका होकर आपके रूपमें मिल गया हूँ, और आप सर्वप्रकारसे मेरी रक्षा भी करते हो, अतएव आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि विषय (शब्दस्पर्श रूपरस गन्ध) और इनको भोगने वाले पंचज्ञानेन्द्रियगण और पाँच कर्मेन्द्रियगण तथा पंचभूत मूलप्रकृति महत् और अहंकार और चित्त इनकोभी शीघ्रतासे नष्ट करदे।

इस गाथामें बारबार जन्म मरणके चक्रमें आत्माको डालने वाले लिंग शरीरसे छुड़ानेकी प्रभुसे प्रार्थना करते हैं, क्योंकि यह बात मानी हुई है, कि पंचज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेन्द्रिय पंचभूत मन और महतत्त्व इसप्रकार इन सत्रहतत्त्वोंसे लिंगशरीर बनताहै। और जब तक जीवकी मुक्ति नहीं होती तब वह जीवात्माको जन्ममरणके चक्रमें डालता ही रहताहै। जैसे धानको बोनेसे उसमें अंकुर उत्पन्न होजाता है, परन्तु यदि, वही धान भाड़में भून लिया जाय तो फिर बोनेसे उसमें अंकुर उत्पन्न नहीं होता । क्योंकि भूननेसे धानकी अंकुरोत्पादक शक्ति नष्ट हो जाती है । इसी प्रकार इस जीवके लिंग शरीरमें स्थूल शरीर धारण करनेकी शक्ति रहती है, और वह सृष्टिसे लेकर प्रलय तक और प्रलयमें भी निराबाधरूपसे स्थित रहतीहै । जब साधक तत्त्वज्ञान द्वारा परमात्माका साक्षात्कार करके ईश्वरीय बलसे उस लिंगशरीरको

नष्ट कर देता है, तो फिर जन्मादिलेनेकी कोई सामग्री आत्माके पास नहीं रहती । इसी कारण वह आत्मा फिर जन्ममरणके चक्रमें नहीं पड़ता । परन्तु तत्त्वज्ञानादि उपाय अनेक जन्म साध्य और दुष्कर हैं । इसीलिये आल्वार आतुर होकर प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि इन्द्रियादि जन्य मेरे लिंगशरीरको आप नष्टकरदें । भगवत् कृपासे जो कार्य सुगमता पूर्वक शीघ्र हो सकता है वैसा अन्य उपायोंसे नहीं हो सकता है इसीलिए परम चतुर शठकोपसूरिने मुक्तिके लिए अन्य उपायोंको छोड़ प्रभुकी कृपाका ही अवलंब लिया है ॥१०॥

नाशार्थं महतोऽप्यहंकृति मनस्तत्वद्वयस्याप्यसौ,
नाशायेन्द्रियपंचकस्य विपयैर्भूत्वाऽभिमानी स्वयम् ।
आत्मात्मीयमपि स्वयं भवति यस्तं श्रीशठारिर्भजन्
साहस्रे दशकं किलाह तदिदं मुक्त्यै वनाद्रिं प्रति ॥११॥

जो महत्तत्व अहंकार मन बुद्धि और पंचज्ञानेन्द्रिय तथा पंच कर्मेन्द्रियोंके नाश करनेके लिए इनका स्वयं अभिमानी होकर आत्मा और आत्मासे सम्बन्ध रखने वाली वस्तुभी स्वयं हो जाता है । उस प्रभुकी स्तुति करनेके लिए शठकोपमुनिने सहस्रगीतिमें यह दशक वनाचलके महत्व बतलाते हुए कहा है । इसका जो पाठ करेंगे वे अवश्य ही मुक्तिको प्राप्त हो जायेंगे ॥११॥

इति श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके सप्तमदशकं समाप्तम् ।



अथ श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके अष्टमदशकारम्भः ।

इस दशकमें आल्वारके परमप्रेमसे आकर्षित होकर परमात्मा उनको अपना स्नेह दिखाने लगे । इस प्रकार परमात्माका अपने ऊपर बहुतही अधिक प्रेम देखकर आल्वार उनसे कहने लगे कि प्रभो ! पहले आपने इस दासको अनादर करके क्यों त्याग किया । इसके उत्तरमें प्रभुने कहा कि तुम्हारे प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये ही हमने यह सब कुछ किया है । प्रभुके सन्तोषप्रद वाक्योंको सुनकर श्रीवामपुरीमें विराजे हुए भगवानकी स्तुति करने लगे ।

श्रीमद्वनाद्रि शुभकीर्तनतः परात्मा,
चित्ते प्रविश्य मम भाति न माधवोऽयम् ।

अस्येदमेव नगरं मणिवाहिनद्या,
स्तीरे शुभं लसति नाम पुराभिधानम् ॥१॥

अहह ! मैंने वनाचलका जो प्रशंसात्मकवर्णन किया है, उससे प्रसन्न होकर यह परमात्मा माधव मेरे चित्त चत्वरमें आकर विराजमान हो गया है । इसी प्रभुका निवासस्थान मणिके समान स्वच्छ जल वहनेवाली नदी के तटपर शोभा देरहा है, जिसका शुभनाम श्रीनामपुरी है ।

श्रीनामपुरीनामका दिव्यदेश पांड्यदेशमें ताम्रपर्णीनदीके दक्षिण तट पर विराजमान हैं । इसको उस देशकी भाषामें तिरुप्पेर कहते हैं । यहां मकरायत कर्णपाश भगवान पूर्व मुखसे विराजमान हैं ॥१॥

श्रीनामपूर्यधिपतिः परमः प्रभुर्मे,
चित्ते प्रविश्य कृपया स्थिरमेव पूर्णः
सप्ताम्बुदाम्बुधिगिरीनपि सर्वलोकान्,
भुक्त्वाऽप्यतृप्तमपि तं मयिधारयामि ॥२॥

जो प्रभु श्रीनामपुरीमें विराजमान होकर वहां के अधिष्ठाता बने हैं, वे ही कृपा करके मेरे चित्तमें पूर्णरूपसे घुसकर स्थिरासनसे बैठे हैं । जो प्रभु प्रलयके समय सप्तसमुद्र और सप्तमेघ और सप्तपर्वत और समस्त लोकोंको खाकर अपने पेटमें धरकर भी तृप्त नहीं होते हैं, उन प्रभुको मैं अपने अति तुच्छ चित्तमें धारण करता हूँ, यह उन्हीं प्रभुकी विचित्र लीला है ॥२॥

श्रीगोपुरैर्ध्वजयुतैरपि सौधवर्गैः—
सम्भूषिते वसति नामपुरे मुरारिः ।
तत्पादयुग्म भजनात्सुलभाद्भवाब्धिं,
सन्तीर्य दुःखरहितोऽस्मि निहत्य मायाम् ॥३॥

अहह ! जो प्रभु शिखरों पर ध्वजा फहरानेवाली, और ऊँची ऊँची शिखरोंसे युक्त मन्दिरोंसे शोभायमान और अनेक गोपुरों से भूषित नामपुरी दिव्यदेशमें वास करता है । अति सुलभ उसके

चरणोंके भजनसेही मैं संसार समुद्रको तर कर समस्त दुखोंसे रहित होकर मायाको जीतनेकी शक्ति वाला हुआ हूँ ॥३॥

प्राप्यं हि भाति सुलभं मम चेति नेत्र,
द्वन्द्वं प्रहर्षभरितं हृदयं प्रहृष्टम् ।
आनन्दवानहमिहास्मि ददाति विष्णुः
श्रीनाम पुर्यधिपतिः परमं पदं मे ॥४॥

जो प्रभु सर्व साधारण प्राणियोंको सुलभता पूर्वक दर्शन देनेके लिये नामपुरीमें आकर विराजमान हुए हैं, उनके दर्शन करके मेरे दोनों नेत्र आनन्दसे हर्षित होगये हैं, और मेरा हृदय बहुतही प्रसन्न हो गया है। यद्यपि परमपदसे भी अधिक आनन्द अब मुझे यहाँही प्राप्त हो रहा है, तथापि श्रीनामपुरीके स्वामी भगवान्‌विष्णु मुझे परमपदही देना चाहते हैं ॥४॥

भृंगावृतैरपिवनैस्सहिते च रम्ये,
मोक्षप्रदोजयति नामपुरे हरिर्मे ।
एवं प्रतिश्रुतिश्रुतो मम चर्मदेहं,
क्षिप्रं प्रविश्य हतवान्मम कर्मराशिम् ॥ ५ ॥

जो प्रभु भौंराओंकी ध्वनिसे शब्दायमान वनोंसे अति रमणीय नामपुरीमें विराजमान हुए हैं, उन्होंने मेरे लिए परमपद देने की प्रतिज्ञा की है। अतएव मेरे इस अन्तिम (जिसका भविष्यमें पुनः सम्बन्ध न हो) शरीरमें घुसकर बड़ी शीघ्रतासे मेरे सर्व प्रकारके शुभाशुभ कर्मोंका नाश कर दिया है ॥५॥

श्रीनामपुर्यधिपति र्वनगिर्यधीश,
स्स्वामी हृदीह निवसामि तवेति पूर्णः ।
चित्ते प्रविश्य मम गौरवमातनोती,
त्यानन्दवानहमिहामृत पानमत्तः ॥६॥

जो प्रभु वनाचल पर सुन्दर बालरूपसे निवास करते हैं, और वे ही आकर श्रीनामपुरीमें विराजमान हुए हैं, उन्होंने मेरे से यह प्रतिज्ञा की है कि हम पूर्णरूपसे तुम्हारे हृदयमें निवास करेंगे। इसी कारण वह प्रभु मेरे चित्तमें घुसकर बैठने में अपनी बड़ी भारी प्रतिष्ठा समझते हैं, और मैं भी उनका अनुभवामृतपान करके परमानन्दको प्राप्त होकर मतवाला होगया हूँ ॥ ६ ॥

श्रीनाम पुर्यधिपतिर्मम दर्शनार्थं
प्रत्यक्ष एव भवतीह न याति दूरम् ।
नित्यानुभूतिमुदितोऽस्मि न हीयते मे
किंचिच भोगविभवैर्नम उक्तिगोऽस्मि ॥ ७ ॥

श्रीनामपुरीके अधिपति परमात्मा ही मुझे दर्शन देनेके लिए प्रत्यक्ष हुए हैं, और अब वे मुझसे हटकर दूर नहीं जाना चाहते। और मैं भी उनका नित्यानुभव करके बड़े आनन्दको प्राप्त होता हूँ, और मेरा शरीर किसी प्रकार भी अब शिथिल नहीं होता। अब मेरी यही अभिलाषा है कि मुझे जो भी कुछ भोगैश्वर्यादिक प्राप्त हैं, उन सबको उस प्रभुके चरणोंमें ही समर्पण करके बारम्बार प्रणाम करता हुआ उसके भजनमें ही लग जाऊँ ॥ ७ ॥

चक्षुः पुरोऽस्ति मम नैव हि याति दूरं
संकल्पतः किलमहानति सूक्ष्मरूपः ।
सप्तस्वरादि रस वारिधि राज्यसौध
श्रीनामपूर्यधिपतिर्हृदि मे प्रविष्टः ॥ ८ ॥

वह प्रभु अपने संकल्पसे अपना अत्यन्त सूक्ष्मरूप बनाकर मेरे हृदयमें आकर बसे हैं, और अब तो वे सदाही मेरे नेत्रोंके सामने अपनी श्यामसुन्दर मधुर मूर्तिको दिखाते हैं। एक क्षणके लिए भी दूर नहीं जाते, वही प्रभु सप्तस्वरोंके मधुर गानेके रसोंके समुद्रोंसे युक्त मन्दिरों वाले श्रीनामपुरीमें विराजमान हुए हैं, और वे अब मेरे हृदयमें घुसकर स्थिर होगये हैं ॥ ८ ॥

अद्य स्वयं सपदि मामपि वस्तु कृत्वा
स्वात्मानमेव मयि भाति च सन्निवेश्य ।
पूर्वं कथं त्यजति हि स्मपुरानुगं मां
द्रष्टुं हि नामपुरनायकमुद्यतोऽस्मि ॥ ९ ॥

मैं श्रीनामपुरीके अधिष्ठाता परमात्मासे यह पूछना चाहता हूं कि आज तो आपने स्वयं निर्हेतुक कृपा करके मुझे सच्ची वस्तु बना दिया, और अपने स्वरूप को भी आप मेरे भीतर घुसाकर विराजमान कर रहे हो, परन्तु मैंने तो आपके चरणोंमें परमानुराग लगाया था, फिर आप मुझे छोड़कर पहले क्यों चले गये थे ? ।

त्वां संश्रितोऽस्मि तव पादयुगं श्रितोऽस्मि
त्वद्दास्यतो मम विभो तदिदं हि कांक्षे ।
श्रीवैदिकाश्रय भुवीह तु नामपुर्यां
भासि त्वदंघ्रिविनतेषु न दुःख सङ्गः ॥ १० ॥

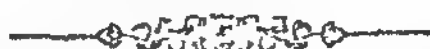
हे प्रभो ! वेदोंके पढ़ने वाले ब्राह्मणोंका जहाँ पर नित्यही निवास रहता है, वहाँ पर आपके चरणोंको प्रणाम करने वालोंको कभी किसी प्रकारका दुःख नहीं होता । उस नामपुरीमें आप विराजमान हो रहे हो । मैं अनादिकालसे आपकी शरण लेता आया हूँ । और अबभी मैंने आपके चरणयुगलकी ही शरण ली है, और इन चरणों की सेवाका फल मैं यही चाहता हूँ कि सदाही मुझे आपकी दास्य-वृत्ति मिला करे ॥ १० ॥

क्षेत्रैश्च सस्यभरितैः परितः परीतं
निर्दुःखमेव शुभनामपुरं प्रतीदम् ।
साहस्रके व्यरचयद्दशकं शठारि
र्भक्ताः पठन्ति यदि शासति धाम दिव्यम् ॥ ११ ॥

हरे खेतोंसे जो चारों ओरसे घिरा हुआ है, जिसमें बसने वाले प्राणियोंके सर्वप्रकारके दुख छूट जाते हैं, उस श्रीनामपुरीके वासी

परमात्माका स्मरण करते हुए शठकोपमुनिने सहस्रगीतिमें इसदशककी रचनाकी है, जो भक्तजन इसदशकको पढ़ेंगे, वे अवश्य ही दिव्य-धाम (परमपद) में जाकर ऐश्वर्यका भोग करेंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके अष्टमदशक समाप्तम्।



अथ श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके नवमदशकारम्भः।

इस दशकमें परमात्माके कृपापात्र श्रीवैष्णवगण जब इस नश्वर शरीरको छोड़ कर परमपदमें जाते हैं तो मार्गमें आने वाले देवलोकोंके स्वामी उनका विधिपूर्वक आकर सत्कार करते हैं, और इस प्रकार अनेक देवलोकवासियोंके सत्कारको स्वीकार करके सुख पूर्वक यथेष्ट उन लोकोंमें निवास करते हुए परमपदमें नित्यानन्दको प्राप्त होकर मुक्त होजाते हैं, इस प्रकार अर्चिरादि मार्गका प्रतिपादन आलवार करते हैं।

नारायणस्य जगतां परिपालकस्य
भक्तान्मम प्रभुवरस्य विलोक्य मेघाः।
गर्जन्ति तूर्यनिनदैः स्वकरैस्तरङ्गै—
नृत्यन्ति चाब्धय उदेति च सप्तलोकी ॥ १ ॥

अहह ! समस्त जगतके पालनकर्त्ता सर्वश्रेष्ठ मेरे स्वामीके परम-भक्त श्रीवैष्णवोंको अर्चिरादि मार्गसे जाते हुए देखकर परमप्रसन्नताके साथ उनका स्वागत करनेके लिए मेघगण अपनी गर्जना द्वारा दुंदुभी ध्वनि करते हैं, और समुद्र उछलती हुई चञ्चल तरंगरूपी हाथोंको फैला फैलाकर नृत्य करते हैं, और ऊपरके सात लोकवासी देवगण उनके दर्शनोंको आकर चारों ओरसे खड़े होजाते हैं ॥ १ ॥

भक्तान् विलोक्य सजलो जलदः प्रहृष्टो
नारायणस्य गगने ननु पूर्ण कुम्भैः।
सौवर्ण कैर्लसति गर्जति चाब्धिमाला
लोका भजन्ति-गिरिभिर्दिवि तोरणैस्तान् ॥ २ ॥

आकाशमें अर्चिरादि मार्ग द्वारा जाते हुए नारायणके भक्तोंको देखकर नीलमेघ बड़ी प्रसन्नताके साथ, सुवर्णके पूर्ण कुम्भोंका जल

लाकर स्वागत करते हैं। उस समयमें समुद्र अपनी गर्जना द्वारा अनेक प्रकारकी वाद्यध्वनिका कार्य करते हैं। और बड़े बड़े पर्वत-तोरणोंका कार्य करते हैं, और स्वर्गमें स्वर्गवासी समस्त देवगण दर्शकोंके रूपमें आकर उपस्थित होते हैं ॥ २ ॥

विक्रान्तभूमिवलयस्य हरेस्तु भक्तान्
धूपैश्च पुष्पसहितैः परितोऽर्चयन्तः ।
लोका उपर्यथ परं पदमेव गन्तुं
मार्गोऽयमित्यपि मुदा मुनयोऽपि चाहुः ॥ ३ ॥

जिस प्रभुने भूमण्डलको अपने चरणोंसे आक्रमण किया था। उस हरिके भक्तोंको स्वर्गलोकों में जाते हुए देखकर वहाँके निवासी देवगण धूप और पुष्पादि सामग्री लेकर चारों ओरसे उनका पूजन करते हैं। और दिव्य मुनिगण उनके सन्मुख आकर वैकुण्ठकी ओर इशारा करके बड़ी प्रसन्नतासे कहते हैं कि आइए पधारिए वैकुण्ठ जानेका भगवद्भक्तोंके लिए यही मार्ग है ॥३॥

श्रीमाधवस्य तुलसीरुचिराढ्यमौले-
र्भक्तान् मुदाप्यनिमिपास्स्थलतोऽर्चयन्तः ।
ते द्वादशापि रवयः किरणैः करैस्स्वै-
र्भेरी निनाद उदभूज्जलधेश्चघोषैः ॥४॥

दिव्य तुलसीके धारणसे शोभित मस्तक वाले श्रीमाधव भगवान के भक्तोंको अर्चिरादि मार्गमें जाते हुए देखकर मार्गमें आने वाले स्वर्ग लोकोंके स्वामी सर्व प्रकारसे उन भक्तोंकी अर्चना करते हैं, और द्वादशादित्य अपनी प्रकाशमान किरणोंसे मार्ग दिखाते हैं। और अनेक प्रकारके समुद्रके समान गर्जन करते हुए बाजोंके शब्दोंसे देवगण उनका स्वागत करते हैं।

यह बात पुराणोंसे सिद्ध है कि बारहमासोंमें बारह सूर्य प्रकाश करते हुए संसार यात्राका निर्वाह करते हैं। श्रीविष्णुपुराण २-६-१० में लिखा है कि चैत्रमें धाता, वैसाखमासमें अर्यमा, आषाढ़में

मित्र, और श्रावण में शक्र और भाद्रपदमें विवस्वान् और कार्तिक में विश्वावसु, मार्गशीर्षमें भर्ग और पौषमें त्वष्टा, माघमें विष्णु फाल्गुनमें सविता अपने अपने अधिकारनुसार सूर्य मण्डलमें स्थिर होकर प्रकाश करते हैं। जब मुक्त पुरुष अर्चिरादिमार्गसे परमपदको जाता है तो ये द्वादश सूर्य उसका स्वागत करके अपने प्रकाशद्वारा उसको मार्ग दिखाते हैं ॥४॥

द्वारेषु तत्र दिवि वासिन आह्वयन्त,
श्रीमाधवाश्रितगणानिह गच्छतेति ।
तुष्टास्समर्प्य सुकृतानि च वेद वक्त्रा,
गायन्ति हि स्म गरुडा अपि किन्नराश्च ॥५॥

जब श्रीवैष्णवगण इस भौतिक शरीरको छोड़कर सुषुम्नानाड़ी द्वारा अपने आत्माको निकालकर अर्चिरादिमार्गद्वारा परमपदमें लेजाते हैं तो वहाँ श्रीवैकुण्ठके द्वारपाल गण सम्मान पूर्वक आइए विराजिए कह कर उनको बुलाकर स्वागत करते हैं। और प्रसन्न होकर अपने पुण्योंको मुक्तात्माके लिए समर्पण करके वेदोंके सूक्तोंका उच्चारण करते हुए गान करते हैं। गरुड़ और किन्नर (देव जाति विशेष) प्रसन्नतासे गान सुनाकर मुक्तका स्वागत करते हैं ॥५॥

आराधितास्श्रुति मुखैस्सुकृतैश्चधूपै-
स्सौगन्ध्यवद्भिरपि काहल शंखनादैः ।
भक्तास्सुचक्रिण इदं पदमाश्रितास्स्थे-
त्यभ्यर्थिता बहुतमां च सुराङ्गनाभिः ॥६॥

दिव्य वैकुण्ठधामके द्वारके बाहरही सैकड़ों नव यौवनवती अप्सराएँ आकर मुक्त पुरुषोंका अनेक प्रकारकी सुगन्धित धूप तथा अति सुगन्धित फूलमाला पहनाकर और सुन्दर चन्दन लगाकर पूजन करती हैं। और काहल (एक प्रकारका बाजा) और शंख बजाकर बहुमान करती हुई प्रार्थना करतीहैं कि हे भक्तवर! आप चक्रधारीके दिव्यस्थानमें चलकर दिव्य पदको अलंकृतकीजिए ॥६॥

श्रीकेशवोऽम्बुधिशयश्शुभरत्नमौलि,
गोपालको विजयते ननु कुम्भपुर्याम्।
भक्तान् किलास्य मरुतो वसवश्चतुष्टा,
स्स्तुत्वा स्वकीयललनानिवहैस्तु धन्याः ॥ ७ ॥

समुद्रमें शयन करने वाले रत्न जटित मुकुटको मस्तक पर धारण करने वाले श्रीकेशव भगवान् जो व्रजकी गौवोंके पालनके लिए कृष्ण रूपमें हुए थे। वे ही कुम्भपुरी (कुम्भकोणम्) में आकर विराज रहे हैं। उनके भक्त गणोंको स्वर्गमें मरुद्गण और वसुगण ये सब प्रसन्न होकर अपनी स्त्रियोंके साथ स्तुति करकेही अपनेको धन्य भाग्य समझते हैं ॥ ७ ॥

गोविन्दभक्तनिवहा इति कीर्तितास्तै,
र्दिव्यैः किरीटसहितै रभिगम्य तुष्टैः।
श्रीमाधवस्य परमं पदमेव गन्तुं,
तद्गोपुरं रुचिर केतुयुतं प्रविष्टाः ॥८॥

उन मुक्तपुरुषोंकी संपूर्ण देवगण अपने दिव्य किरीटोंको झुका कर हे गोविन्द भक्त कह कर उनकी प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार अति प्रसन्न देवगणोंकी पूजा और स्तुतिको स्वीकार करते हुए लक्ष्मी-पतिके परमपदमें जानेके लिए सुन्दर ध्वजासे शोभायमान गोपुर (प्रधान द्वार) में घुसकर मुक्तात्मा वैकुण्ठधाम में जाते हैं ॥ ८ ॥

वैकुण्ठनाथपुर सम्मुख पालकैश्चा,
प्यायात सन्निधिमिहेति मुदार्चितास्ते।
तत्रामराश्च मुनयो नितरां प्रहृष्टा,
भौमाः परं पदमिदं ननु यान्ति चेति॥ ६ ॥

जब परमप्रभुके भक्त मुक्त होकर वैकुण्ठधाममें जाते हैं तो वहाँ पर वैकुण्ठके द्वारपालगण उनको खड़े होकर सम्मान करते हुए

आइये, भगवत् सन्निधिमें जाकर उनकी नित्य सेवामें भाग लीजिये। ऐसा कह कर उनकी पूजा करते हैं और वहाँके रहने वाले देवगण और मुनिगण प्रसन्नता प्रगट करते हुए यह कहते हैं, कि ओहो! भूलोकका वासी एक प्रभुका भक्त परमपदको जा रहा है, अतएव इनका सर्वप्रकारसे स्वागत करना हम लोगोंका परमकर्त्तव्य है ॥९॥

भाग्यान्विता इति च वेदविदां स्वकीय-
स्थानेषु पूजिततमाः पदपद्मशुद्ध्या।
श्रीपादुकानिधि सुचूर्ण सुपूर्णकुम्भै
दीपैश्च दिव्यललनाभिरभिप्रयाताः ॥ १० ॥

जब मुक्तगण वैकुण्ठधाममें पहुँचते, हैं तो वहाँ पर नित्यमुक्त-गण अनेक प्रकारसे सामवेदकी ध्वनियोंको गाकरके अपने स्थानोंमें यह कहकर उनकी पूजा करते हैं,कि आज हमारा बड़ा भाग्योदय हुआ है जो कि परमात्माके परम भक्तोंकी सेवा करनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है,उन अभ्यागत मुक्तोंके चरण धोकर भलेप्रकारसे पूजा करतेहैं, और नानाप्रकारकी अप्सराएँ उन मुक्तोंकी सेवामें लगी रहती हैं। कोई तो उनकी चरण पादुकाओंके रखनेकी चौकीको सँभालती हैं, कोई उबटना करनेके सुगन्धित चूर्णको लाकर उनके शरीरमें लगाती है। कोई सुन्दर सुवर्णके घड़ाओंसे विरजाका जल लाकर स्नान कराती है, और कोई पूजाकी अन्य सामग्री धूप दीपादि लाकर उनकी सेवा करती हैं अर्थात् उनकी सबप्रकारकी सेवा करनेके लिए वैकुंठमें देव देवियाँ लगी रहती हैं ॥ १० ॥

वेदान्तशास्त्रमें भी अर्चिरादि मार्गका विशद वर्णन इस प्रकारसे है-

ततः सदाचार्यप्रपत्तिपूर्वकं सन्न्यस्य चात्मनमथो परात्मनि।
भुक्त्वातु प्रारब्धमुपागतं पुनः प्रपत्तिशक्त्या विनिवृत्तकल्मषः ॥१॥

इस संसारमें अनादिकालसे जन्ममरणादि अनेक दुःखोंके चक्करमें पड़े हुए प्राणियोंके ऊपर प्रथम परमात्माकी निर्हेतुकदया होती है, इसके अनन्तर वह संसारके सम्पूर्ण विषयोंसे घृणा करके सदाचार्य्यकी शरणमें जाकर उनकी कृपासे भगवच्छरण होता है, और शरणागतिके ही प्रभावसे उसके अनेक जन्मोंके सर्वप्रकारके पाप नष्टहो जाते हैं, और फिर प्रारब्ध कर्मोंको भोगनेसे ही शेषजीवनका व्यतीत करता हुआ शरीर पातकी प्रतीक्षा करता है ॥ १ ॥

विद्वान् विनिष्क्रम्य सुषुम्णया तया नाड्या समारुह्य सवितृरश्मीन्।
ततश्च वह्निं प्रथम प्रयाति ततो दिनं पक्षमुपैति शुक्लम् ॥ २ ॥

शरीरपातके समय भगवत् कृपा से सुषुम्नानाड़ी द्वारा अपने लिंगशरीरको स्थूलशरीरसे निकालकर सूर्यकी किरणोंको पकड़के अग्निलोकमें जाताहै। फिर दिनाभिमानी देवलोक में फिर शुक्लपक्षाभिमानी देवलोकमें जाता है ॥२॥

अथोत्तर प्राप्य बुधोऽयनं ततः सम्वत्सरं देवनिवासवायुम्।
सूर्यं च सोमं च ततश्च विद्युतं जलेशमिन्द्रं च ततः प्रजापतिम् ॥ ३ ॥

फिर उत्तरायणाभिमानी देवलोकमें जाकर सम्वत्सराभिमानी देवलोक में जाता है, फिर वहा से वायुलोकमें और वायुलोकसे सूर्यलोकमें फिर चन्द्रलोकमें फिर विद्युतलोकमें फिर इसी क्रमसे वरुणलोकमें फिर इन्द्रलोकमें फिर ब्रह्माके लोक में जाता है ॥ ३ ॥

स तत्र तत्राखिललोकपालैः समर्चितो याति समस्तलोकान्।
अतीत्य देवैश्च समागतैरसौ ह्यमानवैर्याति सरिद्वरां बुधः ॥ ४ ॥

इस प्रकार मुक्तपुरुष इन द्वादश लोकवासियोंसे बहुमान पूर्वक पूजित होता हुआ और निवास करता हुआ अमानवपुरुषकेसाथ विरजानदीके तटपर पहुँचता है

विहाय लिङ्गं परदेवताया सङ्कल्पमात्रेण तरेच्च तां नदीम्।
ततोऽप्रतं विग्रहमभ्युपेत्य ह्यलंकृतो ब्रह्मसमैश्च भूषणैः ॥ ५ ॥

उस विरजा नदीमें लिंग शरीरको भी छोड़कर सङ्कल्प मात्रसेही उस नदीको तरकर पार हो जाता है। फिर विरजाके उस पारमें उसको दिव्य षडैश्वर्य सम्पन्न शरीर मिलता है और वहा पर ५०० अप्सरायें आकर दिव्य भूषण वस्त्रादि से उसका शृंगार करती हैं ॥ ५ ॥

द्वास्थैः समागम्य परस्परं मुदा ह्यलौकिकं स्थानमसौ प्रपश्यन्।
समागतो भागवतैश्च मार्गे समानशीलैर्भगवत्प्रपन्नैः ॥ ६ ॥

फिर वैकुंठलोकके गोपुरके पास जाकर दिव्य अलौकिक अनेक स्थानोंको देखता हुआ वैकुण्ठके द्वारपालोंसे आनन्दके साथ मिलता है। वहा पर ईश्वरके समान स्वभाव और प्रभाव वाले और ईश्वरकी शरणमें सदा रहने वाले नित्यमुक्त गण सको बहुमान पूर्वक लेजाने के लिये छड़ी चमर छत्रादि लेकर आते हैं ॥ ६ ॥

ततश्च पश्यन् मणिमण्डपेऽसौ स्थूणासहस्रादि विराजमाने।
दिव्ये महारत्नमये महात्मा सिंहासनस्थं पुरुषोत्तमं प्रभुम् ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर सहस्रस्तम्भों के मणिमण्डपमें बहुमूल्यरत्नों से जड़े हुए सिंहासनके ऊपर श्रीशेषजीकी गोदमें विराजे हुए पुरुषोत्तम प्रभुके दर्शन करता है ॥७॥

लक्ष्म्यादियुक्तं परमेशितारं आदित्यवर्णं तमसः परात्परम्।
सुनन्दमुख्यैश्च सुदर्शनादिभिर्नमस्कृतं स्वाञ्जलिसम्पुटैश्च ॥ ८ ॥

परमात्माकी सेवामें श्रीदेवी भूदेवी आदिक हजारों पटरानियाँ लगी रहती हैं। और उनका तेज सूर्यकेसमान अप्राकृतहै,तथा सुनन्दादिकपार्षद और सुदर्शनादिक आयुध सदा उनकी सेवामें साष्टांगप्रणाम पूर्वक उपस्थित रहते हैं ॥८॥

सहस्रसूर्यादि प्रभातिरस्कर द्युभिः किरीटादिसमस्तभूषणैः
विभूषितांङ्गं कमलापतिं हरिं वेदान्तवेद्यं जगतां च हेतुम् ॥ ६ ॥

हजारों सूर्योंकी कान्तिको छकितकरनेवाली कान्ति वाले किरीट मुकुटादिक समस्त भूषण उस प्रभुके हैं, और जो प्रभु वेदान्तशास्त्र द्वारा प्रति पादन किया जाता है, जो लक्ष्मीका पति होकर समस्त संसारका कारण है ॥ ६ ॥

विज्ञान मानन्द स्वरुपकं च स्वभावतोऽशस्त समस्तहेयम् ।
समस्तकल्याणगुणाकरं प्रभुं विज्ञान मूर्तिं परधाम संस्थम् ॥ १० ॥

जिस प्रभुका स्वरूप विज्ञान और आनन्दमय है, और कोई किसी प्रकारका भी दोषका लेश जिसमें नहीं है, सम्पूर्ण कल्याणगुणोंका जो भंडार है। विज्ञान मूर्त्तिसे जो वैकुंठमें वास करता है ॥ १० ॥

दृष्ट्वा मुकुन्दं भगवन्तमाद्यं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपांसुम् ।
दूरान्नमस्कृत्य पदारविन्दयोर्नमो नमो भूय उदाहरन्मुदा ॥११॥

मुमुक्षु गण सदा ही जिसकी चरण-रज की खोज किया करते हैं, जो संसार का आदि कारण रूप है, ऐसे मुकुन्द भगवानका दर्शन करके दूर से ही उनके चरणारविन्दोंमें वारम्वार साष्टांग प्रणाम को करता है ॥ ११ ॥

ततश्च तेनैव कृपार्द्रया दृशाऽवलोकितः श्रीमुखपंकजेन सः ।
गिरापरानन्दनिदानभूतया सम्भावितो याति हि ब्रह्मभावम् ॥१२॥

फिर परमात्मा उस मुक्तको कृपा शीतल दृष्टि से प्रेमपूर्वक देखकर और अपने मुख कमलकी परमानन्द दायिनी वाणीसे सत्कार करते हैं। फिर परमात्माके उस सत्कारसे वह भक्त भी परब्रह्मकी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होकर मायाके समस्त वन्धनोंसे छूटजाता है, और फिर कभीभी संसारके जन्म मरणके चक्रमें नहीं पड़ता ॥१२॥

पुनर्न संसारगतिं समेति वै विमुक्तमायार्गल एष मुक्तः ।
प्रदर्शितेयं श्रुतिभिः परागतिः संक्षेपतो मन्दधियां हिताय ॥ १३ ॥

इस प्रकार हमने अपनी सम्प्रदाय के अनुगुण श्रुति और स्मृति आदिक अनेक प्रमाणों से सिद्ध हुई अर्चिरादि मार्गकी गति सर्वसाधारणके कल्याण करने के लिये वतलाई है । भगवच्चरणकमलकी गंधके अभिलाषी मुमुक्षु गणोंको, इसका पाठ नित्य प्रति ही करना आवश्यक है ॥ १३ ॥

सर्वेश्वरेऽप्यभिमुखे स्वयमागतेऽस्मिन्
दिव्यै च भक्तनिवहैर्मणिमण्डपे तैः ।
आनन्दसिद्ध भवदत्परमां शठारि--
रसाहस्रकेऽत्र दशकान्मुनयो दिवि स्युः ॥ ११ ॥

सहस्रगीतिके इसदशकमें शठकोपमुनिने यह कहा है कि मुक्त जब श्रीवैकुण्ठधाममें दिव्यमणि मण्डपमें पहुँचता है तो उसके आने से परमात्माको ऐसा हर्ष होता है, जैसा बहुत दिनोंसे विछुड़े

अपने प्रिय पुत्रको देखकर पिताको आनन्द होता है। उस आनन्दमें विभोर होकर परमप्रभु अनेक भक्तगणों (पार्षदों) के साथ आकर उस मुक्तका स्वागत करते हुए कहते हैं कि अब तुम्हारे संकट सदाके लिए दूर होगये, अब तुम अनन्तकाल तक आनन्द सिद्धिका अनुभव करो।

इस प्रकार परमात्माके मुखसे अभयदान वाक्योंको सुनकर मुक्त भी नित्यानन्द भोगता हुआ वैकुण्ठधाममें अनन्तकाल तक वास करता हुआ नित्यानन्द भोगता है॥ ११॥

इति श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके नवमदशकं समाप्तम्।

अथ श्रीसहस्रगीतौ दशमशतके दशमदशकारम्भः।

इस दशकमें आल्वार प्रभुसे प्रार्थना करते हुए कहते हैं, कि आपने अपनी सुन्दरता दिखाकर हमें उसमें फँसा लिया है। अब हमसे यह दुखपूर्ण संसारका वास नहीं सहा जाता, अतएव कृपा करके हमको श्रीदिव्यवैकुण्ठधाममें पहुँचा दीजिये, आल्वारकी इस प्रार्थनाको सुनकर परमात्मा गरुड़ पर चढ़कर आते हैं और परमभक्त शठकोपसूरिको अपनी गोदमें बैठाकर परमपदमें लेजाकर उनको नित्यानन्द प्रदान करते हैं।

मौनिन्! हे चतुरानन त्रिणयन श्रीनाथ! बिम्बाधर!
श्रीमाणिक्यसुरूप! पद्मनयन त्वं वंचको भासि मे।
एकस्मिन् मयिपूर्ण एव विलसस्यात्मा च शीर्षेऽसि मे
त्वां मुञ्चामि न जातु चिन्न तदहं त्वं मां च मा वंचय॥१॥

मौन होकर सृष्टिकी चिन्तामें लगने वाले चतुर्मुख ब्रह्मदेव! हे त्रिनेत्रधारी! हे श्रीनाथ, हे बिम्बाधर! हे श्रीमाणिक्यस्वरूप! हे कमललोचन! तुम मुझे आज वंचक (ठग) जान पड़ते हो, तुम मेरे अकेले ही के भीतर पूर्णरूपसे विराजमान हो रहे हो। मेरी आत्मा और मेरे मस्तकमें प्रेमसे विराज रहे हो, किन्तु कभी कभी आप ऐसे अदृश्य हो जाते हो कि खोजने पर भी आपका पता नहीं लगता। मैं जब आपके चरणोंको एक क्षणभरभी नहीं छोड़ता तो आपही क्यों मेरे साथमें वंचना करते हो?॥ १॥

मां मा वंचय वत्तसीह तव या मालेवभाति स्वयं
श्रीपद्माशुभगन्धिकेश्यनु च तां त्वां चानु सत्यं शपे।

कृत्वा स्नेहमहो मया सह भवानेकी भवन्मां हरे।
निश्शंकं वृतवान् किल त्वमधुना मामाह्वयागत्यभोः ॥२॥

हे हरे ! जो श्रीलक्ष्मी सुन्दर पुष्पोंके धारणसे सुगन्धित केश वाली होकर आपके वक्षस्थलमें नित्य ही विराजमान होकर मालाके समान शोभायमान हो रही है । उन्हींकी और तुम्हारी भी तुमको शपथ है । यदि अब तुम मुझे छोड़के जावोगे तो, प्रभो ! आपने पहले तो मेरे साथ बहुतही स्नेह करके एका कर लिया, और विना संकोचके मेरेको स्वीकार करके अपना बना लिया है । अतएव मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि अब आप मेरे पास आकर मुझे परमपदमें बुलालें ॥२॥

हे माणिक्य मम प्रिय त्वमसि यद्ब्रह्मेन्द्र रुद्रात्मना
मादिर्नाभिसरोजमूलमसि यत्सूरीश्वरो भ्राजसे ।
त्वं मे भासि किलात्मनस्तु शरणं न त्वां विना वेद्म्यहं
तस्मादाह्वय मां हरे मम विभो मामागतस्सन्नहो ॥ ३

हे मेरे प्यारे माणिक्यवर्ण ! आपही संसारका संरक्षण और वृद्धि करनेके लिए ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्रादि विविध भाँतिके रूपोंको धारण करते हो, और नाभिकमलके आदिकारण भी आपही हो । और आपही नित्यसूरियोंके अधिपति होकर परमपदमें विराजमान रहते हो । मेरी आत्माके रक्षक आपही हो, आपको छोड़कर दूसरे किसी रक्षकको मैं जानता ही नहीं । इसी कारण मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे पास आकर परमपदमें मुझे बुला लें चलिये ॥ ३ ॥

आद्या सा प्रकृतिश्च रम्यतनुभिर्भोग्याभिरानन्दनी
तत्र त्वं परुपः परोऽसि गगने ज्योतिश्च तत्राप्यहो ।
ब्रह्मा शंकर इत्युभौ त्वयि परं दृष्टौ सुरान् यादवान्
सृष्ट्वा भाति भवान् ममापि परमो नाथोऽद्य मां त्यक्तवान् ॥४॥

हे हरे ! सर्व प्रथम एक प्रकृति देवी ही थी जो अति रमणीय नाना प्रकारके शरीरोंको धारण करके आपको आनन्द देने वाली थी। और शून्य गगन मण्डलमें अति तेजस्वी पुरुषरूप आप उस प्रकृतिके

साथ आनन्दको भोगने वाले थे । आपके रचे हुए देवगण और मुनि-गणोंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीब्रह्माजी तथा श्रीशंकरजी ही सर्व प्रथम देखे जाते हैं, और आप मेरे भी सर्वविध सर्वश्रेष्ठ स्वामी हो । फिर भी आपने मुझको त्याग दिया, यह कैसी विचित्र बात है ॥ ४ ॥

तप्तायस्तु यथा पिबेज्जलमहो तापस्य शान्त्यै तथा
त्वामेवामृतमव्ययं किल पिबाम्येवाहमार्तोऽधुना
त्यक्त्वा मां यदि दूरतो वहिरहो कर्तुं च मां चिन्तयेः
प्राप्यः कश्शरणं ममास्ति च कुतः किं स्यान्ममेत्यप्यहम्॥५॥

हे हरे ! जिस प्रकार गरम लोहा जलको प्रचुर परिमाण में पीता रहता है, इसी प्रकार अनादिकालसे सांसारिक तापभयसे सन्तप्त मैं भी अपने तापको शान्त करनेके लिए अविनाशी अमृतरूप आपका ही पान करता हूँ, और यदि इसदशामें भी आप मेरा बहिष्कारकरनेके लिए त्याग करके दूर चले जावोगे तो मेरा दूसरा कौन रक्षक है और कहाँ मिलेगा । और इस अनाथ असहाय अवस्थामें न जाने मेरी क्या क्या दशा होगी, अब यही मुझे बडी भारी चिन्ता है ॥ ५ ॥

भो भो श्यामलवर्ण पद्मनयन त्वं भासि बिम्बाधर–
स्ते श्रीर्भात्यनुरूपरूपविभवा पद्मानु तस्याः प्रियः ।
त्वं मे भासि भृशं प्रियोऽनवधिकं सारामृतं मे भवान्
देहात्माद्यखिलाशनोऽसि नितरां तस्माच्च मां भोजय ॥६॥

हे श्यामसुन्दर ! हे कमललोचन ! आपके समान ज्ञानशक्ति बल ऐश्वर्य वाली श्रीलक्ष्मीजी आपके योग्य ही प्यारीपत्नी हैं, और हे बिम्बाधर ! उसके योग्य आप प्राणप्रिय पतिहैं, और मेरे लिए तो आप इतने प्रिय हैं, कि उसकी अवधि भी नहीं है, तथा मेरे देह मन, बुद्धि, इन्द्रिय और अमृतका सार तथा सर्वप्रकारके भोज्यपदार्थ आपही हैं । अतएव आप मुझे यथेष्ठ अपने श्यामसुन्दर विग्रहके अनुभवरूपी भोजन कराते रहें यही मेरी प्रार्थना है ॥ ६ ॥

सौंदर्यान्वितपद्मवासभवन श्रीवल्लभो मत्प्रियो
नीलाद्रिधृत बालचन्द्रयुगलो भास्वान् यथा त्वं तथा ।

दंष्ट्रातोऽसि वराह उद्धृतधराबिम्बस्तु रम्याकृति-
स्तदत्त्वं जलधेश्च मंथनकरं किं त्वां त्यजाम्यच्युतम् ॥७॥

हे प्रभो ! अति सुन्दर खिले हुए कमलोंमें वास करने वाली श्रीलक्ष्मीजीके आप प्रियपतिहो । हे प्रभो ! जिस समय वराहरूप धारण करके अपनी दंष्ट्राओं(दाढ़ों)पर भूमण्डलको आपने धारण किया था, तो उस समय आपकी अतिरमणीय उस यज्ञवराहमूर्तिकी शोभा इस प्रकार हो रही थी, कि नीलपर्वतके ऊपर नूतन दो बालचन्द्रमाओंका उदय हुआ हो, और स्वाश्रितोंके संरक्षण करनेके लिए ही समुद्रमन्थन सरीखा महान् कार्य आपने किया था, तो क्या मैं अब ऐसे अविनाशी भक्तवत्सलको छोड़ूँगा ? कदापि नहीं ॥ ७ ॥

कर्मद्वन्द्वमपि स्वयं च जगतामात्मा फलं च स्वयं,
त्रैलोक्यं सकलं च गुल्ममखिलं संसारपाशात्ममम् ।
गुप्तस्त्वं किल तत्र सूक्ष्मतम एवाऽऽद्यं च बीजं भवान्,
मे प्राणं परमं प्रपद्य किमहं मुञ्चामि च त्वां पुनः ? ॥८॥

हे प्रभो ! सम्पूर्ण जगतके दोनों प्रकारके (पाप और पुण्य) कर्मों को आप रचकर और उसके करने वाले तथा भोगने वाले प्राणियोंके रूपमें भी आपही हो । आपने ही त्रिलोकी रूपी गुफाको बनाया है । और आपही उस गुफामें घुसकर समस्त वस्तुओंके आदिकारण रूपसे विराजमान हो । और मेरे आत्मा और प्राणोंमें आप विराजमान हो, इस प्रकार सर्वकारण और सर्व श्रेष्ठ आपकी शरण लेकर क्या फिर मैं अब आपको छोड़ सकता हूँ ? ॥८॥

त्रैलोक्यस्य निमित्तकारणमपि त्वं बीजमेवाद्यं !
तत्राप्यत्र समग्ररूपभृदपि त्वं सर्वमूलं परम् ।
भुक्तिमुक्तिरितिद्वयस्य परमं मूलं प्रधानं च भा-
स्येवं सर्वदिशासु चाव्ययममुं त्वां संश्रयेऽहं कदा ? ॥९॥

हे प्रभो ! आप त्रिलोकीके निमित्त कारण और उपादान कारण रूप होकर अकेलेही सर्व सृष्टिके विधाता हो । नित्यविभूति

और लीला विभूति इन दोनों विभूतियोंमें जितने भी पदार्थ हैं उन सबके आप प्रधान मूलकारण हैं। और भुक्ति (ऐश्वर्य भोग) मुक्ति (वैकुण्ठप्राप्ति) इन सबका मूल और प्रधान कारण रूप होकर आप अविनाशी रूपसे सर्व दिशाओंमें प्रकाशमान हो रहे हो। इस प्रकार सर्व व्यापक और सर्व कारण रूपसे सर्वत्र व्याप्त होकर रहने वालेभी आप परमपदमें किसी विशेषरूपसेही विराजमान रहते हो। उसी आपके रूपका मैं कब आश्रय लूँगा ॥ ६ ॥

सर्व व्यापि समस्त दिक्तत–महानित्यप्रकृत्यात्मक–
स्त्वं व्याप्यासि ततोऽतिशायि विलसज्ज्योतिर्मयात्मात्मकः ।
ज्ञानानन्दनिधिस्ततोऽतिशयितस्त्वं ज्योतिरेवाव्ययं
तच्चातीत्य भवं ममाभिलषितं संपूर्य संश्लेषभाक् ॥१०॥

हे प्रभो सर्व वस्तुओंमें व्यापक रूपसे रहकर समस्त दिशाओंमें जिसका विस्तार फैला हुआ है, ऐसी महा नित्य प्रकृतिके भीतर भी आप अन्तर्यामी रूपसे रहकर, और उस प्रकृतिसे भी विशाल रूप वाले हो रहे हो। तथा जितने उज्वल ज्योतिर्मय प्रकाशमान पदार्थ हैं,उनमें आपही व्याप्त हो,और समस्त ज्योतियोंमें भी सर्वश्रेष्ठ अविनाशी ज्योतिस्वरूप आपही हो। समस्त प्रकृति और प्रकाशमान वस्तुओंको अतिक्रमण करके सर्वश्रेष्ठ पदमें निवास करने वाले आपने मेरे सर्व प्रकारके मनोरथ पूरे कर दिये, अब मेरेको समस्त कर्म बन्धन और देह बन्धनोंसे छुड़ाकर अपनी पवित्र सेवामें सदाके लिए स्थापित कर लिया है यह आपकी बड़ी कृपा है ॥ १० ॥

सर्वापेक्षित सम्प्रदानचतुरं सर्वेश्वरं श्रीहरिं
त्वन्तर्यामितया चतुर्मुखहराद्यात्मानमेवाच्युतम् ।
आक्रन्द्य प्रहतार्तिसन्ततिरयं दिव्यं शठारिर्जगा–
वन्ताद्युक्ति सहस्रमत्र दशकाद्धाश्च मुक्ताःस्वयम् ॥११॥

श्रीशठकोपमुनिकृता कलिकन्नृसिंहाचार्येण प्रतिसंस्कृता सहस्रगीतिः समाप्ता. ।

इति श्रीमद्वेदवेदाङ्गाद्यखिलशास्त्रनिष्णात पराशरगोत्रावतंस श्रीमन्माधवाचार्यचरणाश्रित श्रीरामानुजसत्संप्रदायाचार्य मथुरागलतामठाधीश्वर पण्डितस्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्यशास्त्रि विरचित विद्वन्मोदतरङ्गिणी भाषाटीका सहितसहस्रगीतिः समाप्ता. ।